॥ श्रीः ॥

प्राक्-कथन।

(१) 'इतिहासः पुरावृत्तः' कोशकारों ने पुरानी बातों को इतिहास कहा है। इस समय के पण्डितों में कोई सत्पात्रों के चरित्र को, कोई उन के यश को, कोई उनके संमेलन को, कोई देश कालादि की परिस्थिति प्रकट होने को और कोई लड़ाईयों के वर्णन आदि को इतिहास मानते हैं। अस्तु।

(२) वाल्मीक रामायण, महाभारत और पुराण आदि प्राचीन काल के आदर्श इतिहास हैं। इनमें भारत का सुन्दर और ज्ञातव्य इतिहास भरा हुआ है। इनके सिवा रघुवंश आदि काव्यों और उपनिषदों में भी आवश्यक इतिहास के अच्छे अंश मौजूद हैं और उन से संसार का हित हुआ है, हो रहा है और आगे भी होगा।

(३) वर्तमान समय के इतिहासों में पृथ्वीराज रासो और वंश भास्कर जैसे विराट ग्रन्थ भाषा कविता के हैं और टाडराजस्थान, बाक.ए. राजस्थान, इतिहास राजस्थान और राजपूताने का इतिहास आदि नवीन खोज के हैं। इन में रासो का अनुकरण अनेकों ने किया है और ओझाजी के इतिहास से बहुतों का सुधार हुआ है।

(४) इतिहास एक ऐसी वस्तु है जिसके पढ़ने देखने या सुनने से अनेक बातों का अनुभव अभ्यास और अनुमान अपने आप होजाता है और अनेक कामों के करने न करने या किस प्रकार करने आदि की विधि सुविधा और सावधानी सूझ आती है। इसके सिवा यह अनुमान भी किया जा सकता है कि पहले अमुक अवसर में ऐसा हुआ था। आगे ऐसा होसकेगा और अब ऐसा करना चाहिये।

(५) कुछ दिनों से लोगों की रुचि इतिहासों की ओर ज़्यादा बढ़ी है। अनेक आदमी अपने देश जाति या

पुरुषाओं के इतिहास ढूँढते बनाते और छपाते हैं। ऐसा करने में बहुतों को बहुत कम कठिनाई होती है। वे किसी नामी ग्रन्थ से आवश्यक अंश लेकर इतिहास तैयार कर लेते हैं। और खुद न कर सके तो दूसरों से बनवा लेते हैं।

(६) किन्तु जो लोग अनेक जगह से आवश्यक सामग्री ढूँढने, इकट्ठी करने, साँच झूँट जानने, निरापद और समुचित बनाने और यथोचित लगाने आदि में अपनी भूख प्यास और नींद तक को खो देते हैं और 'अणी चूकी धार मारी' की चिंता से सदैव सूखते रहते हैं। उन लोगों के लिए इतिहास लिखना सहज नहीं। वास्तव में उत्तम इतिहास के लिए ऐसा होनाही चाहिये तभी उसका आदर होता है।

(७) इतिहासों में सचाई और शुद्धता होनेके बहुत प्रयत्न होते हैं परन्तु पूरा संतोष नहीं होता यह दोनों बातें ऐसी हैं जिनमें बड़ी सावधानी रखने और बहुत कुछ खोज करने पर भी यथोचित नहीं बनती। क्योंकि बहुत बातें ऐसी होती हैं जिनको ज्यों की त्यों लिख देने से नाराज़ी होती है और बदल कर लिखने से सचाई चली जाती है। इसी प्रकार शुद्ध होना भी कठिन है। इन दिनों विशेषज्ञ विद्वान् हज़ारों शिला लेख देखते हैं, लाखों मन मिट्टी खुदवाते हैं और अगणित पुस्तकें या लिखित प्रमाण पढ़ते हैं परंतु इतने पर भी दूसरे खोजी उनमें गलतियां निकालते हैं और वे उनको मान लेते हैं।

(८) पूरी छानबीन करके सप्रमाण इतिहास लिखने वालों के लिये पंडित गौरीशंकर हीराचन्द जी ओझा आदि के इतिहास आदर्श हैं और उनकी प्रत्येक पंक्ति खूब सोच विचार के साथ सप्रमाण लिखी जाती है। हर्ष की बात है कि इसका अनुकरण अन्य लेखक भी करते हैं और नवीन ग्रन्थों की विशेषता बढ़ाते हैं।

(९) 'नाथावतों का इतिहास कैसा है?' यह मैं नहीं बता सकता। इतना कह सकता हूँ कि अनुभव, योग्यता और लेखन कला आदि से मैं रीता हूँ तथा इतिहास लिखने का यह मेरा पहला प्रयास है। अतः इस में त्रुटियां हों तो आश्चर्य नहीं। मैंने तो सिर्फ इतना ही

किया है कि अनेकों ग्रन्थों में जहां जो कुछ अंश इस इतिहास से संबंध रखने वाला मिला उसे इसमें लिख दिया है और कौन अंश कहाँ से लिया इसके लिये ग्रन्थ का नाम और पृष्ठ संख्या लगादी है। यह बात अवश्य है कि हज़ारों पृष्ठों के बारंबार देखने ढूँढने और उनसे आवश्यक अंश लेने आदि में मैंने कई वर्ष बिता दिये हैं।

(१०) आज कल के कई ग्रन्थों में ऐसे आशय के अंश भी आते हैं जिन से जनता को क्षोभ होता है, आक्षेप किया जाता है, लांछन लगता है, आपत्ति होती है, खेद पहुँचता है-या राजभक्ति आदि से विमुख बनते हैं। अतः मैंने अपनी प्रकृति के अनुरोध से ऐसे अंशों को पूरे पढ़ कर भी चाह कर छोड़ दिया है।

(११) 'शोधन सामग्री' के संबंध में अनेक सज्जन अंग्रेज़ी की पुस्तकों और अंग्रेज़ों के लिखे इतिहासों को सच्चे मानते हैं परंतु अनुभव से मालूम हुआ है कि भ्रम या प्रमाद वश उनमें भी अनेक भूलें होजाती हैं। अतः अपने इतिहास को प्रामाणिक बनाने केलिए आधुनिक लेखक प्रचलित ग्रन्थों का आधार आवश्यक मानते हैं। मेरी समझमें पुराने 'काग़ज़ात' अधिक लेने देखने और विश्वास करने योग्य हैं। इनके ज़रिये से बहुतसी उलझी हुई भ्रमपूर्ण बातों का सैंकड़ों वर्ष पीछे भी ऐसा निर्णय होता है जैसा प्रत्यक्ष बोलते हुए मनुष्य की तत्काल साक्षी से होसकता है। नाथावतों के इतिहास में मैंने इनका विशेष प्रकार से उपयोग किया है। दूसरे लोग भी इन पर दृष्टि दें इस अभिप्राय से यहां मैं उनके विषय में कुछ लिखता हूँ।

(१२) 'सौभख्या और एक लिख्या' की कहावत के अनुसार संसार व्यवहार की बहुत सी बातें लेखबद्ध कर लेने की परिपाटी इस देशमें प्राचीन काल से चली आरही है। रुक्के, पट्टे, पर्वाने; रसीद, लेख, लिखतं; लिखावट फर्मान, चिट्ठी; बही, चौपनी, रूई-खसरे, खतानी और अहदनामे—यह सब पुराने काग़ज़ात के ही रूप रूपांतर या अंग उपांग हैं। इनमें व्यक्ति गत बातों के हर्ष, शोक, चिंता, उत्साह जन्म, मरण, विवाह, नुकता, राजीपा तनाजा या लड़ाई झगड़े आदि के भरपूर वर्णन होते हैं और उनकी अवस्था, व्यवस्था, परिस्थिति और

हिसाब आदि के उल्लेख मितीवार मिलते हैं।

(१३) इस प्रकार के रुक्के, पट्टे, परवाने या लिखतं आदि प्राचीन भारत के प्रत्येक स्थान में प्राप्त होते थे और बड़ी हिफ़ाजत से रखे हुए मिलते थे। जिनका राजनैतिक, सामाजिक या लोकहित के कामों में व्यवहार किया जाता था। किंतु गत २०-३० वर्ष से उनका उतनी मात्रा में मिलना मुशकिल होगया न मिलने के कई कारणों में दो प्रधान कारण ये हैं कि:--(१) पुत्रहीन जवान जागीरदारों आदि के मर जाने से उनके ठिकाने के कागजों को अनक्षर स्त्रियां या तो निकम्मे मानकर फूँस की जगह चूल्हे में जला देती हैं या अनाज के बदले बेचकर चने चबा लेती हैं। (२) और कई जगह हीनाधिकार या आपत्ति आदि के अवसरों में बहुत वर्षों तक देख भाल न होने आदि से मेह, सरदी, या दीमक आदि के द्वारा नष्ट हो जाते हैं। जो लोग उनके अद्वितीय गुणों को नहीं जानते वे चाहे उनको कूड़ा मान कर फेंक दें किंतु जिनको उन के गुणों की परख है वे उनको रत्न समझते हैं।

(१४) नाथावतों के इतिहास के लिये मैंने कई ठिकानों के काग़ज देखे हैं जिन में रक्षा विधान के सर्वोत्तम साधन या स्वतः नष्ट होजाने की पूरी दुर्व्यवस्था दोनों देखने में आये। जिल्द फ़ायल या गोलाकार में अच्छे ढंग से बाँधकर बढ़िया बस्तों या तिजोरियों में रखे रहना और ज़मीनदोज़ तहखाने के प्रांगण में कईसौ बस्तों का पीढियों तक अज्ञात पड़े रहना, ये दोनों ही उनकी रक्षा और अरक्षा के समाधान थे किंतु मुझे दुर्व्यवस्थ कागजों में भी अनेक रुक्के, पट्टे, पर्वाने या बहियां आदि ऐसे मिले जिनसे केवल नाथावतों का इतिहास ही नहीं अन्य इतिहास भी पोषित हो सकते हैं और कई बातों की छान बीन संशोधन या अधिकार जानने में काम देसकते हैं।

(१५) इसके सिवा पुराने काग़ज़ात से पुराने ज़माने की लेखन कला, लेखन सामग्री, (काग़ज क़लम, स्याही) विविध प्रकार की वर्णमाला, खास पहचान के हस्ताक्षर, अनेकार्थ आशयों के परिलेख, समयोचित शब्द योजना और हर हालत में प्रयोजन

सिद्धिकी सफलता या आपत्तियों से बचनेकी प्रवीणता आदिका ज्ञान हो सकता है। इसइतिहासके अंत में मैंने पुराने ज़माने के उच्चाधिकारियों, दीवानों, मुसाहबों, सरदार लोगों या साधारण मनुष्यों तक की; सही, सैनाणी, हस्ताक्षर, संकेत के दस्तख़त, नामकी मुहर और भाला कटारें या खड्ग आदि के चिन्हादि दिये हैं, जिनसे भलीभाँति मालूम हो सकता है कि जिस प्रकार इस ज़माने के पढ़े लिखे भद्रपुरुष अपने नामके हस्ताक्षरों या मुहर आदि में रहस्यजनक बनावट रखते हैं उसी प्रकार प्राचीन कालमें भी रखते, करते, या बनाते थे और वे अद्वितीय या आदर्श भी होते थे।

(१६) इतनाही नहीं जिस प्रकार आजकल बड़ी सरकारों के राजदूत या उच्चाधिकारी अपने मनोगत विधानों को गुप्त रखने के लिए मनघड़ंत वर्णमालाओं का उपयोग करते हैं उसी प्रकार प्राचीन काल में भी कई प्रकार की कल्पित वर्णमाला काममें लीजाती थी और उनको उन्हीं के आदमी पढ़ सकते थे। दो एक वर्णमाला मेरे देखने में ऐसी भी आई हैं जो बिलकुल दुर्बोध्य हैं और सर्व साधारण उनको पढ़ नहीं सकते हैं। वे परिशिष्ट में दीगई हैं अस्तु

(१७) वर्तमान समय के इतिहास लेखकों में कईयों की धारणा यह है कि चारण, भाट--या बड़वा लोगों की लिखी बातें अशुद्ध और असंगत होती हैं और उनके आधार से लिखे हुए इतिहास बिगड़ जाते हैं। परन्तु हर बात में यह धारणा अच्छी नहीं। क्योंकि बहुत सी बातें ऐसी होती हैं जो बड़वा आदिको अवश्य लिखवाई जाती हैं और वे यथार्थ होती हैं। यही कारण है कि गोद लेने, वारिस होने, ज़ायदाद के झगड़े मेटने और कुर्सीनामा सही करने आदि में बड़वाजी की पोथी मानी जाती हैं। हाँ ठिकानों से उनको जो कुछ मिलता है उसमें ५ सौ के ५ लाख, बूढ़े टट्टू को अरबी घोड़ा और जुआर को मोतियों के आखे लिखते हों तो कोई आश्चर्य नहीं। क्योंकि इस में वे अपना या अपने सरदारों का सम्मान मानते हैं।

(१८) इतिहास लिखने वालों में कई सज्जन देश गांव या मनुष्यों के विख्यात नामों को बदल कर लिखा

करते हैं। यथा 'तौरावाटी' को 'तोमरावती' 'सुनपत' को 'सुवर्णपत्र' और 'जान्हड़दे' को 'जान्हवदेव' आदि। परन्तु इस भाँति की अदला बदली से असली नाम का लोप होजाता है और शुद्ध नाम का तथ्य ढूँढने में आगे के लेखक भटक जाते हैं। यथा एक आदमी ने 'दूलैराय' को अँग्रेज़ी में 'दोलाराइ' (Dolarai) लिखा दूसरे ने उसे ढोलाराव बनादिया। तीसरे ने 'धोलाराव' कर दिया और चौथे ने 'दूलाराई' रख दिया। अतः इस इतिहास में यथासंभव विख्यात नाम ही रक्खे हैं और जहाँ कहीं ज़्यादा ज़रूरत जान पड़ी वहाँ ब्रेकेट में उनके दूसरे रूप लिख दिये हैं।

(१९) इसी प्रकार 'रैकारा' और 'जीकारा' भी विचार ने योग्य हैं। बादशाही ज़माने में झरोखे में बैठे हुए बादशाहों का ज़मीन पर खड़े हुए प्रतिष्ठित पुरुष अभिवादन करते तब चोपदार आवाज़ देता कि 'अमुक आदमी सलाम मालूम कराता है'। उसी आचरण का अनुकरण उन दिनों के मुसलमान लेखकों ने अपने इतिहासों में किया है और वर्तमान के लेखक भी कुछ तो उसी भांति 'रैकारा' लिखते हैं और कुछ 'रामकरदेंगे' - या 'राम नहीं करेगा' आदि से काम चलाते हैं। मैंने सम्मान-रक्षा के अनुरोध से बड़े लोगों के नाम में यथा योग्य जीकारा लगाया है और 'उस' के बदले 'उन' का प्रयोग किया है।

(२०) लेखन प्रणाली के विचार में कई आदमी सीधे इतिहास को भी मेघ माघ या कादंबरी जैसा बना देते हैं। कई उस में कठिन शब्दों को बढ़ा कर उसे उलझा देते हैं और कई पुराणों या चन्द्रकांता जैसे उपन्यासों की भाँति रूपक के रूप में तैयार करते हैं। जिससे सामान्य मनुष्यों को आशय समझने में श्रम होता है। अतः उन सज्जनों का अनुकरण अच्छा है जिनके इतिहास का आशय सहजही समझ में आजाता है और पढ़ने आदि में मन लगता है।

(२१) इतिहास के आरंभ में अनेकों लेखक भूगोलादि विषयों को लिखा करते हैं। परन्तु इस इतिहास में ऐसा नहीं किया है। क्योंकि जयपुर और चौमूँ, सामोद आदि के भूगोल में कोई

खास अंतर नहीं है। देश,जाति,बोली पहरान, व्यापार, व्यवसाय, खेती, बारी, नदी, पर्वत और जंगल आदि प्रायः समान से हैं और जयपुर का भूगोल सर्वत्र विख्यात भी है अतः नाथावतों के इतिहास में भूगोलादि के बदले दूसरे प्रकार की सामग्री संयुक्त की है जो सैकड़ों पुस्तकों में ढूँढने पर भी अवसर आये मिल नहीं सकती है और उसकी इतिहास प्रेमियों या जयपुर राज्य के निवासियों को नितांत आवश्यकता रहती है।

(२२) इतिहास में किसी आदमी की निरर्थक निंदा या व्यर्थ की बड़ाई लिखना महादोष माना गया है। अतः नाथावतों के इतिहास को इस दोष से बचाने का ध्यान रक्खा है। जिस किसी सरदार ने या अन्य लोगों ने जहाँ जो कुछ वीरता, देश सेवा, स्वामि-भक्ति, राजवृद्धि-या शत्रुसंहार आदि के काम किये हैं और उस विषय में दूसरे इतिहासों,वंशावलियों,पुस्तकों, रिपोर्टों चिट्ठियों या अन्य प्रकार के प्रमाण पत्रों आदि में जहाँ जो कुछ मिला है उसी को इसमें ज्यों का त्यों या अपने शब्दों में लिख दिया है और उस अंश को उलटी सुलटी कामा '-' लगाकर अलग भी दिखा दिया है।

(२३) नाथावतों का इतिहास प्राचीन पुस्तकों - काव्य ग्रन्थों और पुराने कागजों में बहुत मिलता है। परन्तु प्रचलित इतिहासों में इस का स्वतन्त्रअंश कम है और जो है वह अप्रकाशित पुस्तकों आदि में है। अतः इस इतिहास में यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि नाथावतों ने जयपुर महाराजाओं के सहयोग में या स्वतंत्र रह कर भी कहां कहां क्या क्या काम किया है और उसका उल्लेख कहां मिलता है।

(२४) सम्पादन के संबंध में यह सूचित कर देना उचित है कि इस ग्रन्थ को मैंने अपने अन्तः करण की प्रेरणा से स्वाधीन रह कर लिखा है। किसी प्रकार की पराधीनी या स्वार्थ आदि का संसर्ग नहीं हुआ है और अन्य इतिहास लेखकों को जो अनेक प्रकार के साधन सुभीते सहायता और अर्थ व्ययादि आवश्यक हुआ करते हैं और उनके प्राप्त होने पर वे अभीष्ट इतिहास सम्पन्न करते हैं उनका भी मैंने अपनी शारीरिक शक्तियों से ही निर्वाह किया है। ऐसी दशा में भाषा सिथिल रही हो। संवतों का अन्तर

अलग न हो सका हो और आवश्यक विवेचन रह गये हों तो कोई बड़ी बात नहीं ।

(२५) 'नाथावत कौन हैं ?'-इस प्रश्न का उत्तर देना नितांत आवश्यक है। वह यह है कि 'नाथावत' जयपुर राज वंश के अंश प्रसून हैं। आमेर नरेश महाराज पृथ्वीराज जी के पोते 'नाथाजी' से यह प्रकट हुये हैं और इन्होंने जहां जो कुछ किया है वह जयपुर महाराजाओं के साथ में रह कर किया है या आत्मीयता की हैसियत से किया है। अतः नाथावतों के इतिहास को जयपुर का इतिहास (या संवत् १६२१ से १९९३ तक के आंशिक इतिहास का परिचायक) कहा जाय तो कोई अनुचित नहीं। क्योंकि इसमें जयपुर का इतिहास आरंभ से अबतक आंशिक रूप में भी बहुत आगया है और यथा प्रसंग अन्य बातें भी युक्त कर दीगई हैं।

(२६) संभव है निकट भविष्य में विद्वान लोग जयपुर का सर्वांग पूर्ण इतिहास तैयार करेंगे और वह अधिक उपयोगी एवं प्रामाणिक होगा। किन्तु उस समय नाथावतों का इतिहास निगह नीचे रखा जायगा तो इसके द्वारा जयपुर इतिहास की बहुत सामग्री अनायास प्राप्त होगी और यह इतिहास किसी अंश में सामग्री बताने या मार्ग दिखाने वाले का काम देगा।

(२७) 'नाथावत कैसे हैं ?' इस विषय में तुजुक अक़बरी या मुन्शी देवीप्रसाद जी लिखित आमेर के इतिहास पृ. ३० में लिखा है कि संवत् १६२५ में अक़बर ने कहा था 'कि तुम बड़े मज़बूत और बहादुर हो। अब जल्दी तुम बादशाही महरबानियों से सरफ़राज़ किए जाओगे।' संवत् १७७० में बत्तीसी प्रदेश के लोगों ने लिखा था कि 'आपके प्रभाव से सर्वत्र शांति है' संवत् १८८० के आषाढ में राजमाता दूसरे भटियानीजी ने लिखा था कि 'थे ई राजकी सरसबजी चाहो छो अंग तोड़ सेवा करो छो बड़ा स्वामीभक्त छो थांकी दानायी को म्हारा रामजीकव्या तक बखान करैं'। संवत १८९२ के दूसरे पत्र में में लिखा है कि 'थे स्वामी धर्म का पालक और राजा प्रजा दोन्यां ने सुखी राखवा वाला छो'। संवत १९०२ में मेजर लैड़लो साहब ने कहा था कि 'ये

स्वाभिमानी प्रतिभा संपन्न मनुष्य हैं। उसी अवसर में सदर लैंगड साहब ने लिखा था कि 'नाथावतों के न होने से हमारे काम निरापद नहीं होते।' और सं० १९२३ में जोधपुर महाराज ने कहा था कि 'जयपुर राज्य में नाथावताँ को कायदो ज्यादा मान्यो जाय छैः। म्हे हरेक ने जुहार नहीं लिखा परन्तु थानैं लिखा छां' अस्तु।

(२८) 'नाथावतों के इतिहास में क्या है?' यह सम्पूर्ण पुस्तक पढ़ने से जान सकते हैं। परन्तु इतना यहां भी कहा जासकता है कि प्राचीन काल में नाथावतों का यश-सौभाग्य और रजपूती राजपूताना के बाहर तक विख्यात थे। पंजाब, बंगाल, बिहार, ओड़ीसा, गुजरात, मालवा और काबुल जैसे दूर देशों में भी इनका नाम हो रहा था। कई राजधानियों में इनका आदर था और उत्सव आपदा या नवीन आयोजना आदि में इनकी संमति और सहायता लेते थे। कारण यह था कि ये लोग प्रण-पालन में प्राण देते थे। इसलिए सब जगह इनकी चाह थी और धाक जमी हुई थी। अतः इनसे संपर्क रखने वाले राजा महाराजा, रईस, सरदार, बादशाह, शाहज़ादे, मंत्री, मुसाहब, अंग्रेज अफसर और जन साधारण तक का पूर्ण या आंशिक वर्णन इस इतिहास में आया है। विशेषता यह है कि--प्रसंग वश जिस किसी देश, गांव, गढ़, किले, नदी, पर्वत, वस्तु, पदार्थ या प्राणी आदि के नाम दिये हैं, वहां टिप्पणी में उनका पूरा परिचय दे दिया है।

(२९) इस इतिहास के दो खंड हैं। प्रथम खंड के पहले अध्याय में कछवाहों के पूर्वजों का कुशावती छोड़ कर इधर आने का वर्णन है। दूसरे अध्याय में ईशदेव से चन्द्रसेनजी तक का वर्णन है। तीसरे अध्याय में पृथ्वीराजजी का और उनके परिवार का वर्णन है। चौथे अध्याय से सतरहवें अध्याय तक गोपालजी से लेकर देवीसिंहजी तक चौमूँ का और साथही महाराज पृथ्वीराजजी से वर्तमान महाराज मानसिंहजी तक का सपरिवार-सचित्र वर्णन है। इसी प्रकार दूसरे खण्ड में गोपालजी से ले के संग्रामसिंहजी तक और साथ ही इनके ज़माने के राजा बादशाह या सामंत गणों तक सामोद का सपरिवार सचित्र

वर्णन है। जिसमें प्रत्येक राजा रईश या सरदारों के धर्म, कर्म, वर्ताव, व्यवहार, विद्याभ्यास, प्रजापालन, वीरता, शिक्षा, दीक्षा, जन्म, मरण, शिष्टाचार देशस्थिति और आर्थिकदशा आदि सभी बातें दिखलाई गई हैं।

(३०) और ग्रन्थ के परिशिष्ट भाग में रायसर, सोरीजा, मूंडोता, अजैराजपुरा, रैणवाल, भूतेडा, किसनपुरा अटांवा, उदैपुरा, नांगल और बूडथल आदि के नाथावतोंकाइतिहास तथा उनकी पीढियां दी हैं। साथही चौमूं, सामोद आदि के संत महंत, पंडित, पुरोहित, मुसाहब, कामदार, भाट, बड़वा या नाथावतों के गोत्र प्रवर कुलदेवी, रीति रिवाज़, वस्त्र, शस्त्र, रुक्के, पट्टे पर्वाने, लिखतं, रसीदें, राजचिन्ह अहदनामे, जन्मपत्रियां, स्मृति चिन्ह और अन्यान्य प्रकार की ज्ञातव्य बातों के परिचय दिये गये हैं। इस प्रकार इसको सर्वांगपूर्ण और उपयोगी बनाने का यथामति प्रयत्न किया है। संभव है कि इतिहास के अनुरागियों को इससे संतोष होगा।

(३१) 'प्राक्कथन समाप्त' करने के पहिले प्राचीन पीढ़ियों के संबन्ध में कुछ लिख देना आवश्यक है। बहुत लोगों का कहना है कि पीढियों में प्रक्षिप्त अंश होता है और वह जयपुर राजवंश की पीढियों में भी है। इसका शोधन कराने के लिए सवाई जयसिंहजी ने प्राचीन इतिहासों, पुराणों, कथा-वार्ताओं और विद्वानों की सम्मति के अनुसार निर्णय करवाया था। तदनुसार जयपुर राजवंश की संपूर्ण पीढियां तीन भागों में विभाजित कीगई। उनमें (१) पहला 'पौराणिक' भाग जिसमें परमात्मा से लेके सुमित्र तक १२८ पीढी हैं। (२) दूसरा 'कल्पनागत' भाग जिसमें कूर्म से देवानीक तक १३४ पीढी हैं और (३) तीसरा 'प्रमाणभूत' भाग जिसमें ईशदेव से वर्तमान महाराज मानसिंहजी तक ४० पीढी हैं।

(३२) इनमें पहिले और तीसरे भाग की पीढियां सही समझी जाती हैं और दूसरे की सत्यता में सन्देह किया जाता है। ऐसा होने का एक कारण भी है। वह यह है कि दूसरे भाग की १५ पीढियों में 'सेन'-२० पीढियों में 'मयी'-और ८७ पीढियों में 'पाल' का लगातार सहयोग हुआ है। इसी कारण इनको भाटों की घड़ी हुई बतलाते हैं। संभव है ऐसा हुआ

हो। क्योंकि ऐसी योजना अन्यत्र की पीढियों में बहुत कम हुई है। केवल उदयपुर में ३ जोधपुर में १ और करोली में ८ पाल पाये जाते हैं। परंतु पालाधिक के विषय में अलवर इतिहासकारों ने गोपागिरि के महात्मा के वरदानका फल बतलाकर समाधान कर दिया है। अस्तु। जयपुर राजवंश की संपूर्ण पीढियां इस प्रकार हैं।

(३३) "प्रथम भाग" १ परमात्मा २ब्रह्मा, ३ मरीचि, ४ कश्यप, ५ सूर्य, ६ वैवस्वतमनु, ७ इक्ष्वाकु, ८ विकुक्षि, ९ पुरंजय, १० अनेना, ११ पृथु, १२ विश्वगश्व, १३ चंद्र, १४ युवनास्व, १५ श्रावस्त, १६ बृहदश्व १७ कुवलयाश्व १८ दृढाश्व, १९ हर्यश्व, २० निकुंभ, २१ संहिताश्व, २२ कृशाश्व, २३ प्रसेनजित, २४ युवानाश्व, २५ मांधाता, २६ पुरुकुत्स २७ त्रसदस्यु २८ संभूति, २९ अनरण्य, ३० हर्यश्व ३१ वसुमना, ३२ त्रिधन्वा, ३३ त्रियारुण, ३४ सत्यव्रत, ३५ हरिश्चंद्र ३६ रोहित, ३७ हरिताश्व, ३८ हरित ३९ चंचु, ४० विजय, ४१रुरुक४२ वृक ४३ बाहुक, ४४ सगर ४५ असमंजस ४६ अंशुमान, ४७ दिलीप ४८ भागीरथ, ४९ सुश्रुत, ५० नाभाग ५१ अंबरीष, ५२ सिंधुद्वीप, ५३ अयुताश्व, ५४ ऋतुपर्ण, ५५ सर्वकाम ५६ सुदाम, ५७ मित्रसह; ५८अश्मक ५९ मूलक ६० दशरथ, ६१ इल्विल ६२ विश्वसह, ६३ खट्वांग, ६४ दीर्घबाहु, ६५ रघु ६६ अज ६७ दशरथ, ६८ रामचन्द्र, ६९ "कुश" ७० अतिथि, ७१ निषध ७२ नल ७३ नभ ७४ पुंडरीक ७५ क्षेमधन्वा ७६ देवानीक, ७७ अहिनर, ७८ रुरु, ७९ पारिपात्र, ८० दल ८१ शिच्छल, ८२ उकूथ, ८३ वज्रनाभ, ८४ संखनभ ८५ व्युत्थिताश्व, ८६ विश्वसह, ८७ हिरण्यनाभ, ८८ पुष्प, ८९ ध्रुवसंधि ९० सुदर्शन, ९१ अग्निवर्ण ९२ शीघ्र ९३ मरु, ९४ प्रसुश्रुत, ९५ सुगंधि ९६ अमर्ष, ९७ महश्वान ९८ वि तवान,९९बृहद्बल,१००बृहत्क्षण, १०१ गुरुक्षेप, १०२ वत्स, १०३ वत्सव्यूह, १०४ प्रतिव्योम, १०५ दिवाकर, १०६ सहदेव, १०७ बृहदश्व १०८ भानुरथ, १०९ सुप्रतीक, ११० मरुदेव,१११सुनक्षत्र,११२किंनर,११३ अंतरिक्ष, ११४ सुवर्ण, ११५

अभिवर्जित, ११६ वृहद्राज, ११७ धर्मी, ११८ कृतुंजय, ११६ रणजय, १२० संजय, १२१ साक्य, १२२ शुद्धोदन, १२३ राहुल, १२४ प्रशेनजित १२५ तुद्रक, १२६ कुंडक, १२७ सुरथ १२८ 'सुमित्र' ❀ (१२८)

(३४) "द्वितीय भाग" १२६ कूर्म, १३० वत्सवोध, (कत्सवाध), १३१ बुधसेन, १३२ धर्मसेन, १३३ ध्वजसेन, १३४ लोक सेन, १३५ लच्मी सेन, १३६ राजसेन, १३७ कामसेन, १३८ रविसेन, १३९ कीर्तिसेन, १४० महासेन, १४१ धर्मसेन, १४२ अमरसेन, १४३ अजसेन, १४४ अमृतसेन, १४५ इन्द्रसेन, १४६ राजमयी, १४७ विजयमयी, १४८ शिवमयी, १४६ देवमयी, १५० सिद्धिमयी, १५१ रेवामयी, १५२ सिंधुमयी, १५३ असंकुमयी, १५४ श्याम मयी, १५५ मोहमयी, १५६ धर्ममयी, १५७ कर्ममयी, १५८ राममयी, १५६ सुरतिमयी, १६० शीलमयी, १६१ शूरमयी, १६२ शंकरमयी, १६३ कृष्णमयी १६४ यशमयी, १६५ गौत्तममयी, १६६ नल, १६७ ढोला, १६८ लच्मणराय, १६९ राजभानु, [नरवर से ग्वालियर गए] १७० बज्रधाम, १७१ मधुब्रह्म, १७२ मंगलराय, १७३ विक्रमराय, १७४ अनंगपाल, १७५ श्रीपाल, १७६ सामंतपाल, १७७ भीमपाल, १७८ गंगपाल, १७६ महंतपाल, १८० महेन्द्रपाल, १८१ राजपाल, १८२ मदनपाल, १८३ अनंतपाल, १८४ वसंतपाल, १८५ विजयपाल, १८६ कामपाल, १८७ ब्रह्मपाल, १८८ विष्णुपाल १८९ धुंधुपाल, १६० कृष्णपाल, १६१ लोहंगपाल, १६२ भोमपाल, १६३ अजयपाल, १६४ अश्वपाल १६५ श्यामपाल. १६६ अंगपाल १६७ पुहमपाल, १६८ बसंतपाल, १६६ हस्तपाल, २०० कामपाल, २०१ चन्द्रपाल, २०२ गोविंदपाल, २०३ उदयपाल, २०४ वंगपाल, २०५ रंगपाल, २०६ पुष्पपाल, २०७ हरिपाल, २०८ अमरपाल, २०६ छत्रपति, २१० महीपाल, २११ सोनपाल, २१२ धीरपाल, २१३ सुगंधिपाल, २१४ पद्मपाल २१५ रुद्रपाल, २१६ विष्णुपाल, २१७ विनयपाल, २१८ अच्छुपाल, २१९ भैरवपाल, २२० सहजपाल

२२१ देवपाल, २२२ त्रिलोचनपाल, २२३ त्रिलोचनपाल, २२४ रसिकपाल, २२५ श्रीपाल, २२६ सुरतिपाल, २२७ सुगनपाल, २२८ अतिपाल, २२९ मंजुपाल, २३० भोगेन्द्रपाल, २३१ भोजपाल, २३२ रत्नपाल, २३३ श्यामपाल, २३४ हरिचन्द्रपाल, २३५ कृष्णपाल, २३६ वीरचन्द्रपाल, २३७ त्रिलोकपाल, २३८ धनपाल, २३९ मुनिपाल, २४० नखपाल, २४१ प्रतापपाल, २४२ धर्मपाल, २४३ भुविपाल, २४४ देशपाल, २४५ परमपाल, २४६ इंदुपाल, २४७ गिरिपाल, २४८ महीपाल, २४९ कर्णपाल, २५० स्वर्गपाल, २५१ उग्रपाल, २५२ शिवपाल, २५३ मानपाल, २५४ पार्श्वपाल, २५५ वरचन्द्रपाल, २५६ गुणपाल, २५७ किशोरपाल, २५८ गंभीरपाल, २५९ तेजपाल, २६० सिद्धपाल, २६१ कान्हदेव, २६२ देवानीक, * [१३४]

(३५) "तृतीय भाग" २६३ ईशदेव २६४ सोढदेव, २६५ दूलहराय, २६६ काकिलजी, २६७ हणूदेव, २६८ जान्हड़देव, २६९ प्रद्युम्न, २७० मलैसी, २७१ बीजलदेव, २७२ राजदेव, २७३ कील्हणदेव, २७४ कुंतल, २७५ जूणसी २७६ उदैकरण, २७७ नरसिंह, २७८ वनवीर, २७९ उद्धरण, २८० चन्द्रसेन २८१ 'पृथ्वीराज,'* २८२ पूरणमल, २८३ भीव २८४ रतनसिंह, २८५ आसकरण, २८६ भारमल, २८७ भगवंतदास, २८८ मानसिंह, (१) २८९ भावसिंह, २९० जयसिंह,(१) २९१ रामसिंह,(१) २९२ विष्णुसिंह, २९३ जयसिंह,(२) २९४ ईश्वरीसिंह, २९५ माधवसिंह, (१) २९६ पृथ्वीसिंह, २९७ प्रतापसिंह २९८ जगतसिंह, २९९ जयसिंह,(३) ३०० रामसिंह, (२) ३०१ माधवसिंह, (२) और ३०२ वर्तमान 'मानसिंहजी,'(२)* ४०

(३६) उपरोक्त पीढियों की सम्पूर्ण संख्या (३०२) हैं। किन्तु मेरे देखने में (क) आदि ५ वंशावली आई हैं। उनमें बहुत कुछ न्यूनाधिक हुआ है। (क) वंशावली में सिर्फ १५९ पीढी हैं जिनमें कूर्म और कच्छ के नाम नहीं हैं। बहुत से

लोग इन नामों से कछवाहों का ज्यादा उल्लेख करते हैं और यही नाम इस में नहीं हैं यह आश्चर्य है। इसके सिवा (ख) में २६५, (ग) में २६७, (घ) में ३००, और (ङ) में ३१० पीढी हैं। राजकीय वंशवृत्त से (घ) वंशावली बहुत मिलती हुई है। और शेष में १०—५ का अंतर है। अस्तु इनमें कूर्म और कच्छ के नाम सब में हैं। परंतु आधुनिक इतिहासों में कच्छ की जगह कत्सवाध का व्यवहार किया जाता है जिस के कारण कई तरह के सन्देह होते हैं। जयपुर राजकीय संग्रह में एक सचित्र रंगीन वंश वृत्त देखने में आया था जो संशोधित पीढीयों के अनुसार बनाया गया बतलाया जाता था। उस में कत्सवाध नहीं- 'वत्सवोध' नाम था। और वही ऊपर की पीढियों में दिया गया है। विशेष विवेचन यथास्थान किया गया है वह द्रष्टव्य है।

चौमूँ-जयपुर
सं० १९९३ वि०
रामनौमी।

निवेदक—
हनूमान शर्मा,

* श्री *

नाथावतों का इतिहास।

पूर्व-खण्ड।

(१)

अथ स्वस्थाय देवाय, नित्याय हत पाप्मने।
त्यक्त क्रम विभागाय, चैतन्य ज्योतिषे नमः॥

उस प्रकाशमान चैतन्य देव को नमस्कार, जो अपने आपमें स्थित है, सदैव रहता है, निष्पाप है और क्रम विभाग से बर्जित है॥

प्राचीन वृत्तान्त।

(१) इस समय सृष्टि में जितने प्रकार के प्राणी और पदार्थ दीख रहे हैं, आरम्भ में ये कुछ नहीं थे, केवल अन्धेरा था। उसी में सृष्टिकर्ता ने अपने महत्तत्वादि के द्वारा शक्ति प्रगट की और जल उत्पन्न करके उसमें शक्तिरूप बीज बो दिया। उससे ब्रह्माजी प्रगट हुए। उन्होंने उक्त बीज के दो टुकड़े करके ऊपर के भाग में 'स्वर्लोक' नीचे के भाग में 'भूलोक' और मध्य भाग में 'आकाश' बनाकर संसार के सम्पूर्ण प्राणी और पदार्थ यथा क्रम उत्पन्न किये। और उनके नाम, काम, वर्ण, भेद, आयुष्य और स्थान आदि नियत कर दिये। (ये बातें पुराणों में पूर्ण रूप से लिखी हुई हैं)।

(२) पूर्वोक्त प्रकार की सृष्टि के अनेकों देश, द्वीप—और खण्डों में "भारतवर्ष" पवित्र माना गया है। इसमें वर्णाश्रम धर्म के लोकोत्तर विधान हैं। तपोधन महर्षियों ने इसमें 'चार वर्ण' (ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र) और 'चार आश्रम' (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ-और सन्यस्त) स्थापन करके इनके जुदे जुदे धर्म कर्म और व्यवहार

नियत किये हैं और उन सब में संसार की अमिट भलाई होने का विचार रक्खा गया है।

(३) यह विशेषता इसी देश में देखी जाती है कि "षट्कर्म" (यजन याजन, पठन पाठन, दान और प्रति ग्रहण) करने वाले 'ब्राह्मणों' से लोगों में शान्तिमूल धर्म का सञ्चार हुआ। "क्षत" (आघात) आदि से रक्षा करने वाले नीति निपुण और प्रजा पालक 'क्षत्रियों से सुख सम्पत्ति और शांति स्थिर रही। "सन्मार्ग" (कृषि, गोरक्ष, वाणिज्य आदि) से उपार्जन किये हुए धन की बढोतरी करने वाले 'वैश्यों' से यह देश अन्य देशों को अन्न, धन और आश्रय देने वाला हुआ और "कर्तव्य परायण" (यथोचित सेवा करने वाले) 'शूद्रों' से सब प्रकार की निश्चिन्तता तथा सुख साधन सुलभ रहे। यही कारण है कि प्राचीन काल में यहां अन्नादि के ढेर रहते थे-यानासनादि के अगणित आयोजन होते थे- और घी दूध आदि की कोई कमी नहीं थी। (प्रतीति के लिए "भारत दर्शन" पृ० ६-५७ और १८७ आदि देखने चाहिये)।

(४) यह ठीक है कि एक के अनेक होते हैं। आरम्भ में क्षत्री वर्ण एक था। कालान्तर में उसी के "सूर्य और सोम" दो वंश होगए। परमात्मा से छठी पीढी में सूर्य नाम के राजा से 'सूर्य वंश' विख्यात हुआ। इस वंश के प्राचीन राजाओं में (१) अयोध्या के बसाने वाले इक्ष्वाकु (२) एकच्छत्र राज करने वाले मान्धाता (३) धर्म के लिए धन, दारा और पुत्र तक देने वाले हरिश्चन्द्र (४) साठ हज़ार पुत्रों के पिता सगर (५) चौदह हज़ार फुट ऊंचे हिमालय से गंगा को उतार कर साढे सात सौ कोस बंगाल की खाड़ी में 'गंगासागर का संगम' कराने वाले भागीरथ (६) और लोक व्यवहार की मर्यादा बाँधने वाले रामचन्द्र आदि अधिक विख्यात हुए। और वर्तमान में उदयपुर आदि के सीसोदिए जयपुर आदि के कछवाहे और जोधपुर आदि के राठोड़ विख्यात हैं।

(५) इक्ष्वाकु की बहिन इला-चन्द्रराजा के पुत्र बुध को ब्याही गई थी। उससे, 'चन्द्रवंश' विख्यात हुआ। इस वंश के प्राचीन राजाओं में उरु, पुरु और यदु ये ३ भाई हुए। उरु के

वंश में (१) कपोत के बदले अपने प्राण देने वाले शिवि (२) और आसाम आदि देशों के बसाने वाले अनङ्ग आदि हुए। (३) पुरु के वंश में शकुंतला जैसी स्त्री श्रेष्ठ को ब्याहने वाले दुष्यन्त (४) हस्तिनापुर के बसाने वाले हस्ती (५) इन्द्रप्रस्थ के बसाने वाले युधिष्ठर (६) द्वारिका के बसाने वाले श्री कृष्ण और (७) माहिश्मती बसाने वाले सहस्रार्जुन आदि अधिक विख्यात हुए। और वर्तमान में करोली आदि के जादू तथा जैसलमेर आदि के भाटी विख्यात हैं।

(६) उपरोक्त दोनों वंशों के सिवा तीसरा 'अग्निवंश' और है। उसको प्रामाणिक मानने के लिए कई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। उनसे आभासित होता है कि आबू पहाड़ पर वसिष्ठादि के किये हुए यज्ञकुण्ड की अग्नि से यह वंश उत्पन्न हुआ था। परन्तु पं० गौरीशंकरजी ओझा (अपने "राजपूताने का इतिहास" पृष्ठ ६३ में) इसे कल्पित मानते हैं। कुछ भी हो इस वंश में बूँदी आदि के 'चौहान' देवास आदि के 'पँवार'-रींवां आदि के 'सोलंकी' और ग्वालियर आदि के 'पड़िहार' विख्यात हैं। प्रत्येक राज वंशकी वंशावली देखी जाय तो सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी क्षत्रियों के ३६ राजकुलों में भी एक एक के अनेक भेद अलग हैं। और 'गहलोतों' में सीसोदिया-चूण्डावत-चन्द्रावत और झाला आदि-'राठोड़ों' में जोधा मेडत्या--चांपावत-और बीकावत आदि 'यादवों' में भाटी-सोढा-और जैसलमेरया आदि-'चौहाणों' में हाड़ा-खीची-सोनगरा-देवड़ा- और निर्वाण आदि-'कछवाहों' में राजावत-कूम्भावत-शेखावत-और--नाथावत आदि-'तँवरों' में जादू आदि और 'बड़गूजरों' में सीकरवाल आदि होने से उनकी संख्या २-३ ३६-५२ और ५०० ही नहीं १००० से भी ज़्यादा होगई है। अस्तु।

(७) सूर्य वंशी राजाओं में रामचन्द्रजी के बड़े पुत्र 'कुश' से "कछवाहे" विख्यात हुए हैं। कुश और लव सहोदर भाई थे। दोनों नालवेष्टित (नाल से लिपटे हुए जोड़ले) हुए थे वाल्मीक रामायण में इनकी जो जन्म कथा है उससे आभासित होता है

कि *'सीता के उदर से नालवेष्टित दो बालक हुए। उनका वाल्मीकजी ने डाभ से (नालच्छेदन) संस्कार किया। उनमें कुशमूल से 'कुश' को और कुशान्त अर्थात् डाभ की लव (या अणी) से 'लव' को संस्कृत किया'। इसी से ये कुश और लव नाम से विख्यात हुए। इसके विपरीत यह भी प्रसिद्ध है कि 'सीता अपने पुत्र को कुटी में छोड़ कर कुए पर गई थी। पीछे से बालक के अलक्षित हो जाने पर वाल्मीकजी ने कुश (डाभ) का वैसा ही पुत्र प्रकट कर दिया। अन्त में लव के लौट आने पर लव और कुश दोनों भाई रहे। और मुनि तथा माता की सेवा की। इसी आधार से उदयपुर वालों ने अपने को बड़े बेटे के वंशज बतलाया है। अस्तु-कुश और लव दोनों में भगवान रामचन्द्रजी का तेज प्रकाशित हो रहा था। दोनों ही महा मेधावी और बलवान् थे। और अवसर आये दोनों ने ही नल, नील, अंगद, सुग्रीव-और हनुमान जी जैसे महाबली वीरों को युद्धभूमि में धराशायी बनाये थे।

(८) कुश और लव को प्रत्येक काम में प्रवीण देखकर वाल्मीकजी (उनको) रामचन्द्रजी के पास लेगए। भगवान् रामचन्द्र उनसे बड़े प्रसन्न हुए और युवराज कुश को कुशावती का अधिपति बना दिया। (वा. रा. ७-१२१) कालान्तर में रामचन्द्रजी के परमधाम पधार गए पीछे अयोध्या*

*'यस्तयोः प्रथमं जातः सकुशैर्मंत्र संस्कृतैः। निर्माजनीयो नाम्नाहि भविता कुश इत्यसौ ॥१॥ यश्चावरज एवासील्लवणेन समाहितः। निर्माज्र्जनीयो वृद्धाभि र्नाम्नास भविता लवः ॥२॥ (वा. रा.)

[१] *"राम राज्य की अयोध्या" स्वर्गीय शोभा से सम्पन्न थी उसके भव्य मनोहर और ऊँचे मकान आकर्षक थे। उसमें विद्या कला व्यवसाय और न्याय परायणता सर्वोच्च श्रेणी के थे और वह १२ कोस चौड़े तथा ४० कोस लम्बे भूभाग में बसी हुई थी। वर्तमान अयोध्या लगभग २॥ हजार मकानों की बस्ती है। उसमें सौ देव मन्दिर हैं जिनमें रामलीला सम्बन्धी मंदिर और हनुमान गढ़ी उच्च श्रेणी के हैं। फैजाबाद से रेल जाती है और सरयू समीप में है।

के श्रीहत होजाने पर उसकी अधिष्ठात्री के आग्रह से कुश अयोध्या में आगए "वं.भा." (१७०) और वहां उनको कौशल देश (अयोध्या) का तथा लव को उत्तर कौशल (फैजाबाद) का राज्य मिला। (वा. रा. ७-१२१) "भारत भ्रमण" (२-४९३) में लिखा है कि 'कुश ने कसूर और लव ने लाहोर बसाया था।' "टाड राजस्थान" (२-१०) में लिखा है कि 'संवत् ५७४ में चीनी यात्री हुएनसंग हिन्दुस्थान में आया उन दिनों लाहोर बहुत विख्यात था' और 'वाल्मीक रामायण' (७-१२१) में लिखा है कि 'कुश ने कुशावती और लव ने स्रावस्ती बसायी थी।'

(९) कुश के पीछे उनके पुत्र अतिथि अयोध्या के राजा हुए उनसे २४ पीढी पीछे बृहद्बल के जमाने में चन्द्रवंशी परिक्षित को शुकदेवजी ने भागवत सुनाया था और बृहद्बल से २८ पीढी पीछे सुमित्र राजा हुए थे। यह कुशवंशी राजाओं के प्रथम अंश के अंतिम राजा थे। "भागवत" (९-३-१३) में लिखा कि 'यह वंश सुमित्र तक चलेगा आगे विनष्ट या विकीर्ण होजायगा।' इतिहासकार भी ऐसा ही मानते हैं। उनका मत है कि 'सुमित्र से आगे की पीढियां इधर उधर से ली हुई हैं। और इसी कारण उन पर सन्देह किया जाता है।' आधुनिक इतिहासों में भी सुमित्र का पुत्रहीन होना पाया जाता है। परन्तु वंशावलियों में कूर्म और विश्ववर को सुमित्र के बेटे बतलाये हैं। और कूर्म के कच्छप तथा विश्ववर के मलयराज माने हैं। "वंशभास्कर" (१०१४) में लिखा है कि 'विश्वराज' और 'कूर्म' आपस में नाराज होकर अयोध्या से इधर चले आये तब शिशु नाग ने उस देश को अपने अधिकार में लेलिया और कूर्म तथा विश्ववर को अन्तर्वेदी (गंगा यमुना के बीच हरद्वार से प्रयाग तक) में राज्य करने का सुयोग प्राप्त हुआ।'

(१०) "जाति भास्कर" (पृष्ठ ९६-९९) में लिखा है कि 'कौशल देश से कछवाहों की दो शाखा निकली थीं। उनमें एक ने लोहारू के दर्रों में (या लाहोर के अन्तस्तल में) विश्राम

लिया और दूसरी ने रोहतासगढ़* पर अधिकार किया।' रामनाथजी रत्नू ने अपने 'इतिहास राजस्थान' (पृष्ठ ८६) में लिखा है कि 'कछवाहों को अयोध्या से रोहतास पहुँचने में बहुत वर्ष लगे थे। अतः रास्ते में ये कहाँ कहाँ रहे इसका पूरा पता नहीं लगता।' कुछ लोगों ने तवारीख़ कश्मीर, तवारीख़-फ़रिश्ता, इतिहास दिवाकर और उर्दू राज तरंगणी के आधार पर यह पता लगाया है कि 'आज से ५ हज़ार वर्ष पहिले रविसेन कछवाहा हुए थे। उन से २८ पीढी पीछे महीराज, उनसे २१ पीढी पीछे सूर्य देव और उनके पीछे संवत् ३६२ में श्रीपाल, ६६२ में ज्ञानपाल, ८३२ में रुद्रपाल, ६२० में गौत्तमपाल, और ६४४ में नल हुए। इन लोगों ने नरवल, मारवाड़ और ढूँढाड़ में राज किया।' परन्तु इस अनुसन्धान में कुछ अंश असंगत या अस्तव्यस्त होने से सम्भव है कि जयपुर के भविष्य इतिहास लेखकों को सन्तोष के बदले संभ्रम होगा। इसमें सन्देह नहीं कि कछवाहों ने इस देश में आकर कई जगह राज किया और अपने नाम तथा यश को फैलाया। यह अवश्य है कि रोहतासगढ़ हाथ आए पीछे उनको पूरा सन्तोष मिला और तब से पीछे ही विशेष उन्नति हुई।

(११) ऊपर के अवतरण में सूर्य देव का नाम आया है। वह बड़े प्रतापी राजा थे। एक बार वह शिकार खेलने गए तब रास्ता भूलकर गोपागिरि की गुफा में गालव (ग्वालिया) साधु के समीप चले-गए। शरीर में कोढ था और जल के प्यासे थे अतः साधु ने उनको

*"रोहतासगढ़" सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहिताश्व का बनवाया हुआ बतलाया जाता है। प्राचीन काल में वह जीर्ण-शीर्ण और अस्तव्यस्त हो गया था। उसको कछवाहों ने ठीक करवा के अपनी राजधानी बनाया। भारत भ्रमण में लिखा है कि 'किसी दिन रोहतास और नरवल नामी किले थे। इनमें सब प्रकार की सम्पदा थी। देश देशान्तर के व्यवसायी निवास करते थे और दूसरे नल का जन्म रोहतास में और निवास [सम्वत् ३५१ में] नरवल गढ़ में हुआ था। अब ये मामूली कस्बे हो गए और नाम मात्र के रह गए।

अपने सोते का जल पिलाया उससे राजा की प्यास और कोढ दोनों मिट गए। इस उपकार के बदले में राजा ने उस सोत का सूर्य कुण्ड बनवा दिया और साधु के नाम पर संवत् ३३९ में 'ग्वालियर' *शहर तथा सुप्रसिद्ध किला तैयार करवा दिया। "हिन्दी विश्व कोश" (७३९) तथा "भारत भ्रमण" (१२८) में उक्त राजा का नाम सूर्यसेन और उक्त कुण्ड का नाम सूर्य मंदिर है। अस्तु।

(१२) ऊपर के दिग्दर्शन से यह सूचित होता है कि कछवाहों में सुमित्र से सोढदेवजी तक का सही हाल नहीं मिलता। परन्तु यह अवश्य मालूम होता है कि 'कुशावती छोड़े पीछे इन्होंने इस देश में कई जगह राज किया और धैर्य, वीर्य, उदारता तथा प्रणपालन में सच्चे सूर्यवंशी या रघुवंशी रहे।' "कच्छवंश काव्य" से यह भी मालूम होता है कि आरम्भ में ये दोनों शाखा अलग अलग रही थीं और पीछे नरवलगढ में एक हो गई। प्रसंगवस यहां इनका नामान्तर सूचित कर देना उचित प्रतीत होता है।

(१३) कुश के वंशज होने या कुशावती से आने के कारण पण्डित लोग इनको 'कुशवाहा' (या कुछावा) कहते हैं। भाट, बडवा या कवीश्वर लोग इनको कूर्म के वंशज मानकर 'कूर्म' 'कूरमी' 'कुम्म' या 'कच्छप' कहते हैं। रत्नूजी ने इनको 'कौशया' भी कहा है। और विशेषज्ञ इनको 'कछवाहे' कहते हैं। वास्तव में बहुत से इतिहास लेखकों ने इसी नाम को शुद्ध एवं संगत बतलाया है और वे इसी का उपयोग करते हैं।

*'ग्वालियर' मध्यभारत में सब से बड़े देशी राज्य की राजधानी का सुन्दर शहर है। नए शहर को लश्कर और पुराने को ग्वालियर कहते हैं। जनसंख्या लगभग १॥ लाख है। यहां का किला अधिक पुराना प्रसिद्ध और दुर्गम है। यह चिपटे शिर की खड़ी पहाड़ी पर बनाया गया है, शहर में हिन्दुओं के ठहरने की सुन्दर सराय, सरदार, लोगों के मकान, शराफा बाजार, जयेन्द्र भवन, कचहरी और बागके हौज आदि अधिक अच्छे हैं। (भा० भ्र० १२३)

(१४) किस किस देश के कछवाहे प्रसिद्ध हैं। इस विषय में जाति भास्कर (१२१) में लिखा है कि (१) नरवलगढ़ (२) ग्वालियर (३) ढूंढाड़ (जयपुर राज्य) तथा अलवर और (४) दोव कुण्ड (पूर्व देश) के कछवाहे प्राचीन कालसे प्रसिद्ध हैं। इनके सिवा (५) बड़गूजर भी कछवाहे कहलाते हैं। उनका कहना है कि प्राचीन काल में ढूंढाड़ में हमारे बड़े बड़े इलाके थे। माचेड़ी (राजोर) का पहाड़ी किला हमारी राजधानी था और गंगा किनारे का अनूपशहर हमने ही बसाया था। (६) मुक्तक संग्रह से मालूम होता है कि बरेली, घोड़ाघाट, अमेठी और रामपुरा आदि में भी कछवाहे हैं। (७) इन्दुरखी ठिकाने के कछवाहे मार्गोवाले और लाहर के कछवाहे लाहरा कहलाते हैं। (८) युक्तप्रदेश के रामपुरा तथा गोपालपुरा में और ग्वालियर के मचण्ड तथा माहुरा में भी कछवाहे हैं। (पु० का० ७२०) (९) सुठालिया के ठाकुर महताबसिंह जी ने संवत् १९७७ में सूचित किया था कि उनका घराना कछवाहा खानदान का है और आमेर के राजा कुन्तलजी के पुत्रों से संवत् १४५१ से पृथक हुआ है। (१०) जैसलमेर के इतिहास पृ० १० से सूचित होता है कि २ हज़ार वर्ष पूर्व की कई राणियां कछवाही थीं। और (११) नव प्रकाशित परिलेखों से पता लगता है कि कश्मीर मयूरभंज कुठाने और पूंछ के राजा भी कछवाहे हैं।

(१५) प्रारंभ के 'प्राक् कथन' में जयपुर राजवंश की संपूर्ण पीढियों को तीन भागों में विभाजित की हैं। इतिहास-रसिक उनमें पहले अंश को पौराणिक और तीसरे को खोज-प्राप्त मान कर संतोष करते हैं। और दूसरे को अस्तव्यस्त बतलाते हैं। वास्तव में वह गहरे अन्धकार या अथाह सागर से ढूंढकर निकाला हुआ और बड़वा आदि की कल्पना के आधार से किनारे लगाया हुआ प्रतीत होता है। परन्तु पूरी छान बीन से तैयार किया हुआ तीसरा अंश भी पूरा सही हो इसमें संदेह है। उसकी भी कई घटनाएं लोमविलोम हैं और कइयों की मिती अस्तव्यस्त मानी जाती हैं। किसी का यह भी अनुमान है कि तीसरे अंश का सच्चा

इतिहास किसी अज्ञात स्थान में पड़ा हुआ है। यदि ऐसा हो तो भविष्य लेखकों को उसका पता लगाना चाहिये। और इसे शुद्ध करके यथोचित बना देना चाहिये।

(१६) कछवाहों में कूर्म, सूर्य, नल और ढोला आदि कई राजा ऐसे हुए हैं जिनमें सूर्यवंश के सम्पूर्ण गुण मौजूद थे और उनका सुयश विख्यात था। जयपुर राजवंश की पीढ़ियों से प्रकट होता है कि (१) अपने नाम का गढ़ बसाने वाले रोहतास परमात्मा से ३६ वीं पीढ़ी में हुए थे (२) कछवाहों के मूल पुरुष कुश ६९ वीं पीढ़ी में (३) रोहतास छोड़ कर नरवल गढ में आने वाले दूसरे नल १६६ वीं पीढी में (४) मारूणी के सहयोग से विख्यात होने वाले ढोला १६७ वीं पीढ़ी में (५) नरवलगढ़ से ग्वालियर जाने वाले राजभानु १६९ वीं पीढी में और (६) दूसरे वंश के अन्तिम राजा देवानीक २६२ वीं पीढ़ी में हुए थे। अस्तु।

पहिला अध्याय

भूमिका

* श्री *

नाथावतों का इतिहास

आमेर के प्राचीन राजा।

(२)

(१) "ईशदेवजी"

(१) कछवाहों की सम्पूर्ण ३०२ पीढ़ियों को (१) पौराणिक (२) कल्पनागत और (३) अनुसन्धान के भागों में विभाजित करके पहिले और दूसरे भाग की (परमात्मा से देवानीक तक की) २६४ पीढ़ियों का संक्षिप्त परिचय पहिले अध्याय में दिया है और देवानीक के पुत्र ईशदेवजी से चन्द्रसेनजी तक का हाल इस अध्याय में लिखा है। 'प्राक्-कथन' में सूचित किया गया है कि-'नाथावत जयपुर राजवंश के ही अंश प्रसून हैं और इनका इतिहास किसी अंश में जयपुर राजवंश का ही इतिहास है।' अतएव इस योजना से उसके पूर्वांग की पूर्ति होगई है।

(२) ईशदेवजी देवानीक के पुत्र और आमेर राजवंश के आदि पुरुष थे। ३ वंशावलियों में इनका नाम ईस, इसै, ईसल और ईसासिंह लिखा है और "वीर विनोद" में ईशासिंह-"भारत के देशी राज्य" में ईश्वरीसिंह "कच्छवंश काव्य" में ईश्वरदेव-और अन्य इतिहासों में ईशदेव है। 'क' आदि वंशावलियों में इनको नरवल और ग्वालियर के राजा माने हैं। और 'टाडराजस्थान' 'इतिहास राजस्थान' तथा 'भारत भ्रमण' आदि में इनका कोई परिचय नहीं दियाहै। जिस प्रकार इनके नाम और काम में कइयों का मत भेद है उसी प्रकार इनके चरित्र चित्रण में भी अन्तर है। इनके विषय में इतिहासों में क्या लिखा है उसका आवश्यक अंश यहां प्रकट किया जाता है।

(३) 'क' वंशावली पृष्ट २ में लिखा है कि 'ईसासिंह धर्मात्मा और सत्यवादी थे। स्थिर राज होने की कामना से उन्होंने अपना (ग्वालियर)

राज्य भाणजे जयसिंह तँवर को दिया था और राज्य विभूति ब्राह्मणों के भेट की थी। पीछे वह निदरावड़ी चले गए थे। 'भारत के देशी राज्य' पृष्ठ ५ में लिखा है कि 'उपरोक्त बात प्रामाणिक प्रतीत नहीं होती क्योंकि जयपुर के कछवाहों में सुमित्र २ के बाद मधुब्रह्म, कहान, देवानीक और ईश्वरीसिंह हुए हैं।' (इस में जयसिंह तँवर का नाम साजी रक्खा है) 'जयपुर हिस्ट्री' पृष्ठ ३ में लिखा है कि 'ईसलदेव' धर्मात्मा राजा थे। उन्होंने नरवल और ग्वालियर दोनों में राज किया था और अन्त में अपने भाणजे जयसिंह को मालिक बनाकर दूसरी जगह चले गए थे। पण्डित गौरीशङ्करजी ओझा ने 'राजपूताने का इतिहास' पृष्ठ २३६ में लिखा है कि 'वंशावलियों में ईशदेव की सब बातें कल्पित हैं।' (और असली बात क्या है? उस को वह जयपुर के इतिहास में प्रकट करेंगे।)

(४) ईशदेवजी का देहान्त किस संवत् में हुआ इसमें कई मत हैं। "जयपुर हिस्ट्री" पृ० ३ में उनका मरण संवत् १०२३ काती बदी ६ लिखा है। अलवर के इतिहास रसिकों ने इसको आनन्द संवत मानकर संवत् १११४ को सही संवत बतलाया है और डाक्टर राजेन्द्रलालजी के मत में ये दोनों संवत् गलत हैं। उन्होंने ग्वालियर के किले में मिले हुए शिला लेख को सच्चा मानकर उसके आधार पर लिखा है कि 'कछवाहों ने ग्वालियर का राज्य तँवरों को दान में नहीं दिया था। उन्होंने अपने भुजबल से लिया था और उस समय संवत् ६४४ था।' इस अंश से सन्तुष्ट होकर रामनाथजी रत्नू ने 'इतिहास राजस्थान' पृ० ८८ की टिप्पणी में लिखा है कि 'कई एक वंशावलियों में कछवाहों के इस देश में आने का संवत् ६३३ लिखा है यह सही मालूम होता है किसी व्यक्ति विशेष का कहना है कि'। 'कदाचित यह ६३३ आनन्द संवत हो और इसमें विक्रम के बीच का अंश ६० मिला दिए जाँय तो जयपुर इतिहास का सही संवत स्वतः होजाता है।' यहां यह सूचित करदेना बहुत आवश्यक है कि संवतों में इस प्रकार के अन्तर आगे भी एक दो जगह बतलाये जाते हैं। और उनको सही बना देने की कोई नवीन विधि (शायद) अभी निश्चित नहीं हुई है।

ऐसी अवस्था में जयपुर राजवंश के हस्तलिखित प्राचीन इतिहासों में लिखे हुए संवत् ही नाथावतों के इतिहास के लिए उपयुक्त माने जा सकते हैं और इसी अभिप्राय से यहां उनका उपयोग किया है।

(२) "सोढदेवजी"

(१) ईश्वर देव का देहावसान हुए पीछे संवत् १०२३ में सोढदेवजी उनके उत्तराधिकारी हुए। 'जयपुर राज वंशावली' पृ० ५ में लिखा है कि 'ईशसिंहजी के मर जाने से जैशाह को सन्देह हुआ कि सोढ देवजी ईशदेव के दिए हुए राज्य को वापस छीनलेगें। अतः उसने उनको कहलाया कि 'आपके पिता ने यह राज्य मुझे दिया था। अब यदि आप इसको लेना चाहें तो लेलीजिए और न चाहें तो दूसरी जगह चले जाईये।' धर्म मर्मज्ञ सोढ देवजी ने पिता के संकल्प को अविच्छिन्न रखने के अभिप्राय से ग्वालियर में रहना उचित नहीं समझा और करौली की तरफ बरेली चले गए। वहां जाकर अमेठी आदि को अपने अधिकार में किया। 'वीरविनोद' पृ० ४५ में लिखा है कि 'सोढदेवजी ने राज्य का दान किया था। और अन्यत्र चले गए थे।'

(२) सोढदेवजी के बेटे दूलैरायजी मोरां के चौहाण राजा रालणसी की बेटी व्याहे थे। इसकारण रालणसी ने अपने व्याही सोढदेवजी को सूचित किया कि 'हमारे नज़दीक में (६ कोस पर) द्यौसा है। वह आधा हमारा और आधा बड़गूजरों का है। यदि आप चाहें तो हम अपने हिस्से का राज्य तो आपको यों ही दे देंगे और बड़गूजरों के हिस्से का युद्ध में आपको मदद देकर दिला देंगें।' सोढदेवजी के समीप में सेना परिवार और पाहुनों का आना जाना ज्यादा था और आमदनी कम थी अतः सम्बधी की सलाह को उन्होंने स्वीकार करली और बड़गूजरों पर चढ़ाई करने के लिए दूलैरायजी को भेज दिऐ।

(३) दूलैरायजी ने रास्ते में विचार किया कि बिना छेड़ छाड़ के अकारण लड़ाई कैसे की जायगी। अतः उन्होंने

अपने घोड़ों को बिक्री के बतला दिए और आप व्यापारी बनगए। ऐसा होने से बात की बात में महसूल न देने का मामला छिड़कर झगड़ा खड़ा होगया और चौहाणों की सहायता से बड़गूजरों को हराकर द्यौसा का राज्य सोढ देवजी ने लेलिया। इस विजय से चौहान बड़े राजी हुए और सोढ देवजी को बरेली से सपरिवार बुलवा कर द्यौसा के राजा बना दिये। ढूंढाड़ देश* में कछवाहों के प्रवेश करने का यह श्रीगणेश था और इसी में शत्रु सशंक हो गए थे।

(४) उन दिनों द्यौसा की आमदनी कम थी और सोढदेवजी का खर्च ज्यादा था अतः इस मामूली राज्य से काम चलना मुशकिल मान कर उन्होंने माँच आदि के मीणों का राज्य भी दबा लिया और अपनी आमदनी खर्च योग्य बनाली। अलवर इतिहासकारों ने लिखा है कि 'सोढदेवजी द्यौसा आये तब अपना राज्य अपने भाईयों को दे आये थे।' यही कारण है कि बरेली, रायपुर और अमेठी आदि में कछवाहों का अब भी राज्य है और इनके वंशज वहां निवास करते हैं।

(५) "इतिहास राजस्थान" पृष्ठ ८८ में लिखा है कि 'सोढदेवजी संवत् १०२३ में द्यौसा की गद्दी पर बिराजे थे।' "वीरविनोद" पृष्ठ ४५ में लिखा है कि 'सोढदेवजी संवत्१०२३ कार्तिक कृष्णा १० तारीख २२ सितम्बर सन् ९७६ ई० को नैषध देश की बरेली में अपने बाप की जगह राजा हुए थे।' उन्होंने यादव

* "ढूँढाड़" के विषय में कई कल्पना की गई हैं। "हिन्दी विश्व कोश" पृ० ९३ में लिखा है कि गलता के ढुंढु दैत्य से ढूँढाड़ विख्यात है।' "टाड राजस्थान" पृ०५६० में लिखा है कि 'जोबनेर के ढूँढ नाम के एक नामी शिखर पर बीसलदेव ने दैत्य रूप में तप किया था तब से ढूँढाड़ विख्यात हुआ है।' 'जनश्रुति' से जाना जा सकता है कि 'ढूँढाड़ जयपुर राज्य का पुराना नाम है।' और जयपुर के समीप ढूंढ नामकी एक बस्ती है और उसके पास आमेर के पर्वत का एक अति उच्च शिखर ढुंढाकृति में दीखता है। इस कारण भी आमेर राज्य ढूँढाड़ नाम से विख्यात हो सकता है।

कुल की राजकुमारी से ब्याह किया था जिसके गर्भ से दूलैराय पैदा हुए। जन श्रुति में यह भी विख्यात है कि 'जयपुर से २॥ कोस पूर्व में खोह एक छोटी बस्ती है। सोढदेवजी वहां अपनी अन्तिम अवस्था में सपरिवार रहे थे और उनकी राणी ने महल मकान तथा जलाशय बनवाये थे।' बावड़ी और जीर्ण शीर्ण मकान वहां अब तक मौजूद हैं और बनवाने वालों के नाम का स्मरण कराते हैं।

(६) 'मुक्तक संग्रह' से मालूम हो सकता है कि 'सोढदेवजी विष्णु के भक्त और शक्ति के उपासक थे। शस्त्रास्त्रों के धारण और संधान का उनको अधिक अभ्यास था। शत्रुओं को परास्त करने में वह कभी पश्चात् पद नहीं हुए थे। देश सेवा के लिए उन्होंने कभी संकोच नहीं किया था। इस देश के उद्दण्ड मीणों को उन्होंने कई बार दबाये थे और साधारण श्रेणी के वस्त्राभूषणों से ही सन्तुष्ट रहे थे। हस्त लिखित प्राचीन चित्रों में सोढदेव के दो सुन्दर चित्र देखने में आये हैं। एक में वह स्वाभाविक गति से गमन करने वाले घोड़े पर चढ़े हुए हैं। पीठ पर ढाल, कमर में तलवार, बगल में कटारा' और हाथ में भाला है। ललाट पर भस्म के तिलक हैं और पगड़ी का बँधेज पूर्वी पण्डितों के समान है। और दूसरे में वह प्राचीन कालकी साधारण पोशाक पहने हुए आसन पर बैठे हैं। 'ग' वंशावली में लिखा है कि उनकी माता उदयपुर की थीं और नाम सत्यकुँवरि (सीसोदणीजी) था। अस्तु।

(३) "दूलैरायजी"।

(१) संवत् १०६३ की काती वदी १० को अपने पिता के राज्य के मालिक हुए। इनके विषय में अनेक इतिहासों में अनेक बातें लिखी हैं। उन्हीं का सारांश यहां दिया गया है। "मदनकोश" पृष्ठ ६४ में लिखा है कि 'ढोला ने संवत १०२४ में चौसा का राज्य स्थापन किया? और इनकी स्त्री मारुणी? थी।' ये दोनों बातें अस्त व्यस्त हैं "टाड के जैपुर इतिहास" अ.१ में लिखा है कि 'धोला ने दोसा पर कब्जा किया था।' (यह धोला Dhola अंग्रेजी अक्षरों में होने से मदनकोश में ढोला बना दिया और लोकप्रसिद्ध

मारुणी को उनकी राणी मानली।) "वीर विनोद" पृ० ४५ में लिखा है कि 'दूलैराय ने आप का हुक्म मानकर दौंसा में अमल किया।' 'ग' वंशावली पृ० १५० में लिखा है कि 'राजा दूलैरायजी राजगद्दी पर नहीं बैठे थे कँवर पदे ही रहे थे। द्यौसा डूँगर पर था उसको उन्होंने भूमि पर शहर के रूप में बसाया था।' 'क' वंशावली पृ० ४ में लिखा है कि 'द्यौसा आये पीछे सांढदेवजी ने अपनी मौजूदगी में ही दूलैरायजी का राजतिलक कर दिया था।' और 'ख' वंशावली पृ० ७ में लिखा है कि 'सोढदेवजी ने शुभ मुहूर्त में दूलैरायजी को युवराज बनाये और राज बढ़ाने की आज्ञा दी' अस्तु।

(२) पिता की आज्ञा के अनुसार दूलैरायजी ने सर्व प्रथम माँची पर चढ़ाई की। "इतिहास राजस्थान" पृ० ८८ में लिखा है कि 'मांची के मीणे इस बात को जानते थे कि दूलैरायजी ने दौसा* और भाण्डारेज के मीणों को कितने जल्दी हराये थे। यह सोचकर उन्होंने अपने समीप के मीणों को इकट्ठे करके लड़ाई छेड़दी। इसमें मीणे ज्यादा थे अतः दूलैरायजी को सफलता नहीं मिली। इस बात से हर्षित होकर मीणों ने माँचीगढ़ में मदिरा की मतवाल की और जीत का जलसा किया। फल यह हुआ कि दूलैरायजी ने दुबारा चढ़ाई करके उनको हरा दिए।'

(३) वंशावलीयों में लिखा है कि मांची की पहली लड़ाई में दूलैरायजी मूर्छित होगए थे। तब वहां की 'बुढ़वाय' माता ने सपने में कहा कि 'डरोमत-दुबारा चढ़ाई करो-मरी हुई सेना सजीव हो जायगी और तुम जीतोगे।' यह सुनकर दूलैराय चैतन्य हुए और दारू पीए हुए मीणों को मारकर मांची में अधिकार किया।' बीच में द्यौसा के बड़गूजरों ने अपने भाई (देवती के राजा) की मदत लेकर द्यौसा पर फिर चढ़ाई की थी। किन्तु दूरदर्शी दूलैरायजी ने उनको दूर ही

* "द्यौसा" आमेर की आदूराजधानी है। प्राचीन बस्ती है। हिन्दुओं के महल मकान और मंदिर आदि सब हैं और मनुष्य संख्या लगभग ७॥ हजार है। (भा० अ० ७२५)

से घेर लिए थे और हताहत करके हरा दिए थे।

(४) माँची विजय की यादगार में दूलैरायजी ने माँची से ३ कोस पर नांके में देवी का नवीन मन्दिर बनवाया था और उसको 'बुढवाय' के बदले 'जमवाय' नाम से विख्यात की थी। इस अवसर तक दूलैरायजी द्यौसा में ही रहे थे। किन्तु माँची में अधिकार होजाने से वहां रामचन्द्रजी के नाम पर "रामगढ़" * बसाया और वहीं रहने लगे।

(५) रामगढ़ रहने के कुछ दिन बाद दूलैरायजी ने आमेर की तलैटी के तीन ठिकाने और दबाये। इनमें (वर्तमान जयपुर से) पूर्व में २॥ कोस 'खोह' में चांदा मीणा था उत्तर में १ कोस 'गेटोर' में गेटा मीणा था और पश्चिम में १॥ कोस 'झोटवाड़ा' में झोटा मीणां था ये सब अपने अपने ठिकानों के राजा थे। और राव कहलाते थे। समय पाकर दूलैरायजी ने इनपर भी चढ़ाई की और उनके फौजी बल को तोड़ कर यथा क्रम तीनों ठिकानों पर अधिकार किया। जिसमें विजय के साथ धन भी हाथ आगया। तब दूलैरायजी ने उस धन से वहां एक मज़बूत क़िला बनवाया और रामगढ़ के बदले उसी में रहने लगे "इतिहास राजस्थान" पृ. ८९ में लिखा है कि 'सोढदेवजी उस समय तक साथ रहे थे और खोह में गए पीछे उनकी मृत्यु हुई थी। खोह एक प्रकार से आमेर का ही अंग है और संभव है अंगीभूत अंशमान

* "रामगढ़" ज़यपुर से ८ कोस पर पहाड़ के मध्य भाग में साधारण किला है--पुराने और नये मकान भी हैं। तहसील आदि सब हैं। और जंगलात आदि के महक्मे भी हैं। गांव छोटा है वह इससे कुछ दूर है। वहीं बंधा भी है जिससे खेती होती है और विजली के ज़ोर से जयपुर में भी पानी पहुंचाया जाता है। जाने आने के लिये सड़क बनी हुई है। सिंहादि हिंसक जानवर वहां ज्यादा हैं। ओदी भी है। देवी का मन्दिर कुछ दूर है। जयपुर राजवंश के बालकों का चोटी जडूला और जात आदि के दस्तूर जमवाय माता के जाकर किये जाते हैं। और अन्य कछवाहे भी इस नियम को मानते हैं। वहां माधवेन्द्र के महल अच्छे हैं।

कर ही "ईश्वरीसिंह चरित्र" (पृ० २) में सोढ़देवजी का आमेर बसाना लिखा है।

(६) आयुष्य के अंत में दूलैराय जी ग्वालियर के राजा की अर्जी आने पर वहां गए और दक्षिण से आये हुए शत्रुओं को परास्त करके ग्वालियर के जयसिंह को सहायता दी 'क' वंशावली में लिखा है कि-दूलैरायजी ग्वालियर से गहरे घायल होकर आये थे और खोह में आये पीछे संवत १०६३ में मरे थे। यही हाल उनके सहगामी शूरवीरों का हुआ था'। किन्तु 'ग' वंशावली (पृ० ११) में लिखा है कि-'दूलैरायजी ग्वालियर के युद्ध में विजयी हुए थे और वहीं मरे थे।' "वीरविनोद" (पृ० ४६) में भी उनके ग्वालियर में मरने का ही उल्लेख है। इन तीनों के सिवा "टाडराजस्थान" (पृ० ५६५) में लिखा है कि 'एक बार दूलैराय जी जमवाय के दर्शन कर घर जा रहे थे। साथ में सगर्भा मारूणी राणी भी थी। उसी अवसर में ११ हज़ार मीणों ने हमला किया। तब वह क्रोधित सिंह की भाँति उन पर झपटे और बहुतों का विनाश किया किंतु अन्त में आप खुद भी उसी खेत रह गए।' यहां उनकी राणी को मारूणी लिखने में भूल की है और उसे सगर्भा मान कर आगे काकिलजी का जन्म दूलैरायजी के मरे पीछे बतलाने में भी भूले हैं।

(७) दूलैराय जी की उपरोक्त जीवन घटनायें सभी इतिहासों में यथा सम्भव मिलती जुलती हैं। परन्तु इनके विषय में "टाडराजस्थान" (पृष्ठ ५६२ से ५६७) तक जो कुछ लिखा है, वह सर्वथा विपरीत और विचित्र है। जयपुर इतिहासकारों के विचारने के लिए उसका सारांश मात्र यहां दिया गया है। "टाडसाहब" * ने लिखा है कि 'सोढदेवजी के मरे

* "टाडसाहब" क्षत्रिय जाति का हित करने वाले और इस देश के अंधकार में छुपे हुए इतिहास को ढूंढ कर प्रकाश में लाने वाले मनस्वी अंग्रेज थे। उनका जन्म इंगलैंण्ड के आइलिंगटन नगर में उच्चकुल में ता० २०-३-१७८२ (चैत्र शुक्ल ६ सं० १८३९) में हुआ था। बचपन में इन्होंने विद्याध्ययन किया। संवत् १८५५ में सैनिक शिक्षा ग्रहण करने को भर्ती हुए। संवत् १८५६ में बंगाल में आये। जल सेना में

पीछे बालक दूलैराय को उसके काका ने गद्दी से उतार दिया। तब प्राण नाश के विचार से माता ने उसे टोकरे में रख लिया और अलक्षित होगई। वह वहां से चलकर उपरोक्त खोह के पास एक वट वृक्ष की छाया में बैठ गई और उसके फल (गोल) बीन कर खाने लगी। उसी अवसर में एक भयंकर सांप ने फन फैला कर बालक के सिर पर छाया की जिससे रानी डर गई किंतु एक ब्राह्मण ने धीरज बँधा कर कहा कि 'डरो मत यह बालक राजा होगा।' तब रानी उसको लेकर खोह में चली गई और वहां के मीना राजा की धर्म बहिन होकर रही। वहां १४ वर्ष में दूलैराय सब प्रकार के राजोचित रहन सहन, शिक्षा व्यवहार और युद्धादि विषयों में निपुण हो गये और मीणा राजा की ओर से बादशाही कर देने को दिल्ली चले गये। वहां एक चारण के प्रबोध करने पर कई एक राजपूतों के साथ वापिस खोह आये और वहां के मीणों को मार कर खोह (आमेर) के राजा होगये। 'जनश्रुति' में यह कथा इस प्रकार है कि 'सोढदेवजी के मरे पीछे उनकी गर्भवती रानी

भर्ती होने के पीछे लेफ्टिनेंट बने। संवत् १८६३ में पैमायश के प्रयोजन से उदैपुर गए। वहीं इनको इतिहास लिखने का शौक़ हुआ। वहां उनको इस बात की अपूर्वसामग्री मिली संवत् १८७० में कप्तान हुए। पीछे उदैपुर, जोधपुर, कोटा, बूंदी और जैसलमेर आदि के पोलिटिकल एजेंट रहे। अपनी स्थिर की हुई मियाद पूरी होने पर भारत में २२ वर्ष रहने के बाद संवत् १८७९ जेठ सुदी १२ को विलायत चले गए। साथ में इस देश के इतिहास की सामग्री के कई मंजूष ले गए थे। वहां जाकर संवत् १८८१ में मेजर और १८८३ में लेफ्टिनेंट कर्नल हुए। ४४ वर्ष के होकर संवत् १८८४ में विवाह किया। संवत् १८८६ में "टाड राजस्थान" की पहली जिल्द और संवत् १८८९ में दूसरी जिल्द प्रकाशित की। इसके सिवा और भी ग्रंथ प्रकाशित किए। अन्त में संवत् १८९२ में इनके मृगी रोग हुआ। उससे २७ घंटे मूर्छित रह कर मर गए। इसके सम्बन्ध में "हिन्दी विश्वकोश" (पृ० ३५) 'ट' में संक्षेप से और "राजपूताने का इतिहास" भूमिका पृ० २९ में विस्तार से लिखा है।

देवर के भय से इस देश में चली आई। यहां उपरोक्त बड़ के नीचे उसके उदर से दूलैराय ने जन्म लिया। रानी भूँख से व्याकुल हो रही थी। पास ही एक हिरनी का बच्चा था अतः वह उसको भूँन कर खागई और आगे उपरोक्त प्रकार से खोह में रह कर राज माता होने का अवसर प्राप्त किया।'

(८) टाड साहब ने उपरोक्त वर्णन के बाद दूलैरायजी के विषय की जो बातें लिखी हैं वे आरम्भ से अन्त के बदले—अन्त से आरम्भ तक उलटी लिखी हैं। और खोह छोड़ कर मांची तथा द्यौसा आदि में राज्यस्थापन करना भी वैसे ही प्रकट किया है। किन्तु उन्होंने दूलैरायजी के विवाह के विषय में दो बातें विशेष बतलाई हैं। उनमें एक यह है कि खोह विजय करके दूलैराय जी ने द्यौसा के बड़ गूजरों को कह लाया कि 'तुम्हारी राज कुमारी का विवाह हमारे साथ करो।' जिसके बदले में बड़गूजरों ने उत्तर दिया कि 'आप और हम दोनों सूर्यवंशी हैं। अतः हमारी कन्या का विवाह आपके साथ होना असंगत है।' तब दूलैराय जी ने इसका यह समाधान किया कि तुम्हारे और हमारे बीच में सौ पीढ़ी हो चुकीं अतः अब कोई दोष नहीं' यह सुन कर बड़गूजर निरुत्तर हो गये और अपनी लड़की का विवाह दूलैराय जी के साथ बड़े समारोह से कर दिया।' दूसरी यह है कि 'दूलैराय जी की अजमेर की मारुणी को दूसरी राणी बतलाई है। वास्तव में दूलैरायजी के एक राणी थी और वह मोरां के चौहान राजा रालणसिंह की पुत्री 'सुजान कुँवरि' (चौहानजी) थी। और उन्हीं के उदर से (१) काकिल जी और (२) वीकल जी दो पुत्र हुए थे। जिन में वीकलजी के वंश के लाहर, रामपुर और गोपालपुर आदि के कछवाहा हैं।

(४) "काकिलजी"

(१) दूलैरायजी के परलोक पधार गए पीछे संवत् १०९३ के माघ सुदी ७ को काकिलजी उन के उत्तराधिकारी हुए। यद्यपि ग्वालियर के झगड़े में दूलैरायजी के साथ गए हुए बहुत से वीर मारे गए थे। जिस

कारण काकिल जी की सैनिक शक्ति कम रह गई थी। और यह देख कर मीणां लोगों ने दूलैरायजी के क़ायम किये हुए राज्य का बहुत हिस्सा हड़प लिया था। परन्तु वीर काकिल ने अपने बढ़े हुए बल वीर्य के प्रभाव से मीणां जाति का बहुत विध्वंश किया—और उनके दबाये हुए से भी दूना राज्य यथाक्रम वापिस बढ़ा लिया।

(२) "इतिहास राजस्थान"(पृ०९०) में लिखा है कि– 'काकिलजी ने सर्व प्रथम सूँसावत कुल के मीणाराज राव भत्तो से आमेर ली उसके पीछे नाँद्-ला मीणां के गांव दबाये। अंत में यादव राजपूतों के मेड़ वैराठ के ठिकाने छीन लिये। और खोह के बदले आमेर को अपनी राजधानी नियत की–। "वीर विनोद" (पृष्ठ४६) में लिखा है कि 'काकिल जी ने जमवाय माता के हुक्म से मीणों को मार कर अम्बिकापुर (आमेर) की नींव डाली और पुरोहित हरीनारायणजी बी० ए० ने अपने "मिर्ज़ा जयसिंह" निबंध (पृ० १६) में लिखा है कि (आमेर नगर की) थूँणी रोपी। अस्तु वंशावलियों में दूलैरायजी की तरह काकिलजी के युद्ध भूमि में मूर्छित होने का हाल भी लिखा है। जिसमें अन्तर यह है कि 'काकिलजी मूर्छित हो गये तब देवी ने उनको गौरूप में दर्शन दिये और अमृत रूप दूध की धारा से सबको सजीव बना दिये।'

(३) "टाडराजस्थान" (पृ०५६५) में यह लिखकर संदेह करा दिया है कि 'काकिलजी दूलैरायजी के मरे पीछे पैदा हुए थे।' प्रत्येक इतिहास में यह लेख मिलता है कि 'दूलैरायजी संवत् १०९३ में और काकिल जी १०९६ में मरे थे' फिर दो वर्ष के बालक काकिल ने किस प्रकार अपना अपूर्व बल प्रकट किया और आमेर लेने में कैसे समर्थ हुए। संभव है भ्रम वश ऐसा लिखा गया हो या किसी वंशावली में ऐसा हो जिस पर निगह नहीं दी गई हो। अस्तु।

(४) काकिल जी ने आमेर नगर की "हरी थूणी"* गाड़ने के

* "नवीन नगर" निर्माण की नींव लगा कर उस जगह अशोक आदि किसी मंगली वृक्ष की हरी शाखा गाड़ देते हैं। उसे ही हरी थूणी कहते हैं।

सिवाय वहाँ के पुराने खण्डहरों में से 'अम्बिकेश्वर' महादेव जी की एक अत्यन्त उत्तम और चमत्कार पूर्ण मूर्ति को भी प्राप्त की थी और आमेर में एक नया मन्दिर बनवा कर उस में उसकी स्थापना की थी। इस मूर्ति की जलहरी में यह विशेषता बतलाई जाती है कि 'चौमासे में जब मन्दिर में जल भरा रहता है तब इसमें भी भरा हुआ मिलता है। और जब मंदिर में जल नहीं रहता तब इसमें ऊपर से भरा जाय तौभी नहीं मिलता।' सम्भव है सिल्पज्ञ काकिल ने कोई ऐसी क्रिया करवा दी हो गी जिसके कारण यह विचित्रता है।

(५) काकिल जी बड़े वीर साहसी और बुद्धिमान राजा थे उन्होंने छोटी अवस्था में भी बड़े बड़े बलवान् मीणों को जीत कर अपने राज्य को बढ़ाया था। और आमेर नगर के आरंभ का मूहूर्त सम्पन्न किया था। खेद है कि उन्होंने बहुत कम समय तक राज्य किया और संवत् १०९६ में वैकुण्ठ वासी होगये। 'ग' वंशावली में लिखा है कि 'काकिलजी ने भामोद जिला वैराठ के पास 'काकिलगढ़' बनवाया था। इनकी एक राणी 'कूरमदे' (चौहाणजी) रणथंभोर के जोंनसी चौहान की बेटी थी उसके १ हनूदेव २ अलखराय ३ देल्हण और ४ राल्हण पुत्र हुए। "वीर विनोद" (पृ० ४६) में लिखा है कि अलख राय के झामावत कछवाहा हुए जिनके वंशज 'कोटड़ी' में हैं। देल्हण के वंशज 'हरड्या' वैद्यनाथ के पास हैं। और राल्हण के वंशज जंगलीपाल खेड़ा के पास लहर का कछवाहा कहलाते हैं।

(५) "हणूदेव"

(१) यह संवत् १०९६ में अपने पिता की गद्दी पर आरूढ़ हुए। इनके जमाने में कोई ऐसी घटना नहीं हुई जिसका इतिहासों में वर्णन हुआ हो। परंतु मीणे लोगों के उपद्रव इनके सामने भी होते रहे थे और उनको दबाए रखने के प्रयत्न इन्होंने भी किये थे। इनको किसी ने हनूदेव किसी ने हणुमान और किसी ने हणूत लिखे हैं। इनके दो राणी और एक पुत्र था। बड़ी राणी 'हरसुखदे' (बड़गूजरजी) जैतराम की बेटी थी। जिसके जान्हड़जी हुए। और दूसरी आबू से ब्याही आई थी।

(६) "जान्हड़जी"—

(१) इन्होंने संवत् १११० में अपने पिता के राज्य को ग्रहण किया था। इतिहासों में इनका भी विशेष वर्णन नहीं मिलता। सिर्फ नाम और मिती मिलती है। टाडसाहब ने जान्हड़जी की जगह कुन्तिल के नाम से ही उल्लेख किया है। जो इनसे छः पीढ़ी पीछे हुए थे।

(२) "इतिहास राजस्थान" (पृ० ९१) में लिखा है कि 'जान्हड़जी भूड़वाड़ के चौहान राजा की बेटी को व्याहने गए तब उनके साथ में सेना भी थी। उसे देख कर मीणों ने सन्देह किया कि-'यह विवाह के बहाने हम लोगों को मारना चाहते हैं' इस खयाल से उन्होंने जान्हड़जी से कहा-'आप व्याह करने जाते हैं तो 'नगारा निशान'* हमारे संरक्षण में छोड़ जावें।' परन्तु जान्हड़जी ने वैसा नहीं किया। तब वहीं लड़ाई छिड़ गई और उसमें बहुत से मीणे मारे गए। जिससे जान्हड़जी की जीत हुई।'

(३) जान्हड़जी के ३ राणी थी। १ 'खींचणजी' नरवद् की २ 'देवड़ीजी' देदाकी और ३ 'बड़गूजरजी' जैचन्द की। उनके १ पजोनजी २ लूणजी ३ जैतसी ४ पंचायण और ५ कान्हजी पुत्र थे।

(७) "पजोनजी"

(१) राजनीति और युद्धादि विषयों में निपुण-साहसी और रण-विजयी होने आदि कारणों से पृथ्वीराजजी के पञ्चपीरों या (वीरों) में उसी

* "नगारा निशान" इसको 'लगी नगारा' भी कहते हैं। यह भारतीय राजाओं का प्राचीन राज चिन्ह है। वे लोग इसको महत्व का मानते हैं कदाचित इसे कोई छीन ले तो रखने वाले के बल, वैभव, और सम्मान की समाप्ति होजाती है। इस कारण इसे सुरक्षित रखते हैं और यथा सम्भव राज्य सीमा से बाहर नहीं भेजते हैं। परन्तु पराक्रमी राजा इसे निःशंक साथ रखने में ही शोभा समझते हैं और अवसर आये भयंकर युद्ध करके इसके संरक्षण में प्राण खोदेते हैं। महाबली जान्हड़ जी ने अपने पुरुषार्थ के प्रभाव से मीणों से मुकाबिला किया और 'नगारा निशान' को निगह नीचे रहने दिया। इस चिन्ह में एक घोड़े पर डंके से बजने वाले नगारे और दूसरे पर राज पताका (झण्डी) या राज का विजयध्वज होता है। (मुकक संग्रह)

प्रकार विख्यात रहे थे जिस प्रकार पाण्डवों में अर्जुन या कौरवों में पितामह थे। और प्राचीन इतिहासों-संस्कृत पुस्तकों एवं भाषा काव्यों में भी उनका अतः पर वर्णन है। फिर भी उनके स्थिति काल के विषय में अभी विशेषज्ञ लेखक भी सन्देह ग्रसित हैं और बड़ी भारी खोज या ऊहा पोह करने पर भी पजोनजी के स्थिति काल में ढाक के वही ३ पात मानते हैं। जब एक ओर अधिकांश इतिहासों में पजोनजी के और पृथ्वीराजजी के परस्पर साला बहनोई, साढ़ू-जँवाई, मंत्री-मुसाहब, सेनापति या सहगामी आदि होने के प्रामाणिक विवरण मिल रहे हैं तब दूसरी ओर अन्वेशण प्रयुक्त इतिहासों के महाविद्वान अनंत काल तक स्थायी रहने वाले शिला लेखादि के आधार पर पृथ्वीराज के जमाने में पजोनजी का या पजोनजी के जमाने में पृथ्वीराज जी का होना ही नहीं मानते हैं। ऐसी अवस्था में अल्पज्ञ या अकिञ्चन लेखक किस पक्ष को मज़बूत मानें ऐसे अवसर में तो 'महाजनो येनगतः सपन्था' के अनुसार अब तक के लेखों पुस्तकों या निबन्धों के आशय और संवतादिका ग्रहण करना ही ठीक है।

(२) 'जयपुर राजवंशाली' में लिखा है कि 'पजोनजी को संवत् ११२७ में राज मिला था।' अलवर इतिहासकारों का मत है कि 'यह आनन्द संवत है। शुद्ध संवत १२१८ होता है।' इस कथन में उनकी युक्ति पजोनजी को पृथ्वीराजजी के समकालीन दिखानेकी है। अन्य इतिहासों को देखे जाँय तो पृथ्वीराजजी के संवत् भी बहुत कुछ आगे पीछे गए हैं। और उनके नाम भी पजोनजी, पजवनजी, पजूणजी, पुंजनजी, प्रद्युम्नजी, यजवनजी और यजनदेव आदि हैं।

(३) कुछ दिन पहिले ग्वालियर के किले में मिले हुए शिला लेख को देखकर यह मान लिया था कि 'कछवाहे संवत् ९४४ (९३३) में इधर आए थे और इस कारण पजोनजी पृथ्वीराज़ जी के जमाने में नहीं थे। इस विषय पर नव प्रकाशित पत्रों और पुस्तकों में बहुत कुछ चर्चा चली थी। परन्तु प्रसिद्ध इतिहासों में जब यह देखने में

आया कि-'पजोनजी पृथ्वीराजजी के घनिष्ठ सम्बन्धी थे और उन्होंने अनेक युद्धों में पृथ्वीराजजी को बड़ी भारी सहायता दी थी।' तब उनका उस जमाने में मौजूद होना मान लिया गया। अस्तु।

(४) 'क' 'ख' 'ग' वंशावलियों और "वीर विनोद" में पजोनजी को पृथ्वीराजजी के बहनोई 'घ' वंशावली में जँवाई और "टाडराजस्थान" में साले बतलाये हैं। और अन्य इतिहासों में मंत्री मुसाहब "सहगामी" पञ्चवीर या सेनापति सूचित किऐ हैं। इन में यह भी लिखा है कि 'पृथ्वीराज के काका कान्ह की बेटी पदार्थदेवी का विवाह पजोनजी के साथ हुआ था। और उनकी वीरता तथा सत्कीर्ति से सन्तुष्ट होकर पृथ्वीराज जी ने उनको सामन्त और प्रधान सेनापति बनाये थे।'

(५) कछवाहों के इतिहास में पजोनजी का नाम वीरता के विचार से ज्यादा विख्यात हुआ है। "पृथ्वीराज रासो" में महाकवि चन्द ने पजोन जी की मन खोल कर बड़ाई की है। यह पृथ्वीराज जी के ५२ वीरों में मुख्य थे। उनके १८० राजाओं में इनका पद और सम्मान सबसे ज्यादा था। यह अद्वितीय वीर थे। इन्होंने पाटण के सोलंकी राजा को तथा बुन्देलखण्ड के चन्देल राजा को हरा कर उसका महोबा छीन लिया था। और उसे अजमेर में मिला दिया था। "हि. वि." (पृ. ५) "भारत के देशी राज्य" (पृ. ६) में लिखा है कि इन्होंने सहाबुद्दीन ग़ोरी को खैबर के दर्रों में खूब हराया था और उसका ग़जनी तक पीछा किया था।' इस प्रकार के ६४ युद्धों में वह विजयी हुए थे।

(६) "टाडराजस्थान" (पृ. २-५६७) लिखा है कि 'पजोनजी बड़े धनुर्धर महाबली थे। संयोगिता हरण के अवसर में उन्होंने असीम साहस से शत्रुओं का संहार किया था। उस युद्ध में उन्होंने दोनों हाथों से शस्त्र चलाये थे। रण भूमि में चारों ओर से ढाल तलवार और भाले आदि की खटाखट मचगई थी और बहते हुये खून में तैरते हुए नरमुंडों ने इधर उधर की ठोकरें खाई थीं। अन्त में चारसो शत्रुओं ने एक ही बार में

आक्रमण किया तब पजोनजी पञ्चत्व को प्राप्त हो गए।' अलवर इतिहासकारों ने लिखा है कि 'जिस समय पजोन जी की सनाथी पृथ्वीराज जी के पास होकर निकली तब पृथ्वीराज जी ने कहा था कि 'आज विधाता ढीठ होगई। ढूँढाड़ अनाथ बन गया। मैं विना माथे का रह गया। पजोनजी के स्वर्ग में जाने से हिन्दुओं के शिर की ढाल टूट गई।' इस प्रकार के अनेकों परिलेख मिलते हैं। जिनसे मालूम होता है कि पजौनजी सुप्रसिद्ध पुरुष हुए। थे उनके १ प्रभावती (बड़गूजरजी) २ पदार्थ देवी (चौहाणजी) काका कान्ह की और ३ देवड़ीजी ये ३ राणी थीं और मलेसीजी पुत्र थे।

(८) "मलैसीजी"

(१) संवत ११५१ में अपने पिता (पजोनजी) के उत्तराधिकारी हुए। 'आत्मा वै जायते पुत्रः' के अनुसार इन्होंने भी अपने पिता के समान वीरता दिखलाई थी। संयोगिता हरण के अवसर में कन्नौज में युद्ध हुआ उसमें यह भी शामिल थे। इनके पिता पजोनजी लड़ाई के मैदान से परलोक पधार ने लगे उस समय मलैसीजी--शत्रुओं का विध्वंश करने में ऐसे तल्लीन हो रहे थे कि- उसको देखकर शत्रु भी इनकी वीरता को विना सराहे नहीं रह सके। इससे पजोनजी को विश्वास होगया था कि यह मेरे यश को घटने नहीं देगा।

(२) मलैसीजी की वीरता देखिये जिस समय यह युद्ध में फँसे हुए थे उस समय इनके शरीर में तलवारों के बड़े बड़े सात घाव होगए थे और उनसे खून की ऐसी धारा बह रही थी जिनसे वह और उनका घोड़ा भीग गया था। परन्तु उस अवस्था में भी मलैसीजी मुर्भाये नहीं थे। उत्साह के साथ तलवार चलाते रहे थे। चन्द कवि ने पजोनजी के समान ही इनकी महिमा का भी बखान किया है और इनके सुयश को फैलाया है।

(३) कन्नौज युद्ध के एक वर्ष पीछे मलैसीजी ने नागोरगढ़ विजय किया और गुजरात मेवाड़ एवं मांडू आदि में अपनी वीरता दिखलाई 'घ' वंशावली में लिखा है कि

मलैसीजी को कुछ दिन तक विखा (धन हीनता) का अनुभव हुआ था। 'ग' वंशावली में लिखा है कि 'राजा मलैसीजी कन्नौज की लड़ाई में ज्यादा घायल होकर डेरे आये जब पृथ्वीराज ने उनको मरे हुए मान कर खोहका राज्य उनके भाई बलभद्र जी को दे दिया यह देख कर मलैसीजी बहते हुए घावों से ही खोह आये और बलभद्र को हटाकर राजा होगए।'

(४) इनके १ मनलदे (खींचणजी), राव अंतलकी (यह अपने साथ में मोहन देव खांतड्या पुरोहित को लाये थे)। २ महिमादे (सोलखणी) राव जीमल की- ३ नरमदे (देवड़ीजी) देवा देवड़ा की ४ बड़गूजर जी ५ चौहाण जी और ६ दूसरा चौहाणजी ये ६ राणी थीं। इनके १ बीजल, २ वालो ३ सीधण, ४ जेतल, ५ तोलो, ६ सारंग, ७ सहसो, ८ हरै, ९ नंद, १० बाघो, ११ धाणी, १२ अरसी, १३ नरसी, १४ खेतसी, १५ गांगो, १६ गोतल, १७ अरजन, १८ जालो, १९ बीसल, २० जोगो, २१ जगराम २२ ग्यांनो, २३ बीरम, २४ भोजो (इन के वंशज मेवात में हैं।) २५ बेणो, २६ चांचो, २७ पोहथ, २८ जनार्दन, २९ ऊदो, ३० गवूदेवो, (ये दोनों यवन होगए थे)। ३१ लूणो, और ३२ रतनसी ये बत्तीस बेटे थे। इनके विषय में "इतिहास राजस्थान" (पृ० ९२) की टिप्पणी में लिखा है कि 'मलैसी के ३२ पुत्रों में अधिकांश तो कछवाहे रहे और कुछ ने दूसरी जाति गृहण की उनमें (५) तोला के वंशज टांक जाति के छीपे और दरजी हैं (१०) बाघा के वंशज रावत महाजन हैं। (१९) बीसल के वंशज नाईयों में हैं। (३१) लूणा के वंशज गूजरों में हैं। और ३२ रतनसी के बंशज सुनारों में हैं। अस्तु। पजौनजी और मलैसी जी ने अपनी संपूर्ण आयु सम्राट पृथ्वीराजजी चौहान * की सेवा में

* "पृथ्वीराज चौहान"—भारत के अन्तिम हिन्दू सम्राट थे। इन्द्रप्रस्थ के अन्तिम राजा अनंगपाल की बड़ी पुत्री 'कमलादेवी' जो अजमेर के राजा सोमेश्वर को व्याही थी उसके उदर से यह सवत् १११५ में उत्पन्न हुए थे। छोटी पुत्री 'सुन्दरीदेवी' कन्नौज के विजयपाल को व्याही थी। उसके संवत् ११३२ में जयचन्द हुए। अनंगपाल महाधनी राजा थे। परन्तु पुत्र नहीं था। अतः दोहिते पृथ्वीराज को राज और सम्पत्ति सब सौंप दिए। उन

व्यतीत की थी अतः उनका संक्षिप्त परिचय नीचे की टिप्पणी में दिया है।

(६) "बीजलदेवजी"

(१) संवत् १२०३ में गद्दीनशीन

दिनों दिल्ली में 'तँवर' अजमेर में 'चौहान' कन्नौज में 'राठोड़' और गुजरात में 'सोलंकी' थे। उनकी अखण्ड शक्ति के प्रभाव को पृथ्वीराज ने फीका बनाया था। "तवारीख़ हिंद" में पृथ्वीराज के १०८ और "जैपुर इतिहास" में १८० सामन्त लिखे हैं। सम्भव है बीच की या आगे की विंदु आगे पीछे होगई है। उक्त सामंतों में (१) काका कान्ह (२) बहनोई पजोन (३) साला चामुण्डराय (४) मंत्री चंद और (५) मुसाहिब कैमाप महाबली और विशेषज्ञ थे। इनके सहयोग से ही पृथ्वीराज दिग्विजयी हुए थे। पानीपत, महोबा, गुजरात, आबू, अजमेर, कन्नौज और ग़जनी आदिके भयंकर युद्धों में पृथ्वीराजजी ने तथा उनके उपरोक्त वीरों ने अपने पराक्रम की पराकाष्ठा प्रकट की थी। यह महाधनुर्धर शब्दवेधी वीर थे। अलक्षित प्राणी और पदार्थों के निशाने चोट मारना और लोहे की ७-७ चद्दरों में बाण पार कर देना पृथ्वीराज जी के बांये हाथ के खेल थे। उनके कर्णाटकी वेश्या परम सुन्दर थी। एक बार पृथ्वीराजजी के पीछे से उनका मुसाहिब वेश्या से बात करने गया। उसी अवसर में पृथ्वीराजजी आगए और दूर रह कर ही शब्दवेध से कैमाप का शिर उड़ा दिया। उनके काका कान्ह की प्रतिज्ञा थी कि 'सभा में शत्रु सामने आजावे तो वे बिना मारे नहीं छोड़ते, अतः उनकी आंखों पर पट्टी रहती थी। इसी प्रकार चामुण्डराय भी महाबली था उसने अपने खांडे से हाथी की सूँड काट डाली थी और गदा से शिर फोड़ डाला था। पजोन जी कैसे थे यह ऊपर लिख ही दिया है। यह पांचों वीर ही पृथ्वीराज के पीर थे। "चौहाण चरित्रम्" (पृष्ट १४) में लिखा है कि 'संवत् ११३८ मार्ग शुक्ल ५ को एक भूगर्भ वेता ने पृथ्वीराज से कहा कि 'नागोर के पास खटूढ़ गाँव की जमीन में धन है।' सामन्तों को साथ लेकर पृथ्वीराज वहां गए। जमीन खुदवाई तब अंदर से एक मूर्ति निकली जिसपर लिखा था कि 'शिरश्छित्वा धनंग्राह्यं अन्यथा दुर्लभं निधि।' ऐसा ही किया गया। अपरिमित धन मिला। उस में ७ करोड़ की ७० लाख तो सिर्फ मुहरें थीं। इसका संकेत "टाडराजस्थान" (पृष्ट १३४) में भी है। पृथ्वीराज के इस प्रकार महाधनी सार्वभौम सम्राट होने से उनके मौसी के बेटे भाई जयचंद मन ही मन जल गए। उन्होंने चौहानजी की प्रतिष्ठा बिगाड़ने के विचार में राजसूय यज्ञ का उपक्रम

हुए इनके जमाने की कोई खास बात नहीं मिली इनके राणी

१ बहुरंगदे (चौहाणजी) रावरणमल की थी। उनके बेटे १ राजदेव

किया। देश देशांतर के राजा इकट्ठे हुए किंतु दोवार निमंत्रण भेजने पर भी पृथ्वीराज नहीं गये तव उनकी सोने की मूर्ति वनवा कर यज्ञ भूमि के दरवाजे पर पहराइत की जगह खड़ी करवादी। 'क' वंशावली में लिखा है कि जयचन्द की पुत्री संयोगिता ने इस अपमान जनक व्यवहार की सूचना 'तोते' (सूवा) के मार्फत पृथ्वीराज के पास भिजवाई। संयोगिता शहर के वाहर फौजों से घिरे हुए वाग में थी। पृथ्वीराज वहीं से उसको अश्वारूढ करके दिल्ली लेगये और राज काज छोड़ कर विलासी वन गए। इधर इन के पजोनजी जैसे महावली योद्धा कन्नौज की यज्ञ भूमिको रण भूमि वना कर वैकुण्ठ में चले गए। अन्त में सुलह होजाने से जयचंद ने संयोगिता का विवाह पृथ्वी राज के साथ कर दिया। उसी अवसर में सहावुद्दीन गौरी ने पृथ्वीराज पर चढ़ाई की। प्रथम वार वह हार कर चला गया। किन्तु दूसरे वर्ष वहुत भारी फौज लेकर फिर आया और अनेक प्रकार के कुचक्र चलाये तव पृथ्वीराज हार गये। गौरी ने उनको हाथी की तरह कसकर वँधवा दिया। हाथ पांव और गलेमें लोहे की भारी सांकल डलवादी। आंखेंफुड़ादीं। ग़जनी लेगया। कैद कर दिए। खाने को कम दिया। ओढ़ने को टाट, विछाने को चटाई, पहनने को फटा कंवल और खाने को सूखी रोटी दी। विना छत के गन्दे घर में रखवा दिये। यह दशा सुन कर महा कवि चंद ग़जनी गया। गुप्त भेष में मालिक से मिला वाद में वादशाह के पास उनके शब्द वेधी होने की वड़ाई की। वादशाह ऊँचे मकान पर वैठ गया। मस्त हाथी की भांति वड़े वन्दोवस्त से पृथ्वीराज सभा में आये। धनुष चढ़ाया और जयचन्द की वांणी के प्रमाण पर वांण छोड़ दिया। वादशाह धड़ाम से गिर गए। हो हल्ला मचा। चन्द और चौहान जी दोनों ही आपस में तलवार मार कर मर गए। उधर दिल्ली में संयोगिता आदि सती होगयीं। पृथ्वीराजजी का जन्म संवत् उनकी "जन्म पत्री" में ११९५ आश्विनशुक्ल १३ "विश्वकोष" में १११५ वैशाख कृष्ण १० और "संस्कृत इतिहास" में १२१५ मार्ग हैं। अन्यत्र जन्म सम्वत् १११५ राज्य लाभ १२२२ यज्ञारम्भ १२४२ संयोगिता संयोग १२४३ ग़जनी गमन १२४५ और मृत्यु १२४६ है। संवतों की ज्यादा घटा वढ़ी सन् संवत् शाके और

२ हमीर- और ३ भूलंग थे।

(१०) "राजदेवजी"

(१) सम्वत १२३१ में राजा हुए। 'ग' वंशावली लिखा है कि 'इन्होंने आमेर का नाँगल किया था। महल सुधराये थे। और अपनी राणी राजलदे के नाम से राजोला तलाव बनवाया था। "वीर विनोद" (पृ ४६) में लिखा है कि 'इन्होंने अपने पूर्वज काकिलजी के कायम किए आमेर स्थान में शहर आबाद करके राजधानी नियत की थी।' इनके राणी १ राजलदे (बड़गूजर जी) आलणसी की बेटी। इनके पुत्र १ कील्हणजी गद्दी बैठे- २ भोजराज के वंशज बांसा और लवाणा के कछवाहे हैं। ३ सोमेश्वर कोट-खावदे बैठे ४ बीक मसी कादेड़े (तावड़ा) गए। ५ जैपाल और ६ सींदा के सींदावत कछवाहे हुए।

(११) "कील्हणजी"

(१) संवत् १२७३ में आमेर के मालिक हुए। 'वीर विनोद' में लिखा है कि 'कील्हण के जमाने में चित्तौड़ के राणा कूंभा, मालवा और गुजरात के बादशाहों के समान बड़े जबर्दस्त थे। राजा कील्हणजी उनके पास कूंभलमेर किला में रहते थे।' इसके प्रमाण में सांवलदानजी ने लिखा है कि 'महाराणा रायमल्ल का रासा जो उन्हीं के समय में बना था और उसकी दो सौ वर्ष पहिले की लिखी पुस्तक हमारे पास मौजूद है उसमें कील्हणजी का उक्त अंश है।'

(२) कील्हणजी के राणी १ भावलदे निर्बाणजी खण्डेला के रावत देवराज की इनके कुन्तलजी हुए

आनंद आदि के जोड़ने घटाने से भी होसकती है। जन्म पत्र और "विश्वकोष" पर विश्वास किया जासकता है। विशेष वर्णन "चौहान चरित्रम्" "पृथ्वी राज चरित्र" "पृथ्वीराजरासो" "हिंदी विश्वकोष" "टाडराजस्थान" "भारतभ्रमण" "मदनकोश" "चरितांबुधि" "राजपूताने का इतिहास" और 'क' 'ख' वंशावली आदि में मिलता है। इसके सिवा अलवर के मोदी दीवान गोकुलचन्दजी की १ तलवार में सुवर्णाक्षरों में लिखा हुआ 'वसुनवएकादश (११९८) वरष पृथ्विराज सिखमान। माघशुक्ल नवमीरुकुज यहै खड्ग निर्माण' 'दोहा' भी देखनेका है। फिर भी पं० गौरी शंकरजी ओझा के कथनानुसार यह नहीं कहा जासकता कि पृथ्वीराज जी और पजौनजी के स्थिति काल में किस का सच्चा है।

और २ कनकादे चौहाणजी इनके २ पुत्र हुए। "वीरविनोद" में पुत्रों का ब्योरा इस प्रकार दिया है। १ कुंतल राज पायो। २ अखैराज जिसके वंशज धीरावत कहलाते हैं और ३ जसराज जिनके टोरड़ा और बगवाड़ा के जसरा पोता कछवाहा हैं। 'ग' वंशावली में ४ सेवरसी ५ देदो और ६ भसूँड और हैं। भसूँड के वंशज टांट्यावास के बंधवाड़ कछवाहे हैं।

(१२) "कुन्तलजी"

(१) संवत् १३३३ में आमेर के राजा हुए। 'ग' वंशावली में लिखा है कि 'कुन्तलजी ने आमेर में 'कुन्तल किला' बनवाया था।' अब वह 'कुन्तलगढ़' नाम से विख्यात है। इस किले में 'काथोलाव' तलाव और पहाड़ काटकर बनवाए हुए दो टांके (हौद) भी हैं। कुंतल जी का फौजी ताकत के बदले आत्मबल पर ज्यादा भरोसा था। उसी के सहारे उन्होंने कई बार बलवान् शत्रुओं को हराये थे॥ 'क' 'ख' वंशावली में लिखा है कि 'इनके जमाने में एक बार भारी अकाल पड़ा था मारवाड़ के हजारों आदमी इस देश में आ गए थे। दयावान् कुन्तलजी ने उनको भोजन वस्त्र देकर आराम से रक्खे और अकाल मिटे पीछे कमाकर खाने योग्य आर्थिक सहायता देके वापिस भिजवा दिए।' ऐसा करने से कुन्तलजी की कीर्ति अमर हो गई।

(२) इनके राणी १ कश्मीर देजी चौंड़ाराव जाट की बेटी २ रैणादे (निर्वाणजी) जोधा की बेटी ३ कनकादे (गौड़जी) ४ कल्याणदे (राठौड़जी) वीरमदेव की और ५ बड़गूजरजी पूरणराव की थी। "वीर विनोद" में इनके बेटे इस भांति लिखे हैं। १ जूणसी २ हमीर (जिनके हमीरदेव के कछवाहे) ३ भडसी (जिनके भांखरोट चाटसूके कीतावत कछवाहे) और ४ आलणसी (जिनके जोगी कछवाहे हैं और उन्हीं में लुठालिया निवासी ठाकुर महताब सिंहजी का घराना भी है। नाम में आलणसी की जगह आनसिंह लिखे हैं।) 'ग' वंशावली में ५ जीतमल ६ हणूतराव ७ महलणसी ८ सूजो ९ भोजो १० बाघो ११ बलींग १२ गोपाल और १३ तोरणराव ये आठ नाम अधिक हैं। कुन्तलजी ने देवती

(राजोर) में भी १ कूआ और १ मन्दिर वनवाया था।

(१३) "जूंणसीजी"

(१) संवत १३७४ में राजा हुए इनके राणी तारादे (देवड़ीजी) विक्रमसेन की। इनके बाबत 'ग' वंशावली में लिखा है कि 'इनके रसोवड़े में ८४ मण अन्न की भोजन सामग्री नित्य बनतीं और बरताई जाती थी।' इनके पुत्र १ उदैकरण २ कूम्भा (जिनके कूम्भाणी कछवाहे हैं।) ३ सींघो (सांगो) और ४ जसकरण थे। दूसरी राणी चौहाणजी बीसल की बेटी पति की मौजूदगी में मर गई थी।

(१४) "उदैकरणजी"

(१) संवत १४२३ में राजा हुए। इनका ऐतिहासिक वृत्तान्त नहीं मिलता। परिवार का मिलता है वह इस प्रकार है। इनके राणी १ उत्तमदे (गौडजी) २ तुरंगदे (उच्छवरंगजी) कवल की और ३ सौहंदे (चौहाणजी) राव बीसल की, इनके पुत्र १ नरसिंह राजा हुए २ बरसिंह बरवाड़े गए उनके वंशज नरूका (अलवर, उणियारा, लावा और लदाना आदि में हैं। ३ बालाजी इनके 'शेखावत' हैं। इस विषय में "इतिहास-राजस्थान" और अन्य इतिहासों में मतभेद है। "रा. इ." ने बालाजी के वंशज नरूका बतलाये हैं और दूसरों (अ. द. कारों) ने बरके बेटों में नरूके लिखे हैं। ४ शिव ब्रह्म इनके 'शिव ब्रह्म पोता' हैं। ५ पातल के पातल पोता हैं और ६ पीथा के पीथल पोता हैं। 'ग' वंशावली में ७ नाथो और ८ पीपो और हैं।

(१५) "नरसिंहजी"

(१) संवत १४४५ में गद्दी नसीन हुए। इनके राणी १ सीसोदणीजी राणा ऊदा हमीर की २ सोलङ्कणीजी, राव सातल बली की और ३ भागा (चौहाणजी) पुण्यराय की। इनके पुत्र १ बनवीर २ जैतसी और ३ कांघल थे।

(१६) "बनबीरजी"

(१) सम्वत १४८५ में राजा हुए। इन्होंने 'बन तलाब' बनवाया था। इनके राणी १ उत्सव रंगदे (तँवरजी) कँवलराजा की २ राजमती (हाडीजी) गोविन्दराज की ३ कमला (सीसोदणीजी) नीचै चाकी ४ सहोदरा

(हाड़ीजी) बाघा की ५ करमवती (चौहाणजी) बीजा की और ६ गोरां (बघेलीजी) रणवीर की थी । इनके पुत्र १ उद्धरण, २ मेलक, ३ नरो, ४ बरो, ५ हरो और ६ बीरम थे। इनमें मेलक के मेलक कछवाहे और शेष सब के बनबीर पोता हैं।

(१७) "उद्धरणजी"

(१) संवत् १४९६ में राजा हुए। इनके राणी १ हँसावदे (राठोडजी) रावरणमल की २ मापू (चौहाण जी) मेदाकी इनके 'चन्द्रसेनजी' हुए । इन्होंने आमेर में नोलखा बाग के पास मापूबाग लगवाया था ३ इन्द्रा (सीसोदणीजी) राणा कुम्भा की ४ अनंतकवँर (चौहाण जी) राव बैरीसाल की और पुत्र १ चन्द्रसेन जी थे।

(१८) "चन्द्रसेनजी"

(१) संवत १५२४ में आमेर सिंहासन पर बिराजमान हुए। 'ग' 'वंशावली' में लिखा है' कि- चन्द्रसेन जी आमेर आने के पहले मांची में रहे थे।"इतिहास राजस्थान" (पृ.६४) में लिखा है कि एक बार माँडू का मुसलमान बादशाह नशीरुद्दीन ढूँढाड़ पर चढ़ आया था' क्यों चढ़ आया था? इसके बाबत 'ड' वंशावली में लिखा है कि 'माण्डू का व्यापारी घोड़े लेकर ढूँढाड़ में आया तब चाटसू के पास आमेर के तालुकदार ने पहिले तो घोड़े का महसूल ले लिया और फिर घोड़े छीन लिए।' यह सुनकर स्वयं बादशाह आगया। उनको रोकने के लिए आमेर से चन्द्रसेन जी गए और युद्धोद्धत मुसलमानों को परास्त करके शांति स्थापन की। साथही उपरोक्त प्रकार से लूट खोस करने की बाबत चाटसू के ठाकुर (तालुकदार) कोभी उलहना देकर समझा आए।

(२) 'ग' वंशावली में लिखा है कि 'वह हिन्दाल और कमायूँ की लड़ाईयों में भी गए थे। और विजयी हुए थे। "सीकर इतिहास" (पृ.१०) में लिखा है कि 'शेखाजी के बाबा के जमाने में आमेर की ओर से यह लाग थी कि नया बछेरा भेंट दिया जावे। उस लाग का शेखाजी ने निर्वाह नहीं किया इस कारण चन्द्रसेन जी ने उन पर चढ़ाई की- छ बार लड़ाई हुई। अन्तिम लड़ाई में शेखावतों के साथ नरूका भी होगए

किन्तु आमेर जाने पर आपस में सुलह होगई।'

(३) चन्द्रसेन जी की राणी १ नोली (सोलंखणीजी) साँतल की २ बोली (वड़गूजरजी) राव चाँदा की ३ अमृतदे (चौहाणजी) ऊधो की ४ राँकण (सुरताणजी) रावत कुम्भा की ५ भागां (चौहाणजी) नरसिंह की और ६ आभावती (चौहाणजी) वीरमदेव की थी। इनके पुत्र १ पृथ्वीराज जी-अमृतदे (चौहाणजी) के उत्पन्न हुए। २ देवीदास ३ कुंभो (राणी टांकण के महार में हुए।) और बाई १-, कमला तथा दूसरी अपूर्वदे थी।

(४) इस अध्याय में आमेर के प्राचीन राजाओं का जो वर्णन दिया गया है उसमें पजोनजी आदि के संवत् अन्य (एक दो) इतिहासों में मिलते नहीं हैं। न मिलने के कई कारणों में से कुछ यथा स्थान लिख भी दिए हैं फिर भी यहां यह प्रकट कर देना परम आवश्यक है कि दूसरों का सन्देह निवारण करने के लिए सही संवत् निश्चय करने का कोई मज़बूत आधार अभी मिला नहीं है। इतिहास विषय के महा विद्वान् पं० गौरीशंकरजी ओझा तथा कवि राजा सांवलदानजी जैसे सर्व समर्थ भी संवतों की गड़ बड़ से कई जगह कुँठित हुए हैं और यथालब्ध संवत् को लिया है। ऐसी अवस्था में अल्पज्ञ आदमी कर ही क्या सकते हैं। अतएव आमेर के प्राचीन राजाओं के राज्याभिषेक की जो मिती जयपुर राज वंशावली और "वीर विनोद" आदि में दी है उस का यहां एकत्र उपयोग किया है।

नं०-	नाम,	विक्रम संवत्,	चान्द्रमासादि,	ईसवी सन् तथा तारीख,
(१)	"ईशदेवजी"	× ×	× × × ×	× × × ×
(२)	"सोढदेवजी"	१०२३	कार्तिक कृष्णा १	९६६ -- १३ - अक्टूबर
(३)	"दूलैरायजी"	१०६३	माघशुक्ल ६	१००७ -- २८ - जनवरी
(४)	"काकिलजी"	१०९३	माघ शुक्ल ७	१०३७ -- २७ - जनवरी
(५)	"हणूदेवजी"	१०९६	वैसाख कृष्णा १०	१०३९ - २२ -- मार्च
(६)	"जान्हड़जी"	१११०	कार्तिक शुक्ल २	१०५३ - १९ - सितंबर
(७)	"पजोनजी"	११२७	चैत्र शुक्ल ६	१०७० - २२ - मार्च
(८)	"मलैसीजी"	११५१	ज्येष्ठ शुक्ल ३	१०९४ - ६ - मई
(९)	"बीजलदेवजी	१२०३	श्रावण शुक्ल ४	११४६ - २ - फरवरी
(१०)	"राजदेवजी"	१२३६	श्रावण शुक्ल ४	११७९ - ११ - जुलाई
(११)	"कीलणजी"	१२७३	पौष कृष्णा ६	१२१६ - × दिसम्बर
(१२)	"कुन्तलजी"	१३३३	कार्तिक कृष्णा १०	१२७६ - ५ - अक्टूबर
(१३)	"जूंणसीजी"	१३७४	माघ कृष्णा १०	१३१७ - १३ - दिसंबर
(१४)	"उदैकरणजी"	१४२३	माघ कृष्णा २	१३६६ - २० -- दिसंबर
(१५)	"नरसिंहजी"	१४४५	फाल्गुन कृष्णा ३	१३८९ -- १६ - जनवरी
(१६)	"बनबीरजी"	१४८५	भाद्रपद कृष्णा ६	१४२८ -- ३ - अगस्त
(१७)	"उद्धरणजी"	१४९६	आश्विन कृष्णा १२	१४३९ -- ५ - सितबंर
(१८)	"चन्द्रसेनजी"	१५२४	मार्गशीर्ष कृष्णा १४	१४६७ -- २८-- नवंबर

---

(५) अध्याय समाप्त करने के पहले एकबार 'सिंहावलोकन' (पिछले कथन पर निगह) कर लेना अच्छा है। कछवाहे सरदार कौशल देश से इधर आये तब रास्ते में कहाँ कहाँ रहे इसका पूरा पता नहीं लगता। सिर्फ लाहोर, लोहारु, रोहतास, नरवल और ग्वालियर रहने के विवरण मिलते हैं। इसके पीछे उन्होंने ढूंढाड़ में प्रवेश किया जिसमें पहिला मुक़ाम धौसा, दूसरा मांची, तीसरा खोह और चौथा आमेर है।

इनमें कब कब अधिकार हुआ इसके संवत् या लड़ाई आदि के वर्णन हैं।

(६) खोह आमेर के पास ही है। इस कारण पुराने लेखकों में कइयों ने खोह में आने को ही आमेर में आना मान लिया है। वास्तव में दूलैराय जी खोह तक पहुँचे थे। उनके पीछे काकिलजी ने आमेर की नींव लगाई। और उनसे ५ पीढ़ी पीछे राजदेवजी ने उसमें यथाविधि नगर प्रवेश किया। तब पीछे आमेर में इनका स्पष्ट रूप से राज्य होगया।

(७) पुराने ज़माने में आमेर के इर्द गिर्द दो दो चार चार कोस के अन्तर पर छोटी छोटी ५२ बस्ती थीं जिनमें मीणों का राज्य था। प्रत्येक मीणा राजा के एक एक गढ़ी या गढ़ थे। सब की प्रधान राजधानी आमेर थी। प्रयोजन के समय नगारे की ध्वनि होने पर सब वहीं इकट्ठे हो जाते और जिस काम की ज़रूरत होती उसे करते थे।

(८) प्राचीन इतिहास से और इस प्रान्त के भ्रमण से आभासित होता है कि वर्तमान जयपुर से वर्तमान आगरे तक बीहड़ जंगल था। आने जाने के रास्ते कुछ तो तंग थे और कुछ में आपत्तियां थीं। हिंसक जानवरों का भी चारों ओर राज्य था जिनसे हर जगह का आना जाना आपत्तिजनक हो रहा था। ऐसी दशा में मीणे मनमानी करते रहे हों या धन और राज्य को बढ़ाते रहे हों तो कोई आश्चर्य नहीं।

(९) जबसे कछवाहों का इस देश में प्रवेश हुआ तब से मीणों का राज्य और बल यथाक्रम घटते गए और अन्त में महाराज चन्द्रसेनजी ने आमेर में अपना पूरा अधिकार कर लिया।

दूसरा अध्याय

समाप्त

* श्री *

नाथावतों का इतिहास

'आमेर के अधीश्वर।'

(३)

(१६) "महाराज पृथ्वीराजजी"-

(१) विक्रम संवत १५५६ फाल्गुन कृष्ण ५ तारीख १७ जनवरी सन् १५०३ ईसवी को आमेर के अधीश्वर हुए। उनका बड़ी धूमधाम से राज्याभिषेक किया गया। दिल्ली के हिन्दू बादशाहों में जिस भाँति पृथ्वीराज जी चौहान का अधिक नाम था उसी भाँति आमेर के राजाओं में महाराज पृथ्वीराज जी विशेष विख्यात हुए।

(२) "आमेर के राजा" (पृष्ट १) में जोधपुर के प्रसिद्ध इतिहास बेत्ता मुन्शी देवीप्रसाद जी ने लिखा है कि 'महाराज पृथ्वीराज जी का जितना हाल भगवान् के भक्तों में मिलता है उतना राजाओं के इतिहासों में नहीं मिलता।' इसका यह कारण है कि पृथ्वीराज जी को इस लोक के बदले परलोक की चिन्ता ज़्यादा थी। और वह सांसारिक सुख भोगने के बदले भगवत्चरणों में मन रखना ज़्यादा पसन्द करते थे। इस कारण राजाओं के बदले भक्तों में उनका नाम विशेष विख्यात हुआ।

(३) आरम्भ में महाराज ने कापालिक- सम्प्रदाय के एक योगी (चतुरनाथ जी) का सत्संग किया था। वही उनके गुरु थे। उनमें प्राणियों के रूपान्तर कर देने की शक्ति भी थी। अम्बिकेश्वर जी के मन्दिर में दोनों (गुरु शिष्य) प्राणायाम करने और समाधि लगाने में समय व्यतीत करते थे। 'क' वंशावली में लिखा है कि 'एक दिन योगीराज ने कैर की तरफ इशारा करके कहा कि 'जबतक यह रोंख हरा रहेगा तब तक तुम्हारा राज्य नहीं जायगा।' वास्तव

में उस पेड़ को उखाड़ कर न फेंका जाय तब तक उसका हरापन नहीं जाता। अस्तु।

(४) थोड़े दिन पीछे आमेर में रामानुज सम्प्रदाय के एक प्रसिद्ध साधु (कृष्णदासजी पयहारी) आए। महारानी बालाँबाई ने उनको सद्‌गुरु बना लिए और मन्त्रोपदेश लेकर भगवत्सेवा करने लगीं। शैव मत के राजा और वैष्णव मत की राणी होने से उनके अनुयायियों ने आपस में आक्षेप करना आरम्भ किया। फल यह हुआ कि योगीराज के और पयहारीजी के परस्पर शास्त्रार्थ होने से योगीजी हार गए और गलता गद्दी * में दो भारे लकड़ी के नित्य डालने की जोगियों के लाग लगवा दी। योगी राज के शिला उठाने और पयहारी जी के अधरासन रहने आदि की कई बातें जनश्रुति में विख्यात हैं। परन्तु शास्त्रार्थ में जीत होने से पयहारी जी को गलता गद्दी मिलने के अनेक प्रमाण हैं।

(५) एक बार पयहारी जी ने प्रसन्न होकर पृथ्वीराज जी को सीता-राम जी और नरसिंह जी की चमत्कारपूर्ण मूर्तियां दी थीं और कहा था कि "युद्धादि की सवारी में सीता रामजी का रथ आगे रहेगा तो तुम्हारा जय होगा।" तब से उस नियम का पालन किया जाता है और आमेर में नृसिंह जी की और जयपुर

*"गलता" जयपुर में सूरज पोल बाहर पूर्व की पहाड़ी में है। वहां पयहारी जी का आश्रम और धूनी है। नीचे कुण्ड हैं। उसमें हलके गर्म जल का नाला डाँकता है। वहां वाले उसको तीर्थ मानकर पर्वादि म हजारों नर नारी स्नान करते हैं। एकान्त वास का भी वह अच्छा स्थान है। कई देव मन्दिर और निवास स्थान हैं। वहां के आचार्यों में कई विद्वान् और बलवान् हुए हैं। जनश्रुति में इसे गालवाश्रम बतलाते हैं। "गणेश्वर महात्म्य" में भी इसका वर्णन है।

नाभादास जी की भक्तमाल में भी पयहारीजी और पृथ्वीराजजी का वर्णन है। रामानन्दजी के अनंतानन्दजी और अनन्तानन्दजी के कृष्णदासजी पयहारी हुए। दूध ही का आहार करने से पयहारी कहाए। बालांबाई बीकानेर के महाराज लूणकर्णजी [१५६२-१५८३) की पुत्री थीं, विवाह सं० १५६४ में हुआ था। [भक्तमाल और रत्नूजी का इतिहास]

में सीतारामजी की यथाविधि पूजा होती है। पयहारी जी कुछ दिन गलता में रहकर स्वदेश चले गये तब राज दम्पती का मन कई दिन खिन्न रहा। उन्होंने निराहार रह कर भगवान् की उपासना की तब उनको स्वप्न में द्वारकाधीश के दर्शन हुए। "वंशावलियों" में लिखा है कि 'भगवान् के दर्शन करते समय महाराणी महाराज के आगे थीं। दर्शनों की लालसा में लगे रहने से महाराज ने न पहचान कर महाराणी जी से कहा कि 'बाई इधर होजाओ मैं भी दर्शन करूंगा'-(इस देश में पति, पत्नी को बाई नहीं कहते परन्तु पृथ्वीराज जी तो ईश्वर भक्ति में तल्लीन थे।) अतः उनके कहने से महाराणी का नाम 'बालाँ बाई' विख्यात होगया।' भक्तमाल आदि में इनकी कई कथा हैं।

(६) महाराज पृथ्वीराजजी केवल भगवद्भक्त ही नहीं थे-राज काज और व्यवहारादि में भी निपुण थे। "टाड राजस्थान" (पृ० ५७०) में लिखा है कि 'मलैसीजी और पृथ्वीराजजी के बीच के ज़माने में राज्य में बखेड़े हो रहे थे। महाराज पृथ्वीराजजी ने उनको शान्त किए और अपने राज्य को १२ भागों में विभाजित कर के अपने १२ पुत्रों को दे दिया जिसकी '१२ कोटड़ी' प्रसिद्ध हुई'। "इतिहास राजस्थान" (पृ० ६४-६५) में लिखा है कि 'कछवाहों के इतिहास में महाराज पृथ्वीराजजी का नाम बहुत प्रसिद्ध हुआ और परिवार भी इनका इतना बढ़ा कि शेखावतों के सिवा उतने आदमी और किसी खानदान में नहीं हुए। पृथ्वीराजजी ने अच्छे प्रबन्ध के लिए कई नियम बनाए थे जिनमें '१२ कोटड़ी' का काम भी था।' "वीर विनोद" (पृ० ४८) में लिखा है कि 'पृथ्वीराजजी बड़े सीधे सादे हरि भक्त थे और प्रजा पालक तथा सर्व प्रिय हुए थे। उनकी राणी बालांबाई मीरांबाई की भांति बड़ी नामवर और भक्त हुई थी। मज़हबी मामलों में दोनों (राजा राणी) ने मन रक्खा था।' जयपुर इतिहास के जानने वालों का कथन है कि 'पृथ्वीराजजी के ज़माने में जयपुर (आमेर) के कोई अंश घटे नहीं थे बढ़े थे। शेखावतों पर सदा ही से जयपुर राज्य का अधिकार रहा है। कभी कुछ ऊँच नीच होजाना प्रकृति का नियम है।

(७) "टाड साहब" (पृ० ५७०) का यह लिखना ठीक नहीं कि 'उदयकरणजी के बेटे बालाजीने बाप का महल (परगना) छोड़ कर अमरसर पर अधिकार किया था और शेखाजी ने शेखावाटी राज्य की स्थापना की थी।' जयपुर इतिहास के ज्ञाताओं और "इतिहास राजस्थान" (पृ० ९३) के लेखों से जाना जा सकता है कि 'उदयकरणजी के पुत्र बालाजी बरवाड़े रहे थे और अपने पुत्र मोकलजी को जीते जी युवराज बना गए थे। किन्तु मोकलजी त्यागी होकर वृन्दावन चले गए थे। महात्मा के वरदान से शेखाजी बरवाड़े में जन्मे थे। और अमरा जाट के घर ढाँणी में धाय के पले थे। अमरसर शेखाजी ने बसाया था शेखावाटी का राज्य शेखाजी ने स्थापित नहीं किया था पीछे बना था। संभव है विद्रोहादि के कारण बरवाड़ा छीना गया तब अमरसर की तरफ़ इनको गांव मिले और शेखाजी वहीं दौड़ धूप करते रहे।' यह सत्य है कि पृथ्वीराजजी के ज़माने में जितने गांव थे उससे अधिक पीछे के राजाओं ने किए थे। और '१२ कोटड़ी' पृथ्वीराजजी ने क़ायम नहीं की थीं गोपालजी की सलाह के अनुसार भारमलजी ने क़ायम की थीं जिसका विवरण चौथे अध्याय में दिया गया है।

(८) इस उल्लेख से आश्चर्य होगा कि 'उदयपुर के महाराणा संग्रामसिंहजी राजा होने के पहले भाईयों से डर कर अज्ञातवास करने के लिए आमेर आए थे और पृथ्वीराज जी के पास सेवक रूप में रहे थे। वह रात के समय महाराज के महल की निगरानी रखते और दिन में एकान्तवास करते थे। मुन्शी देवीप्रसादजी ने "आमेर के राजा" (पृ० ७) में लिखा है कि 'एक बार भादवे की अंधेरी रात थी। मूसलधार मेह बरस रहा था। साँगाजी महल के पहरे पर थे। राजा राणी सो रहे थे। राणी साँगाजी की भूआ थी। आमेर के पहाड़ी नलों में पानी के गड़गड़ाहट का शोर होरहा था और एक नला महल के नीचे गिर रहा था। साँगा ने सोचा कि इस गड़गड़ाहट से राजा राणी की नींद उचट जायगी। अतः उन्होंने घास का एक भारा नले के नीचे लगा दिया।

तब घोर शब्द के सहसा बन्द होजाने से महाराज ने पूछा कि क्या वर्षा बन्द होगई? उत्तर में दासी ने निवेदन किया कि वर्षा ज्यों की त्यों वर्ष रही है साँगाजी के प्रयत्न से शब्द बन्द हुआ है। राज दम्पति ने विचार किया कि 'यह मामूली मनुष्य नहीं, कोई बुद्धिमान अमीर आदमी है'। प्रातः काल पूरा पता लगाने से मालूम हुआ कि साँगाजी हैं; तब उनका राजोचित सत्कार कर के बिदा किए।' *

* "साँगाजी" संवत् १५३९ वैशाख कृष्ण ९ को जन्मे थे। चितौड़ के महाराणा उदयसिंहजी के पुत्र पृथ्वीराजजी और रायमलजी इनके भाई थे। ज्योतिषियों ने साँगाजी की जन्म पत्री से राजयोग बतलाया था। एक देवी का भी वैसा ही कथन था। तब बड़े भाईयों ने तलवार चला कर मारना चाहा जिसमें उनकी एक आंख फूट गई तब वह वहां से अलक्षित होकर भाग गए। रास्ते में कई दिन एक गड़रिये के रहे। पीछे आमेर पृथ्वीराजजी के पास गए। अन्त में अजमेर के श्रीनगर में कर्मचन्द के ठहरे। वहां एक दिन जंगल में सोरहे थे। उसी अवसर में एक काले साँप ने फन फैला कर साँगाजी के सिर को ढँक लिया। कर्मचन्द ने इस लक्षण से बड़ा आदमी समझ कर हाल पूछा तब भेद खुला। वह पीछे संवत् १५६६ जेठ सुदी ५ को उदयपुर के महाराणा हुए। दिल्ली की लड़ाई में उनका एक हाथ टूट गया था। पीछे संवत् १५८४ में बाबर बादशाह ने हिन्दोस्थान पर चढ़ाई की। उसकी ताक़त तोड़ देने के लिए महाराणा साँगा (संग्रामसिंहजी) ने पूरा प्रबन्ध किया। उस लड़ाई में राजपूताने की प्रायः सभी रियासतों ने सहयोग दिया था। (ये लोग जानते थे कि बाबर, सांगा की तरह किसी दिन हमारे पर भी चढ़ आवेगा)। "राजपूताने का इतिहास" पृष्ट (६६२) में लिखा है कि इस युद्ध में आमेर के महाराज पृथ्वीराजजी भी गए थे। इस प्रकार के सहयोग से बाबर की ताक़त टूट गई १ बार साँगाजी और दूसरी बार बाबर विजयी हुए। पीछे संवत् १५८४ माघ कृष्ण १३ को कालपी से चंदेरी जाते हुए रास्ते के इरिच गाँव में साँगाजी दुश्मनों के ज़हर देने से मर गए। इन्हीं साँगाजी के बड़े बेटे भोजराजजी को मेड़ता के राव वीरमदेवजी के छोटे भाई रत्नसिंहजी की बेटी नारी रत्न "मीराँबाई" संवत् १५७३ में ब्याही गई थी। उसका

(९) पृथ्वीराजजी के विषय में दो एक बातें विचारने योग्य हैं। (१) कई इतिहासों में लिखा है कि 'पृथ्वीराज जी को भीम ने मारे थे।' "इतिहास राजस्थान" (पृ० ९५) में इस बात को गलत बतलाया है और लिखा है कि 'पृथ्वीराजजी की और बातें तो अच्छी थीं। सिर्फ बड़े बेटों के बैठे हुए १८ वें बेटे पूरणमलजी को राजा बनाये यह अनुचित था' (२) "टाड राजस्थान" (पृ० ५७०)में लिखा है कि 'पृथ्वीराजजी ने सिंधु नदी के किनारे देवल तीर्थ में जाकर यश लाभ किया था किन्तु भीमकाय भींव ने वहीं उनका वध कर दिया जिसका प्रतिफल यह मिला कि उनको भी उनके बेटे आसकरण ने मार डाला था। (३) इस आशय के आधार पर देवीप्रसादजी ने भी "आमेर के राजा" (पृ० ६) में लिखा है कि 'भीम ने पृथ्वीराजजी को द्वारका में मारा था' (४) "जयपुर इतिहास" (उर्दू अनुवाद) (पृ० ५७) में लिखा है कि 'पृथ्वीराजजी सिंध नदी के दहाने पर देवल की ज़ियारत करने गए तब उनके पिसर भीम ने उनको मार डाला था'। (५) "जयपुर इतिहास" (अंग्रेज़ी अनुवाद) 'भीम के द्वारा पृथ्वीराजजी के मारे जाने की बात झूँटी है।' (६) "ईश्वरीसिंह चरित्र" (पृ० २) 'पृथ्वीराजजी का थानेश्वर में अन्त हुआ था।' और (७) "वंशावलियों" में लिखा हैं कि 'संवत् १५८४ के महापुनीत कार्तिक मास में वैंकुठ द्वादशी को पृथ्वीराजजी का वैकुण्ठ बास हुआ।' अस्तु।

(१०) "पृथ्वीराजजी के राणी"

(१) भागवती (बड़गूजरजी) देवती के राजा जैताकी (२) पदारथदे (तँवरजी) भगवन्तराव गांवड़ी की (३) 'अपूर्वदेवी 'बालाँबाई" (राठोड़

जन्म १५५५ में हुआ था। मां बचपन में मर गई थी। विवाह के दो वर्ष बाद संवत् १५७५ में मीराँ विधवा होगई। वह भगवान् की अनन्य भक्त थीं। 'मीराँ के प्रभु गिरधर नागर' के नए पद बना कर भगवान् को सुनाती। वह उसके देवर (तत्कालीन महाराणा विक्रमादित्य) को बुरे लगे। उन्होंने उसे तंग की और जहर दिया अन्त में वह द्वारका जाकर संवत् १६०३ में मर गई। विशेष हाल 'राजपूताने का इतिहास" पृष्ठ ६४३-६५४-६६२ और ६८४) में देखें।

जी) राव लूणकरणजी बीकानेर की (४) रूपावती (सोलंखणीजी) राव लखानाथा टोडाकी (५) जाँववती (सीसोदणी जी) राणां रायमलजी उदयपुर की (६) रमादे (निर्वाणजी) रायसल अचला की (७) रमादे (हाड़ी जी) रावनरवद बूँदीकी (८) गौरवदे (निर्वाणजी) धामदेव की और (९) नरवदा (गौड़जी) खैरहथ की थी। इनमें पहली (या पटराणी) कौन थी इसका कोई पता नहीं लगता परंतु पृथ्वीराज जी की प्रियतमा राणी 'बालांबाई' जी थे । जयपुर राज्य उनके परिवार से व्याप्त है । और उनके यशगौरव को बढ़ा रहा है। आमेर में 'बालांबाई की साल' नाम का मकान है उसके सामने जाते ही सब लोग नतमस्तक होते और ताज़ीम देते हैं। जयपुर के राजा के प्रथम विवाह का आरम्भ उसी साल में होता है। इन बातों से आभासित होता है कि बालांबाई पटराणी थे ।

(११) 'उपरोक्त ९ राणियों के १९ पुत्र' उत्पन्न हुए। (१) भीमसिंह जी (बालांबाई के १)इनके वंशज नरवल में 'भीमसिंहोत' हैं। (२) पिचाण जी (बालांबाई के २) इनके वंशज नायला आदिमें 'पिचाणोत' थे (३)भारमलजी (बालां बाई के ३) यह' आमेर के राजा हुए। (४) गोपाल जी (बालां बाई के ४) इनके वंशज 'नाथावत' चौमूँ- सामोद आदि में हैं। (५) सुलतान जी (बालां बाई के ५) जिनके 'सुलतानोत' काणोता में थे। (६) जगमाल जी- (बालां बाई के ६) इनके 'जगमालोत'—'खंगारोत' साईवाड़ नराणा और डिग्गी आदि में हैं। (७) सहसमल जी (बालांबाई के ७) अपुत्र मरे। (८) साँगाजी (बालां बाई के ८) इनका विवरण आगे दिया है। (९) बलभद्रजी (बालां बाई के ९) इनके 'बलभद्रोत' अचरोल में हैं। (१०) रायमल जी (बालाबाई के १०) अपुत्र रहे। (११) रामसिंह (बड़गूजरजी के) इनके 'रामसिंहोत' हैं। (१२) प्रतापसिंह जी (बड़गूजरजी के) इन के 'प्रतापपोता' कोटड़े में हैं। (१३) सांईदासजी (बालां बाई के ११)

इनके 'सांईदासोत' कछवाहे बड़ोद में हैं (१४) चतुर्भुज जी (बालां बाई के १२) इनके 'चतुर्भुजोत' बगरू में हैं। (१५) कल्याण जी (सीसोदणी जी के) इनके 'कल्याणोत' कालवाड़ में हैं। (१६) भीखाजी (सीसोदणी जी के) अपुत्र रहे। (१७) तेजसी जी (सीसोदणी जी के) अपुत्र रहे। (१८) पूरणमल जी (तुँवरिजी के) राजा हुए इनके 'पूरणमलोत' नीम्हैड़ा (पूर्व) में हैं। और (१९) रूपसिंह जी -x- (राठोड़जी के) इनके बाबत कहते हैं कि यह पहले बैरागी रहे पीछे गृहस्थ हुए। अजमेर के पास रूपनगर इन्हीं का बसाया हुआ है।

(१२) पुत्रों के उपरोक्त विवरण में यह चिन्तनीय है कि-(१) सीसोदणीजी के तीन पुत्र लिखे हैं वे सिर्फ १ वंशावली में हैं अन्य सब में दो हैं तेजसीजी उनके नहीं थे (२) पूरणमल जी को प्रयोजन बस पृथ्वीराज जी ने राजा बना दिया था इस कारण पुत्रों की नामावली में सबने उनका नाम पहिले दिया है इससे भ्रम हो सकता है कि यह सब से बड़े होंगे परन्तु थे सबसे छोटे १८ वें और साँगाजी को अधिकांश ने आठवें लिखे हैं परंतु "बीर विनोद" में उनका नंबर पांचवां है। व्यक्तिगत बातों में बहुतों ने स्वार्थ या कारण वश महाराज पृथ्वीराज जी के पुत्रों के उपरोक्त क्रम में अपने पूर्वजों का नाम आरंभ में लगाकर आगे के क्रम को अस्त व्यस्त कर दिया है। यही बात महाराणियों के विषय में भी हुई है। अपने यहां से आई हुई को पटराणी प्रगट करने के अनुरोध से उनका नाम-पहले देकर औरों का आगे पीछे कर दिया है। अतः जब तक महाराणियों के ब्याही आने के संवत और पुत्रों की जन्म पत्रियां प्राप्त न हों तब तक इस प्रकार आगे पीछे किए हुए नामों में छोटे बड़े मान लेना किसी अंश में संगत नहीं। यही सोचकर यहाँ प्रामाणिक इतिहासों के आधार, अनुभवी विद्वानों के अनुसन्धान और जयपुर के इतिहास के मर्मज्ञ पुरोहित पंडित हरिनारायण जी शर्मा बी० ए० आदि के बहुसम्मत क्रम को लिखा है और प्रतीति के लिए आगे कोष्टक भी दिया है।

[१३] संख्या	ग्रन्थों के नाम / पुत्रों के नाम	इतिहास राजस्थान	जयपुर राज वंशावली	शाहँ हिस्ट्री	जयपुर हिस्ट्री	वीर विनोद	आमेर के राजा	'न' वंशावली	वाकावक्ष वारैठ	मूँहतानैणसी	प्राचीन वंशवृक्ष	पुरोहित जी से प्राप्त	बहु सम्मत	किसके ज्यादा है
१	भींवजी	१	२	२	२	२	१	१	१	१४	२	१	१	१-६
२	पिच्याणजी	२	७	९	५	७	३	३	३	०	९	२	२	२-३
३	भारमलजी	४	३	३	३	३	४	४	२	१	३	३	३	३-७
४	गोपालजी	५	४	४	४	४	५	५	४	४	४	४	४	४-९
५	सुलतानजी	३	९	५	९	९	६	६	५	५	५	५	५	५-६
६	जगमालजी	६	८	७	८	८	७	७	७	०	७	६	६	७-५
७	सहसमलजी	७	१८	१५	१८	१७	१३	११	१४	१३	१५	७	७	७-३
८	साँगाजी	८	५	१९	५	६	२	२	१९	०	१९	८	८	८-३
९	बलभद्रजी	९	११	६	११	११	८	८	६	३	६	९	९	९-६
१०	रायमलजी	१०	१९	१६	१३	१९	९	९	१५	०	१६	१०	१०	१०-३
११	रामसिंहजी	११	४	१३	१९	४	१२	१४	१८	७	१३	११	११	११-३
१२	प्रताप सिंहजी	१२	१०	१२	४	१०	१४	१३	११	९	१२	१२	१२	१२-५
१३	सांई दासजी	१३	१२	१४	१०	१२	१३	१२	१३	१२	१४	१३	१३	१३-५
१४	चतुर्भुजजी	१४	१५	८	१२	१४	१०	१०	८	६	८	१४	१४	१४-४
१५	कल्याणजी	१५	१३	१०	१५	१३	१५	१५	९	८	१०	१५	१५	१५-६
१६	भीखाजी	१६	१४	१७	१४	१८	१६	१६	१६	११	१७	१६	१६	१६-६
१७	तेजसीजी	१७	१७	१८	१७	१६	१७	०	१७	०	१८	१७	१७	१७-७
१८	पूरणमलजी	१८	१	१	१	१	१८	१८	१८	२	१	१८	१८	१८-६
१९	रूपसीजी	१९	१६	११	१६	१५	१९	१७	१०	१०	११	१९	१९	१९-४

उपरोक्त कोष्ठक के अंकों पर दृष्टि देने से स्पष्ट मालूम होता है कि महाराज पृथ्वीराज के १९ पुत्रों को १२ साधनों में से पिच्याण, सहसमल, साँगा, रायमल, रामसिंह जी को ३ ने, चतुर्भुज और रूपसीजी को ४ ने जगमाल, प्रताप और सांईदास को ५ ने, भींव सुलतान, बलभद्र, कल्याण भीखा और पूरणमल को ६ ने भारमल और तेजसी को ७ ने

और गोपाल जी को ६ ने बहु सम्मत माने हैं।

(१४) महाराज पृथ्वीराजजी के १६ पुत्रों में २ राजा हुए। उनका परिचय आगे दिया है। १२-'बारह कोटड़ी वाले' कहलाए उनका विवरण 'बारह कोटड़ी' में है। २ ने अपना वंश बढ़ाया उनका सुयश स्वदेश में विख्यात है। और ३ अपुत्र रहे उन में सांगा जी जैसों ने अपना अमर नाम किया जिनका कुछ हाल यहां दिया गया है और शेष का वृतान्त ज्ञात नहीं हुआ है। साँगाजो की ऐतिहासिक बातें इतिहासों में कम मिलती हैं। केवल साँगानेर बसाने की बात उनके नाम से विख्यात है। उसको भी 'ग' वंशावली में साँगा राणा की बसाई बतलाई है। इन्होंने तो उसके पक्का परकोटा और मकान बनवाये थे यही लिखा है और इसकी पुष्टी में "जैऊठैलो सांगो राणो तो सांभर सुदो देय निराणो' वॉक्य दिया है। परन्तु "वीरविनोद" (पृ० ५०) में लिखा है कि- 'रत्नसिंह जी के ज़माने में सांगा जी ने आमेर राज्य की रक्षा के लिए अपने प्राण दिए थे। आमेर नरेश महाराज रत्नसिंह जी मदिरा में मस्त रहते थे। राज्य को शेखा और नरूका दबा रहे थे। अकेले कर्मचन्द ने ४० गांव दाब लिए थे। इन बातों से सांगा जी, रत्नसिंहजी पर नाराज़ हुए और बीकानेर से अपने मामा की हज़ारों फौज़ चढ़ा लाए। उनमें (१) चेचाबाद के बाघावत 'बणीर' (२) माऽजन के लूणकरणोत 'रत्न-सिंह जी' (३) राजसर के काँधलोत 'कृष्णसिंहजी' (४) द्रोणपुर के संसार चन्द्रोत 'खेतसिंहजी' (५) सरूँडा के मँडलावत 'महेशदासजी' (६) भेलूँ के सादावत 'भोजराजजी' (७) धड़सीसर के बीकावत 'देवीदासजी' (८) पूँगल के भाटी 'बैरीसालजी' (९) चिरणोत के शेखावत 'धनराजजी' (१०) खारवा के बाघावत 'कृष्ण सिंहजी' (११) मिलत के हाँसा 'जोगिया' (१२) सिंघाणा के 'महता अमरा' और वहीं के पुरोहित 'लक्ष्मी-दास' आदि प्रधान थे। यहां आने पर सांगाजी ने अमरसर से रायमल शेखावत को और आमेर से रतन के मुसाहब तेजसिंह को मौज़ाबाद में बुलाकर सर्व प्रथम लाला साँखला

के हाथ से कर्मचन्द् को मरवा दिया और पीछे अन्य शत्रुओं को यथाक्रम परास्त किया। उस अवसर में कर्मचन्द् के भाई जयमल ने साँगा पर भी तलवार का वार किया था परंतु भारमलजी के बीच में आजाने से बच गए। वह घाव छत्री के एक खम्भे में लगा जो अब तक दीखता है। अन्त में कर्मचन्द् के कान्हा चारण ने साँगानेर में सेवकरूप से सांगाजी के समीप रहकर समय आए अचानक छुरी घूँसदी और उसी तरह अपने शरीर में भी घुसाकर आपभी वहीं मर गया। 'ग' वंशावली में लिखा है कि साँगाजी का जन्म सदन्त (दांतों सहित) हुआ था। इस कारण उनको केई वर्ष नांनेरे में रक्खे थे। वह बड़े वलवान् थे। पृथ्वीराज जी के पीछे भाईयों में बखेड़ा हुआ और रायमल शेखावत ने आमेर के कई गांव दाब लिए तब कासू कायथ बीकानेर से साँगा जी को यहां ले आया। यह वीर साहसी और हिम्मत बहादुर थे। आते ही रायमल की कमर पकड़ कर ऐसी दबाई जिससे हड्डियां टूटने लगीं। रायमल हार गया और आमेर के गांव छोड़ दिए। सांगाजी ने "साँगानेर" * बसाते समय बकरे का झटका किया था- उसमें वह तुरंत कट गया और शिर अलग होगया परन्तु वह खड़ा रहा तब शकुनी ने कहा कि आपका यश तो बढ़ेगा परंतु अपुत्र रहोगे। अंतमें उपरोक्त चारण ने उनके छुरी घूंसदी और उन्होंने उसके रामझारे की दी जिससे वह भी मारा गया। यों दोनों वहीं मर गये।

* "साँगानेर" ऐतिहासिक वस्ती है। वहां कई बार ऐसी घटनाऐं हुई हैं जिनके उल्लेख इतिहासों में मिलते हैं। किसी जमाने में जटिल समस्या सुलझाने के लिए आमेर राज्य के शूर सामन्त साँगानेर में इकट्ठे होते थे और देश हित के अनेक काम करते थे। अब उसमें वैसे महत्व की सभायें नहीं होती। किन्तु छपाई और रंगाई के काम अद्वितीय होते हैं। साँगानेर के साफे-धोती-रजाई-अँगोछे और चादरे आदि बहुत विख्यात हैं। विलायत वाले उनकी नकल करते हैं तौभी वैसे बैठते नहीं हैं यह करामात वहां के जलकी है। हाथ के बने स्वदेशी कागज भी वहां तैयार होते हैं और साँगा बाबा भी वहीं विराजते हैं। सांगानेर के जीर्ण परकोटा भी है जिसका प्रधान दरवाजा २४ फुट ऊँचा है।

[१५] महाराज पृथ्वीराज जी और उनकी प्रधान महाराणी बालांबाई भाग्यशाली और धर्मात्मा थे। उनका सुयश और परिवार जयपुर राज्य में सर्वत्र फैला हुआ है और उनके बारह कोठड़ी वालों जैसे कई पुत्र अपने पुत्र पौत्रादि के रूप में द्वादशादित्य के समान प्रकाशमान होरहे हैं। आगे के अध्यायों में उनका परिचय दिया गया है और वे कहां कहां कैसी परिस्थिति में हैं यह भी दिखला दिया है।

(१६) तीसरे अध्याय की समाप्ति के पहले नीचे जो "प्राचीन राजा" *

* "प्राचीन-राजा"

(१) "भारतवर्ष का इतिहास" (पृष्ठ ५३) 'आज विक्रम संवत् १९९३ से २५८६ वर्ष पहले उत्तरी भारत के १६ राज्य थे उनमें मगध और कौशल ज्यादा विख्यात हुए। उन दिनों फारस का बादशाह **'गशूतास्प'** अफ़गानिस्थान के रास्ते से पञ्जाब में आकर चला गया था।

(२) "भा०इ०" (पृ०५५) आज से २३४० वर्ष पहले नन्दवन्शीय **'महापद्म'** राजा थे। उनके पास २ लाख पैदल २० हजार घुड़सवार ४ हजार हाथी और २ हज़ार रथ थे।

(३) यूनान के फैलकूस (फिलिप्) का वेटा **'सिकन्दर'** महापद्म के ज़माने में भारत में आया था। तक्ष शिला के राजाने उसका स्वागत किया था और वह पोरस को परास्त कर चला गया था। उन दिनों **'तक्षशिला के विश्व विद्यालय'** में संसार के हजारों विद्यार्थी सम्पूर्ण विद्याओं में निपुण होते थे और भारत के गौरव को बढ़ाते थे।

(४) "भा०इ०" (पृ०६१) सिकन्दर के एक वर्ष वाद कूट राज नीति के ज्ञाता महा बुद्धिमान् कौटल्य की सहायता से **'चन्द्रगुप्त'** इस देश के राजा हुए। उनको "रा०पू०इ०" (पृष्ट ६२) ने मुरा के "भा.इ." (पृ. ६१) ने शूद्रा के "इ.ति.ना." (पृ.६) ने नाँणि के और हैवेल साहब (भा.इ.६२) ने मोर रखने वाली स्त्री के वेटे वतलाए हैं। विद्वानों का मत है कि वह शुद्ध क्षत्रियाणी के वेटे थे और हिमालय की जिस तलैटी में रहते थे वहां मोर होने से मौर्यवंशी कहलाए थे। "रा.पू.इ." (पृ.५९-८७) में इनका विशेष वर्णन है और प्राचीन राजाओं के स्थिति काल का अन्तर भी दिखलाया

शीर्षक की टिप्पणी दी है इसका | देना इसलिए आवश्यक हुआ कि

है। "भारतीय प्राचीन लिपि माला" (पृ ३९) में लिखा है कि 'चन्द्रगुप्त के दरबार में सीरिया के राजा सेल्यूकस का वकील मेगास्थनीज़ आया था उस समय '**भारत में पञ्चाङ्ग**' बनते थे। चैत्र शुक्ला १ को सुनाए जाते थे। जन्मादि के इष्ट लिखे जाते थे। १०-१० स्टेडियां अर्थात् ६०६ फुट का १ कोस होता था, हर कोस पर राहगीरों के सुभीते की सूचनाओं के पत्थर गढ़ते थे, सड़कों के किनारे वृक्षावली और कूए होते थे और पूरी मंजिल पर धर्मशाला होती थी'

(५) "भा.इ." (पृ ७१) आज से २२२५ वर्ष पहले '**अशोक**' हुए थे, वह पहले हिंसक थे, उनके रसोवड़े में हज़ारों पशु-पक्षी मारे जाते थे, पीछे उन्होंने '**अहिंसा-परमो धर्मः**' मान कर जीव हिंसा बन्द करवादी थी। वर्तमान अंग्रेजी राज में प्रजाहित के जो साधन हैं वे अशोक के ज़माने में भी थे। अशोक वास्तव में शोक हर्ता, दूरदर्शी और कीर्ति रक्षक थे। उन्होंने अपने ज़माने में काशी-प्रयाग-दिल्ली-साकची और सारनाथ आदि में '**अशोकस्तम्भ**' स्थापन किए थे। उन में प्रयाग का स्तम्भ अधिक सुन्दर है और दिल्ली का ऐतिहासिक बातों से पूर्ण है। उसकी ऊँचाई ३२ ग़ज है जिस में ८ ज़मीन में और २४ ऊपर है और कई ग़ज की मोटाई है। लेखों से यह भी आभासित होता है कि शायद यह अशोक से पहले का और दूसरा अशोक का है। (वहाँ ऐसी ही कुतुब मीनार है, जो यवन राज्य के स्थापन की हरीथूणी मानी जासकती है।) आश्चर्य है कि इतने बड़े ऊँचे और मोटे लोहस्तम्भ को सुन्दर रूप में सम्पन्न करवा के किस प्रकार तैयार करवाया था। वह भारत की प्राचीन कारीगरी को आज भी अलौकिक रूप में प्रकट करता है उसमें अब तक जंग नहीं आया है और उसके लेखों से पुराविद् प्रसन्न होते हैं। "दि.द." (पृ. १९) उपरोक्त अशोकस्तम्भ दिल्ली से उत्तर में है। दूसरा दिल्ली के समीप संवत् १४०७ में बसाई हुई '**फ़िरोजाबाद**' नाम की दिल्ली में है। उसको फीरोजशाह दूसरी जगह से लाए थे। लाने में बड़ी होशियारी की गई थी। जिस जगह से उसको उखाड़ा उस जगह पहले १ बड़ा भारी खाड़ा खोद लिया था। अकस्मात लाट नीचे गिर कर टूट न जावे इसलिए उस में सण सूत और रूई भरवा दीगई थी और फिर लाट को आड़ी गिरवा के ४० पहिए की गाड़ी में लदवाई थी जिसको

अब तक जो कुछ लिखा गया है वह रघुवंशी राजाओं या कछवाहों के पूर्वजों का संक्षिप्त परिचय है। इस में एक दो के अतिरिक्त भारतीय सम्राटों या राजा बादशाहों आदि का विशेष वर्णन नहीं आया है। यह एक प्रकार

हजारों आदमी खेंचकर लेगए थे और नावों में लाद कर दिल्ली लाए थे। दिल्ली में भी एक ढालू खाड़ा बनवाया गया था और उसको धीरे से उतरवा के खड़ी की थी। पीछे चारों ओर पक्का चबूतरा बनवा दिया था। उन दिनों भारत में कैसी अद्भुत कला और उसके करने के कैसे अद्भुत साधन थे यह सहज ही समझ में नहीं आसकता। इतने भारी वजन के लोह को गलाकर सुन्दर रूप में ढला देना आज कल के बड़े कारखानों के लिए भी कठिन है। अस्तु।

(६) "भारत इतिहास" (पृष्ट ७७) आज से २२०९ वर्ष पहले **'मेनेण्डर'** (या मणीन्द्र) ने भारत पर चढ़ाई की थी। और

(७) "भा० इ०" (पृ० ८०) विक्रम संवत् १३५ में **'कनिष्क'** राजा हुए थे। उन्होंने भी अशोक के समान अच्छे काम किए थे। सोने का सिक्का चलाया था चरक उसी जमाने में हुए थे और उसी समय **'शक संवत'** शुरु हुआ था।

(८) "रा० पू० इ०"(पृष्ट ११९) संवत् ४५८ में गुप्तराज्य के **'दूसरे चन्द्रगुप्त'** हुए। उन दिनों चीनी यात्री 'फाह्यान' भारत में आया था वह इस देश के वर्ताव व्यवहार रीति रिवाज, कला कौशल, शासन विधान और लोक हित के साधनों से बड़ा सन्तुष्ट हुआ। उन दिनों विविध प्रकार की वस्तुओं से भारत के बाजार भरे हुए थे और लाखों रुपयों का माल नावों और जहाजों के द्वारा विदेशों में जाता था।

(९) "रा० पू० इ०" संवत् ६२८ में **'मुसलमानों के आदिदेव'** हजरतमोहम्मद मकासरीफ में प्रकट हुए थे। वह ईश्वर भक्त और उन्हीं के उपदेश देने वाले थे। किन्तु कुजीवों के हैरान करने से मदीना चले गए थे और संवत् ६८९ में वैकुण्ठ वासी होगये थे।

(१०) "भा० इ०" (पृ० १०१) संवत् ६८७ में यहां **'हर्ष'** का राज्य था। वह प्रजा को खुद सम्हालते थे और दण्ड या इनाम भी आपही देते थे। फौजदारी कड़ी थी। शिक्षा सुलभ थी, दफ्तर अच्छे थे, इन्साफ यथार्थ होता था, पण्डितों का आदर था, दीन दुखिया पलते थे और ब्राह्मण, क्षत्री गुणवान् और सत्यवादी थे। उन दिनों धर्मनिर्णय के लिये संवत् ७०२ में कन्नोज में हजारों पण्डितों की सभा भी हुई थी। उस अवसर में

से आमेर राजवंश के प्राचीन इतिहास का दिग्दर्शन मात्र हुआ है। किंतु आगे के चौथे अध्याय से ग्रन्थ की समाप्ति पर्यन्त मुख्यतया 'नाथावतोंका इतिहास' है और साथ में यथा प्रसंग आमेर राज्यवंश का

चीनी यात्री 'हुएन संग' और उनके साथी तावपुंग, तोपिंग तथा सुंगथुंग भी यहां आए थे। वह वापिस जाते समय बहुतसी पुस्तकें तथा मूर्तियां लेगए थे और संवत् ७२१ में अपने देश में मरे थे। उन दिनों कछवाहों के नामी नगर लाहोर, रोहतास और नरवल भारत में विख्यात हो रहे थे।

(११) "भा० इ०" (पृ० १०७) सिकन्दर आदि के आकर गए पीछे संवत् ७७० में 'अरब के मुसलमानों' ने भारत की सिन्धु नदी के समीप देवल पर हमला किया। और जीत कर वापस चले गए थे। उन्हीं लोगों ने भारत के ज्योतिष और वैद्यक का भी अपने देश में प्रचार किया था।

(१२) "भा० इ०" (पृ० १०८) संवत् ८९७ में कन्नोज में 'भोज और पड़िहार' हुए और

(१३) "पृ० १११) संवत् १००७--४७ में बुन्देलखण्ड में 'धंग' और 'कीर्तिवर्मा' हुए। धंग ने महमूद गजनी को और कीर्तिवर्मा ने चेदी नरेशों को हराए थे।

(१४) "भा. इ." (पृ. १२६) भारत में व्यापक रूप से रहने के लिए सर्व प्रथम संवत् १०४३ में 'सुबुक्तगीन' ने हमला किया था उसके पीछे—

(१५) उसी के वेटे 'महमूद गज़नी' ने कई बार हमले किये। उनमें 'पहिला' संवत् १०५८ में खैबर के पास और पेशावर में 'दूसरा' संवत् १०६२ में लाहोर के रास्ते के देशों में 'तीसरा' नगर कोट में 'चौथा' थाणेश्वर में और 'पांचवां' कन्नोज में किया था। संवत् १०७५ में उसने कन्नोज पर आक्रमण करके धन और जन का नाश किया था और हाथ आया सो ले गया था। अन्त में 'सोलहवां' हमला 'सोमनाथ' पर किया। उसमें वह ग़जनी से पेशावर, मुलतान, अजमेर और अनहलवाड़ा होता हुआ गुजरात काठियावाड़ में गया वहां संवत् १०८२ पौष शुक्ल १३ गुरुवार से १५ शनिवार तक रहा। इन तीन दिनों में उसने वहां सबका विध्वंश कर दिया और करोड़ों रुपए का माल ले

वर्णन दिया है। जिन का सम्पर्क भारत के सम्राटों बादशाहों या	राजाओं आदि से है। अतः यहां "प्राचीन राजा" शीर्षक में पुराने

गया। "राजपूताने का इतिहास" (पृ. २५९--६१) में लिखा है कि-'महमूद ने संवत् १०५७ से भारत पर १७ बार चढ़ाई की थी। लाहोर के जैपाल को जीतकर वह माल ले गया उसमें रत्नों के १६ कण्ठे थे और एक एक कंठा १८-१८ लाख का था। सोमनाथ के मन्दिर के ५६ खम्भों पर शीशा मँढ़ा हुआ था। महादेवजी की मूर्ति ५ हाथ ऊँची और ३ हाथ मोटी थी। मंदिर का घण्टा जिस जंजीर (सांकल) में लटक रहा था वह सांकल दोसौ मण सोने की थी।' उन दिनों 'महमूदी मण' आज कल के १२ सेर का 'तब्रेजी मण' ५॥ सेर का और 'अरबी मण' २ सेर का था) "इतिहास तिमिर नाशक" (पृ. १०) में लिखा है कि-'महमूद दोसौ मण सोना-दो हजार मण चांदी-और ६०.लोला मणि माणिक (जँवाहरात) तथा २० लाख दीनार (जो १ दीनार ४ मासे का था) लेगया था और रत्नादि के कई ऊँट भरे थे। 'मुसलमान लेखकों ने' लिखा है कि 'मूर्ति पोली थी उसमें करोड़ों रुपयों के रत्न थे उसके ४ टुकड़ेकिए थे। २ टुकड़े मक्का और २ ग़ज़नी भेजे थे। मंदिर के कँवाड़ मलयागर चन्दन के थे उनको वह ग़ज़नी गढ़ ले गया था। किन्तु संवत् १८९९ सन् १८४२ में वे आगरे में आगए।) और 'अलबेरूनी' ने अपने "अलबेरूनी का भारत" में लिखा है कि-'यह सब कथा कल्पित हैं।' (अलबेरूनी विद्वान् मुसलमान था। संस्कृत खूब जानता था। वह यहां आया उन दिनों भारत में सती होती थीं। ब्राह्मण महा विद्वान् थे। राजा छटा हिस्सा कर लेते थे। फौजदारी नर्म थी। व्यापार व्यापक था और ब्राह्मणों के फाँसी नहीं लगती थी। अलबेरूनी महमूद के साथ आया था और संवत् ११०३ में अपने देश में मरा था।)

(१६) संवत् १०७५ अथवा कछवाहों के आमेर पहुंचने के दिनों में मालवा में 'राजाभोज' राज्य करते थे। उन्होंने ऋषि प्रणीत हिंदू शास्त्रों और भारतीय विद्याओं को समाश्रय देकर उन्नत की थी। उन्होंने ही अपने नामकी 'भोज विद्या' को संग्रहीत करने के लिए 'समरांगण सूत्रधार' नामका अद्भुत ग्रन्थ बनाया था। उसमें अपने आप उड़ने, बोलने, दौड़ने, नाचने, लाने, लेजाने और पहरा देने वाले काठ या लोहे के पशु पक्षी और मनुष्य बनाने की सुगम विधि लिखी हुई हैं और वह छप भी गया है।

जमाने के सम्राटों या राजा बादशाहों के राजत्वकाल का यत्किञ्चित् दिग्दर्शन करा देने से आगे का इतिहास पढ़ने वालों को पिछले इतिहास का परिचय

(१७) भोज के पीछे दिल्ली में 'तँवर' और अजमेर में 'चौहान' हुए थे। परन्तु पृथ्वीराज के सम्राट हुए पीछे दिल्ली में भी चौहान होगए थे।

(१८) "भा. इ." (पृ. १४४) महमूद गजनी के पीछे 'मोहम्मद गौरी' के आक्रमण हुए। उसके जमाने में भारत में कई जगह मुसलमान सुलतान बन गए थे। संवत् १२६० में मुसलमानों ने कालिंजर देश को परास्त किया था। उनके पीछे-

(१९) संवत १२६३ से 'गुलाम वंश' आरम्भ हुआ। उसमें कुतुबुद्दीन नसीरुद्दीन बलबन और कैकुबाद हुए। उनके पीछे

(२०) 'खिलजीवंश' के लोग बादशाह बने। उनमें अलाउद्दीन -शमसुद्दीन- कुतुबुद्दीन- नशीरुद्दीन- और गयासुद्दीन- आदि 'तुगलक' हुए। इनमें शमशुद्दीन ने भारत की नामी इमारतें ढहाई थी "तवारीख नासरी" में लिखा है कि- सम्वत् १२६६ में शमसुद्दीन ने भिलसा (दक्षिण) के एक 'अद्वितीय मन्दिर' को तोड़ कर उसमें से ७२ करोड़ के हीरे मोती और सोना लेगया था। वह मंदिर १०५ गज ऊँचा और आध कोस लम्बा चौड़ा था। उसे (किसी राजवंश ने) तीनसौ वर्ष में ९२ करोड़ ७३ लाख ८२ हजार ७६५ रुपए लगाकर बनवाया था। उन दिनों मुहर १०) की थी। (ऐसा ही एक मंदिर महमूद ने भी तोड़ा था। जो मथुरा में था और उसकी शोभा- सुन्दरता-तथा सम्पत्ति अलौकिक थी। मंदिर कैसा उत्कृष्ट था इस विषय में स्वयं महमूद ने लिखा है कि 'अगर इस मंदिर को हम ५ सौ कारीगर लगाकर सौ वर्ष में २० करोड़ रुपए खर्च करके तैयार करवाते तो नहीं होता' उसने उन दिनों की मथुरा नगरी के बाजार की २२ वर्ग मील में फैली हुई दुकानों का मैदान बनवा दिया था।) उनके पीछे-

(२१) 'लोदीवंश' का 'दूसरा सिकंदर' दिल्ली का बादशाह हुआ वह बड़ा शक्तिशाली कट्टर मुसलमान किन्तु दयालु था। उसके बाद-

(२२) 'मुगल राज्य' शुरू होगया। "भा-इ" (पृष्ट २१६) इस राज्य का प्रमुख 'बाबर' था। उसका बाप मिर्जा उमरशेख मध्यएशिया के फरगाना की रियासत का मालिक था। बाप के मर जाने पर बाबर को ११ वर्ष की अवस्था में घरकों ने निकाल

दिया। वह देशान्तर में वड़ा होकर काबुल का मालिक बना। फिर यथा क्रम कई देशों का विजय किया और अन्त में दिल्ली लेने की कामना से भारत में आया। यहां 'पानीपत' में दिल्ली के इब्राहीम लोदी की १ लाख सेना से सिर्फ १२ हजार सवार साथ लेकर मुकाविला किया। उसके सैनिक शिक्षित थे। अतः वह जीत गया और संवत् १५८३ के शीतकाल में दिल्ली का वादशाह वन गया। उसके १ वर्ष वाद आमेर नरेश महाराज पृथ्वीराजजी की अंतिम अवस्था के दिनों में संवत् १५८४ के चैत्र शुक्ल में चितौड़ के महाराणा सँग्राम सिंहजी पर चढ़ाई की जिसमें सव रजवाड़े महाराणा के सामिल होजाने से वावर एक वार हार गया, दूसरी वार जीत गया और संवत् १५८७ की 'घाघरा की लड़ाई' में मर गया।

(२३) "भा.इ." (पृ० २२२) वाबर के मर जाने से उसका वेटा 'हुमायूं' वादशाह हुआ। उसने कई जगह लड़ाई की और अपने राज्य को बचाया परन्तु वावर के जमाने के हारे हुए लोगों ने इसको हर तरह से हैरान किया। तब वह मारवाड़ की तरफ भाग गया और जैसलमेर होता हुआ 'अमरकोट' पहुँचा।

(२४) वहां संवत् १५९९ कार्तिक शुक्ल ६ शनिवार, तारीख २२ अक्टूबर सन् १५४२ की रात व्यतीत होने पर प्रभात होने के पहले मुगल राज्य बढ़ाने वाले सर्वप्रिय श्रीमान् 'अकबर' उत्पन्न हुए। जिनको सुकुमार अवस्था में ही सम्राट होने का सौभाग्य मिला और उन्होंने अपनी प्रयोजन पूर्ति की कामना से आमेर नरेशों के साथ में नाथावत सरदारों को भी समीप बुलाकर सम्मान किया।

तीसरा अध्याय

* श्री *

नाथावतों का इतिहास

"गोपालजी"

(४)

[आरम्भ में यह सूचित हो जाना उचित है कि पिछले ३ अध्यायों में आमेर के राजाओं का इतिहास प्रधान रूप से आया है। अब इस अध्याय से नाथावतों का इतिहास प्रधान रूप से है और आँमेर अथवा जयपुर के राजाओं का परिचय आंशिक रूप में दिया है।]

(१) आँमेर नरेश महाराजा पृथ्वीराजजी के पुत्रों में गोपालजी शांति प्रिय और विशेष बुद्धिवाले मनुष्य थे। उनका जन्म बालां बाई के उदर से हुआ था। वह बाल्यकाल से ही धर्मानुरक्त माता पिता के भक्त रहे थे। "नाथ वंश प्रकाश" (पद्य ४) के अनुसार गोपालजी ने कुँवर पदे में ही अपनी योग्यता और वीरता का परिचय दे दिया था। शेखावतों के समर में विजयी हुए थे। पँवारों और सोलंकियों का मद दूर किया था। निर्वाणों के मुल्क की बरबादी की थी और कर्मचन्द की कुटिल गति सरल बनाई थी।

(२) "नाथावत सरदारों का इतिहास" (पृष्ठ ६) में लिखा है कि 'संवत् १५८४ में महाराजा पृथ्वीराज जी के परलोक पधारे पीछे उनके अठारहवें पुत्र पूरणमलजी, पहिले पुत्र भींवजी और तीसरे पुत्र भारमलजी यथा क्रम आमेर के राजा हुए और चौथे पुत्र गोपालजी को उसी वर्ष (संवत् १५८४) में सामोद और मोहांणां मिला।' "पुराने कागज़" (नं० ३) में 'मिला' के बदले 'हिस्से में आया' और संवत् १५८४ के बदले १५८२ लिखा होने से सूचित होता है कि 'उसी अवसर में पृथ्वीराजजी के अन्य पुत्रों को भी जागीर के हिस्से

प्राप्त हुए थे और गोपालजी की जागीर मोहाँणाँ लगभग १२००) रु० वार्षिक आय का और सामोद बारह गांव का था।' आँमेर की आय भी उन दिनों अत्यल्प ही थी।

(३) पृथ्वीराजजी के परलोक बासी हुए पीछे २०—२२ वर्ष तक राज्य की परिस्थिति अधिक चिन्ता-जनक रही। पिता के पीछे उसके बड़े बेटे को सर्वाधिकारी करने और वह न हो तो वैकुण्ठ बासी के छोटे भाई को राजा बनाने आदि की जो परम्परा की परिपाटी चली आ रही थी वह भी मिट गई थी। एक के पीछे दूसरे और दूसरे के पीछे तीसरे मनमाने राजा भी हो गये थे। इस दुर्व्यवस्था से भाई बेटों में आपस का कलह इतना बढ़गया था कि बैठे हुए राजा को मार भी डालते थे और राज्य की नियत सीमा को हड़प भी जाते थे।

(४) उस अल्प अवधि में पूरणमलजी आदि कइयों ने आँमेर के सुवर्ण-सिंहासन का सुखानुभव या स्पर्श किया था और समय अथवा असमय में भी या तो परलोक पधार गए या पद हीन रहे। इस प्रकार की बढ़ी हुई भीषण परिस्थिति के खोटे परिणाम का विचार कर शांति प्रिय गोपालजी ने भारमलजी की राज्य प्राप्ति में पूर्ण सेवा व सहायता की। उसके पहिले वह पूरणमलजी आदि ५ राजाओं के ज़माने के छल, कपट, ईर्षा, फूट, अपहरण और ओछापन के प्रपञ्च देख चुके थे और उनके निवारण के उपाय प्रस्तुत कर चुके थे।

(५) "नाथावत सरदारों का इतिहास" (पृष्ठ ८) में लिखा है कि 'गोपाल जी ने चाटसू के समीप सम्वत् १५९३ में शेरशाह * सूर को परास्त किया था'। "भारत भ्रमण"

* "शेरशाह"- प्रजा को प्रसन्न रखने वाला साहसी शासक था। किसानों से खेत की पैदा का चतुर्थांश कर लेता, हाकिमों को तनखाह देता, हिन्दुओं को सन्तुष्ट रखता और उनके धर्म साधन में विघ्न नहीं करता था। उसने (१) गौड़ देश से अवध तक (२) बनारस से बुरहानपुर तक (३) आगरा से जोधपुर तक और (४) बियाना से जौनपुर तक अच्छी सड़कें बनवाई थीं। (भारत का इतिहास पृ० २३०) बचपन में शेरशाह का नाम फ़रीद था, वह हसनसहसराम का जागीरदार था। सौतेली मा से

आदि के खण्डसः आशय देखने से मालूम होसकता है कि 'शेरशाह (उर्फ़ शेरखां) हुमायूँ को हराकर मालदेव को दबाने के लिये चाटसू के रास्ते से मारवाड़ में जारहा था। रत्नाविधान में बाधा पड़ने की शंका तथा मालदेव को बचाने की कामना से गोपालजी ने उसको वहां जाकर घेर लिया। मुसलमान ज़्यादा थे और राजपूत कम, किंतु थे सब शूर-वीर और साहसी। अतः शेरखां की सेना को चारों ओर से घेरकर खड्ग-प्रहार से उनका संहार किया और शेरखां को हराकर उसे वापिस लौटा दिया। गोपालजी की इस विजय से आँमेर की आपत्ति तो टली ही थी साथ ही हुमायूँ और मालदेव भी बचगये थे। कदाचित् चाटसू में शेरखां की गोपालजी से मुठभेड़ न होती तो वह अवश्यही मारवाड़ पहुँच कर मालदेव को हैरान करता। अस्तु-ऊपर के चौथे अंशमें पूरणमलजी आदि ५ राजाओं के ज़माने का उल्लेख हुआ है। अतः यहां उसका यथा क्रम दिग्-दर्शन करा देना आवश्यक है।

(२०) "पूरणमलजी"

(६) अपने १८ भाइयों में एक से बड़े और अन्य सबसे छोटे थे। किसी कारण विशेष या प्रयोजन की पूर्ति के लिए पृथ्वीराजजी ने उनको अपना उत्तराधिकारी बना लिया था और संवत् १५८४ में उनका राज्या-

अनवन रहनें के कारण वह जौनपुर चला गया था। बाबर ने उसको बिहार का बड़ा हाकिम बनाया किन्तु कालान्तर में उसने हुमायूँ को हैरान किया, हुमायू अनेक आपत्तियों से उकता कर गंगा में गिर गया, परन्तु वहां एक भिश्ती ने मश्क में फूँक भरकर हुमायूं के पास फेंकदी जिसको पकड़ कर वह किनारे आगया। (भारत का इतिहास पृ० २२८) आपत्तियां हटी नहीं थीं। शेरखां उसे दबाही रहा था, उसने मालदेव का आश्रय लेना चांहा किन्तु उस पर भी शेरखां की दृष्टि पड़ गई थी, इसी प्रयोजन से शेरखां चाटसू होकर मारवाड़ में जाने लगा, तब रास्ते में गोपालजी से युद्ध किया और असफल मनोरथ होने से पीछा चला गया। उस पीछे वह संवत् १५९६ में दिल्ली का बादशाह बना और 'शेरशाह' के नाम से विख्यात हुआ और हुमायूं सिंध होकर फ़ारस देश में भाग गया। रास्ते में अमरकोट में अक़बर का जन्म हुआ था।

भिषेक हुआ था। "आमेर के राजा (पृष्ठ १३) में लिखा है कि- 'उस वक्त हिन्दुस्थान में मुग़लों की बादशाहत जम गई थी। दिल्ली के तख्त पर हुमायूं आरूढ़ थे। नियमानुसार पूरणमलजी बादशाह की सेवा में गये और 'राजा' का खिताब तथा 'माही मरातब' * प्राप्त किया।' पूरणमलजी के पहिले आमेर के राजा बादशाहों के पास नहीं गये थे किंतु देशकाल के खयाल से पूरणमलजी ने वैसा किया।

(७) उनदिनों बादशाह के भाइयों में हिन्दाल विख्यात था उसको बादशाह की ओर से मेवात आदि के परगने मिले हुए थे। संवत् १५९० में हिन्दालने शेखावतों पर चढ़ाई की तब पूरणमलजी उनमें शामिल हुए। उस समय अन्य राजा अपने महलों में रंग और गुलाल से बसन्त मना रहे थे और पूरणमलजी शत्रुओं के साथ अपने खून से फाग खेल रहे थे। उसी युद्ध में माघ सुदी ५ को उनका वैकुण्ठवास हुआ। उनके दो राणी थीं- एक प्रतापदे (राठोड़ जी) मेड़ता के जिन के सूजाजी पुत्र थे और दूसरे चौहाण जी थे।

(२१) "भींवजी"-

(८) के बाबत "वंशावली' (क) में लिखा है कि- 'पूरणमल जी की

* "माही-मुरातब" "राजपूताने की ज्ञातव्य बातें" (पृ० २) में लिखा है कि एक बार ईरान के बादशाह नौशीरवाँ का पोता खुसरो राजच्युत होकर निकल गया था। वह रूम की शीरीं को व्याहा था फ़ौजी ताक़त आजाने से उसे फिर राज्य मिल गया। उस दिन ज्योतिप के हिसाब से चन्द्रमा मीन राशि में था। मीन का स्वरूप मछली जैसा माना गया है। ऐसी स्थिती को खुसरो ने अच्छा शकुन समझ कर मछली और चांद के मिले हुए चिन्ह को "माही मुरातब" नाम से मशहूर किया। (माही मछली का नाम है और उस से मिश्रित चाँद होने से मुरातब होजाता है। खुसरो ने ऐसे चिन्ह के चाँदी सोना के झण्डे बनवा कर उन सरदारों को दिए जिनका आदर सत्कार सर्वोच्च श्रेणी का था। खुसरो के पीछे दिल्ली के मुग़ल बादशाहों ने भी उसका अनुकरण किया और राजपूताने के सर्व श्रेष्ठ राजाओं को समय समय पर दिए।' मानसिंहजी आदि को मिले हुए माही मुरातब जयपुर के राज चिन्हों में मौजूद हैं और ठाट वाट की बड़ी सवारियों में लगाये जाते हैं।

राणी अपने पीहर (मेड़तै) थी और उनके बेटे सूजाजी बालक थे इस कारण भींवजी मालिक हुए"-"आमेर के राजा" (पृष्ठ १४) में लिखा है कि 'भीमबलवान् था। राज का काम भी आपही करता था। सूजा सिर्फ़ २ वर्ष का था। उसके मार डाल ने का भय था इस कारण उसकी मां उसे पीहर ले-गई तब भीम राजा होगया।'-"वीर विनोद" (पृष्ठ ४९) में लिखा है कि 'पृथ्वीराजोत भीम आमेर की गद्दी पर आरूढ़ हुए किन्तु दो वर्ष बाद ही उनका देहान्त होगया'। दूसरे लोगों ने लिखा है कि वह पितृहन्ता थे'। और "इतिहास राजस्थान" (पृ० ९८) में लिखा है कि 'भींवजी अपने भाई पूरणमलजी को मार कर राजा हुए थे'। किन्तु "जयपुर हिस्ट्री" के लेखक ठाकुर फतेसिंहजी राठोड़ ने इन बातों को निर्मूल बतलाया है।' अस्तु। संवत १५९३ के श्रावण में भींवजी का वैकुण्ठ वास हुआ तब भादवे में-

(२२) "रतनसिंहजी"

(९) आमेर के राजा हुए। इनके विषय में "इतिहास राजस्थान" (पृष्ठ ९९) में लिखा है कि- 'यह काका के हाथ से मारे गए थे'। दूसरे ने लिखा है कि 'इनको आसकरण ने मारा था।' और तीसरे ने लिखा है कि 'यह ज़हर खाकर मरे थे।' परन्तु इन सब की अपेक्षा "आमेर के राजा" (पृ० १५) का यह लिखना ठीक है कि 'रतनसिंह से राज्य का प्रबन्ध नहीं होसका उसके वर्तावसे भाई बेटे भी नाराज़ थे, सांगाजी नांदेरै चले गए थे, मुल्क बरबाद होगया था, सरदारों में फूट पड़ गई थी, शेखावत और नरूका फिर ज़मीन दाबने लगे थे, अकेले कर्मचन्द ने ४० गांव हड़प लिए थे जिनको १० वर्ष बाद साँगाजी ने वापिस लिए थे, लोगों की इच्छा थी कि साँगाजी राजा बन जांय, किन्तु धर्मज्ञ साँगा ने रतन को पाटवी मानने में परम्परा की मर्यादा का पालन किया और आमेर से अलग रहे। संवत् १६०४ में रतनसिंहजी परलोक पधार गए, और 'रतनपुरा' जो जयपुर के समीप पूर्व में है बसागये। उनके पीछे-

(२३) "आसकरणजी"

(१०) आमेर के अधिपति हुए। परन्तु १५ दिन पीछे इनको 'अलग

कर दिए। "वंशावली" (क) में लिखा है कि शिकार के समय आसकरण जी के हाथ से नीलगाय (जिसको रोज़ कहते हैं) मरगई, तब भाइयों ने उनको गंगास्नान के लिए बाहर भेज दिया"- "आँमेर के राजा" (पृष्ठ २५) में लिखा है कि 'आसकरण ने अपने साले को गद्दी पर बिठा दिया था। इस कारण भाई बेटे बिगड़ गए और गंगा नहाने के बहाने से उनको अलग कर दिया।' "टाडराज स्थान" (पृष्ठ ५७१) में लिखा है कि 'भींव और उसका बेटा आसकरण दोनों पितृहन्ता थे। इसी लिए राजवंश में उनका नाम नहीं दिया'। अस्तु-गंगाजी भेजते समय आसकरण को आशा दिलाई गई थी कि तुम्हारे पुत्र-

(२४) "राजसिंहजी"

(११) राजा बनेंगे। किंतु वह आशा निराशामें बदल गई। राजसिंह जी को राजा अवश्य बनाए परन्तु १२ दिन बाद ही बदल दिए। अब किस को राजा बनाया जाय यह विचार होने लगा। उसी अवसर में खबर मिली कि 'आसकरण जी बादशाह के पास दिल्ली गए हैं और राज्यलाभ की कोशिश कर रहे हैं।' इससे गोपाल जी को निकट भविष्य में अधिक चिन्ताजनक परिस्थिति होने का सन्देह हुआ तब उन्होंने भारमलजी के राजा होने में ही सब का कल्याण समझा। गोपाल जी अधिकांश भाइयों में सबसे बड़े थे। बुद्धि-धारणा-सद्विचार और दूरदर्शिता भी उनकी आदर्श थी। वह आपत्ति-निवारण में आगे रहते थे और सबका हित चाहते थे। अतः भाइयों ने उनका स्तुत्य प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और सम्वत १६०५ में:-

(२५) "भारमलजी"

(१२) को राजा बना दिए। "अधिकार लाभ" (पृष्ठ ५) में लिखा है कि राज्याभिषेक के अवसर में प्रायः सब भाई बेटे बैठे हुए थे उनमें सर्व प्रथम गोपालजी ने अपने हाथसे भारमलजी के विशाल भाल पर 'राज तिलक' किया और सबसे पहिले आपही ने नज़र की।' इस शिष्टाचार से भारमलजी सन्तुष्ट हो उनको उच्चश्रेणी के मान-सम्मान पुरस्कार और अधिकारों से अलंकृत किया जिनकी उपलब्धि सबके

लिए सुलभ नहीं थी। "नाथवंश प्रकाश" आदि से आभासित होता है कि उनके वंशजों (चौमूँ सामोद के सरदारों) को जो (१) आमेर राज्य के पटैल (२) बड़ी पञ्चायतों के मीमांसक और (३) दरबार में महाराज के अति निकट प्रथम श्रेणी (अव्वल दर्जे की) बैठक पर बैठने आदि के अधिकार प्राप्त हैं उनका आरम्भ उसी अवसर में हुआ था। भारमलजी के राज्याभिषेक के अवसर में गोपालजी ने अवश्यही स्वार्थ तथा पक्ष छोड़ कर देश हित को दृष्टि में रख के न्याय प्राप्त असीम साहस का काम किया था और नित्य नये उपद्रव उपजाने वाली खोटी परिस्थिति को बदल कर स्थायी और व्यापक शांति स्थापित करके आमेर राज्य का अपूर्व हित किया था। "आमेर के राजा" (पृ० २४) से विदित होता है कि 'राज्य प्राप्ति के लिए रतन को डराने आसकरण को बहकाने और सांगाजी को सन्तुष्ट रखने आदि के उद्योग स्वयं भारमलजी ने भी किये थे।'

(१३) उन दिनों भारत में दिल्ली के बादशाह शूरवंशी सलीम शाहसूर थे और सम्वत् १६१२ से मुग़ल हुमायूँ दुबारा आए थे। गुज़रात आदि में सुलतान महमूद तीसरे मुजफ्फर दूसरे और सम्वत १६१८ में मुजफ्फर शाह तीसरे थे। चित्तौड़ (उदैपुर) में रतनसिंहजी विक्रमादित्य जी और बनवीरजी के बाद उदैसिंह जी का उदय होकर संवत १६१६ से प्रतापसिंह जी का प्रकाश होगया था और जैसलमेर में लूणकरण जी तथा संवत् १६०५ से मालदेवजी मालिक थे। ऐसी उपस्थति में भारमल जीराजा हुए और आसकरण जी ने बादशाह के पास पुकार की, उसपर सलीमशाह ने महाराज भारमल जी को दिल्ली बुलवाए तब उन्होंने गोपाल जी को अपने प्रतिनिधि बना कर दिल्ली भेज दिया। साथ में रूपसीजी भी गए थे। "अधिकारलाभ" (पृष्ठ५) में लिखा है कि 'बादशाह की खिदमत में गोपालजी के खड़े होने पर सलीम शाह ने फ़रमाया कि 'न्याय की निगह से आँमेर का राजा आसकरण होना वाज़िब है।' इसके उत्तर में गोपाल जी ने निवेदन किया कि 'हम सब भाइयों की निगह

में आसकरण जी आँमेर राज्य के योग्य नहीं जँचे तब हमने भारमल जी को राजा बना दिया अब वह किसी प्रकार भी हट नहीं सकते। यदि आप आशकरण जी को राजा बनाना चाहते हैं तो 'नरवल' हमारा ही राज्य है वह आसकरणजी को देदीजिए।' बादशाह ने गोपालजी का कहना मान लिया और खिलअत देकर विदा किए।

(१४) "जयपुर हिस्ट्री" (अ० २) में लिखा है कि 'उपरोक्त प्रकार की नियुक्ति से नरवल संवत् १७५३ तक कछवाहों के कब्ज़े में रहा और फिर दूसरों के अधिकार में चला गया।' "इतिहास राजस्थान" (पृष्ठ ११) में लिखा है कि 'आसकरण जी आग्रह करके हाज़ीखां को आँमेर पर चढ़ा लाये थे। किन्तु वह भारमल जी से मिल कर स्वतः शान्त होगया।' 'उसी अवसर में आँमेर राज्यवंश का लड़का लेजाने के लिए नरवल से आदमी आए थे तब सब भाइयों ने आसकरणजी को नरवल भेज दिया।' (अच्छा किया न लाठी टूटी न भाण्डा फूटा) "आँमेर के राजा" (पृष्ठ २६) में लिखा है कि 'बादशाह ने नरवल राज्य आसकरण को अपनी इच्छा से दिया था।' अस्तु।

(१५) आसकरणजी का बखेड़ा मिट गए पीछे गोपाल जी ने भारमल जी से आमेर राज्य के निष्कण्टक करने की विनय की। उस ज़माने में मीणा लोग तो सबल थे ही जिनके छोटे छोटे राज्य जहां तहां बखेड़ा बाजी के अड्डे होरहे थे और मौक़ा मिलने पर उन्हीं से इस राज्य को क्षति पहुँचाते थे। उनके सिवा भाई बेटों में भी उद्दण्डता और उच्छृङ्खलता बढ़ रही थी। पाँच पीढ़ी या पच्चीस वर्ष पहिले जो पृथ्वीराज जी ने राज्य को विभाजित करके अपने बेटों के अधिकार में दिया था वे लोग भी राज्य की रक्षा रखने और उसे बढ़ाने के बदले येन केन प्रकार से उसकी आय का दुरुपयोग कर रहे थे और अवसर आए उसके भक्षण करने वालों में मिल जाते थे। इन सब बातों को निर्मूल कर देने के लिए महाराज भारमलजी ने गोपाल जी आदि की सम्मति के अनुसार १२ कोटड़ी क़ायम कीं जिनके स्थायी होजाने से भाई बेटों को सन्तोष होगया और वे राज्य रक्षा के नवीन

विधान में बँध गए।

(१६) "बारह कोटड़ी" के विषय में अनेक मत हैं। अधिकांश आदमी इनको पृथ्वीराजजी की स्थापन की हुई मानते हैं कुछ उनसे बहुत पहिले की और कुछ बहुत पीछे की बतलाते हैं। संख्या में भी कोई ४ कोई ८ कोई १२ और कोई १६ हैं। किस का मत सही है इसकी खोज हो रही है। जयपुर परिवार के अधिक परिचित और जयपुर इतिहास के अधिक अनुभवी विद्या भूषण पुरोहित पं० हरिनारायण जी बी० ए० ने "१२ कोटड़ी" निबंध में इनका वर्णन किया है उसमें इनकी १६ प्रकार से संगति लगाई है और यह मालूम किया है कि कौन कोटड़ी कहां- किस जमाने में क्यों स्थापन की गई थी और अब उसका अस्तित्व नास्तित्व या महत्व क्या है ?

(१७) कोटड़ी किसी भी क्षत्रिय परिवार के स्थान का १ विशेष नाम है। अमीर गरीब कैसे भी राजपूत हों उनके महल मकान या झोंपड़ों को भी कोटड़ी कहने से मकान के मालिक का मन हरा होजाता है और उसमें उसकी ऊँची हैसियत या महत्व दीखता है। प्रत्येक राजपूत के ऐसे मकानों को प्राचीन काल से ही कोटड़ी कहते आरहे हैं अबभी आपस में पूछा जाता है कि 'आपकी कोटड़ी कहां है ?' "अधिकार लाभ" (पृष्ठ ५) से प्रतीत होता है कि महाराजा पृथ्वीराज जी ने अपने पुत्रों को जुदी जुदी जागीर देकर उनको १२ ठिकानों के मालिक किए थे, भारमलजी के ज़माने में वही ठिकाने कोटड़ी नाम से विख्यात हुए। आरंभ में कोटड़ी वालों की पूर्ण संख्या १२ थी इस कारण वे १२ कोटड़ी वाले भी कहलाने लगे और कालान्तर में १२ के बदले १३ १४ या १०-११ होगए तौभी रूढी होजाने से वैसा ही कहलाते रहे। अस्तु उनका यां उनके अतिरिक्त अन्य कोटड़ी वालों का संक्षिप्त परिचय यहां दिया जाता है।

(१८) "बार कोटड़ी" आमेर राजवंश के (१) जोगसीजी (१३७४-१४२३) के तीसरे पुत्र कूंभाजी से (बांसखोह) के 'कूँभाणी' (२) उदयकरणजी (१४२३-४५) के पाँचवे

पुत्र शिवब्रह्मजी से (नींदड़) के 'स्यो-ब्रह्मपोता' (३) बणवीरजी (१४८५-६६) के पाँचवे पुत्र बरोजी से (वाटका) के 'बणवीर पोता' और (४) चन्द्रसेन जी (१५२४-५६) के तीसरे पुत्र कूँमाजी से (महार) के 'कूँमावत' हुए। ये चार कोटड़ी पृथ्वीराजजी से पहिले थीं।

(१६) "आठ कोटड़ी" (१) महाराज पृथ्वीराजजी के चौथे पुत्र गोपाल जी के बड़े बेटे नाथाजी से (चौमूँ-सामोद) के 'नाथावत' (२) दूसरे पुत्र पच्याणजी से (नायला फिर साँमरया) के 'पच्याणोत' (३) तीसरे पुत्र सुलतानजी से (सूरोठ-करड़) के 'सुलतानोत (४) छठे पुत्र जगमाल जी के खंगार जी से (साईवाड़, नरैणा और डिग्गी) के 'खंगारोत' (५) नवें पुत्र बलभद्रजी से (अचरोल) के 'बलभद्रोत' (६) चौदहवें पुत्र चतुर्भुजजी से (बगरू) के 'चतुर्भुजोत' (७) पँद्रहवें पुत्र कल्याण जी से (कालवाड़) के 'कल्याणोत' और (८) आठवें पुत्र प्रतापजी से (साँड कोटड़ा) के 'प्रताप पोता' हुए। यह आठ कोटड़ी पृथ्वीराजजी से पीछे की हैं किन्तु क्रम पूर्ति के लिये यहां पहिले लिखदी हैं। "अधिकार लाभ" (पृ० ५) में लिखा है कि 'रामसिंह जी साँईदास जी और रूपसीजी के बरबाद होजाने से हम आठ कोटड़ी वाले रहे।'

(२०) "बारह कोटड़ी" महाराज पृथ्वीराज जी के १६ पुत्रों में ५ के अपुत्र मर जाने और दो के राजा एवं जोगी बन जाने से शेष १२ में (१) पृथ्वीराजोत गोपालजी के नाथाजी से (चौमूँ सामोद) के 'नाथावत' (२) पृथ्वीराजजी के रामसिंहजी से (खोह गूँणसी) के 'रामसिंहोत' (३) पच्याणजी से (नायला- सामरया) के 'पच्याणोत' (४) सुलतानजी से (सूरोठ) के 'सुलतानोत' (५) जगमालजी के खंगारजी से (साईवाड़, नरैणा और डिग्गी के) 'खंगारोत' (६) बलभद्रजी से (अचरोल) के 'बलभद्रोत' (७) प्रतापजी से (सांड कोटड़ा) के 'प्रताप पोता' (८) चतुर्भुज जी से (बगरू) के 'चतुर्भुजोत' (६) कल्याण जी से (कालवाड़) के 'कल्याणोत' (१०) सांईदास जी से (बड़ोद) के 'साँईदासोत' (११) सांगाजी से (सांगानेर) की 'विख्याती' और

(१२) रूपसिंहजी से (बाँसखोह) के 'रूपसिंहोत' हुए। ये १२ कोटड़ी हैं। "अधिकार लाभ" (पृ० २) लिखा है कि- हमको ये मुकाम आस पास तालुका आमेर के देकर (आत्मीय वर्ग के परम विश्वासी) बड़े सरदार बनाए और राज की सलाह मसविरा में मुकर्रिर किए।'

(२१) पृथ्वीराजजी के पीछे महाराज भारमल जी ने ४।८।१२। में 'पुनः संस्कार या आवश्यक रद्दोबदल) करके अपनी अभीष्ट १२ कोटड़ी क़ायम की और उनको यथोचित सत्व सामर्थ्य व सम्मान से सम्पन्न बनादी। "आमेर के राजा" (पृ० ८) में लिखा है कि- 'उनमें (१) चौमूँ सामोद के 'नाथावत' (२) बगरू के "चतुर्भुजोत' (३) डिग्गी के 'खंगारोत' और (४) अचरोल के 'बलभद्रोत' सरदार बहुत ताक़त और अख़तियार रखते हैं।'... पूर्वोक्त "१२ कोटड़ी" निबन्ध में (१) हमीरदेका (२) कुंभाणी (३) स्योब्रह्मपोता (४) बणवीर पोता (५) कूंमावत (६) पच्याणोत (७) सुलतानोत (८) नाथावत (९) खंगारोत (१०) बलभद्रोत (११) चतुर्भुजोत और (१२) कल्याणोत ये १२ कोटड़ी प्रधान और सर्वमान्य लिखी हैं।

(२२) "सोलह कोटड़ी" उपरोक्त ४। ८। १२। के सिवा "जयपुर मर्दुमशुमारी" (संवत् १९८९) के अनुसार १ हमीरदेका। २ कुंभाणी। ३ स्योब्रह्मपोता ४। कूंमावत। ५ पिच्याणोत। ६ सुलतानोत। ७ नाथावत। ८ खंगारोत। ९ बलभद्रोत। १० रामसिंहोत। ११ प्रतापपोता। १२ सांईदासोत १३ चतुर्भुजोत। १४ कल्याणोत। १५ पूरणमलोत और १६ रूपसिंहोत ये १६ कोटड़ी हैं। और—

(२३) "विशेष- कोटड़ी" "वंशप्रदीप" तथा "पुराने कागज" (नंबर ५७) आदिसे आभासित होता है कि- 'अमिट संकट मिटाने दुर्लभ लाभ कराने और असह्य आपत्तियों में अडिग रह कर आत्मीय बने रहने आदि कारणों से (१) महाराज मानसिंह जी प्रथम ने अपने भाई हापा जी (जो दादूपंथी साधु हरीदासजी होगये थे) को तथा (२) महाराज माधवसिंह जी प्रथम ने मिर्जा इमामबख्श को कोटड़ी वाले नियत

किये थे। अस्तु। कोटड़ियों का कइयों ने अनुसन्धान किया है और ४।८। १२। या १६। को इष्टमान कर उनके प्रवर्तकों के नाम के साथ उनके पहले दूसरे होने की संख्या भी दी है। ये सब नीचे के कोष्टक से जाना जा सकता है।

कोठड़ी बोधक कोष्टक	पाल्हड़ी ठाकुरसाहब	मुन्शी देवीप्रसादजी	टाडसाहब	फतेहसिंहजी राठोड़	रतनूजी	चालाकसजी	वीरविनोद	वहादुर सिंहजी	वंशावली	मंगलदासजी	वखशीजी सीकर	महलाँ ठाकुर साहब	प्रायरसाहब	लीड्डिग रिपोर्ट	जयपुर रिपोर्ट	मर्दुमशुमारी १८८६ ई.
हमीरदेका	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	१
कुंभाणी	०	०	०	०	०	०	०	०	०	२	१	१२	९	९	९	२
स्योब्रह्मपोता	०	०	०	८	०	०	०	०	०	३	२	१०	१०	०	०	३
वणवीरपोता	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४	३	९	०	०	०	४
कूमावत	०	०	०	०	०	०	०	०	०	१	४	३	१२	०	०	५
नाथावत	०	८	०	२	३	४	०	२	३	५	७	२	१	१	१	७
पचाणोत	८	७	०	१	१	२	०	१	४	९	५	११	६	६	६	५
सुलतानोत	७	८	०	३	२	३	०	३	६	११	६	६	७	७	७	६
खंगारोत	५	३	०	४	५	५	०	४	५	६	८	७	४	४	४	८
वलभद्रोत	९	४	०	५	४	६	०	५	८	८	९	८	३	३	३	९
चतुर्भुजोत	११	२	०	८	९	१०	०	६	१२	७	१०	१	२	२	२	१३
कल्याणोत	१२	०	०	९	१०	११	०	१०	११	१०	११	५	५	५	५	१४
रामसिंहोत	०	०	०	६	६	७	०	९	२	०	०	०	०	०	०	१०
प्रतापपोता	४	०	०	७	७	८	०	८	७	०	०	०	०	०	०	११
सांईदासोत	०	०	०	१०	८	९	०	१२	९	०	०	०	०	०	०	१२
रूपसिंहोत	१०	९	०	१२	०	०	०	११	१०	०	०	०	०	०	०	१६
पूरणमलोत	२	५	०	०	११	१२	०	६	१	१२	१२	४	०	०	०	१५

(२४) बारह कोटड़ी की व्यवस्था लगाये पीछे महाराज भारमलजी ने एक एक करके राज्य के सब बखेड़े दूर किए और बड़ी बुद्धिमानी के साथ चिरशान्ति स्थापन की। इतिहास मर्मज्ञ महानुभावों का अनुमान है कि उस ज़माने में यदि भारमलजी अपनी राजोचित उदार नीति से काम न लेते तो आज आमेर का रूप इस रंग में दिखाई नहीं देता। मुन्शी देवीप्रसाद जी ने अपने इतिहास "आ. रा." (पृष्ठ २८) में लिखा है कि संवत् १६१२ में गत बादशाह हुमायूँ फिर दिल्ली आगया था और सलीम के बेटों से राज्य छीन लिया था। 'इतिहास राजस्थान" (पृ. १००) के अनुसार ऐसे अवसर में महाराज भारमलजी ने बादशाहों से मेल रखना आवश्यक मान कर हुमायूँ को कुछ वार्षिक देना नियत किया किन्तु थोड़े ही दिन पीछे हुमायूँ मर गया और तत्पुत्र अकबर बादशाह हुए। पिता की मृत्यु के दिनों में वह पञ्जाब में थे अतः वहीं उनका राज्याभिषेक किया गया।

(२५) अकबर के बादशाह होते ही पठानों ने मुगलों को अलग करने का फिर प्रयत्न किया। उन में हाज़ीखां पठान (टोंक के मीरखां जैसा) सबल उद्दण्ड और स्वच्छन्द था। उसने नारनोल के बादशाही किले को कब्ज़े में करने के लिये उसे घेर लिया। वहां मजनूखाँ काकशाल किलादार था। वह हाज़ीखां के घेरे को देख कर घबराया तब महाराज भारमलजी ने उसे हिम्मत दिलाई और गोपालजी के संरक्षण में उसे सामान सहित सपरिवार राजीखुशी बाहर भेज दिया और पीछे हाज़ीखां को किले में जाने दिया। दायरा * पुस्तक भंडार के फारसी इतिहास में

* "दायरा" उस संस्था का नाम है जिसके धर्माचार्य स्वाधीन रूप में स्वधर्म का सेवन करते रहें। इस देश में जयपुर राज्य के अन्तर्गत चौमूँ से ४ कोस तिघरया के पास 'दायरा' है। उसमें मुसलमान धर्माचार्यों के मसजिद मकान या मक़बरे आदि हैं। वहीं उनका कुतुबखाना (पुस्तक भण्डार) है। उसमें बहुतसी पुस्तकें कई सौ वर्ष की बहुत पुरानी हैं और हाथ की लिखी हुई होने परभी इतनी शुद्ध स्वच्छ और सुन्दर हैं कि वैसी अब किसी प्रकार भी तैयार नहीं होसकतीं। उनमें अधिकांश पुस्तकें जिस प्रकार

लिखा है कि 'मजनूखाँ ने बादशाह के पास जाकर भारमलजी की वीरता तथा राजभक्ति की बड़ी बड़ाई की और उनको दरबार में बुलाने का आग्रह किया। तब सम्राट अक़बर ने फरमान भेज कर उनको भाई बेटों सहित दिल्ली बुलवाये और बड़ी इज्जत की, "आमेर के राजा" (पृ० २६) और "मआसिरुल उमरा" (पृ० २६४) में लिखा है कि 'भारमलजी के द्वारा मजनू को मदत मिलने के समाचार सुनकर सम्राट् सन्तुष्ट हुए और उनको अपने समीप बुलाकर सम्मान किया उस समय उन सबको बादशाह की ओर से बहुमूल्य वस्त्र शस्त्र और आभूषणादि के खिलअत (शिरोपाव) पहना कर स्नेह के साथ बिदा किया था

(२६) बिदा के समय सम्राट् अकबर एक मस्त हाथी पर आरूढ़ होकर आए थे और भारमलजी के पास उनके भाई गोपालजी वग़ैरह सब लोग श्रेणीबद्ध खड़े थे। हाथी इधर उधर दौड़ रहा था, उसके भय से दर्शक लोग भाग रहे थे। उसी अवसर में वह एक बार आमेर वालों की तरफ़ भी झपटा परंतु ये लोग भागे नहीं दीवार की तरह अडिग खड़े रहे और बाल भर त्यौरी नहीं बदली।' यह देख कर "वीर विनोद" (पृ० ५२) के अनुसार अकबर को भारमलजी के सरदारों की क़दर मालूम हुई और उन्होंने विश्वास किया कि 'वास्तव में यह जाति बड़ी दिलेर (अर्थात् साहसी और गंभीर) है'. दायरा पुस्तक भण्डार के फारसी इतिहास में लिखा है कि वह हाथी एक बार गोपालजी आदि पर झपटा उस समय वह और उनके हमराही अपनी जगह से तिल-भर इधर उधर नहीं हटे। यह देखकर बादशाह बहुत खुश हुए और राजा की तरफ मुँह करके कहा कि "तुरा-निहाल ख्वाहमकरद" अर्थात् मैं तुम को निहाल करदूँगा और तुम जल्दी ही देखोगे कि तुम्हारी इज्जत प्रति दिन ज़्यादा होगी। "आमेर के राजा" (पृष्ठ २०) में 'तुरानिहाल' के बदले 'अब तुम जल्दी ही बादशाही मिहर

हजारों रुपे की लागत की हैं उसी प्रकार वे दुर्लभ या अलभ्य होती जारही हैं। "माधव वंशप्रकाश" (पृ० १५) के लेखानुसार संवत् १५२५ में शेखाजी की स्थापन की हुई बारह वस्ती में यह दायरा मुख्य है।

बानियों से सरफ़राज (सुशोभित) किए जाओगे।' लिखा है भारलमजी पहिले पहिल के मिलने में इस प्रकार सम्मानित होकर स्वदेश पधार आये और राज काज में संलग्न हुए।

(२७) सम्वत १६१८ में सम्राट् ने पूर्वोक्त हाजीखां को निकाल दिया और उसकी जगह मिर्जा सर्फुद्दीन को मेवात का हाकिम बना दिया उस अवसर मैं पूरणमल जी के बेटे सूजाजी नांदेरे थे जवान होगए थे और राज्य करने की इच्छा थी अतः मिर्जा से मिलकर उसे आमेर पर चढ़ा लाए। किंतु भारमल जी से मिले पीछे मिर्जा जी वापिस चले गए और सूजाजी ने माल देवकी फोज़ लेकर स्वयं चढ़ाईकी। किंतु आमेर से २५कोस पर निवाई में नरूका लाला साँखला ने उनको उन्हीं के आदमी के हाथ मरवा दिया। सूजाजी का बेटा किशनदास पहिले मेड़ता में था पीछे टोड़ा में रायसिंह के पास चला गया। तब शरफुद्दीन ने फिर आमेर पर चढ़ाई करना चाहा था। किंतु सम्वत् १६१८ के माघ सुदी ११ को सम्राट् के आगरा से अजमेर जाते समय रास्ते में सरदार चगत्ती-खाँ के याद दिलाने पर भारमलजी को साँभर के डेरों में बुलाए और मिले तब शरफुद्दीन की चढ़ाई ढीली होगई। उस समय सिर्फ भगवंतदास जी घर रखवाले रहे थे बाकी सब भाई बेटे भारमल जी के साथ साँभर गये थे। पूर्वोक्त हस्त लिखित "फारसी इतिहास" में लिखा है कि 'अमीर चुगत्तीखाँ नामी सरदार था और गोपाल जी का पगड़ी बदल भाई था उसने महाराज के बुलाने की सूचना गोपाल जी के पास पहलेही भेज दीथी। अतः वहां जाने पर सम्राट् से मिलने में अधिक सुविधा मिली। इसके पहिले द्यौसा में सम्राट् से मिले उस समय गोपालजी के साथ जगमालजी गए थे सम्राट ने गोपाल जी को देखते ही पहचान लिया और स्मरण किया कि हाथी से निडर रहने वाले यही हैं।' तीसरी बार सम्राट अजमेर सेआगरा जाते समय जयपुर के पास रतनपुरा में भी मिले थे।

(२८) इस प्रकार दो तीन बार साम्राट् की सेवा में उपस्थित हो आने और सम्राट् की ओर से यथा क्रम आदर वढ़ता रहने से महाराज भार-

मलजी का प्रभाव बढ़ गया और शत्रु-गण एक एक करके घट गए। केवल बचे खुचे मीणा कुछ छीना झपटी करते थे और हाथ आता उसे हड़प जाते थे। उनमें नाहन के मीणा*राजा का ज़्यादा उत्पात था वह आमेर राज्य की हमेसः हानि करता था। इस कारण भारमलजी ने दलबल सहित उस पर

*"मीणा"– मिश्र और अमिश्र दो तरह के होते हैं। मीणी के गर्भ में मीणा के वीर्य से पैदा हुए मीणे अमिश्र और क्षत्रिय के वीर्य के मिश्र होते हैं। "टाड राजस्थान" (पृ० ५६७)आदि में लिखा है कि "मीणों के कुल या खाँपों के नाम से भी इनकी भिन्नता मालूम होती है मीणां का अर्थ है असली या अमिश्र ऐसे मीणे इस देश में 'ओसेरा' हैं जिनका वंश लुप्त होता जाता है। इनके सिवा मिश्र मीणे 'बारा पोल' या बारा कुल के कहलाते हैं। इनकी सम्पूर्ण संख्या ५ हजार दोसौ है। इनकी वंशावली जागा ढोली और डोमों के पास सुरक्षित हैं। 'बारा पोल' वाले; तँवर, चौहान, जादू, पँवार, कछवाहे, सोलंकी, साँखला और गहलोत आदि क्षत्रियों के औरस से मीणी स्त्रियों के पैदा हुए हैं। जिस भाँति भील, कोल, बावरया और गौंड लोग यहां के आदिम निवासी हैं उसी भांति मीणा भी हैं। ये लोग बस्ती के कोणे, एकान्त के भूखण्ड या पर्वतों की खोह में रहा करते हैं। चोरी का पता लगाना, लेजाने वालों के खोज ढूँढना, असली चोर को पहचानना, उसे पकड़ लेना, सेंध लगाना, पकड़े जाने पर हर तरह से छुड़ा जाना, या पकड़े गये का शिर काट लेजाना, अपना असली भेद जाहिर न होने देना, पहरायत (या चौकायत) के रूप में रहकर धन जन चौपाये वस्तियां या राहगीर आदि की चौकसी करना इन लोगों का जातीय पेशा है। प्राचीन काल में इनका राज तिलक किसी बूढ़े मीणे के अँगूठे के खून से किया जाता था। अब विवाह में ढोल के बजते रहने पर मीणियों के 'घूमर घालने' का दस्तूर होता है। मीणों के बहुत से दस्तूर क्षत्रियों के जैसे और बहुत से शूद्रों के जैसे होते हैं। ये लोग स्वभावतः स्फुरत्प्रश्न (तुरंत ठीक जवाब देने वाले) और प्रकृतिपरीक्षण में चतुर होते हैं। चोरी करने से ये चोर और चोरी ढूंढने से मीणा कहलाते हैं। प्राचीन काल में ये लोग धन के रक्षक रहते और चोरी नहीं होने देते थे। इस कारण आमेर में कछवाहों ने अधिकार किया तब तत्कालीन महाराज कुंतल जी ने मीणा राजा 'राव भाट्ट सूंसावत मीणा' को पहले तो युद्ध कर के हराया और फिर उन्हीं को पीढ़ी दर पीढ़ी के लिए आमेर के खजाने की रखवाली करने वाले नियत कर दिये और कई गांव जागीर में दे दिए जो अब

चढ़ाई की और मीणों को मार कर उस देश को आमेर में मिला लिया। "टाड राजस्थान" (पृष्ठ ५६६) और "आमेर के राजा" (पृ. ४०) में लिखा है कि 'नाहन बहुत बड़ा शहर था उसके ५२ बुर्ज़ और ५६ दरवाज़े थे। उसका राजा बहुत बहादुर था किन्तु जुल्म ज़्यादा और सुनाई कम होने से प्रजा हैरान थी। राजाने भूसा (खाखला चारा और तुस) जैसी निकृष्ट चीजों पर भी कर लगा रक्खा था। ऐसी अनीति का नतीजा यह हुआ कि भारमलजी ने उसे मिट्टी में मिला दिया और नामी शहर 'नाहन' को तोड़ फोड़ उजाड़ कर 'लवाणा' कर दिया। इस विषय में एक कवि का कथन है कि "बावन कोट छप्पन दरवाज़ा मीणा मरद नाहण का राजा। तब बूड्यो राज नाहण को जब हासिल मांग्यो भूसा को।" इस प्रकार निष्कंटक होकर महाराज भारमल जी सम्राट् की सेवा में आगरा गए। वहां अकबर ने आपको बहुत भरोसा के राजा माने और अपने राज्यसिंहासन (तख्त) के संरक्षक नियत किए। बादशाह कहीं बाहर जाते तब भी तख्त के रक्षक भारमलजी ही रहते थे।

(२६) उन्होंने आमेर के हित तथा सम्राट् की सेवा के जितने काम किये उन सब में गोपाल जी सेवक रूप से सदैव साथ रहे थे और अनेकों काम अकेलों ने भी किए थे। जिनमें उनकी बुद्धि प्रवीणता और दूर दर्शीपना प्रगट हुआ था। गोपाल जी ने अपने अदीर्घ जीवन के (५६-

तक हैं। कहा जाता है कि ये लोग धन की रक्षा में मन के इतने मजबूत होते हैं कि अगर उनके सगे बेटे भी खजाने पर खोटी निगाह करलें तो उनको बिना विलंब जीव से मार डालते हैं। प्राचीन काल में आमेर में मीणों का राज था ये लोग पर्वतों के नले, टेकड़ी, घाटे या शिखर आदि पर जुदे जुदे रहते थे और आवश्यकता के अवसर में नगारे की ध्वनि सुन कर इकट्ठे हो जाते थे। इन लोगों के देवी की मानता थी। ये उसे 'घाटे की राणी' अर्थात् आमेर अथवा अपनी मालिक मानते थे और साधारण यात्रा में उसका अन्तः स्मरण तथा युद्ध यात्रा में जय शब्द का उच्च घोष करते थे। मदिरा ने इनका भी बहुत नुकसान किया था किंतु अब ये सम्हल गए हैं और सुशिक्षित हो रहे हैं।

वर्ष) में १ पृथ्वीराज। २ पूरणमल। ३ भीम । ४ रतन। ५ आसकरण। ६ राजसिंह और ७ भारमलजी जैसे राजाओं और १ सिकन्दर। २ इब्राहीम। ३ बाबर। ४ हुमायूँ। ५ शेरशाह। ६ सलीम और ७ अकबर जैसे बादशाहों का ज़माना देखा था जिसमें हिंदुस्तान की अनेकों अवस्था उनके देखने में आई थीं और इस कारण वह राजनैतिक सामाजिक और व्यावहारिक बातों में बहुत अनुभवी हुए थे।

(३०) दायरा पुस्तक भण्डार के फारसी इतिहास में मुसलमान लेखक ने लिखा है कि- 'गोपाल जी हिन्दू मुसलमानों में मेल बढ़ाने वाले मेधावी मनुष्य थे। मुसलमान बादशाहों के समीप में हिन्दू राजाओं का आदर पूर्वक सानुराग रहना गोपाल जी ने ही शुरू करवाया था। पीछे जाकर सम्राट् अक़बर ने हिन्दू मुसलमानों के साथ एकता का वर्त्ताव करने में गोपालजी का अनुकरण किया था। शत्रुसंहारादि के रणक्षेत्रों में भूखे प्यासे दिनरात फँसे रहने वाले क्षत्रिय सिपाहियों के भिस्ती की मशक का पानी पीने की परिपाटी गोपाल जी के ज़माने में ही शुरू हुई थी और भारत में मुसलमान बादशाहों का कई पीढ़ियों तक निरापद राज बना रहने का बीज गोपाल जी ने ही बोया था।' अत एव लोक हितके लिए गोपालजी अवश्य ही महापुरुष माने गए थे। अस्तु।

(३१) "नाथावत सरदारों का इतिहास" (पृष्ठ ६) में लिखा है कि अन्त में वह केटकी लड़ाई में वैकुण्ठ वासी हुए।' यह लड़ाई किस के साथ क्यों हुई थी? इस बात का कोई पता नहीं चलता। गोपालजी के ३ विवाह हुए थे। उनमें (१) पहली राणी सत्य भामा (जादूणजी) करौली के राजा उद्धरण की बेटी थी। २) दूसरी रुक्मावती (चोहाणजी) मोरा के भीमदेव की पुत्री थी। और (३) तीसरी लाड़कुँवरि (मेडतणी राठोड़जी) मेड़ता के जयमल की पुत्री थी इनमें जादूणजी के (१) नाथा जी हुए जिनके वंश के "नाथावत" हैं। (२) दूसरे पुत्र सुरजन जी अपुत्र रहे (३) तीसरे बाघाजी सिरसी बिन्दायक बैठे उनके वंश के 'बाघावत' हैं। (४) चौथे देवकरण जी टोंक की राणोली बैठे उनके वंश के 'देवकरणोत' हैं उन्होंने पवाँरों को परास्त किए थे इस

कारण आमेर से उनको बीसलपुरा और भासू मिले थे। (५) पाँचवें तेजसी (६) छठे मलैसी (७) सातवें बैरीसाल (८) आठवें गोरखदास और (९) नवें रघुनाथजी ये अपुत्र रहे थे। गोपालजी के उपरोक्त आठ पुत्रों में नाथाजी का नाम अमर रहेगा।

एवमस्तु।

चौथा अध्याय

* श्री *

नाथावतों का इतिहास

"नाथाजी"

(५)

[जयपुर राज्य के अंतर्गत चौमूँ, सामोद, मोरीजा, मूँडोता रायसर, डूँगरी और किसन-पुरा आदि में जो नाथावत हैं वे उन्हीं नाथाजी के पुत्र पौत्रादि हैं जिनकी वीरता का आंशिक वर्णन इस अध्याय में है।]

(१) गोपालजी का वैकुण्ठ वास हुए पीछे उनके ज्येष्ठ पुत्र नाथाजी संवत् १६२१ में सामोद की जायदाद के मालिक हुए। उस समय उनकी अवस्था अड़तीस वर्ष की थी। ख्यातों में लिखा है कि 'नाथाजी विक्रम संवत् १५७७ में पैदा हुए थे' किन्तु माधवगोपालजी मण्डाहर जो इतिहास के एक विलक्षण विद्वान थे और जिनको भारतीय राजाओं तथा पारदे-शीय बादशाहों का बहुत इतिहास ज़बानी याद था, उन्होंने अपने 'मुक्तक संग्रह' में नाथाजी का जन्म संवत् १५८२ निश्चित किया है। अनुमान से भी मण्डाहरजी का संवत् सही मालूम होता है। क्योंकि महाराणी बालांबाई जो नाथाजी की दादी थे उनके विवाह के संवत् १५६४ पर दृष्टि दी जाय तो नाथाजी के पिता स्वयं गोपालजी जो "पुराने काग़ज़" (नं० ३) के मत से बालाँबाई के तीसरे* और अन्य इतिहासों के मत से चौथे पुत्र थे संवत् १५७७ में करीब ११ वर्ष के हो सकते हैं अतः ऐसी अवस्था में नाथाजी का जन्म होना सम्भव नहीं।

(२) व्यक्तिगत वर्ताव में नाथाजी बड़े प्रभावशाली पुरुष हुए थे। उनकी

* "इतिहासज्ञ"-इस बात को जानते हैं कि महाराणी बालांबाई के उदर से १२ बेटे उत्पन्न हुए थे। उनके विषय में "वँशप्रदीप" (पद्य ३२) में यह विशेष लिखा है कि "उनके जापों में अर्थात् प्रसव काल में जोड़ले (दो दो) लड़के जन्मे थे। संभवतः इसी कारण जनश्रुति में यह विख्यात हुआ होगा कि "भारमलजी और गोपालजी यमल जात थे और इसी कारण गोपालजी को और भारमलजी को छोटा बड़ा मानने में अपरिचित आदमी सन्देह करते हैं।"

लोक सेवाओं से लोग राजी रहे थे और ईश्वर ने भी उनका नाम अमर करने के विधान बनाये थे। "नाथावत सरदारों का इतिहास" (पृ० ९) में लिखा है कि 'नाथाजी ने महाराज कुमार भगवानदासजी के साथ जाकर संवत् १६०७ में अहमदनगर में मुजफ्फरबेग को परास्त किया था और "पुराने कागज" (नं० ३) तथा "शार्ट हिस्ट्री" (पृ० ५) में लिखा है कि 'उन्होंने संवत् १६०७ में अहमदाबाद में मुजफ्फरशाह को हराया था' काम का आशय दोनों का एक है सिर्फ संवत् की संख्या तथा गांव के नाम में अन्तर है। इस विषय की अन्य इतिहासों से संगति लगाने में उक्त घटना का संवत् १६०७ के बदले १६१७ होता है क्योंकि १६०७ में उनको शाही सेवा में जाने का अवसर नहीं मिला था। संभव है दृष्टि दोष से १७ का ०७ बन गया और कालान्तर में संवत् १६०७ स्थिर होगया। यहां इस विषय से सम्बन्ध रखने वाली दो तीन अन्य घटनायें (जिनमें एक दो में विषयान्तर भी हुआ है) इस अभिप्राय से युक्त की गई हैं कि उनके पढ़ने से संवत् १६०७ या १७ का सन्देह मिट जाता है और इतिहास की अंग पूर्ति हो जाती है।

(३) "मान चरित्र" (पृ० ८) से आभासित होता है कि संवत् १६०७ के पौष बदी १३ शनिवार को भगवन्तदास जी की धर्म पत्नी पँवारजी के उदर से इतिहास प्रसिद्ध मानसिंहजी का जन्म हुआ। उनके ग्रह * देख कर ज्योतिषियों ने बतलाया कि इनको १२ वर्ष एकान्त में रखने चाहिए तदनुसार महाराज भारमल जी ने वर्तमान जयपुर से दक्षिण दिशा में २० कोस पर मोजमाबाद में उनके रहने का प्रबन्ध किया और अकेले राजकुमार किसी प्रकार अप्रसन्न या विद्या व्यवहा-

* शुभ संवत १६०७ शके १४७२ प्रवर्तमाने पौषे मासि शुभे कृष्णे पक्षे त्रयोदश्यां तिथौ शनि वासरे इष्टम् ४८।८ सूर्य ८।। लग्नम् ६।। एतस्मिन् शुभ समये श्री मान् 'मानसिंह जी' महोदय (प्रथम) जन्म।

जन्म लग्नम् +

(कुण्डली: ७ — चं बु शु म; ६ सू; ५; रा ६; १० श; ४; १; बृ मं ३; ११; १२ के; २)

रादि से वर्जित न रहें यह सोचकर उनके पास उनकी माता 'पँवारजी' को तथा आत्मीय वर्ग के (नाथाजी, जयमलजी और जगमालजी आदि भाई बेटों के) समवयस्क सौ लड़कों को रख दिया और उनके खाने, पीने, पहनने, कुस्ती, कसरत, शिकार करने और अस्त्र शस्त्रादि के धारण तथा सन्धानादि सीखने का समुचित प्रबंध कर दिया। फल यह हुआ कि ज्योतिषियों की बतलाई हुई अवधि के वर्ष भर पहले ही मानसिंहजी तथा उनके सहवासी राज कुमार बड़ी प्रसन्नता के साथ राजोचित धर्म कर्म सीख कर होशियार होगये। उधर--

(४) संवत् १६१३ में अकबर इस देश के बादशाह हुए उन्होंने साम्राज्य की उन्नति के लिये आरम्भ ही में (१) राजा रईस और सरदार लोगों को राजी रखने (२) गये हुए राज्य वापिस लेने (३) राज की सुव्यवस्था लगाने और (४) ज़रूरत पड़े तो राजाओं में फूट डाल कर कामनिकालने के सिद्धान्त स्थिर किये और उनका अन्त तक पालन किया। "मआसिरुल उमरा" (पृ० २७६) में लिखा है कि 'उन दिनों राजपूताना में १ उदयपुर २ डूँगरपुर ३ बाँसवाड़ा ४ प्रतापगढ़ ५ जोधपुर ६ बीकानेर ७ आंमेर ८ बूँदी ९ सिरोही १० करौली और ११ जैसलमेर ये ११ राज्य थे। इन में अकबर ने सर्व प्रथम आमेर राज्य को अपनाया और महाराज भारमल जी को बुलाकर सम्मान किया। जिसमें गोपालजी तथा नाथाजी आदि सभी भाई बेटे शामिल हुए थे।

(५) "भारत का इतिहास" (पृष्ठ २३६) से प्रतीत होता है कि 'पानीपत' * की दूसरी लड़ाई अकबर के लिए पहिला युद्ध था उसमें आदिल का सहायक हेमूँ १५०० हाथी और बहुत सी सेना साथ लेकर आया था और राज चिन्ह धारण करके हाथी पर चढ़ा हुआ अपनी हैसियत दिखा रहा था। दैवयोग से अकबर का तीर हेमूँ की आंख में धँस जानेसे वह बेहोश होगया और उसकी सेना स्वतः भाग गई। हेमूँ के लिए हाथियों का जमघटा

* (१) "पानीपत"-पञ्जाब के कर्नाल जिले की तहसील का प्रधान नगर है। आबादी २८ हजार है। चारों ओर पुराना परकोटा है। १५ फाटक हैं। थानेश्वर और दिल्ली के बीच की जमीन लड़ाई का मैदान है। वहां की ३ लड़ाई विख्यात हैं। (१)

पराजय का कारण हुआ * यद्यपि उस लड़ाई में महाराज भारमलजी नहीं गए थे तथापि "आमेर के राजा" (पृ० ५४ पंक्ति १४) से सूचित होता है कि हेमूँ से युद्ध कर वापस आए पीछे अकबर ने अपने राज्याभिषेक का दरबार किया उसमें भारमलजी तथा उनके भाई बेटे भतीजे अवश्य गए थे। पहिले लिखा गया है कि अजमेर जाते समय अकबर ने भारमलजी से कहा था कि 'हम वापिस आते समय मिलेंगे' तदनुसार जब वह अजमेर से आगरा जाने लगे तब आमेर के पास रतनपुरा * में सम्राट ने भारमलजी से भेंट की और उनके आतिथ्य सत्कार से सन्तुष्ट हुए। इस प्रकार मिलने का पहिला मौका था अतः भारमलजी ने आतिथ्य सत्कार के अधिक आयोजन किये थे और साथ में गोपालजी, जगमालजी, सुलतानजी,

संवत् १५८३ सन् १५२६ ता० २१ अगस्त को बाबर ने इब्राहीम को हराया था। (२) संवत् १६१३ सन् १५५६ में अकबर ने शेरशाह के भतीजे हेमूँ को परास्त किया था। और (३) संवत् १८१८ ता०७-१-१७६१ में अहमदशाह दुर्रानी ने मरहठों की संपूर्ण सेनाओं पर विजय प्राप्त की थी उस में यवनों की सेना में ३८ हजार पैदल, ४२ हजार घुड़सवार और ३० तोप थीं तथा मरहठों की फौजों में १५ हजार पैदल, ५५ हजार घुड़सवार, २ लाख पिण्डारी और दौसो तोपें थी। (भारत भ्रमण पृ० ४६२)।

* (२) "युद्ध में हाथी"- अधिक लेजाने से पराजय होता ही है "रा० पू० इ०" (पृ०७०) की टिप्पणी में लिखा है कि (१) पोरस ने सिकन्दर के साथ युद्ध किया उसमें तीरों की मार से महावतों के मर जाने पर हाथी भड़के थे और उसी की फोजों को कुचल डाला था (२) सिंध का राजा दाहिर हाथीसवार होने से ही घायल हुआ था। (३) महमूदगजनी की लड़ाई में लाहोर के राजा आनन्दपाल के हाथी भागने से ही सेना भागी थी। (४) कन्नौज के जयचन्द को हाथी पर देखकर ही शत्रु ने निशाना बनाया था (५) महाराणा साँगा भी हाथी सवार होने से ही बाबर के तीर से घायल हुए थे। और (६) हेमूँ की आँख हाथी पर चढ़ने से ही फूटी थी।

* "रतनपुरा" को "मआसिरुल उम्रा" (पृ० २६४) में सिर्फ रतन लिखा है और उसकी टिप्पणी में उसको रणथंभोर (रंत भँवर) बतलाया है जो सर्वथा असंगत है।

भगवन्तदासजी, भगवान्दासजी, नाथाजो, मानसिंहजी तथा मनोहरदासजी आदि सभी भाई बेटे भतीजे और पोतों तक गए थे। उनमें मानसिंह जी को होनहार मान कर अकबर अपने साथ आगरा ले गए और उनकी शिक्षा दीक्षा का अपनी ओर से विशेष प्रबन्ध किया। उस समय मानसिंहजी के पिता भगवन्तदासजी भी अपने भाई भगवान्दासजी तथा नाथाजी और मनोहरदासजी आदि को साथ लेकर आगरा चले गए। वहां समय समय पर इन लोगों ने सम्राट् के शत्रुओं को परास्त किया और अपनी योग्यता, प्रवीणता तथा राज भक्ति दिखलाई।

(६) सर्व प्रथम संवत् १६१७ के शीत काल में सम्राट की आज्ञा पाकर महाराज कुमार भगवान्दास जी ने मुजफ्फरशाह* पर चढ़ाई की और साथ में नाथाजी को लेगये उन्होंने अहमदाबाद पहुँच कर उसको घेर लिया और भरपूर युद्ध करने के बाद उसे कैद किया "दा.पु.भ." के फारसी इतिहास में लिखा है कि नाथाजी ने मुजफ्फर शाह के साथ तलवार का युद्ध किया था और उसकी फौजी ताक़त तोड़ने में अपना अद्भुत युद्ध कौशल दिखलाया था। उस डरावनी लड़ाई में वीर क्षत्रिय नाथाजी का सुतीक्ष्ण खड्ग टूट गया तो भी वह रीते हाथ पीछे नहीं फिरे

* "मुजफ्फरशाह" के सम्बन्ध में "राजपूताने का इतिहास" (पृ० ५३६) में लिखा है कि 'मुजफ्फर नामक ३ व्यक्ति जुदे जुदे समय में हुए हैं, उनमें पहला सम्वत् १४५३ में दूसरा १५६८ में और तीसरा १६१७ में हुआ "हिन्दी विश्वकोश" (पृष्ठ ७६१) में लिखा है कि 'मुजफ्फर तृतीय का आदूनाम नाथू था'। वह 'सर्वप्रथम सम्वत १६१७ में। (नाथाजी के द्वारा) क़ैद होकर भी आगरा जेल से भाग गया था दूसरी बार सम्वत् १६२९-३० में अकबर के आधीन होकर ९ वर्ष बाद भागा था और तीसरी वार सम्वत् १६३९ में खान खाना से हार खाकर जूनागढ़ चला गया था और कुछ दिन बाद जहर खाकर मर गया था'। "सम्राट अकबर" (पृ०१७७-७८) में लिखा है कि 'मुजफ्फर शाह पर सम्राट की ओर से कई बार फौजें गईं, कई बार पकड़ा गया, कई बार आगरे में कैद हुआ और कई बार भाग गया इस कारण इतिहासों में उसके संबन्ध की कई बातें संवत् सवारी और सहगामियों सहित उलट पुलट लिखी गई हैं जिनसे लेखक लोग भ्रममें पड़ जाते हैं।' "आमेर के राजा"

बल्कि उसे पूर्णतया परास्त करने तक युद्ध भूमि में स्थिर रहे। अन्त में उस को पकड़ कर आगरा ले गए और कैद करा दिया। किन्तु कुछ दिन पीछे वह भाग गया तब सम्वत् १६२९-३० में स्वयं सम्राट् ने उस देश पर चढ़ाई की और उसे फिर पकड़ लाये उसका वर्णन नीचे टिप्पणी में दिया है।

(पृष्ठ ४८) में लिखा है कि 'जिस समय सम्राट ने गुजरात पर चढ़ाई की उस समय उन्होंने ऊँटों की सवारी से १ महिने के सफर को ७ दिन में तै किया था और साथ में भगवंतदासजी, भगवानदासजी, मानसिंहजी और नाथाजी जैसे "अकबर" (पृ० ४५) के अनुसार १०० तथा "आमेर के राजा" (पृ० ४५) के अनुसार १५० सहगामी (सवार) गये थे'। रास्ते में मिर्जा मुजफ्फर हुसेन एक हजार सवार साथ लिए लड़ने को तैयार खड़ा था। कुँवर मानसिंह जी ने महेन्द्री नदी पार करके उसको परास्त करने के लिए फौजें भेजीं उस समय सम्राट् अकबर अकेलेही एक ऐसी गैली (तंगरास्ता) में फँस गए जिसके दोनों ओर की डोली (मिट्टी की दीवारों) पर नागफनी (थूहर) भरी हुई लग रही थी और आजू बाजू के खेत दुश्मनों से रुके हुए थे। कुशल यह थी कि उसमें शत्रुओं के ३ से ज्यादा सवार आ नहीं सकते थे। "दा. पु. भं." के फारसी इतिहास में लिखा है कि 'अकबर को इस भांति घिरे हुए देखकर उनके दाहिने बाजू भगवन्तदास जी बायें बाजू मानसिंह जी और पीछे को नाथाजी तलवार लेकर खड़े होगए। ("अकबर" पृष्ठ ४५) उस समय शत्रु के ३-३ सवार आते गए और वे तीनों ३-३ को मारते गए। आ. रा. ४८" उसी अवसर में शत्रु के ३ सवारों ने अकस्मात् आकर अकबर पर आक्रमण किया उसको देख कर भगवन्तदासजी ने उनमें एक को अपने बर्छे से मारडाला, दूसरे को घायल करदिया और तीसरा मिट्टी में मिल गया। इस प्रकार इधर शत्रु के सैकड़ों सवार मारे गए और उधर से गाँव वालों को परास्त कर शाही सेना आगई तब सब शत्रु भाग गए। उनको परास्त किये पीछे सूरत खम्भात और अहमदाबाद को भी अकबर ने अपने अधिकार में किया और वहां अपना पूरा आतंक जमा दिया। आमेर के कछवाहों ने खम्भात के समीप में समुद्र को पहिले पहिल देखा था और नाथाजी जैसे वीर क्षत्रियों ने महम्मद हुसेन जैसे विख्यात ऊधमी का वहीं शिर काटा था अतः उस घटना को निगह में रख कर चंद कवि ने अपने "नाथावंशप्रकाश" (पद्य १२) में लिखा है कि "नाथा की सुयश गाथ पहुँची निधि पाथ लगि अकबर के साथ हाथ दिखलाये समर में।" "वंशावली" (क) में लिखा है कि 'उपरोक्त नागफनी उसी अवसर में आमेर (या जयपुर) में आयी थी।

(७) इस प्रकार राजपूतों के सहयोग से बराबर युद्ध होते रहने में सम्राट् अकबर को बड़ी सफलता मिली उनका साम्राज्य सबल होगया और यथाक्रम बढ़ गया। कई एक राजा और राज्य उनके वशवर्ती बन गये। परन्तु मेवाड़ में उनका आधिपत्य नहीं हुआ। वहाँ के तत्कालीन महाराणा उदयसिंहजी अपने पिता के समान पराक्रमी नहीं थे तौभी बादशाहों के वशवर्ती होने में उनका मन नाराज था ऐसी धारणा देख कर सम्राट अकबर ने संवत १६२४ के आसोज में चित्तौड़ पर चढ़ाई की। यह मामूली काम नहीं था उसके लिये अकबर ने अद्वितीय आयोजन किए थे और बड़े बड़े विख्यात वीर उसमें शामिल हुए थे। "नाथावत सरदारों का इतिहास" (पृष्ठ ६) में लिखा है कि कुँवर मानसिंहजी के सहगामी हो कर नाथाजी ने ३ लड़ाईयों में विशेष प्रकार से विजय लाभ किया था।' उन तीन में पहली लड़ाई चित्तौड़गढ की चढाई थी। इसके वर्णन में नाथाजी के आंशिक पुरुषार्थ को प्रगट करने की अपेक्षा उसको ज्ञातव्य बातें विदित होजाना अच्छा है।

(८) "रा. पू. ई" (पृ. ७२२) में लिखा है कि सम्राट् अकबर ने संवत १६२४ में "चितौड़" * पर चढ़ाई की तन्निमित्त आसोज बदी १२ को आगरा से रवाना होकर रास्ते के शत्रुओं को परास्त करते हुए मंगशिर बदी ६ को

* "चित्तौड़" मेवाड़ राज्य की कीर्ति रक्षा का अभेद्य विधान है। राजपूताना मालवा रेलवे तथा बंबई बडोदा सैंट्रल इण्डिया रेलवे के चित्तौड़ स्टेशन से पूर्व में पहाड़ के ऊपर बना है। पर्वत के पूर्व दक्षिण और उत्तर के पसवाडे तरासे हुए हैं। पश्चिमी पसवाड़े में अन्दर जाने का मार्ग बड़ा विकट या बीहड़ है शत्रु की सेना उसमें होकर क़िले में सहज ही जा नहीं सकती। पहाड़ के ऊपर कैई कोस के विस्तार में किला है उसके अन्दर हजारों मनुष्यों की आबादी का शहर है हजारों मण अन्न उत्पन्न करने योग्य खेत, स्वच्छ पानी के कई सरोवर, राज परिवार के अनेकों महल मकान, सरदार लोगों की सुन्दर हवेलियां, नित्य काम आने वाली विविध वस्तुओं के प्राप्त होने के साधन। शिव, दुर्गा, विष्णु तथा हनूमान जी आदिके अति विशाल सुन्दर मंदिर और राणा कुम्भाजी की कई खण की मीनार का कीर्ति स्तम्भ आदि हैं।

चितौड़ पहुँचे। फौज बख्शी ने किले के घेरने का काम शुरु किया वह १ मास में पूरा हुआ। फिर सेना के तीन विभाग किए। (१) में कुंवर भवगन्तदास जी राय पत्तरमलजी और हसनखाँ आदि अफसरों सहित अकबर रहे जो लाखोटा दरवाजा के सामने था. (२) दूसरे में राजा टोडरमल जी और कासिमखाँ आदि मय तोपखानों के रहे जो पूर्व में सूर्यपोल के सामने था और (३) तीसरे में अब्दुलमजीद आदि अफसरों सहित फौजें रहीं जो दक्षिण में चित्तौड़ी बुर्ज के सामने था।' भगवानदासजी, मानसिंहजी, नाथाजी और मनोहरदासजी आदि की उपस्थिति भगवानदासजी के संकेत (इशारे) पर होतीथी। अधिकांश इतिहासों में लिखा है कि 'भगवन्तदास जी अकबर को युद्ध विषय की रहस्य जनक ज्ञातव्य बातें बतलाते और राजाओं की रीति रिवाज समझाते रहते थे।

(६) मेवाड़ में अकबर का आगमन होने के पहिले ही जयमल, बीरम देवोत, साँईदास चूँडावत और ईशरदास चौहान आदि सरदारों की सलाह से चितौड़ के तत्कालीन अधिपति महाराणा उदयसिंहजी अज्ञातवास के लिये सपरिवार पहाड़ों में चले गए और जयमल तथा पत्ता को प्रधान सेनापति बना गए। "स. अ." (पृ. १५८) में लिखा है कि उस समय किले में ८ हजार राजपूत थे उनमें जयमल का मोर्चा अकबर के सामने था। यथा समय युद्ध आरम्भ हुआ। शाही सेनाओं ने अमित आक्रमण किए। निरन्तर गोले वर्षाये गए। और युद्ध सामग्री का दुरुपयोग भी किया किंतु कोई फल नहीं हुआ। तब सम्राट ने ३ सुरंग बनवाई। उनको फौजों के पड़ाव से आरंभ कर किले के नीचे तक पहुँचाई, उनमें १० सवार आजा सकें इतनी चौड़ाई की गई। और उन के बनाने में बहुत से कारीगर तथा हज़ारों मज़दूर लगाये गये। उनमें किले वालों की मारसे दोसौ आदमी नित्य मरते थे जिनकी क्षतिपूर्ति के लिये मुँह मांगी मजदूरी देकर नयी भरती की जाती थी। "जयमल वंश प्रकाश" (पृ० १३०) "रा. पू. इ." (पृ० ७२६) और "सम्राट अकबर" (पृ १५८) आदि में लिखा है कि सैनिकों तथा मजदूरों के बचाव के

लिए "सावात" बना गया था वह ढँके हुए रास्ते जैसा था। उसके लिए बड़े बड़े ढोल बने थे जिनके अन्दर गोलों की चोट से बचने के लिए मिट्टी के तह लगाये गए थे और उनके ऊपर गाय बैल या भैंसों के मोटे चमड़े मँढे गए थे। उनके अन्दर रह कर आदमी काम करते और उनको आगे ढकेलते जाते थे। ऐसे प्रयत्नों से २१ दिन में तीनों सुरंग तैयार हुई। उनमें से १ में १२० मण दूसरी में ८० मण और तीसरी में ६० मण बारूद भरी गई। और माघवदी १ संवत् १६२४ को यथाक्रम आग लगवाई। पहिली सुरंग के धड़ाके से किले के केवल ५० आदमी और १ बुर्ज उड़ी। दूसरी से दोसौ आदमी मरे और एक दीवार फटी। और तीसरी से केवल ३० आदमी मरे फटा टूटा कुछ नहीं। "सम्राट अकबर" (पृ. १५८) तथा "जयमल वंश प्रकाश" (पृ. १३०) के लेखानुसार चित्तौड़ का तोड़ना सहज नहीं था। रास्ते होकर उसमें प्रवेश करना भी शेर के मुँह में जाना या धधकती आग में धँसना था। किंतु उपरोक्त धड़ाकों से किले की दीवारों में दो एक जगह गुब्बारे बन गए थे जिनमें होकर शाही सेना अन्दर चली गई। परन्तु वहां उनका तत्काल विनाश करवा दिया गया और दीवारों की सूराखें सुधरवादी गई।

(१०) इधर "साबात" (ढँका हुआ मार्ग) भी तैयार होगया था। उसकी छत पर भी मोर्चे बन गए थे। और सजी हुई सेना भी तैयार खड़ी थी। आदेश मिलते ही दोनों ओर के भीषण युद्ध का आरम्भ होगया और दोनों ओर के बीर योद्धा जुटगए ऐसे जुटे कि एक दिन और दो रात तक खाना पीना भी भूलगए और किले की दीवारें तोड़ते रहे। परन्तु अग्निकाण्ड होते रहने से कोई अन्दर नहीं जा-सके। उसी अवसर में रात के समय अकबर ने देखा कि 'एक महाबली योद्धा पर कोटे पर इधर उधर घूम रहा है उसे देख कर सम्राट ने अपनी 'संग्राम' नामक बन्दूक से उक्त वीर पर गोली चलायी। चोट निशाने लगी। वीर कौन थे? वही वीरमदेव मेड़तिया के ११ पुत्रों में बड़े बेटे जयमलजी राठोड़'। उनकी जांघ में गोली लगी। 'मिर्जामान' 'टाड राजस्थान' और 'भारत भ्रमण' में उक्त गोली हृदय

में लगना और उसी से जयमल का मरना लिखा है किन्तु "जयमल वंश प्रकाश" (पृ० १३७) में 'जांघ में लगना' और "राजपूताने का इतिहास" (पृ० ७२७) की टिप्पणी में उससे 'लँगड़ा होना' लिखा है। जो कुछ हो इस प्रकार अतिकाल तक युद्ध होता रहने और भोजन सामग्री निबट जाने से जयमल ने किले वालों को सलाह दी कि अब 'जुहार' व्रत करना चाहिये और किले के कँवाड़ खोल कर वीरता के साथ लड़ना चाहिये। (रा. पू. इ. ७२८) के अनुसार ऐसा ही किया गया। काठ से भरे हुए कुण्डों की धधकती हुई आग में किले की अनेकों रजपूतानी ठंढे जल के हौज की भाँति धड़ा धड़ गिर गईं और स्वदेश रक्षा के लिये अपने पति आदि को बन्धन मुक्त कर गईं। "टाडराजस्थान" (पृ० ३०६) में जुहार व्रत वाली नौराणी, पांच कुमारी, दो बालक और संपूर्ण सरदारों के बाल बच्चे तथा स्त्रियां लिखी हैं। और "राजपूताने का इतिहास" (पृ० ७२८) में अग्निदग्ध आत्माओं के नाम भी दिए हैं। उस भयंकर आग के महा प्रकाश को देख कर सम्राट अकबर ने भगवन्तदास जी से उसके होने का कारण पूछा तब उन्होंने बतलाया कि 'यह क्षत्रियों का जुहार व्रत है। विजय होने में रुकावट आजाने से वीर क्षत्री प्राणांतक युद्ध करते हैं तब यह व्रत किया जाता है। धधकती हुई आग में पड़कर उनके स्त्री पुत्रादि भस्मीभूत होजाते हैं और पीछे वीर क्षत्री घोर युद्ध करते हैं। संभव है चित्तौड़ में यही प्रयत्न किया गया है अतः अब सावधान होजाना चाहिए।'

(११) दूसरे दिन चित्तौड़ के रक्षक राजपूतों ने किले के कँवाड़ खोल दिए और 'हनोवा प्राप्स्यशे स्वर्गं' के चाव से हर्षित होगए तब बहुत दिनों से बाट देखने वाली शाही सेना अन्दर घुसगई। और जहां तहां पहुँच कर लड़ाई करने लगी। फिर क्या था तलवारों के खचा खच से किले में शोर मच गया और धड़ाधड़ नर मुण्ड गिर गए "रा. पू. इ." (पृ० ७२८) में लिखा है कि 'डोडिया सांडा, ईसरदास चौहान, सांईदास रावत, राणाजैता सुलतान आसावत, रावसंग्राम सिंह, रावराणा साहिबखान और राठोड नेतसी आदि ने बड़ी वीरता दिखलायी।' उधर राय पत्तरमल, राजा टोडरमल, असरफखां,

कासिमखां, भगवन्त दास जी, मानसिंह जी, और नाथा जी आदि ने अपना पुरुषार्थ प्रगट किया। अकबर की गोली से जयमल लँगड़े होगए थे किन्तु युद्ध करने की उनकी अमिट इच्छा थी अतः उसको पूरी करने के लिए उनके कुटुम्बी कल्ला ने उनको कन्धों पर बिठा लिया और हाथों में तलवारें लेकर शाही सेना का दोनों ने संहार किया। अन्त में हनुमानपोल और भैरवपोल के बीच मर गए। दूसरी जगह महाबली पत्ता लड़ रहे थे उनको एक हाथी ने सूँड से उठा कर ज़मीन पर पटक दिया तब सूरजपोल के समीप वह भी मर गए। (स. अ. १६६) में लिखा है कि हज़ारों सवार साथ लेकर घोड़े सवार हो के सम्राट् अकबर भी युद्ध भूमि में गये थे और उनके साथ सधे हुए हाथी थे जिनकी सूँडों में बड़े बड़े खांडे लगे हुए थे। अकबर ने उनको छोड़ दिया जिनके आघातों से अनेकों वीर बिना मौत मारे गये परन्तु उनकी हिम्मत नहीं मरी। उन्होंने हाथियों को भी खूब हैरान किया। कइयों की सूँड काट ली, कइयों के दाँत तोड़ दिए और कइयों को मार डाला। अन्त में अकबर विजयी हुए। उन्होंने संवत् १६२४ के चैत बदी १३ (या टाड पृ० ३०७ के अनुसार ग्यारस) रविवार की दुपहरी में चित्तौड़ पर अधिकार किया और ३ दिन में उस के रक्षाविधान बना कर अजमेर चले गए। उनका नियम था कि-वह प्रत्येक विजय के बाद अजमेर जाकर ख्वाजे साहब के दर्शन करते थे। "टाड राजस्थान" (पृ० ३०७) में लिखा है कि- 'चित्तौड़ के किले की बहुमूल्य वस्तुओं में वृक्षादि की आकृत वाले अद्भुत दीपक तथा सिंह द्वार के अतिसुन्दर अद्वितीय कँवाड़ दिल्ली भेजे गये और युद्ध में मरे हुए मनुष्यों की सम्पूर्ण संख्या ७४॥ के अंक तुल्य कूती गई।*

* "चित्तौड़ युद्ध में" कुल कितने मनुष्य मरे थे इस विषय में "टाडराजस्थान" (पृ. ३०७) में लिखा है कि ७४॥ मण की जितनी जनेऊ हों उतने तो उसमें जनेऊ धारी हिन्दू थे। शेष संख्या अलग थी। उस पर ७४॥ मण की २। लाख जनेऊ मान कर कई लाख मरे हुए माने हैं। (२) डो. साहब ने उन दिनों ४॥ सेर का मण बतला कर मृत मनुष्यों की संपूर्ण संख्या ३५७८० निश्चित की है। (३) "सम्राट अकबर" (पृ. १७०) में ८००० राजपूत और ३० हज़ार अन्य नर नारी क़ायम किए हैं और (४) भारत भ्रमण" (पृ. २२३)

(१२) चित्तौड़ विजय के दूसरे वर्ष संवत् १६२५ के पौष में अकबर ने भारत के दुर्भेद्य दुर्ग "रणथम्भोर" पर चढ़ाई की वहां पौष सुदी २ को पहुँच कर किले के घेरा लगाया। चित्तौड़ की अपेक्षा रणथंभोर का तोड़ना ज़्यादा कठिन था। क्योंकि वहां किले के नीचे चारों ओर खुला सा मैदान था और यहां ७-७ पर्वतों के प्राकृतिक परकोटे स्वतः बने हुए थे और उन में काँटेदार झाड़ियों के बीहड़ जंगल थे। किला वाले पर्वत के जो अंश पहाड़ी परकोटों से बचे हुए थे उनको किला के बनाने वाले दूरदर्शी ने पचासों हाथ ऊँचे तक तरास दिया था जिसके कारण किले का अंग भंग होना असंभव हो रहा था। उसके लिए मार का ठिकाना केवल 'रणकीडूँगरी' था जो किसी बहुत ही पुराने जमाने में रणथम्भोर के बनाने वाले 'रणत्या' बावरथा या भील के बैठे रहने की जगह था। अकबर ने यथा नियम किले को घेर कर उसके सूखे शरीर में चारों ओर से गोलों के खूब धक्के लगाए और 'सहवात आदि के द्वारा फौजों को ऊँची चढ़ा कर या पास के पर्वत पर से पुल बँधवा कर भी प्रवेश करने के प्रयत्न किए किन्तु किसी उपाय में वह फलीभूत नहीं हुए।

(१३) उन दिनों बूँदी के हाड़ाराव सुरजन जी उस किला के अध्यक्ष थे अकबर के आक्रमण आरम्भ होगए पीछे भी वह किला की दृढता के पूरे भरोसे पर निश्चिन्त रहे। इधर अकबर के हमराहियों में आमेर के भगवन्तदासजी और उनके पुत्र मानसिंहजी तथा नाथा जी और मनोहरदास जी आदि भी किले पर कब्जा हो जाने के उपाय कर रहे थे। दैवयोग से उनको उपरोक्त रणकीडूँगरी दिखलाई

में जुहार व्रत में जले हुए ८००० स्त्री पुत्रादि और युद्ध में खोये हुए ७४॥ मण रत्न बतलाये हैं। ७४॥ मण रत्नों के गायब होने या ७४॥ मण की जनेऊ धारण करने वाले नर रत्नों के मारे जाने से ७४॥ के अंकसे अंकित किए पत्रादि को अनधिकार खोलने से "चित्तौड़ मारी हत्या" लिखी है। परन्तु पं. गौरीशंकर हीराचन्दजी ओझा ने अपने "रा. पू. इ. (पृ. ७२१) और "प्राचीन लिपि माला" (पृ. १९) में ७४॥ को केवल ॐ का विगड़ा हुआ रूप बतलाया है। जो कुछ हो उस युद्ध में धन जन वीर साहसी और सामान का बहुत संहार हुआ था।

दी। और उसके गुणों ने हृदय में प्रवेश किया तब बात की बात में अकबर का जंगी तोपखाना डूँगरी के शिरपर चढ़ गया और वहां की गोला वृष्टि से रणथम्भोर के धुरें उड़ना सम्भव होगया। "सम्राट् अकबर" (पृष्ट १६९) में लिखा है कि 'यह देख कर राव सुरजन जी ने संधि का प्रस्ताव पेश करने के लिए अपने पुत्र (दूदा और भोज) को सम्राट की सेवा में भेज दिया और अकबरने उनकी मान रक्षा के लिए वहीं खिलअत (शिरोपाव) देकर आदर किया। इसप्रकार का शिष्टाचार होने के समाचार सुनकर स्वयं सुरजन जी सम्राट् के समीप गए और किले की कुंजियां सौंपदीं। "बूँदी का इतिहास" (पृ० १६) में लिखा है कि कई दिनों की गोला वृष्टि होने पर भी किला हाथ नहीं आया तब अकबर ने भगवन्तदास जी मानसिंह जी और (नाथाजी आदि) को संधि का पैगाम लेकर सुरजनजी के समीप भेजे और पीछे से आप खुद भी जलेबदार अर्थात् हलकारे के भेष में गये। वहां मानसिंह जी के विनम्र वर्ताव पर भी राव सुरजनजी को जोश में आये देखकर (बदले हुए भेष के) सम्राट ने भी जोश किया जिससे सुरजनजी उनको जान गये और हाथ पकड़ कर बैठा लिया। बस झगड़ा समाप्त हुआ अपने सम्मान की ११ शर्तें लिखवाकर किला अकबर के अर्पण कर दिया। इस विषय में "राजपूताने का इतिहास" (पृ० ७३०) में यह लिखा है कि बूँदी के राव सुरजन जी चित्तोड़ की ओर से रणथम्भोर के किलादार थे। गढ बहुत ऊँचा था। अतः 'रणकी पहाड़ी' से बादशाह ने तोप दागना शुरू किया किन्तु (पृ०२७७) के अनुसार किले वालों के शरण न होने से भेद नीति से काम लिया। आमेर के कुँवर भगवन्तदास तथा (भँवर) मानसिंह की सलाह से राव सुर्जन हाड़ा ने मेवाड़ के महाराणा से मुख मोड़ कर राणा जी का रणथम्भौर अकबर को दे दिया। उपरोक्त दोनों किले हाथ आ जाने के अनन्तर जोधपुर बीकानेर और जेसलमेर आदि के राजाओं ने भी सम्राट की आज्ञा का पालन करना आरंभ कर दिया था और सलीम मुइनुद्दीन चिस्ती की कृपा से एक पुत्र भी हो गया था। जिसकी खुशी में अकबर ने संवत् १६२६ में "फतेपुर सीकरी" की नींव लगवाई और उसमें एक

मनोहर महल बनवा दिया जो इस समय एक विख्यात नगरी के रूप में परिणत हो रहा है।

(१४) उपरोक्त लड़ाइयों में महाराज भारमल जी के सहयोग का उल्लेख इसलिए नहीं हुआ है कि वह विशेष कर सम्राट् अकबर के पीछे से घर बार और तख्त आदि के संरक्षक रहा करते थे और युद्धादि में जाने की ज़रूरत होती तो अपने भाई बेटों को भेज देते थे। ऐसे वली और बुद्धिमान् महाराज का सम्वत् १६३० में वैकुण्ठ वास होगया। उनके नौ राणी थीं। (१) पहिली बाना दे (राठोड़जी) मेहाजल की (२) रुक्मावती (राठोड़जी) राणाजी की (३) किसनावती (राठोड़जी) खेतसी की (४) सूजाँ (राठोड़जी) जैमलकी (५) लाडाँ (राठोड़जी) बीदा की (५) रैणादे (राठोड़जी) नगराजमालावतकी (९) सोलखणीजी रायचन्द की (८) सोलखणी (चाँपावतजी) गोगाकी और (७) पद्मावती (चौहाणजी) मालवा की थी। इनके पुत्र (१) भगवन्तदासजी आमेर के राजा हुए। (२) भगवान्दासजी लवाण के राजा हुए (उनके वंशज बांकावत हैं।) (३) जगन्नाथजी टोडेगए यह भी राजा कहलाए और मनसबदार हुए। (४) शार्दूलजी को मालपुरा मिला (५) सुन्दरदासजी चाटसू के मालिक हुए। (६) भोपतसिंहजी (७) पृथ्वीदेव (८) सबलदेव (९) रूपचन्द और (१०) परशुरामजी अपुत्र रहे। "जयपुर हिस्ट्री" में चौथे पुत्र मधुसिंह लिखे हैं और उनका महाबली होना प्रकट किया है। कहा है कि 'उन्होंने एक बार आमेर के दरवाजा के भारी कँवाड़ को दोनों हाथों से उठा कर चूमलिया (ठेगा) पर रखदिया था। महाराज भारमल जी पंचहजारी मनसबदार थे।

(२६) "भगवन्तदासजी"

(१५) के विषय में "आमेर के राजा" (पृ ४४) में लिखा है कि यह संवत् १६३० के माघ सुदी ६ को फतेपुर सीकरी में आमेर के राजा हुए सम्राट् ने उनको टीके का दस्तूर दिया और 'अधिकारलाभ" (पृ.६) के अनुसार नाथाजी ने उनका राज तिलक करके सर्व प्रथम स्वयं नजर की। महाराज भगवन्तदासजी पर सम्राट् अकबर का अमिट विश्वास था। उन्होंने

अपने शरीर से सम्राट् की अद्वितीय सेवा की जिनका परिचय यथास्थान आगे दिया गया है।

(१६) उपरोक्त दोनों लड़ाइयों के बाद सम्राट का आतंक बढ़ गया और एक एक करके राजा और राज्य साम्राज्य के आधीन होगए फिर भी मेवाड़ में उनका कोई महत्व मान्य नहीं हुआ। वहाँ हिन्दुवाना सूर्य महाराणा प्रतापसिंहजी के प्रतापादित्य की प्रखर किरणों का सुप्रकाश इतना ज़्यादा था कि उस पर अकबर की आँखें ठहरती नहीं थीं। परन्तु उनका भाग्य बलवान् था और बुद्धितीव्र थी साथ ही आमेर के एक महा तेजस्वी प्रभाकर पुरुष कुँवर मानसिंहजी का उनके समीप एक युग से सहयोग हो रहा था अतः सम्राट् ने सोचा कि 'महाराणाप्रताप और कुँवर मानसिंह दोनों क्षत्रिय जाति के सच्चे सिंह हैं। प्राचीन गौरव की रक्षा में प्रताप समर्थ है तो महामान्य को भी सम्राट् की सेवा में खड़ा करने वाला मान है। अवसर आये ये चाहें तो आपस में एक होकर किसी भी शक्ति के ठोकर मार सकते हैं और यदि इनमें फूट हो तो ये आपस में ही एक दूसरे को हीन कर सकते हैं अतः इनमें किसी प्रकार बैर भाव बढ़ जाय तो अच्छा है।' इस प्रकार की कल्पना के किले बना कर अकबर ने राणाजी पर चढ़ाई करने का निश्चय किया।

(१७) "आमेर के राजा" (पृ० ५१) में लिखा है कि 'उन दिनों महाराज भगवन्तदासजी गुजरात से इधर आ रहे थे। रास्ते में उनको बादशाह का हुक्म मिला कि 'ईडर होते हुए आगरे आवें और रास्ते के प्रतिकूल राजाओं को अनुकूल करें।' इसके अनुसार भगवन्तदासजी ने बडनगर के रावलिया को गुलाम बना कर उसका किला कब्जे में किया और ईडर के राजा राव नारायणदास से आतिथ्य सत्कार ग्रहण करके बादशाह के लिये बढिया पेशकस (भेट) ली। वहाँ से चल कर उदयपुर (गोघूँदा) गए, वहां प्रतापसिंह जी ने उनकी पेशवाई की उस समय महाराज ने पूछा कि 'आप बादशाह के पास क्यों नहीं चलें?' तब उत्तर दिया कि 'मुझे भरोसा हो जायगा जब आजाऊँगा।' इस विषय में फरिस्ता ने लिखा है कि 'राणाजी ने अपने बेटे अमरसिंहजी को अकबर की सेवा में

भेजा था और सम्राट् ने उनको बढ़िया सिरोपाव दिया था।'

(१८) उपरोक्त सम्मेलन के थोड़े ही दिन पीछे कुँवर मानसिंहजी मेवाड़ गए तब भोजन विषय की बातों में अनबन हो जाने से वह नाराज़ होकर चले आये और पीछे बादशाह भी नाराज रहे। फल यह हुआ कि १०-१२ वर्ष तक मेवाड़ पर यथाक्रम कई बार चढ़ाई हुई जिनका वर्णन "टाड-राजस्थान" (पृ० ३१२) "इतिहास राजस्थान" (पृ० ५०) "राजपूताने का इतिहास" (पृ० ७४०) "आमेर के राजा" (पृ० ५२) "अकबर" (पृ०७०) "सम्राट् अकबर" (पृ० ३१) "भारत का इतिहास" (पृ० २४२) और "प्रताप चरित्र" आदि में न्यूनाधिक सब में है और उनमें स्वार्थ या प्रमाद वश कइयों में अनाप सनाप भी लिखा गया है। अतः इतिहास की अंगपूर्ति और भगवन्तदासजी मानसिंहजी एवं नाथाजी आदि के सहयोग के अनुरोध से यहाँ उनका दिग्दर्शन करा दिया है।

(१९) "सर्व प्रथम" सम्वत् १६३० के आषाढ में महाराणाजी को समझाने के प्रयोजन से मानसिंहजी मेवाड़ गए। महाराणाजी ने उनका स्नेहपूर्ण सत्कार किया परन्तु भोजन विषय में अनबन होजाने आदि कारणों से मानसिंहजी ईश्वर के अर्पण किये हुए प्रथम ग्रास को सिर पर पगड़ी में रख के खड़े हो गए और वापस चले गए (टा० रा० ३३६)। "दूसरी बार" सम्वत् १६३३ के वैशाख में गाज़ीखाँ और बदख़शा आदि के साथ मानसिंहजी फिर मेवाड़ में गये माँडलगढ़ में सेना इकट्ठी हुई और खमणोर के समीप 'हलदी घाटी' से कुछ दूर बनास के किनारे पर युद्ध हुआ। सरदार लोगों की सम्मति के अनुसार महाराणाजी भी अपनी फौज लेकर वहीं आगए। "(रा०पू० इ०" (पृ० ७४२) (हलदीघाटी नाथद्वारा से नैऋत्य में ५॥ कोस है यहाँ की मिट्टी हलदी जैसी पीली है इस कारण उसका नाम हलदीघाट होगया है।) अस्तु युद्ध में राणाजी की तरफ ग्वालियर के रामसिंहजी तँवर तथा भामाशाह* आदि थे यह युद्ध सम्वत् १६३३

* "भामाशाह" महाधनी वीर साहसी- बुद्धिमान् प्रवीण और राज भक्त वेड़िया गोत्र के ओसवाल थे। महाराणा जी के मन्त्री रहे थे। आपत्ति में अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति

के दूसरे जेठ में हुआ था। "राजपूताने का इतिहास" (पृ० ७४५) में लिखा है कि "इस युद्ध में मानसिंह जी के साथ ५००० और प्रतापसिंहजी के साथ ३००० सवार थे। "मेवाड़ की ख्यातों" में "मानसिंहजी के साथ ८० हज़ार और प्रतापसिंहजी के साथ ४० हज़ार थे। "मूतानेणसीकी ख्यात" में मान के साथ ४० और प्रताप के साथ १० हज़ार थे। और अलबदायूनी जो उस लड़ाई में वहीं था उसके अनुसार मान के साथ ५ हज़ार और प्रताप के साथ ३ हज़ार सवार थे। "रा० पू० इ०" (पृ० ७४५) की टिप्पणी से उक्त युद्ध में १२० मुसलमान मरे ३५० घायल हुए और ३८० हिन्दू खेत रहे। कई कारणों से शाही सेना की भोजन सामग्री कम होगई थी किन्तु मानसिंहजी ने राणाजी की प्रजा को लूटना नहीं चाहा अतः अफ़सरों के मार्फत दूसरी जगह से सामान मँगवाया। राणाजी के 'रामप्रसाद' हाथी नामी था उसको सम्राट की सेना ने छीन लिया और मानसिंहजी ने ३ सौ सवार साथ देकर उसे सम्राट् की सेवा में भेंट स्वरूप भेज दिया।

(२०) "चरित्र माला" और "वीर पञ्चतन्त्र" आदि से आभासित होता है कि युद्ध के आरंभ में मानसिंहजी हाथी पर और प्रतापसिंहजी अपने 'चेतक' घोड़े पर सवार थे। उन्होंने घोड़े को हाथी की सूँड़ पर चढ़ा दिया और मान के हृदय पर भाला चला या। परन्तु मान के मनोहर दास जैसे शरीर रक्षकों ने तलवार से चेटक को तत्काल हटा दिया जिससे भाला हाथी के हौदे में घुस गया और मानसिंह जी बच गए (इस दृश्य का एक बड़ा चित्र उदयपुर के महलों में और छोटा पुस्तकों में है) "राजपूताने का इतिहास" (पृ० ७५१) में लिखा है कि हाथी की सूँड में जो खाण्डा लगा हुआ था उसकी चोट से चेटक का पैर

महाराणा जी के अर्पण करदी थी उन्होंने राज के करोड़ों रुपए ज़मीन में जगह जगह गाड़ रक्खे थे और उनका पता बहियों में लिख रक्खा था जो आपत्ति के दिनों में राणाजी के काम आए थे। महाराणा को उन्होंने मालवा विजय की २० हज़ार असर्फी और २५ लाख रुपए भेंट किए थे।

कट गया इसके कारण भाले की चोट निशानें नही लगी। "टाड राजस्थान" (पृ० ३३०) में लिखा है कि चेटक का पग कट जाने और चारों ओर से घिर जाने आदि संकटों को सोच कर प्रतापसिंह जी अकुला गए जब सादड़ी के झाला मन्नाजी ने राणाजी के राज चिन्ह धारण कर वैसा ही भेष बना लिया और उनको बाहर भेज कर आप युद्ध करने लगे। उधर राणा जी का चेटक हलदी घाटी से १ कोस वलीचा गाँव के पास पहुँच कर मर गया और उनके भाई शक्तिसिंह ने पीछे से 'ओ घोड़ा का सवार ठहर !' की आवाज़ देकर उनको अपने घोड़े पर बिठा के अलक्षित कर दिया। उस दिन लड़ाई के मैदान में मन्नाजी ने बड़ी वीरता दिखलाई जिसके बदले में उनको तथा उनके वंशजों को पूर्वोक्त राज चिन्हों सहित महलों तक जाने का सम्मान मिला।

(२१) तीसरी बार संवत १६३३ की काती में फिर बादशाह की फौजें इकट्ठी हुईं। स्वयं सम्राट भी शामिल हुए। भगवन्तदासजी मानसिंहजी तथा नाथाजी आदि को आगे भेज दिया और राणाजी का तलाश करवाया। उन के ढूँढने में कई जगह कई बार युद्ध हुए किन्तु सब प्रयत्न निष्फल गये। संवत् १६३५ के वैशाख में बादशाह के अफ़सर शहबाज़खां ने गोघूँदे में अधिकार किया और उदयपुर को लूट लिया। किन्तु ये लोग एक को लूटते और वह दो को वापिस लेते थे और आहट पाकर शाही फौजें एक पर्वत में ढूँढतीं तो वह दूसरे में अलक्षित हो जाते थे इस कारण वह बादशाह के वश में नहीं आए जब चौथी बार संवत् १६३५ के दूसरे आसोज में भगवन्तदासजी, मानसिंहजी और पायदा खाँ आदि के साथ फिर फौजें आईं और कुम्भलगढ़ जैसे नामी किलों पर कब्जा किया परन्तु राणाजी उनके भी हाथ नहीं आये। तब मुसलमान अफसरों ने भगवन्तदास जी और मानसिंहजी को इस लिए वापिस भेज दिया कि 'स्यायत् महाराणा को ये चाहकर छोड़ते होंगे।' परन्तु फल फिर भी नहीं मिला। पाँचवीं बार-संवत् १६३५ के पौष में शहबाज़खां और मुहम्मद् हुसेन आदि को बादशाह ने यह धमकी देकर भेजा कि 'राणा को पकड़ कर नहीं लाओगे तो सर उड़ा दिया जा

यगा।' परन्तु इन लोगों के प्रयत्न का भी कोई फल नहीं हुआ। छटी वार- संवत् १६४० के मँगशिर में भगवन्त दासजी के भाई जगन्नाथजी को भेजे वह इस देश में २ वर्ष रहे और एक बार महाराणाजी को देख भी लिया किन्तु वह हाथ नहीं आये तब वापिस चले गये उसमें राणाजी का विजय हुआ।

(२२) "शार्टहिस्ट्री" (पृ. ५) तथा "पुराने कागज" (नं० ३) में जो नाथाजी के लिए लिखा है कि 'वह मानसिंह जी के सहगामी रहकर ३ लड़ाइयों में वीरता दिखलायी थी, वह तीनों लड़ाई उपरोक्त चित्तौड़ -- रणथम्भोर और महाराणा प्रतापसिंह जी के साथ की हैं। उन्हीं में नाथा जी सामिल रहे थे और यथा अवसर अपनी बढ़ी हुई वीरता का परिचय दिया था। अन्त में वह संवत् १६४० की समाप्ति में परलोक पधार गए। उनके दो विवाह हुए थे। प्रथम स्त्री नोरंगदे (चौहाण जी) बेदला (गंगराणा) के रावशेरसिंह की और दूसरी लछमावती (सोलंखणीजी) टोडाभींव के रामदेवकरण की पुत्री थी। इनकेआठ पुत्र हुए। (१) मनोहरदास जी को पहिले सामोद मिला फिर हाडोता आया। इनकी भायप के वही ५६ गांव हैं जो नाथा जी के थे। इनके वंशज 'मनोहरदासोत' कहलाते हैं। (२) रामसहायजी मोरोजा के मालिक हुए और महाराज के मन्त्री रहे। इनको भायप के मोरीजा आदि २८ गांव हैं और इनके थांभे के ५८ गांव हैं। इनके वंशज 'रामसहाय जी के' कहलाते है। (३) केसोदासजी बिचूण के मालिक हुए। इनके वंशज 'केसोदासोत' कहलाते थे। इनकी भायप में ५ गांव थे। (४) बिहारीदास जी पहिले बादशाह की सेवा में गजनीगढ के राजा रहे। फिर महाराज भावसिंह जी के अनुरोध से सामोद के मालिक हुए। (५) जसवंतसिंह जी जसूँता बैठे (एक जगह भूतेड़ा और दूसरी जगह मूँडोता बैठे भी लिखा है।) मूँडोता वाले उन्हीं के वंशज हैं।) (६) द्वारकादास जी (७) श्यामदास जी और (८) वनमाली जी ये अपुत्र रहे। जयपुर राज्य के कछवाहों में "नाथावत" वंश के मूलपुरुष नाथाजी थे। इसलिये भूतल पर जबतक नाथावत रहेंगे तबतक नाथाजी का नाम बना रहेगा। उनके स्मृ-

ति चिन्हों में यही सर्वोत्कृष्ट चिन्ह है। इसके सिवा उनकी बड़ी राणी चौहाण जी ने संवत् १६०२ में सामोद के अन्दर एक बहुत बड़ी बावड़ी और संवत् १६२१ में गोपाल जी की छत्री बनवायी थी। ये दोनों अब जीर्ण हो गई हैं और मरम्मत चाहती हैं।

पांचवां अध्याय

* श्री *

नाथावतों का इतिहास

"मनोहरदासजी"

(६)

[वीरता के विचार से आमेर के राजाओं में महाराज मानसिंहजी और चौमूँ सामोद के सरदारों में मनोहरदासजी महारथी (या अधिक बली) हुए थे। उन दोनों (स्वामी और सेवक) की आयुष्य का अधिक अंश अकबर साम्राज्य के बढ़ाने, आमेर राज्य को आदर्श बनाने और शत्रुओं का पराजय करने में व्यतीत हुआ। काबुल जैसे २-३ मुकामों के अतिरिक्त इन कामों में ये दोनों विशेष कर साथ रहे थे। "जयपुर वंशावली" तथा "मिर्जा-मान" में लिखा है कि 'मानसिंहजी ने ४७ हेटी (छोटी लड़ाईयों) और ६७ जंग (बड़ी लड़ाइयों) में विजय पाया था और "नाथावत सरदारों का इतिहास" (पृ० ४) में लिखा है कि 'महाराज मानसिंहजी के साथ रह कर मनोहरदासजी ने २२ युद्धों में जय लाभ किया था'। उक्त २२-४७ और ६७ लड़ाइयों का यथा क्रम वर्णन किसी स्वतंत्र ग्रन्थ में नहीं है सब में सब के साथ मिला हुआ है इस कारण आधुनिक लेखकों को मानसिंहजी के अतिरिक्त उनके साथ के शूर सामन्तों के पृथक नाम नहीं मिलते हैं। अतः इस अध्याय में मानसिंहजी के मुख्य मुख्य युद्धों का उल्लेख इसलिए किया है कि उनके सहगामी मनोहरदासजी आदि के २२ युद्धों या अन्य लड़ाइयों का दिग्दर्शन होजाय और क्रमागत इतिहास अधूरा न रहे।]

(१) संवत् १६४० के अन्त में नाथाजी का वैकुण्ठ वास हुए पीछे उन के बड़े बेटे मनोहरदासजी उनके उत्तराधिकारी हुए। उस समय उनको पूर्वागत सामोद की जागीर मिली। पीछे कई लड़ाइयों में मानसिंहजी के साथ रहकर वीरता दिखाने और आमेर राज्य की अच्छी सेवा करने आदि से हाड़ोता मिला। वह कई दिनों तक सामोद और हाड़ोता दोनों के मालिक रहे; पीछे सामोद उनके छोटे भाई विहारीदासजी के अधिकार में आगया तब वह हाड़ोता चले गये।

(२) नाथावतों के विषय के

ऐतिहासिक वर्णन से मालूम होता है कि 'जिस समय सामोद् गोपालजी के हिस्से में आया था उस समय (संवत् १५८२-८४ में) मोहाणा आदि सामोद् के नीचे थे और चीतवाड़ी में उनकी राजधानी (या कोटड़ी) थी। गोपालजी अवकाश के समय वहीं रहते थे और कई बार नाथाजी भी वहां रहे थे। सामोद् की अपेक्षा चीतवाड़ी में रहने के दो कारण हैं पहिला यह कि 'सामोद् उन दिनों आज का जैसा नहीं था। श्यामा जाट की ढाणी था। राजा विहारीदासजी के अधिकार में आया और उन्होंने वहां महल बनवाए तब वह 'श्यामगढ़' या सामोद् नाम से विख्यात हुआ'। दूसरा यह है कि 'उन दिनों चीतवाड़ी चमक रही थी और युद्धादि के अवसरों में वहां सैंकड़ों शूरवीर सहजही मिलजाते थे अतः आरम्भ की तीन पीढी वहीं रही' इस विषय में चंद कवि ने अपने "नाथ वंश प्रकाश" (पद्य १६-१७) में लिखा है कि 'चीतवाड़ी गोपालजी की राजधानी थी नाथाजी ने उसे सनाथ बनाई थी और मनोहर भूप ने उसकी शोभा बढ़ाई थी।'

(३) मनोहरदासजी को मानसिंहजी की सेवा में रहने का सुयोग सुकुमार अवस्था में ही मिल गया था उसी अवस्था से वह उनके समीप रहे और यथोचित सब काम किए। पिछले अध्याय में लिखा गया है कि 'संवत् १६०७ के पौष बदी १३ शनिवार को ४८ । ८ पर भगवन्तदासजी की धर्म पत्नी (पँवारजी) के उदर से मानसिंहजी उदय हुए थे और १२ वर्ष के होने तक आत्मीय वर्ग के मनोहरदासजी आदि १०० राजकुमारों सहित मोज़माबाद् में एकान्त वास किया था। (क्यों किया था ? यह पांचवें अध्याय में लिखा गया है।) एकान्त वास की अवधि पूरी होने पर संवत् १६१८ के शीतकाल में उन सब की रतनपुरा के समीप सम्राट से पहली भेंट हुई। उस समय मानसिंहजी के चेहरे में श्यामता थी। * इस कारण

* "मानसिंहजी" को अपरिचित लेखकों ने कुरूप मान कर उनकी बनावट में मनमानी कल्पना की है। "मआसिरुल् उमरा" (पृ० २९१) के चित्र में भी उसी कल्पना से काम लिया है। उसमें उनको विचित्र आकृति का मनुष्य चित्रित किया है जो सर्वथा असंगत है। हस्त लिखित प्राचीन चित्रों से मालम हो सकता है कि वह कुरूप नहीं थे चेहरे में श्यामता थी सो भी युवावस्था में उज्वल नीलमणि जैसी होगई थी।

"वीर चरितावली" (पृ० ८) के अनुसार अकबर ने पूछा कि-'मानसिंह! जिस समय खुदा के दरबार में नूर बँट रहा था उस समय तुम कहां चले गए थे।' इसके उत्तर में मानसिंहजी ने निःशंक होकर जवाब दिया कि 'मैं वहीं था परन्तु नूर के बदले वीरता बटोर रहा था।' 'मिर्जामान' आदि में लिखा है कि 'मैं इबादत में था और जब वीरता और दातारी बटने लगी तब मैं यही ले आया।' इस उत्तर से सम्राट् को बहुत सन्तोष हुआ उन्होंने कहा कि 'मानसिंह! खुदा ने तुमको मेरे दुश्मन दूर करने के लिये भेजा है आगे जाकर तुम्हारा उज्वल भविष्य बहुत प्रकाशित होगा।' यह कह कर उनको अपने साथ आगरा लेगए।

(४) वहां गये पीछे मानसिंह जी ने और उनके साथ के भाई बेटों * ने यथा समय अनेकों काम ऐसे अद्वितीय किए जिनसे साम्राज्य वृद्धि के साथ ही कछवाहों की सत्कीर्ति का सम्पूर्ण भारत में विस्तार होगया। बंगाल, बिहार, ओड़ीसा और काबुल तक उनकी जागीरें नियत हो गईं। अनेक-नगर में उनके नाम के या उनके बनवाए हुए गढ़ किले शहर या मकान बन गए और मानसिंह जी के आतंक की सब जगह धाक जम गई। उनके लिए उपरोक्त मज़ाक एक प्रकार से बादशाह के साथ के वाणी युद्ध में विजय हुआ और वही उनकी ४७ हेटी या ६७ जंगों में जीत होने का आरम्भ रहा। "आमेर के राजा" (पृ० ४५) में लिखा है कि 'आगरा जाने

* "भाई बेटे" (१) महाराज पृथ्वीराज जी के (१) भींव जी २ पच्याणजी ३ भारमलजी और ४ गोपाल जी आदि १९ बेटे थे। उनमें (२) ३ भारमलजी के १ भगवन्तदास जी आदि ८ और (२) ४ गोपालजी के १ नाथाजी आदि ९ थे। फिर (३) १ भगवन्तदास जी के १ मानसिंहादि ८ और (३) १ नाथाजी के मनोहरदासादि ९ थे। और (४) मानसिंह जी के १ जगतसिंहादि १० तथा (४) १ मनोहरदास जी के (५) करणसिंहादि १४ पुत्र थे। इसी प्रकार अन्य सब के सैकड़ों पुत्र पौत्रादि थे। और उनमें अधिकांश बेटे पोते भारमल जी भगवन्तदास जी और मानसिंह जी आदि के साथ युद्धादि में जाकर वीरता दिखाते थे। परन्तु उन सब के नाम न तो मिल सकते हैं और न दिये जा सकते हैं इस कारण विख्यात इतिहासों में सिर्फ भाई बेटा लिख दिया है।

के थोड़े दिन पीछे बादशाह ने अठगीनी के अंदने जमींदारों पर चढ़ाई की साथ में भगवन्तदासजी, मानसिंहजी और मनोहरदास जी आदि भी थे। अकबर जवानी के जोश में थे और ज़मीन पर कड़ी धूप पड़ रही थी ऐसी स्थिति में उन्होंने उपद्रव करने वालों पर स्वयं आक्रमण करना चाहा किंतु भगवन्तदासजी ने वैसा नहीं करने दिया उनको हरे वृक्षोंकी शीतल छाया में बिठाकर ठंडा पानी पिलाया और आप अपने पुत्रादि सहित फ़िशादियों को परास्त करते रहे।

(५) उन दिनों खींचीवाड़ा के चौहानों ने भी कुबुद्धि का आश्रय लिया था इस कारण उनपर मानसिंहजी ने चढाई की "हिंदी विश्व कोश" (पृ. ३२९) में लिखा है कि खींचियों को परास्त करके मानसिंह जी ने वहां 'आसोरगढ' किला बनवाया था और 'मिर्जामान' (पृ. २९) के अनुसार ४ वर्ष तक वहां के हाकिम रहे थे। (खींची क्यों कहलाये ? इस विषय में "खींचीचौहानों का इतिहास" (पृ० ५६) में ४ कारण बतलाये हैं। (१) इनका पूर्वज माणिकराव खींचपुर गया था। (२) अजेराव ने सोने चांदी के सिक्के मिलाकर बांटे थे। (३) मानकराव ने गँवारों की (बिना पकायी) खिचड़ी खायी थी। और (४) खिलचीपुर में रहे थे। इन कारणों से खींची कहलाये।) अस्तु।

(६) उपरोक्त दोनों लड़ाईयों के पीछे संवत् १६२४ में चित्तौड़ १६२५ में रणथंभोर १६२८–२९ में गुजरात और १६३३ से लगभग १६४० तक मेवाड़ के भीषण युद्ध हुए उनमें भगवन्तदास जी और भगवानदासजी के साथ नाथा जी मानसिंह जी और मनोहरदास जी आदि सभी भाई बेटे शामिल रहे थे और मौके मौके में उन्हों ने अपना पुरुषार्थ प्रकट किया था। यद्यपि उनमें मनोहरदासजी का समुचित सहयोग था। तथापि उनके पिता नाथाजी का प्राधान्य था (कछवाही सेनाओं का सेनापतित्व) होने से उक्त लड़ाईयों का वर्णन पिछले अध्याय में आगया है और उनमें मनोहरदास जी का सहयोग रहने के अनुरोध से यहाँ भी उनका नामोल्लेख कर दिया है। प्रसिद्ध इतिहासों में उनका न्यूनाधिक वर्णन सब में है।

अतः उन सबका पारायण किया जाय तो मालूम होसकता है कि अमुक युद्ध के अमुक स्थान में मानसिंहजी ने या उनके भाई बेटे (मनोहरदासादि) ने स्वतन्त्र रह कर शत्रुओं का संहार किया था और विजयी हुए थे।

(७) "आमेर के राजा" (पृ. ५६) में लिखा है कि 'मेवाड़ से छुटकारा पाये पीछे सम्राट अकबर ने भगवंतदास जी को और मानसिंह जी को पंजाब में भेज दिया और आप आगरा चले आये। वहां रहकर उन दोनों पिता पुत्र (भगवन्तदासजी और मानसिंह जी) ने वहां के कुबुद्धियों को थोड़े ही दिनों में सरल बना दिया और निश्चिन्त होकर सम्राट की सेवा में हाज़िर होगए। इसके उपलक्ष्य में अकबर ने महाराज भगवन्तदास जी को खासा घोड़ा देकर सूबेदार की सहायता के लिये पञ्जाब में भेज दिया और मानसिंह जी को स्यालकोट का हाकिम बना दिया।

(८) मानसिंह जी जिस प्रकार महाबली थे उसी प्रकार महाबुद्धिमान् भी थे उनको राज्य करने और शत्रुओं को दबाये रखने के विधान याद थे। उन दिनों पञ्जाब में शत्रुओं की कमी नहीं थी किन्तु उनका विनाश करना या वश में रखना मानसिंहजी जानते थे इस कारण स्यालकोट में रहकर उन्हों ने अपने बल और बुद्धि का बादशाह को ऐसा परिचय दिया कि वह थोड़े दिनों में उनको पञ्चहज़ारी मनसबदार बना दिया और सिन्ध के देशाधिपति (जिलाधीश) करके भेज दिया। साथ ही उनके सहगामी सरदारों (मनोहरदास जी आदि) को भी अलग अलग जागीरों या देशों के शासक रक्षक निरीक्षक या व्यवस्थापक बना कर उनकी आमदनी तथा सम्मान आदि यथा योग्य बढ़ा दिया।

(९) ऐसे विधान सिर्फ मानसिंह जी के समुदाय में ही नहीं थे किन्तु भगवन्तदास जी टोडरमल जी रायसिंहजी और बीरबल आदि छोटे बड़े सभी जिलाधीशों के थे। प्रत्येक जिलाधीश अपने अधिकार के भूभाग का एक प्रकार से आप ही मालिक होता था। उसकी सीमा आमदनी और आबादी बढ़ाना, उसे शत्रुओं से सुरक्षित रख कर उन्नत करना,

आतंक बढाना और शाही सेनाओं के सिवा अपनी निजकी फौज रखना आदि सबके लिये साधिकार नियत थे। वह वहाँ की आय का उपयोग उक्त प्रकार के कामों में इच्छानुसार करते रहते थे। "सम्राट अकबर" (पृ० ३७०-७७) में लिखा है कि 'उपरोक्त जागीर के सिवा उनको यथायोग्य १०-२०-३० या ३५ हज़ार रुपया मासिक भी मिलता था जिसमें वे अपनी हैसियत के अनुसार लगभग ५०० घोड़े, ३०० कुत्ते, २५० गाड़ी, २०० ऊँट और १०० हाथी, साथ रखते थे।'

(१०) इतिहासों में लिखा है कि 'मानसिंहजी के पास ७ हजार शाही सेना के सिवा २१ हजार सेना निज की थी (जिसमें मनोहरदासजी आदि सभी भाई बेटों का समुदाय सामिल था) और वह शाही सेना से ज्यादा ताकत रखते थे'। मानसिंहजी यथाक्रम बढ़े थे वह साधारण हाकिम होकर डेढ़ करोड़ की वार्षिक आयके मालिक हुए थे और अठगीनी या खींचीवाड़ा जैसी छोटी लड़ाइयों से आरम्भ करके चित्तौड़, रणथम्भोर, मेवाड़ या काबुल जैसे देशों के अति भीषण युद्धों तक में जय लाभ किया था। इसमें सन्देह नहीं कि मनोहरदासजी उन सभी अवस्थाओं में मानसिंहजी के सेवक सामन्त सहगामी और सेनापति रह कर ही, मान वैभव भूसम्पत्ति और अधिकार प्राप्त किये थे। अनेक अवसरों में मनोहरदास जी ने मानसिंहजी की लोकोत्तर सेवायें की थी जिनसे प्रसन्न होकर वह उनको प्रत्येक देश के अधिवास और प्रत्येक अवसर की लड़ाई में अपने साथ रखते और महत्त्व सम्पन्न या रहस्यपूर्ण कामों में उनकी सम्मति लेते थे। अस्तु।

(११) "मिर्जामान" (पृ० ४६) के अनुसार लाहोर का (और अन्य के अनुसार सिन्ध का) शासन करते रहने के दिनों में अकबर के सौतेले भाई मिर्जामुहम्मद हकीम ने मामा के बहकाने में आकर भारत पर चढ़ाई की, लाहोर में आकर एक बाग़ में डेरा किया और आक्रमण करने के विधान बनाये किन्तु मानसिंहजी ने उसका किसी प्रकार हस्तक्षेप नहीं होने दिया तब वह मन मसोस कर वापस चला गया और उसके गये पीछे

सिन्ध का सूबा मानसिंहजी के अधिकार में आगया। थोड़े दिन बाद (सं० १६३८) में हकीम का धायभाई शादमान् चढ़ कर आया था उसको पराजित करने के प्रयोजन से मानसिंहजी ने स्यालकोट से प्रस्थान किया, साथ में सूरजसिंहजी (और मनोहरदासजी) आदि भाई बेटे थे। अटक के इस किनारे पर नोलाव के किले के पास भारी लड़ाई हुई, उसमें सूरजसिंहजी के हाथ से शादमाँ मारा गया। उसकी मृत्यु के समाचार सुनने से मिर्जा मुहम्मद हकीम को भारी दुख हुआ (क्योंकि शादमाँ उसके सिर की ढाल था) इस लिए उस ने बहुत सी फौजें साथ लेकर भारत पर दुबारा चढ़ाई की। तब उसको रोकने के लिये इधर से सम्राट ने प्रस्थान किया और उनके साथ में शाही सेनाएँ तथा बड़े अफसर गये। अटक के पास उनका डेरा हुआ।

(१२) उस महानद के परली पार जाने के लिये नावों का पुल बनवाया गया था और वह दो महीने में तैयार हुआ था। उसके ऊपर होकर जाने के लिये सर्व प्रथम सम्राट के पुत्र सलीम ने प्रस्थान किया साथ में मानसिंहजी भी थे भारत की सीमा उलाँघ कर अटक पार होने का मानसिंहजी के लिए यह पहला मौका था और उनके साथ के सरदार लोग भी सदा की मर्यादा को तोड़ने में सहमत नहीं थे इस कारण मानसिंहजी ने अटक पर अटकने की सूचना अकबर को दी। उसके उत्तर में सम्राट ने सोच समझ कर यह लिखा कि "सबै भूमि गोपाल की यामें अटक कहा। जाके मन में अटक हो सोही अटक रहा।" इसको पढ़कर मानसिंहजी अपने सहगामी अमीर उमरावों सहित निःसंकोच अटक पार हो गए और उधर सर्व प्रथम शाहजादे सलीम को शत्रुओं से बचाया उक्त दोहे के विषय में विशेषज्ञ लोगों का मत है कि यह अकबर का नहीं पीछे का है परन्तु "जयपुरवंशावली" (पृ० ५६) "भारतीय राज्यों का इतिहास" (पृ० ११) "सम्राट अकबर" (पृ० २७०) और "मिर्जामान" (पृ. ४७) आदि में यह सब में है और सब ने मान के लिए लिखा सूचित किया है सिर्फ "इतिहास राजस्थान" (पृ. १८०) ने मान के बदले भगवन्तदासजी के नाम पर लिखा बतलाया है। अस्तु।

(१३) "आमेर के राजा" (पृ. ५८) में लिखा है कि घाटे में जाकर मानसिंहजी ने काबुल वालों के साथ भारी

लड़ाई की उसमें हकीम हारकर भाग गया और अकबर ने उसका अपराध क्षमा करदिया'। "सिर्जासान" (पृ. ४८) में लिखा है कि 'काबुल में कई लड़ाईयां हुई थीं। उनमें मानसिंहजी का विजय पर विजय होता चला गया। यह देख कर सम्राट ने उनको पेशावर और सरहदी इलाकों का तथा सिंध का अधिकार देदिया और उनकी आज्ञा से मानसिंह जी ने अटक के पास 'अटक बनारस' नाम का १ क़िला बनवा दिया। काबुल विजय के विषय की दन्त कथा में एक कौशल* की कहानी है। कहा गया है कि काबुली बड़े कज्जाक थे। वे अपने देश के बीहड़ जंगलों में छुपे रहते थे और मौका मिलते ही शाही सेनाओं का निरर्थक नाश कर जाते थे। यह देख कर अफसरों ने एक रोज़ रात के समय भैंसों के सींगों में तेल के भीगे हुए चिथड़े लपेट कर उनको जला दिये और जँगल में इधर उधर छोड़ दिये। रात अँधेरी थी भैंसे दीखते नहीं थे काबुलियों ने उनको शाही सेना के मसालची मान कर उसी दिशा में सामूहिक धावा किया। फल यह हुआ कि पीछे से बहुत सी फौजों ने उनको घेर लिये जिसमें हज़ारों काबुली मारे गये और मानसिंहजी विजयी हुए।

(१४) मानसिंहजी अवश्यही अकबर को शत्रुहीन रखने के लिये प्रकट हुए थे। हकीम को हरा कर वापस आते ही सम्राट ने उनको सिंध और पंजाब दोनों देशों का उच्चाधिकारी नियत किया और पूर्वापेक्षा अधिक सम्मान बढ़ाया किन्तु थोड़े ही दिन पीछे बंगाल, बिहार, ओड़ीसा और काबुल में फिर उपद्रव हो गया "मान चरित्र" (पृ. ४) में लिखा है कि

* "ऐसे कौशल" जहाँगीर के जमाने में भी किये गये थे। "राजपूताने का इतिहास" (पृ० ७९४) की टिप्पणी में लिखा है कि 'संवत् १६६५ के भादवे में सम्राट जहांगीर ने १२ हजार सवार साथ देकर महावतखाँ को मेवाड़ के महाराणा अमरसिंह पर भेजा था। महाराणा ने महावत पर अकस्मात आक्रमण किया साथ में सिर्फ ५०० सवार थे किन्तु बहुत से भैंसों में बारूद के खरबूजे भरवा कर शाही सेना में भेज दिये और साथ में भैंसों के सींगों पर तेल से भीगे हुए चिथड़े जला कर उनको भगा दिये। फल यह हुआ कि शाही सेना में अकस्मात भारी उत्पात हो जाने से सेनायें भाग गयीं और महाराणा बच गये।

(१५) मानसिंहजी उन दिनों लाहोर * के किले में दीवान खास के पास "अकबरी महल" नाम के सुंदर और सुविशाल सायवान में रहते थे। वहीं उनके शूर सामन्त या साथी थे। उसी अवसर में उपस्थित उमरावों को शाही फरमान पढ़ कर सुनाया गया और सब तरह से तैयार हो कर तुरन्त काबुल * चले गए। उनको मालूम था कि काबुली लोग वीर-साहसी और खूँखार होते हुए भी धोका देने के लिए

संवत् १६४१ में काबुल के हाकिम, हकीम मुहम्मद के मर जाने से वहां की फौजें तूरान के बादशाह अब्दुल्लाखाँ उजबक में मिल गईं और इस मेल से भारत हाथ आने की आशा में बादशाह काबुल चला गया। इस समाचार के सुनते ही सम्राट् ने मानसिंहजी को दल बल सहित अति शीघ्र काबुल जाने की आज्ञा दी और सर्वाधिकारी होकर काम करने का उन के लिए 'फरमान' भेज दिया।

* "लाहौर" रामचन्द्रजी के पुत्र लव का बसाया हुआ बतलाया जाता है। पञ्जाब प्रान्त के नामी नगरों में है। "भारत भ्रमण (द्वि. खं. ४९३) में इसके दर्शनीय स्थानों का विस्तृत वर्णन है। इस का राज्य विस्तार १७१५४ वर्ग मील, लोक संख्या ५५६८४६३ गाँव ९८६९ और नगर ४१ हैं। ऐसे सुविस्तृत जिला के मानसिंह जी जिलाधीश रहे थे। काबुल जाने का आज्ञापत्र सम्भवतः अकबरी महल में सुना गया था उसका आशय इस प्रकार था कि 'मित्रों के स्नेही वीरों के अग्रगण्य राजाओं के हितैषी सुदीर्घ आशा रखने वाले निर्भीक विलक्षण और साम्राज्य के बढ़ाने वाले मानसिंह को सूचित हो कि तुम सर्वाधिकारी की हैसियत से काबुल का शासन करो'।

* "काबुल" पहाड़ी प्रदेश है जो गेंहूँ ज्यादा होते हैं। गरीब अन्न और अमीर मेवे खाते हैं। गाय और भेड़ बहुत हैं। व्यापारी ऊँट घोड़े और खच्चर रखते हैं कोहताकनशाह तथा खोजा सफर इन दोनों में काबुल नगर है उसका परकोटा १॥ कोस में है सब जगह नदी है। 'चार छाता' मकान देखने का है। गजनी से सब चीजें आती हैं। कुरार से चांवल और हजारा से घी आता है। "अफगानिस्तान" दुर्गम और दुर्बोध्य देश है। जनसंख्या ४॥ लाख और गर्मी ३० से १०५ तक हैं। काबुल से गजनी ८८ बिलोचिस्तान २२९ और पेशोर १९५ मील है। "हिन्दी विश्वकोश"—

रोते भागते चिल्लाते और मौका मिल जाय तो उसी अवस्था में अकस्मात आकर अधिक हानि और हैरानी कर जाते हैं। अतः उन्होंने काबुल प्रदेश के जुदे जुदे हिस्से क़ायम करके हर हिस्से में मय जंगी सामान के योद्धाओं को रख दिया और विद्रोहियों के दमन करने का विधान बतला दिया।

(१६) "आमेर के राजा" (पृ० ६३) और "मान चरित्र" (पृ० ५) में लिखा है कि 'मानसिंहजी ने ५ वर्ष तक काबुल का शासन किया था। उस अवधि में उन्होंने सर्व प्रथम तूरान के बादशाह को हराया और फिर यथा क्रम यूसफ़जई, गजना खेल तथा महम्मद आदि के साथ भारी भारी लड़ाइयां कीं जिनमें हमेशः उनकी और उनके साथियों की फ़तह होती रही'। मानसिंह जी के सैनिकों ने सुन रक्खा था कि काबुली किसी के क़ाबू में नहीं आते, इस कारण उन्होंने कई बार कड़ाई का बर्ताव किया। उनकी बस्तियां बरबाद करवादीं, घर बार फुड़वा दिए, खेती बाड़ी जलवा दी और क़माकर खाने के साधन हीन कर दिये इसलिए मुन्शी देवीप्रसाद जी ने अपने ग्रन्थ "आ. रा." (पृ. ६३) में लिखा है कि 'कई बार ज़्यादा जुल्म किया था' जिनसे काबुली लोग भयभीत हो गए और उनको मान की मानमर्यादा मालूम हो गई। तब मानसिंहजी ने सीमान्त देश में एक हद्द क़ायम की जिसको छोड़ कर कोई काबुली इधर आगे न बढ़े। उस हद्द में मानसिंहजी के बसाये हुए कई गाँव और गढ़ किले अब तक मौजूद हैं और 'काबुल डाली हद्द' को बतला रहे हैं।

(१७) 'काबुल विजय' की युद्ध भूमि में मानसिंह जी के परम हित-चिन्तक सामन्त शिरोमणि चौमूँ और सामोद के अधीश्वर ठाकुर मनोहर-दास जी ने एक बड़ी ही मनोहर और सर्वोत्कृष्ट सेवा की थी जिसका स्मारक आमेर राज्य में अनन्त काल तक "पञ्चरङ्ग" के रूप में दर्शन देता रहैगा और उनकी अद्वितीय वीरता का परिचय कराता रहैगा। उस सेवा का नाम है —

आमेर का "पञ्चरङ्ग" स्थापन-इस विषय में "पुराने कागज" (नं० ३६) में लिखा है कि 'आमेर के कुशवंशी

कछवाहा भगवान् रामचन्द्र जी की गद्दी के सेवक हैं और उन्हीं के नियत किये हुए नियमों या लोकमर्यादाओं को मानते हैं।' आमेर राजवंश के तथा उन के भाई बेटों के भेषभूषा सवारी और दरबार आदि विशेष कर प्राचीन अयोध्या के अनुसार होते हैं। उदाहरणार्थ आमेर का आदू झण्डा राम राज्य के झण्डे का ही अनुरूप है। राम राज्य के सफेद झण्डे में कचनार का वृक्ष था "वाल्मीक रामायण" (अयोध्याकाण्ड९६ सर्ग के१८वें श्लोक) में भरतजी को ससैन्य वन में आये देख कर लक्ष्मण जी ने रामचन्द्रजी से कहा कि "एषवै सुमहान् श्रीमान् विटपी च महाद्रुमः। विराजते महा सैन्ये को विदारध्वजो रथे।" देखिये रथ में लगा हुआ अपना ही विजयध्वज है जिसमें कचनार का महाद्रुम (बड़ा झाड़) विराजमान है। ऐसा ही आमेर का आदू झण्डा था और उसी का अनुकरण जयपुर के झाड़ साही सिक्के (मुहर रुपया और पैसे) में किया गया था। किन्तु-

(१८) जिस समय (संवत् १६४१ से १६४४ तक) मानसिंहजी ने काबुल का शासन किया उस समय काबुल पर तूरान का बादशाह अब्दुल्लाखाँ उजबक चढ़ आया था और उसकी मदद के लिये ईरान की उत्तरी सीमा के ५ पठान् राजा आये थे। उनके आने से मानसिंहजी ने बदाशाह पर स्वयं चढ़ाई की और पठानों को परास्त करने के लिये अपने प्रधान सामन्त मनोहरदास जी को भेजा। यद्यपि पठानों के पास सैन्यबल अधिक और खूँखार पन ज्यादा था तथापि महाबली मनोहरदासजी ने उन सब को एक एक करके हरा दिया और झण्डे छीन लिये। प्रत्येक झण्डा नीले पीले लाल हरे और काले रंग का) जुदा जुदा था अतः विशेषज्ञ मनोहरदास जी ने सब को एक करके "पञ्चरङ्ग" बनाया और मानसिंहजी के भेट करते हुए निवेदन किया कि 'आमेर के सफेद झण्डे की जगह इस पञ्चरङ्ग को सदा के लिये नियत किया जाय तो यह आपकी काबुल विजय का स्थायी स्मारक रहेगा और मेरा प्रयत्न सफल होगा।'

(१९) मानसिंहजी ने मनोहरदासजी की सम्मति सहर्ष मान ली और फरमाया कि इस पञ्चरङ्ग से केवल

काबुल विजय का ही स्मरण नहीं होगा किन्तु जिस भांति आमेर के आदू झण्डे में कचनार का झाड़ होने से हमारे अयोध्या राज्य का स्मरण होता है उसी भांति इस पञ्चरङ्ग में सूर्य किरणों के पांच रंग होने से यह हमारे सूर्यवंशी होने का स्मारक होगा' यह कह कर आमेर राज्य के लिए पञ्चरंग नियत कर दिया और पञ्चरंग के पारितोषिक में आमेर का प्राचीन झण्डा मनोहरदासजी को दे दिया। वही झण्डा अब नाथावत सरदारों के ठिकानों में सुरक्षित रूप में पूजित होता है और बलभद्रोत आदि सरदारों के यहां उसीकी प्रतिष्ठा की जाती है। ठिकानों में ऐसे झण्डों की विख्याती विशेष कर निशान के नामसे है और वह उनकी हर सवारी में साथ जाते हैं।

(२०) पूर्वोक्त "पुराने कागज" (नं० ३६) में काबुल विजय का संवत १६३० दिया है और आमेर की पुरानी छड़ी देख कर बड़वा पुस्तकों में आदू झण्डा लाल और पीले रंग का बतलाया है ये दोनों बातें गलत या भ्रांति जनक हैं। क्योंकि संवत् १९७४-७५ में पंचरंग का रहस्य सर्व प्रथम मैंने प्रकट किया था। उस पर जोधपुर के इतिहास वेत्ता स्व. मुंशी देवीप्रसादजी मुंसिफ तथा अलवर इतिहास कार्यालय के विलक्षण विद्वान् माधवगोपाल जी सरडाहर ने मेरे अनुसन्धान का समर्थन किया। तब पीछे यहाँ वालों ने भी उस अनुसन्धान को (किसी ने मान के नाम से और किसी ने मनोहर के नाम से) काम में लिया है यह सन्तोष की बात है। अस्तु मेरे अनुसन्धान में कचनार का झाड़ नहीं आया था यह मुझे "पुराने कागज" से ही मालूम हुआ है।

(२१) पञ्चरङ्ग स्थापन के पीछे जिस भाँति शाही सेना के आतंक से अकुलाकर काबुली लोग अकबर की सेवा में मानसिंह जी के बदल देने की अर्जियां दे रहे थे उसी भाँति मानसिंह जी के सहगामी वहां की अति कठोर सरदी के आतंक से अकुला कर स्वदेश की बदली हो जाने के लिए ईश्वर से प्रार्थना कर रहे थे। ऐसी दशा में दोनों का हित चाहने वाले अकबर ने संवत् १६४५ में मानसिंह जी को बिहार का सूबेदार बना दिया और पटना तथा हाजीपुर उनके अधिकार में कर

दिया। "मिर्जामान" (पृ. ५१) तथा "आमेर के राजा" (पृ. ६४) से विदित होता है कि 'मानसिंहजी के सम्पूर्ण सहगामियों अथवा कुल कछवाहों को भी उसी देश में भेज दिए थे और सब को यथा योग्य जागीरें देदी थी।' इस विधान से पठानों को परास्त करने में मानसिंह जी को बड़ी सुविधा मिली। प्रथम तो उनके सहगामी राजपूत बार बार सीख लेकर घर जाते थे वह एकचित्त होगए और दूसरे उनके हमेशः मोजूद रहने से दुश्मनों या उत्पातियों को यथायोग्य दण्ड देने में सानुकूलता मिल गई। इसके सिवा एक दुविधा और थी वह यह थी कि मनोहरदास जी आदि के संरक्षण में अनेक प्रकार का आवश्यक सामान रहता था उसको हमेशः इधर उधर लाने लेजाने में बड़ी असुविधा और हानि होती थी उसके लिए सम्राट् अकबर ने उनको रोहतास का किला दे दिया उसके आजाने से वे निश्चिन्त होगए।

(२२) "सम्राट् अकबर" (पृ.२१५) में लिखा है कि 'अकबर के लिए बंगाल-बिहार और ओड़ीसा बड़े लाभदायक देश थे।' लड़ाई के मोके में अकेले बंगाल से ८०११५० पैदल ४४०० नाव ४२५० अस्त्र शस्त्र और १३०० हाथी मिल सकते थे। और पराजित अवस्था में उनके १५०००० पैदल ४००० घुड़सवार २०००शस्त्रास्त्र और बहुत से हाथी तथा नाव मिले थे। इस देश की प्राप्ति के लिए पहले बहुत प्रयास किया गया था जिसमें अगणित यवन मारे जाने से इसभूमि का नाम "मुगलमारी" विख्यात होगया था। पूर्वोक्त तीनों देशों में बिहार के लिए 'पटना' * उत्तर बंगाल के लिए 'राजमहल' * और पूर्व बंगाल के लिए

---

* "पटना" ९ मील लंबा-और १० मील चौड़ा है। उसके चारों ओर काठ का परकोटा है। पहले उसमें ६४ दरवाजे और ५७० बुर्ज थीं अब नष्ट होगई। चारों ओर २०० गज चौड़ी और ३० हाथ गहरी खायीं है। (रा० इ० पृ० ८८)पटना बिहार का सर्व श्रेष्ट शहर है। बाँकीपुर सहित वहां की आबादी १६५१९२ है मनुष्य गणना के हिसाब से पटना भारत में १५ वां बंगाल में दूसरा और बिहार में पहला शहर है। (भा.भ्र. ६२०)

* "राजमहल" प्राचीन काल में बंगाल की राजधानी था और बड़ा प्रभावशाली देखने योग्य शहर था। उसको अकबर के प्रसिद्ध जनरल मानसिंहजी ने संवत् १६४९ में

'गौड़नगर'* राजधानी थे। इन तीनों में तीनों देशों के काम होते थे। "वंशावलियों" में लिखा है कि ओड़ीसा में उत्पात करते हुए दाऊद के एक फौजी अफ़सर ने जगदीश मंदिर को नष्ट कर दिया था। मानसिंह जी ने उसका जीर्णोद्धार करवा के यथाविधि प्रतिष्ठा की और शत्रुओं को हरा कर उनको निर्बल किए।

(२३) "सम्राट् अकबर" (पृ० २४९) में लिखा है कि- "मानसिंहजी काबुल से बंगाल में आये तब उनका केम्प (जो एक प्रकार से शहर समान था और जिसके डेरे, तंबू, छोलदारियां या खेमे आदि मीलों तक फैले हुए थे और उनमें तीनों मोसम (स्याला, उन्हाला और चौमासा) सहने की मज़बूती और आगत स्वागत बैठकर दरबार या मनोरंजनादि के सभी साधन बने हुए थे और कई एक डेरे सुविशाल महलों से भी अच्छे थे वे सब) वर्तमान कलकत्ता के किले की जगह थे'। और वहीं से इधर उधर जाना आना होता था।

(२४) "आमेर के राजा" (पृ० ६५) में लिखा है कि जिस समय सम्राट् अकबर कश्मीर विराज रहे थे उसी समय लाहोर में राजा टोडरमल

बसाया था अब वह नष्ट प्राय होगया तो भी कई मकान अपनी उत्तमता, सुन्दरता, और मजबूती म सर्वोत्कृष्ट हैं। पहले इसका नाम आगमहल और आकनगर थे पीछे राजमहल नाम से विख्यात हुआ (भा० भ्र० ६९०)

* "गौड महा नगर" बंगाल के इंगिलशबाजार से ८ मील मालदा जिले में है। वह बंगाल की प्राचीन राजधानी था। अब नष्ट भ्रष्ट होगया। किसी जमाने में खास शहर ७॥ मील लंबा और २ मील तक चौड़ा था पूरा क्षेत्रफल १३ वर्ग मील था। नगर के पश्चिम में गंगा की प्रधान धारा थी। पास में महानद भी था। उसके क़िले की भींत ईंटों की थी और १०० फुट चौड़ी थी। शहर तलीसे पश्चिमी भाग में भागीरथी के निकट १६०० गज लंबा और ८०० गज चौड़ा मीठे जल का "सागर दीघी" सरोवर हिन्दुओं का बनवाया हुआ है। शहर में पहले कई लाख मनुष्य थे। ४सौ वर्ष पहले महामारी में मर गये तब सारा शहर ऊजड़ होगया (भा० भ्र० ३९१) वंशावली में लिखा है कि गोआ के एलची को मनोहरदासजी आदि ने उपरोक्त सागरदीघी में जल युद्ध दिखलाया था जिसको देखकर वह चकित होगया था। "हिन्दी विश्वकोश" (पृ०४४९) में लिखा है कि उन दिनों यहां 'कोसा' नाव, ज्यादा विख्यात थी। उसमें १मस्तूल और अनेक डाँड होते थे उसी में बैठ कर वीर क्षत्री जलयुद्ध करते और शत्रुओं को हराते थे।

* का देहान्त हुआ था। आमेर नरेश महाराज भगवन्तदासजी उनके दाग में गये थे। वहीं उनके एक दो दस्त और उलटी हुई डेरे आये वहां आते ही पेशाब बन्द होगया और पाँच दिन पीछे सं० १६४६ के मँगशिर में परलोक पधार गये उनकी मृत्यु से अकबर को बड़ा रंज हुआ। वह बड़े बुद्धिमान् और उद्यमी राजा थे। सम्राट् का उन पर अतः पर विश्वाश था। अपने पीछे से तख्त और अन्तःपुर की रक्षा उन्हीं के हस्तगत कर जाते थे और फौजी तथा मुल्की काम जो बड़े ही महत्व के थे महाराज भगवन्तदासजी करते थे। उनकी आकस्मिक मृत्यु से उनके जिम्मे का काम छोटे बेटे माधोसिंहजी को दिया और राज काज मुरतब सम्मान तथा राजा का खिताब मानसिंहजी के हस्तगत रहा।

(२५) भगवन्तदासजी की मृत्यु का समाचार मानसिंह जी के पास पटने में पहुँचा वहीं वह कछवाहों की गद्दीपर आरूढ हुए। उन दिनों सम्राट् वहां नहीं थे इस कारण मँगशिर के बदले माघ में उन का राज्याभिषेक हुआ। सम्पूर्ण भाई बेटे इकट्ठे हुए थे स्वयं सम्राट् ने सहयोग दिया था उन की ओर से टीके का दस्तूर आया था और "शाही दरबार" में बड़ी धूम धाम से राज्याभिषेक सम्पन्न हुआ था। "पुराने रीति रिवाज" से सूचित होता है कि अभ्रचुराकार के भव्य मनोहर और अभिषेचनीय विस्तृत प्रांगण में बिछात के ऊपर आमेर के समस्त शूरसामन्त तथा अकबरी दरबार के निकटवर्ती अमीर उमराव अपनी अपनी पदमर्यादा के अनुसार सुनिश्चित आसनों पर दरबारी ठाट बाट के भेष भूषा तथा विविध प्रकार के शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर यथा विधि बैठे हुए थे। उनके प्रतिभापूर्ण चेहरे तथा हृष्ट पुष्ट और बलिष्ठ शरीर, मित्रों के मन को लुभाने और शत्रुओं के हृदय में

* "राजा टोडरमल" टण्डन खत्री थे। अवध में सीतापुर जिले के तारापुर में (और दूसरों के मत से लाहर तथा चूमन गाँव में) जन्मे थे। गरीबी हालत के बचपन में मा बाप मर जाने से नोकरी की, भाग्य ने जोर किया, अकबर ने हाथ पकड़ लिया, बहुत ऊँचे ओहदे तक चढ़े। सब प्रकार के तोल-मोल-नाप-जोख भाव-ताव-रुपए पैसे-और कानून क़ायदे राजा टोडरमल ने ही प्रचलित किए थे। (म० रु० उ० पृ० १९० तथा मदनकोश आदि)

भय पैदा करने वाले थे। ऐसे ही दरबार में एक उच्चासन पर आमेर की गद्दी बिछायी गई थी और उस पर सब की अभिलाषा से वीरशिरोमणि श्रीमान् मानसिंह जी विराजमान हुए थे'। "अधिकार लाभ" (पृ. ६) से मालूम हो सकता है कि राज्याभिषेक के सम्पूर्ण विधान मनोहरदासजी ने सम्पन्न किए थे और शाही शिरोपाव तथा राजा की पदवी प्राप्त होजाने के अनन्तर सर्व प्रथम उन्होंने ही महाराज के विशाल भाल पर राज तिलक कर के नज़र की थी।

(२६) "वंशावलियों" में लिखा है कि 'राज्याभिषेक हो गए पीछे महाराज मानसिंहजी ने पितृऋण उतारने के लिए गयाजी जाकर परलोकवासी पिता के ४९ श्राद्ध करवाये और पुंनाम नरक से बचाने वाले पुत्र नाम को सार्थक किया। वहां से पटने आकर वैकुण्ठेश्वरपुरा' बसाया और 'वैकुण्ठेश्वर' का विशाल मंदिर बनवाया। पीछे गौड़नगर जाकर शासन किया। उन दिनों एक धूर्त पठान आसाम की ओर से अकस्मात आकर फौजों में अकारण हड़बड़ी मचा जाता था अतः महाराज मानसिंहजी ने लंका विजय के नाम से चढ़ाई करके उसको ब्रह्मपुत्र महानद में 'सँमदरखाण्डा पखाल्या' के रूप में हरा दिया। उसी अवसर में सहनाइची ने 'मान महीपति मान, दियो दान नहिं लीजिये'। रघुवर दीन्हीं दान, विप्र विभीषण जानके'। गाया था। "पुराने कागज" (नं. ६) में लिखा है कि मनोहरदास जी विलायत गए थे। क्यों और कब गए थे सो कुछ नहीं लिखा परन्तु "सम्राट् अकबर" (पृ. ३०७) के लेखांश से अनुमान होसकता है कि 'अकबर ने कला की उन्नति के लिये कुछ सुशिक्षितों को गोआ भेजे थे साथ में कछवाहे सरदार भी थे। अतः सम्भव है मनोहरदासजी वहाँ गये हों और पुरानी प्रथा के अनुसार दूरदेश जाने को विलायत लिखा दिया हो। "४४० जाति" नाम के महानिबन्ध में लिखा है कि 'महाराज मानसिंह जी गौड़ देश से वापस आए उस समय बहुत से परिवार उनके साथ आये थे। और यहाँ आकर यहीं के होगये थे वही गौड़ हैं।' चौमूँ के भातरों का कहना है कि हमारे मूल पुरुष वेणीदास जी भी वहाँ से ही आये थे और

हमारी कुलदेवी 'चामुण्डा' उसी देश में है जिसकी प्रति मूर्ति चौमूँ के 'देवीजी' हैं। अस्तु।

(२७) "मानसिंहजी"

(२८) महाधनुर्धर दिग्विजयी राजा थे। उनके (१) दान (२) वीरता और (३) स्मृति चिन्ह संसार में चिरकाल तक बने रहेंगे। (१) "दान" १ दासा २ नरू ३ किसना ४ हरपाल ५ ईसरदास और ६ डूँगर कविया को १-१ 'कोड़पसाव' प्रत्येक को दिया जिस में हाथी, घोड़ा, ऊँट रथ, कपड़े, तलवार, कटारा, जेवर, कण्ठा, चाँदी, सोना और गाँव थे। इसी प्रकार कलाविदों, विद्वानों और अन्य कवियों को लाखों रुपया दिए थे। छापा बारहट जैसे चारण उनके दिए सौ सौ हाथी रखते थे। मान के गोदान की सम्पूर्ण संख्या १ लाख थी और बाला घाट के भारी अकाल में १) का ऽ१ सेर अन्न भी नहीं मिला तब आपने आमेर से अन्न मँगवा कर कई महिनों तक अगणित मनुष्यों को भर पेट भोजन दिलाया था। (२) "वीरता" के विषय में आपकी विशेष आयु युद्धों में व्यतीत हुई थी। ७० वर्ष की उम्र में ५५ वर्ष लड़ाइयों में ही बिताए थे। और साम्राज्य का पौण हिस्सा आपने ही बढाया था।' युद्धों में १। संवत १६१७ वाग युद्ध, २। १६२० अठ-गीनी ३। १६२१ खींची वाड़ा ४। १६२४ चित्तौड़ ५। १६२५ रणथंभोर ६। १६२८-२९ गुजरात-अहमदाबाद-सूरत-खम्भात ७। १६२९-३० शेरखाँ फौलादी ८। १६३१ इख्तियारुलमुल्क, ९। १६३१ पटने का जहाजी बेड़ा १०। १६३३ झुगलमारी, ११। १६३४-४० मेवाड़ १२। १६३५ सिंध लाहौर पंजाब १३। १६३८ मिर्जाहकीम १४। १६४१-४४ काबुल, ईरान, तूरान १५। १६४५-५५ बंगाल, बिहार, ओड़ीसा और १६ सम्वत १६५०-५५ से ६५ तक विभिन्न देशों के विविध युद्ध अधिक प्रसिद्ध हैं जिनमें वह सदैव विजयी हुए थे। कई बार १ लाख सेना वाले शत्रुओं का भी संहार किया था और *शिला माता आदि के लाने में उनका अमर नाम हुआ था इसी प्रकार (३) "स्मृतिचिन्ह" भी भारत से बाहर तक हज़ारों हैं। उनमें अधिकांश देश, शहर, गाँव, कस्बे, घाट, तालाब, गढ़, किले और परकोटे आदि उन्हीं

* "शिलमाता" का परिचय १५ वें अध्याय में दिया गया है।

के नाम से विख्यात हैं। यथा बङ्गाल में मानभूमि, वीरभूमि, सिंहभूमि-आमेर में मानसागर, मानसरोवर, मानतालाब, मानकुण्ड, काशी में-मानघाट, मानमंदिर, मानगाँव, काबुल में-माननगर, मानपुरा, मानगढ़, अन्यत्र-मानदेवी, मानबाग, मानदरवाज़ा, मानमहल, मानझरोखा, मानपत्तन और मानशस्त्र आदि हैं। इनके सिवा १ शिलामाता २ गोविन्ददेवजी ३ कालामहादेव ४ हर्षनाथभैरव ५ आमेर के महल ६ जगत शिरोमणि मंदिर ७ वहाँ के किले ८ परकोटे ९ जयगढ़ और १० साँगानेर ११ मोज़माबाद १२ पुष्कर १३ अजमेर १४ दिल्ली १५ आगरा १६ फतेहपुर १७ और रोहतासगढ़ आदि के महल तथा १८ मथुरा १९ वृन्दावन २० काशी २१ हरद्वार २२ पटना २३ और राजमहल आदि के घाट कुञ्ज, मंदिर, ब्रह्मपुत्र का-सलीमनगर २५ अटक का अटकबनारस २६ एलिचपुर और जयपुर के कई मंदिर मुहल्ले महल और ताल आदि हैं। २७ जयपुर राज्य के कछवाहों में ईसरदा, झिलाय, सिवाड़, बरवाड़ा, वालेर और सुनारा आदि के उग्रप्रतापी 'मानसिंहोत' हैं। यह किंचिन्मात्र परिचय यहां चरित्र पूर्ति के लिये दिया है। विशेष के लिए "मानप्रकाश" "मानचरित्र" "मानभारत" "आमेर के राजा" "सम्राट् अकबर" "अकबर" "टाडराजस्थान" "इतिहासराजस्थान" "राजपूताने का इतिहास" "देशीरियासतें" "चरितांबुधि" "मदनकोश" हिंदीविश्वकोश" "मआसिरुल उमरा" "अकबर नामा" "अकबरी दरबार" "वीर विनोद" और पाँचों "वंशावली" आदि बड़े बड़े बीसों ग्रन्थों के हज़ारों पृष्ठ भरे हुए हैं। जिनकी पूरी तो क्या अधूरी सूची भी यहाँ नहीं दी जासकती है फिर भी मान के स्मृति चिन्हों में (१) कांबुल की 'महाकाय तोप' (२) रङ्ग बुनाई और चित्रांकन के 'ईरानी गालीचे' (३) अठारह गज चौड़े पहने की लंबी पूरी 'तूरानी चादर' (४) वर्त्तमान समय के मनुष्यों से उठाया भी न जासके ऐसा उन के नित्य धारण करने का 'खड्ग' और (५) मीनाकारी पचीकारी या चित्रकारी में अद्भुत अलौकिक अद्वितीय एवं विलक्षण बनावट की लाठी सर्वोत्कृष्ट हैं।

(२९) प्रसंगवश यहां मान के ज़माने के 'भारत की दशा' दिखा देना

अनेक अंशों में आवश्यक प्रतीत होता है (उन दिनों भारत में कहीं कंगाली नहीं थी। अकेले पटने में २४००बीघा कपास और १८००बीघा ईख होता था। बंगाल में ३३०४२६ स्त्री सूत कातती थी। दिन में ६ घंटा काम करने पर भी वर्ष में १०८१००५) का लाभ होता था। फतवा-गया-नवादा आदि में टसर बहुत होता था। शाहाबाद की १५९५०० स्त्रियां १२॥ लाख वार्षिक कमाती थीं। कुल बंगाल में ७९५० कर्घे थे। इनसे साल में १६ लाख का कपड़ा तैयार होता था। सुगंधित वस्तुएँ, बढ़िया इत्र, कागज, नमक और तेल आदि अलग थे। भागलपुर में २) के १) मण चावल थे। १२०० बीघे में कपास होती थी। टसर के ३२७५ और सूती कपड़ों के ७२७९ कर्घे चलते थे। १७५६०० स्त्रियां चर्खा कातती। ४११४ कर्घे चलते थे। २ से ४ सौ तक प्रति वर्ष नाव तैयार होती थी। चीनी के कई कारखाने थे दीनाजपुर में ३९००० बीघे में और पटुआ में २४०० बीघे में कपास तथा २४००० में ऊन १५००० में तिल और १५०० में तमाखू होती थी। १३ लाख से ज्यादा बैल थे। विधवायें सूत कात कर भी ९१५००० पैदा कर लेती थीं। ५ सौ घरों में रेशम तैयार होता था। उसमें १। लाख वर्षिक नफा था। कपड़े वाले ६११७) का माल तैयार कर लेते थे। पुर्निया में ३ लाख की कपास से १२ लाख का कपड़ा बनता था। मोटे कपड़े के १० हज़ार कर्घे थे उनसे ३। लाख पैदा होते थे। और सब प्रकार के सुख साधनों की सभी सामग्री सस्ती और सुलभ होने से राजपूताना प्रांत की प्रजा में राजा राज्य और प्रजा चैन की ध्वनि सर्वत्र सुनाई देती थी। (हिं. वि. को.) "अन्नादि के भाव" गीहूँ १) के २) मन, चणे १) के १॥) मण मसूर २) मण जौ १॥) मण चना १)४ सेर घटिया चावल २५ सेर बढ़िया साठी चावल ।) मूँग १)५ सेर उड़द १॥) मौठ, २।) तिल १॥) जुवार २॥), मैदा १।) घी १० सेर तेल ।)५, सेर दूध १), दही १)४ चोणी ।), खांड ॥) नमक १॥) मिरच ॥)६ पालक १॥) पोदीना ॥)६ काँदा ४) मन लहसुन ॥)६, अंगूर ।)५, अनार ऽ५ सेर ऽ३ सेर, खरबूजा ॥)६, छोटी दाख ऽ५ सेर सुपारी १)६ बादाम ऽ४ पिस्ता ऽ५ अखरोट ऽ६ चिरोंजी १॥ मिसरी ऽ६ हलदी ॥) और केसर १) रु०

की १। तोला थी (रा. पू. इ. २४४) ऐसे सस्ते समय में अवश्य ही सब सुखी थे। (पूर्वोक्त तोल ८० तोले के सेर के अनुसार बना हुआ है) अस्तु।

(३०) दैवगति बड़ी विलक्षण होती है। साम्राज्य की रक्षा और वृद्धि के लिए सम्राट् अकबर की सेवा में मान और मान की सेवा में मनोहर रहे थे। इन तीनों ने तीन तन और १ मन होकर कई काम ऐसे किए जिनसे सम्राट का साम्राज्य शत्रुहीन हुआ, आमेर के सामन्त उन्नत हुए, देशों में शांति बढ़ी और दैवयोग से तीनों ही थोड़े थोड़े अन्तर से आकर चले गए। (अकबर $\frac{१५६६}{१६६४}$ में। मनोहर $\frac{१६००}{१६६५}$ में और मान $\frac{१६०७}{१६७०}$ में आये और गये थे।) तीनों का सहयोग लगभग चार युग (४८ वर्ष) रहा। इन में सर्व प्रथम संवत् १६६२ के मँगशिर सुदी २ बुधवार ता० २७-१०-१६०५ को 'सम्राट अकबर'* की मृत्यु हुई। उनके परलोक वास से जहांगीर ने दिल्ली का सि-

*"सम्राट अकबर" हुमायूँ की पत्नी मरियम के उदर से अमर कोट के पास संवत् १५९९ की काती में उत्पन्न हुए तब हुमायूँ ने केवल कस्तूरी बाँटकर पुत्र जन्मोत्सव पूर्ण किया। बचपन बीतते ही संवत् १६१३ में बादशाह बने। अनक्षर (१) शिवाजी (२) रणजीतसिंह और (३) हैदर अली की भांति (४) अकबर भी निरक्षर थे किन्तु भगवान् ने इन चारों को भाग्य और बुद्धि दी थी अतः ये जो कुछ कर गए वह महाविद्वान् बादशाहों से नहीं बना। (स० अ० ६६) उनका राज्याभिषेक लालरंग के शाही सामियाने में हुआ। सोने के डंकों से चांदी के नगारे बजाए और नजरें हुईं (अ० द० २०६) उसी साल पानीपत में विजय हुई। सं० १६२२ में पानी के चोवे नींव लगाकर आगरे का किला बनवाया। लोहे के कुन्दों में लाल पत्थर जड़ कर उसे चुनवाया। वह ३५ लाख के खर्च से ८ वर्ष में तैयार हुआ। तब पीछे दो जगह के आगरे को एक जगह बसाया। अकबर सबको राजी रखते थे हिन्दू मुसलमान के साथ समान वर्ताव करते और आपस में नाराज नहीं होने देते थे। हिंदुओं के देवी-देवता, धर्मशास्त्र, उपासना, तीर्थ-स्थान व्रतोत्सव और वर्ताव व्यवहारादि का सानुराग सम्मान करते थे। (स. अ.) सूर्यसहस्र नाम
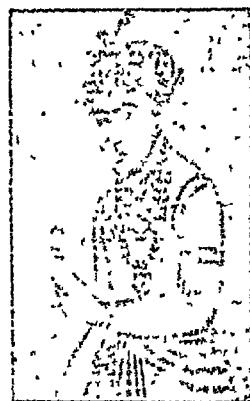
हासन प्राप्त किया और मानसिंहजी को बंगाल से बुलाकर जड़ाऊ तलवार; खासा घोड़ा; जरीकी जीन, बढ़िया ज़ेवर और ४ कब (पतले पदार्थ पीने के पात्र) देकर ५०००० सवारों की जगह उसी बंगाल में भेज दिया।

का नित्य पाठ करते, तिलक लगाते, चरणामृत लेते, राखी बँधवाते, पर्वदिनों में मांस नहीं खाते अयन के दिन सूर्य किरणों से आग बना कर वर्ष भर रखते और उसी में हमेशः हवन करते थे। गंगाजल पीते और उसे आदर पूर्वक रखते थे। (स. अ.) अकबर के यानासनशय्याआदि में सोना चाँदी मणि मोती (जवाहरात) और जरी आदि होते थे। परदे, बिछात, पायंदाज और सिंहासनादि भी भारी मूल्य के बने थे। वह नित्य स्नान, उपासना, कसरत और शास्त्र श्रवणादि करते और २० कोस तक पैदल चले जाते थे। उनकी सालग्रह के दिन १ सोना, २ चांदी, ३ तांबा, ४ लोहा, ५ पारा ६, अन्न ७ फलफूल, ८ रेशम, ९ इत्र, कपूर, कस्तूरी, १० दूध, दही, घी, ११ मेवा और १२ ईख इन १२ पदार्थों की १२ तुला होकर दान दिए जाते थे। (स. अ.) 'तमाखू' उन्हीं के जमाने में अमेरिका से अरब होकर भारत में आई थी। पहले पहल पोर्चगीजों ने लाकर नजर की थी। (भा. द.) उसके लिए सोने की कली चाँदी की नै (नली) रत्नादि का नैचा और विविध धातुओं की चिलम बनवाई गई और धूम्र पान किया। (आयुर्वेद में औषधियों से बने हुए रोगानुकूल धूम्रपान के विविध विधान प्राचीन काल से चले आरहे हैं।) अक़बर हिन्दू शास्त्रों के अनुरागी थे उन्होंने लाखों रुपए लगाकर वाल्मीक रामायण और महाभारत आदि के सानुवाद सचित्र संस्करण तैयार करवाए थे। अकेले महाभारत में ५ लाख लगे थे। अबुलफैजी उनके दरबारी पण्डित थे उन्होंने अथर्ववेदादि के अनुवाद किए थे। उपनिषदों में अल्लोपनिषद नया बना कर मिलाया था। सम्राट ने साम्राज्य के १८ सूबे बना कर उपज का तीसरा हिस्सा हासिल लिया था। बढ़िया बीज अलग रखवा कर खेती करवायी थी। सब प्रकार के कला कौशल को उन्नत किया था। अनेक प्रकार के कारखाने खोले थे। विद्वानों के प्रेमी थे उनके १५ कविराज- ५९ कवीश्वर और १४२ पण्डित थे। (स. अ. ४) इनके सिवा निज के दरबार में १ स्फुरत्प्रज्ञ बीरबल। २ महाबली मानसिंह। ३ प्रधान मन्त्री अबुलफज़ल। ४ अनुवादक अबुलफैजी। ५ व्यवस्थापक टोडरमल। ६ सलाहकार अब्दुर रहीम। ७ संगीतज्ञ तानसेन। ८ साहसी गोकुलदास और ९ अनुगामी सूरदास, ये ९ नररत्न (या नौ रत्न) थे। अबुलफलज ने आईनए अकबरी आदि बनाये थे उनका जन्म सं० १६०८ था। यह २२ सेर खाते और ८० मण खिलाते थे। अनेक प्रकार के आश्चर्यजनक खेल देखे थे। अबुलफैजी १६०४ में जन्मे थे। मान

(३१)वहाँ जाकर आपने यथा पूर्व अच्छा शासन किया और प्रत्येक प्रकार की असुविधायें दूर करवाईं। किन्तु अकबर की मृत्युअवस्था का ढलाव, साथियोंका अनुरोध और स्वदेश दर्शन की अभिलाषा आदि से विवश होकर बादशाह से आमेर आने की आज्ञा ली और सेना तथा सहगामी शूर सामन्तों सहित स्वदेश आगए। इस बार बहुत वर्षों के बाद आपका पधारना हुआ था और आपके दर्शनों की प्यासी प्रजा बहुत दिनों से बाट देख रही थी इस कारण उस अवसर में आपका बड़ी धूम धाम से स्वागत किया गया और सम्पूर्ण प्रजा ने अन्तःकरण के उत्साह से उत्सव मनाया। स्वागत

ने जो कुछ किया था वह इस अध्याय में लिखा ही है। उनके आतंक से सशंक होकर सम्राट् नें प्रचुर संपत्ति दी थी। तान की तान से पशु पक्षी भी अपने को भूल जाते थे और टोडरमल ने सब व्यवस्था बनायीं थी (स. अ. ३७०) अकबर के ४२ टकसाल थीं। उनमें अनेक प्रकार के सिक्के ढलते थे। पशुशाला में २५-२५ सेर दूध देने वाली ५००० की गाय और १५हज़ार तक के घोड़े थे फौज में४५ लाख सैनिक ५०हज़ार सवार ५ हज़ार हाथी और सवा लखा पैदल थे। ५सौ से १० हज़ार तक के ४१५ मनसबदार थे राज्य के आय व्यय का परिणाम ३०करोड़ का लाभ था। अकबर कई प्रकार की कला जानते थे। उन्होंने कई मशीन बनायी थीं। उनमें एक मशीन ऐसी थी जो गाड़ी के पैड़े के घुमाव से चलती और आटा पीसती।२। दूसरी के एक चक्के से कूए का पानी निकलता। ३। तीसरी से एक ही बार में कई तोप और बन्दूक साफ़ होजातीं ४ चौथा एक काच था जिसमें अनेक प्रकार की मूर्ति दीखती और ५ पांचवें उनके महल में १२ दीपक बिल्लौर के, १२ चांदी के और १२ सोने के थे उनमें पाव की बत्ती और सेर भर तेल प्रत्येक में जलता था। काबुल की लड़ाई में उन्होंने अपनी बनवाई शीशम की गाड़ियां भेजी थीं उनका १भी पाचरा ढीला नहीं हुआ। उनके ज़माने के विद्या व्यवसाय कलाकौशल युद्धोपकरण वीरता चतुराई और खेल तमासे सभी में भारतीय चमत्कार भरे रहते थे। उदाहरणार्थ उनके दरबार में १ बाजीगर रस्सी को ऊपर फेंक कर खड़ी करके उसके द्वारा आकाश में चला गया। वहाँ जाकर युद्ध किया वहीं मारा गया। उसके हाथ पाँव कट कट कर नीचे आए। उसकी पतिप्राणा स्त्री ने अकबर से लकड़ियां लेकर मृतांगों के साथ शरीर को सबके सामने जला दिया। राख होने पर पति उसी रस्सी से उतरा अकबर से अपनी स्त्री माँगी। वह जल चुकी थी अन्त में अकबर के अंत:पुर (जनाने में से) उसी स्त्री को वही बाजीगर ले आया और अबुलफजल ने उस खेल का पूरा हाल अपने ग्रन्थ में लिख लिया। कैसा अद्भुत खेल था अमेरिका वाले इसको स्वयं करना चाहते थे किन्तु रस्सीके द्वारा ऊपर के अदृश्य आकाश में नहीं चढ़ा गया। अस्तु।

सम्बन्धी सम्पूर्ण कार्य समाप्त होने पर महाराज मानसिंहजी ने चौमूँ सामोद या हाड़ोताके अधीश्वर मनोहरदासजी को मान, पुरस्कार और जागीर आदि से अलंकृत करके उनको प्रेम पुलकित अवस्था में बिदा किया और वह अपने अधिकृत सैनिकों एवं सहगामियों सहित सहर्ष हाड़ोता पधार गये।

(३२) "मआसिरुल उमरा" "आमेर के राजा" और "मिर्जामान" आदि से स्पष्ट मालूम होता है कि 'महाराजमानसिंहजी के सहगामियों को बंगाल बिहार ओड़ीसा और काबुल आदि में जागीरें दी गई थी।' उनमें कार्य या अवधि समाप्त होने पर जो सरदार स्थाई रूप से स्वदेश आगये उनको वीरता या अधिक सेवा आदि के अनुरोध से उतनी ही जागीर यहाँ विशेष दिलादी गई। इस कारण कई जागीरदारों के पूर्व लब्ध राज की और परलब्ध बादशाही जागीर विख्यात हुई थी। अस्तु।

(३३) कुछ दिन तक सामोद के साथ में हाड़ोता रहने से मनोहरदासजी ने दोनों ठिकानों की सम्हाल की और बिहारीदासजी के सामोद आगए पीछे हाड़ोता की उन्नति पर ध्यान दिया। उन दिनों हाड़ोता आय और आबादी में वर्तमान की अपेक्षा बहुत ही बढ़ा हुआ था उसकी भूमि में सर्वत्र जल बहता था और कूओं का जल सेवा था। इस कारण जौ, गेहूं, मक्का, बाजरा, तिल, कपास, सण, काकड़े और ईख आदि सभी वस्तु ज्यादा मात्रा में पैदा होती और देश देशांतरों में जाती थी। हाड़ोता और भोपावासके बीच की भूमि में ईख पेरने-गुड़ बनाने, उसे बाहर भेजने और व्यवहार करने के कई स्थान थे जो 'कारखाना' के नाम से विख्यात थे। यही कारण है कि उन दिनों का चौमूँ छोटा सा अच्छा शहर होने पर भी 'हाड़ोता की ढानी' कहलाता था और अब वही हाड़ोता समृद्धि से हीन हो जाने के कारण 'चौमूँ के समीप की ढाणी' कहलाता है। समय और सम्पति का यही महत्व है। ये सब के स्वरूप बदल देते हैं। अस्तु।

(३४) हाड़ोता आने के कुछ दिन बाद मनोहरदासजी का वहीं वैकुण्ठवास होगया। वह जिस प्रकार वीर

और देश हितैषी थे उसी प्रकार राज-भक्त और ईश्वर भक्त भी थे। उन्होंने हाड़ोता में भगवान का मंदिर बनवाया था और उसमें मुरली मनोहरजी की मूर्ति विराजमान की थी। कालान्तर में मंदिर की जीर्ण दशा होजाने से और हाड़ोता के बदले चौमूँ राजधानी बन जाने से वह मूर्ति चौमूँ-शहर के अन्दर लक्ष्मीनाथ के मंदिर में पधरा दी गई और अब वहीं पूजी जाती है।

(३५) मनोहरदासजी के महत्व सम्बन्ध में चन्द कवि ने अपने "नाथ वंश प्रकाश" (पद्य १४) में उनको पाँच पाण्डवों में युधिष्ठिर माने हैं। यथा नाथाजी के ५ पुत्र थे उनमें (१) धीर वीर गम्भीर सदाचारी प्रण पालक और धर्म परायण मनोहरदासजी 'युधिष्ठिर' सम थे। (२) युद्ध रचना, शास्त्र चर्चा और रणकौशल में रामसहायजी अर्जुन' तुल्य थे। (३) शत्रु संहार में महाकाय केशवदास 'भीम' समान माने गए थे। (४) निश्छल व्यवहार में आदर्श, शत्रु संहार में अडिग और राजभक्ति में अद्वितीय बिहारीदास 'नकुलोपम' थे। और (५) सत्कर्मों में यशोवन्त होने से जसवन्त 'सहदेव' जैसे थे। अस्तु।

(३६) मनोहरदासजी के ५ विवाह हुए थे। उनमें (१) सहजकुँवरि (सक्रवालजी) कूकस के राव नारायणदास की पुत्री (२) अमलकुँवरि (निर्वाणजी) माहूता के राजा उग्रसेन की पुत्री (३) लाड़कुँवरि (बड़गूजरजी) तीतर वाड़ा के डूँगरसिंह की पुत्री (४) रतनकुँवरि (सोलंकनी जी) टोडा के राव सुरतान की पुत्री और झूँमकदे (मेड़तणी जी) मेड़ता के केशोराम की पुत्री थी। इनके १४ पुत्र हुए उनमें (१) जैतसिंहजी जैतपुरा के मालिक हुए। इनके वंशज जाजोद में हैं वही सीकर के टीकाईभी हैं। (२) मथुरादास जी भगवन्तगढ़ गए (३) इन्द्रजीतजी (४) पृथ्वीजीतजी (५) रावतसिंह जी अपुत्र रहे (६) कर्णसिंह जी चौमूँ के मालिक हुए (७) अचलो जी (८) कल्याणजी अपुत्र रहे (९) अखैराज जी अखैराजपुरे गए (१०) मदनसिंहजी सांवली गए (११) कीर्तिसिंहजी अपुत्र रहे (१२) हररामजी (चौमूँ के पास) लोरवाडे गए (१३) एक अज्ञात रहे और (१४) गोकुल दासजी लालासर बावड़ी गए। अस्तु स्मृति चिन्हों में

मनोहरदासजी की चौथी राणी (जिन के करणसिंहजी ने जन्म लिया था) ने संवत् १६२६ में चौमूँ की बावड़ी बनवाना आरंभ किया था और वह संवत् १६४० में पूर्ण हुई थी*। उन्होंने ही संवत् १६४२ में सामोद में नाथाजी की छत्री बनवायी थी और स्वयं मनोहरदास जी ने संवत् १६४४ में काबुल विजय के स्मृति चिन्ह 'पञ्चरंग' को आमेर का विजयध्वज नियत करवाया और वहाँ का सफेद झंडा अपने लिए प्राप्त किया था।

(३७) पहले लिखा जाचुका है कि नाथाजी के बड़े पुत्र मनोहरदास जी और छोटे रामसहायजी थे। इन दोनों भाईयों के दो थांभे हैं। उनमें मनोहरदासजी के वंशज 'मनोहरदास जी वाले' और रामसहायजी के वंशज 'रामसहायजी वाले' कहलाते हैं इन लोगों में जब कभी छोटे बड़े का विचार होने लगता है तब भ्रांतिवश रामसहाय जी वालों को बड़े और मनोहरदासजी वालों को छोटे मानलेते हैं। इसका कारण यह बतलाया जाता है कि मनोहरदासजी को हाड़ोता मिला तब उनकी आदू गद्दी रामसहाय जी वालोंके अधिकार में आई थी। परंतु वंशानुक्रम के अनुरोध से मनोहरदास जी ही बड़े थे। वंशवृत्त, वंशावली और पीढियों के वर्णन में सर्वत्रमनोहरदास जी को बड़े बतलाए हैं। आरम्भ में सामोद की गद्दी और पीछे सामोद तथा हाड़ोता की गद्दी दोनों पर अधिकार रहने से और धार्मिक दृष्टि से भी मनोहरदासजी ही बड़े थे।

* 'जनश्रुति'—में ऐसा विख्यात है कि चौमूँ के पूर्व द्वार की अति विशाल सुन्दर बावड़ी 'लक्खी बनजारा' की बनवायी हुई है। सम्भव है उसने अनुपस्थिति आदि कारणों से इसे मनोहरदास जी के मार्फत बनवायी हो जिसमें ठाकुर साहब की पूर्ण सहानुभूति या सहायता रही हो। आगरा के देहात में बनजारे के वंशज हैं उनका भी यही कहना है।

छटा अध्याय

समाप्त

॥ श्रीः ॥

नाथावतों का इतिहास।

करणसिंहजी

(७)

[आगे के आशय पर किसी प्रकार का भ्रम भ्रांति या सन्देह न हो इस विचार से आरम्भ में यह सूचित कर देना उचित समझा है कि आमेर नरेश महाराज मानसिंहजी आदि की सेवा में रह कर नाथावत सरदारों ने सपरिवार निरन्तर विदेश वास किया था इस कारण करणसिंहादि के जन्म मरणादि की बहुत सी बातें या उनके मिती संवत् विस्मृति के अन्धकार में अलक्षित हो गए हैं, विशेष कर करणसिंहजी और सुखसिंहजी की जीवन घटनाओं में यह अन्तर ज्यादा हुआ है अतः इन अध्यायों में जो बात निराधार जान पड़े उसे विशेषज्ञ साधार कर देने की कृपा करें।]

(१) महाबली मनोहरदास जी के परलोक पधारे पीछे उनके छटे पुत्र करणसिंहजी को हाड़ोता की जागीर मिली। इस का यह क़ायदा है कि परलोक वासी के बड़े पुत्र को जागीर मिले। कदाचित् वह हीनांग हो, अपुत्र हो, मरगया हो, या दूसरे ठिकाने में गोद चला गया हो तो उसके बड़े बेटे को या छोटे भाई को दी जाय। इसके अनुसार मनोहरदास जी के १४ पुत्रों में सब से बड़े (१) जतसिंहजी जैतपुरा और उनसे छोटे (२) मथुरादास जी भानगढ़ गोद चले गए थे और उनसे छोटे (३) इन्द्रजीतजी (४) पृथ्वीजीतजी तथा (५) रावतसिंहजी अपुत्र मरे थे। इस कारण छोटे पुत्र करणसिंह जी उत्तराधिकारी हुए। उन से छोटे ८ पुत्र और थे उनमें ४ को पृथक् जागीर मिली थी और ४ अपुत्र थे।

(२) पुराने काग़जों से सूचित होता है कि करणसिंह जी की जीवन घटनाओं में (१) पिता के उत्तराधिकारी होना (२) जगतसिंहजी के साथ रहना (३) मीरों को हराना (४) कन्दहार के बादशाह को परास्त करना

(५) चौमूँ को बसाना (६) जगता को पकड़ना (७) शिवाजी को लाना और (८) काँगड़ा की लड़ाई में विजय पाकर वैकुण्ठ वासी होना आदि मुख्य हैं। परन्तु इनमें दो तीन घटना ऐसी अस्तव्यस्त हुई हैं जिनको अन्य इतिहासों के आधार से सुधारी हैं "तवारीख़ नाथावतान्" में लिखा है कि 'करणसिंहजी पिसर कलाँ बाद मरने अपने वालिद मनोहरदास जी के जानशीन हुए संवत् १६४० में'—इसका अंग्रेज़ी अनुवाद "शार्ट हिस्ट्री" (पृष्ठ १०) में और हिन्दी अनुवाद "नाथावत सरदारों का संक्षिप्त इतिहास" (पृष्ठ ५) में शब्दानुरूप हैं। परन्तु अनुमान से मालूम होता है कि "तवारीख़ नाथावतान्" की कई बातें जबानी सुनी हुई हैं और उनकी असलियत का अनुसन्धान विना हुए ही वे प्रसिद्ध पुस्तकों में प्रविष्ट होगई हैं अतः सँवत् १६४० में मनोहरदास जी का मरना मान लेना सर्वथा असंगत है। क्योंकि उस समय नाथाजी मरे थे और उनके जानशीन करण नहीं मनोहर हुए थे। इसी प्रकार सम्वत् १७०१ में शिवाजी का दिल्ली लाना भी असंबद्ध है। यदि संवत् १६४० में करणसिंह जी का अपने पिता के उत्तराधिकारी होना और संवत् १७०१ (नहीं २३) में शिवाजी का लाना मान लिया जाय तो कई बातें असंगत होती हैं। प्रथम तो भट्ट ग्रन्थों में नाथाजी की जीवन घटनाएें संवत १६३८-३९ तक मिलती हैं जिससे संवत १६४० के पहले नाथाजी का मरना संभव नहीं। दूसरे १६४० में करणसिंहजी उत्तराधिकारी हुए और १७२३ में शिवाजी को लाए तो उनका ८३ वर्ष तक राज करना इस वंश में असंभव या अद्वितीय होता है। और तीसरे करणसिंहजी १६४० में मनोहरदासजी के ही उत्तराधिकारी हुए तो फिर मनोहरदासजी का महाराज मानसिंहजी की सेवा में रह कर संवत् १६४० से आगे तक के २२ युद्धों में विजय पाना, संवत् १६४४में काबुल से पचरंग लाना और १६६०-६२ में आमेर आकर पुरस्कार पाना आदि बातें किस अवसर में घटित हो सकती हैं। अतः "तवारीख़ नाथावतान्" की बहुत सी बातें अवश्य ही अस्त व्यस्त या असंगत हैं। अस्तु।

(३) इसमें सन्देह नहीं कि करणसिंहजी अपने पिता के समान वीर, साहसी, राजभक्त और आदर्श हितैषी

थे और साम्राज्य की रक्षा एवं वृद्धि के लिए उन्होंने तन-मन-या-धन ही नहीं प्राणोंतक का तृणवत् त्याग किया था। जिस प्रकार महाराज मानसिंहजी के साथ में रहकर मनोहरदास जी ने अपना अगाढ़ पुरुषार्थ प्रकट किया था उसी प्रकार जगतसिंहजी के साथ में रहकर करणसिंह जी ने अपनी बढ़ी हुई वीरता दिखलायी थी। कई युद्धों में जगतसिंह जी का और करणसिंह जी का बहुत वर्षोंतक सहयोग रहा था। करणसिंहजी ने जगतसिंहजी के साथ रहकर देश हित के वैसे ही काम किए थे जैसे मानसिंह जी के साथ में रह कर मनोहरदास जी ने किए थे। "इतिहास समुच्चय" से जाना जासकता है कि कई बार मानसिंह जी के लिए ऐसी स्थिति उपस्थित होजाती थी जिसमें उनको शत्रुओं के साथ युद्ध करते रहने की अवस्था में भी दूसरी जगह के उठे हुए उत्पात शान्त करने के लिए तत्काल जाना पड़ता था। ऐसी अवस्था में उनकी एवज जगतसिंह जी काम करते और करणसिंह जी उनके सहगामी रहते थे।

(४) "पुराने कागज" (नंबर ३) में लिखा है कि 'करणसिंहजी ने खोरी के मीरों को मारे थे।' यह युद्ध उन्होंने आमेर नरेशों की सेवा में रहकर सम्राट अकबर की आज्ञा एवं स्वदेश की सेवा के अनुरोध से नारनौल के समीप किया था। "भारत भ्रमण" आदि से विदित होता है कि 'किसी ज़माने में खोरी के मालिक मीर थे। उनको धन-जन आदि का बल मिलजाने से ज़ागीर के बदले आज़ादी का घमण्ड ज़्यादा होगया था। इस कारण वे बादशाही राज्य के अन्तर्गत अनेक स्थानों में हमेशः ऊधम उत्पात करते और साम्राज्य की रक्षा के विधानों में विघ्न डालते थे। इस कारण सम्राट् अकबर ने जगतसिंह जी के संरक्षण में फौजें भिजवायी' और करणसिंह जी उनके सहगामी हुए। मौके पर पहुँच कर उन्होंने अपनी वीरता का उसी प्रकार परिचय दिया जिस प्रकार काबुल में मनोहरदास जी आदि ने दिया था। करणसिंह जी के खड्ग प्रहार को मीर नहीं सह सके, उनका अमिट घमण्ड थोड़े ही समय में समूल मिट गया और वे परास्त होकर पैरों पड़ गए। "पुराने कागज" (नं० ६) में मीरों के बदले 'मेवों को मारे' लिखा है परन्तु जो घटना नारनौल के पास वाली खोरी

की है उसमें करणसिंहजी गए थे और मेवों की घटना, अलवर के समीप वाली खोरी की है उसमें करणसिंहजी के पुत्र सुखसिंहजी गए थे। दो गाँवों का एक नाम होने से पुत्र के बदले पिता को और पिता के बदले पुत्र को भ्रमवश एक मान लिये हैं। अस्तु।

(५) "शार्ट हिस्ट्री" (पृ० १०) में लिखा है कि 'करणसिंह जी ने जंबू के जगता पहाड़िया को पकड़ कर कैद किया था।' इस अंशकी पूर्ति "भारत भ्रमण" (पृ० ५१२) के निम्न लिखित आशय से होती है। उसमें लिखा है कि 'कश्मीर राज्य की दक्षिण पश्चिम सीमा के पास 'तावी नदी' के किनारे "जम्बू" एक सुन्दर कस्बा है। उसकी पहाड़ियों में बढ़िया सुरमा, अनेक रंग के रींछ और कस्तूरी वाले हिरण होते हैं। जम्बू के किनारे की दीवार के निकट पूर्व की तरफ एक पुराना महल है उसके अन्दर एक चौक से जाना पड़ता है। किसी ज़माने में जगता पहाड़िया इसी जम्बू का राजा था पहाड़ी की घाटी और जंगल के आडंबर ही उसकी राजधानी थे और वह धूर्त साहसी तथा डकैत था।' जनश्रुति में ऐसा विख्यात है कि उसके पास १५०० वीर थे। वह उनका सरदार था। उसका शासन प्रजा के लिए दुःशासन होरहा था। धाड़ा डकैती या मारकाट आदि कामों से वह प्रजा को हैरान रखता और आते जाते राहगीरों को लूटता था। "पुराने काग़ज" (नं० १) और "भारत भ्रमण" (पृ. ५१२) आदि से आभासित होता है कि संवत् १६४३ में शाही सेनाऐं साथ लेकर करणसिंह जी ने जगता पर चढ़ाई की और जंबू में जाकर जगता को पकड़ लाये। इस साहस पूर्ण काम से सम्राट् को सन्तोष हुआ किन्तु वह फिर भाग गया। "वीर विनोद" (पृ० ६३) में जगता का नाम जगतसिंह और उसकी जागीर का नाम पियान लिखा है और जयसिंह जी (प्रथम) के जमाने में उसके साथ युद्ध होना प्रकट किया है। सत्य ही है जिस प्रकार गुजरात का मुजफ्फर (तृतीय) तीन बार कैद में आकर भाग गया था उसी प्रकार करण की कैद में आकर जगता भी भाग गया था और फिर जयसिंह जी के जमाने में दुबारा पकड़ा गया था अस्तु। इस अध्याय के तीसरे अंश में लिखा है कि 'जगतसिंहजी का और करणसिंह जी का विशेष सहयोग रहा था' अतः

यहाँ उनका परिचय प्रकट कर देना आवश्यक है।

(२७) "जगतसिंहजी"

(२)

(६) महाराज मानसिंहजी के बड़े पुत्र थे। संवत् १६२५ की काती में उनका जन्म हुआ था। वीरता के विषय में बचपन से ही विख्यात होगए थे। उनके ओज पूर्ण चेहरे की चमक से शत्रुगण भयभीत होते थे और पुरुषार्थी पुत्र के प्रसन्न चित से मानसिंहादि को हर्ष होता था। एक बार महाराज मानसिंहजी अपनी मूँछों को नीचे की तरफ झुकी हुई करके खड़े थे यह देखकर दूध मूँहे जगत ने पूंछा कि आज आपकी मूँछ नीची क्यों हैं? तब मान ने कहा मेरे सामने वीर क्षत्री खड़े होते हैं तब यह ऊँची हो जाती हैं। इस उक्ति को सुनकर जगतसिंह जी ने पूँछा कि "मैं कौन हूँ?" इस पर मानसिंहजी सकुचा गए और कुछ उत्तर नहीं दिया। "वंशावली" (ग) में लिखा है कि– 'बारह वर्ष की अवस्था में जगतसिंहजी काँगड़ा से कतलूखां को पकड़ लाए थे इसके पुरस्कार में सम्राट् अकबर ने उनको "रायजादा" की पदवी "नागोर का पट्टा" और "बांके राव" हाथी दिया था।' "इतिहास राजस्थान" (पृ० १०४) में लिखा है कि "संवत१६४७-४९ में जगतसिंहजी ने अपने पिता को कई युद्धों में सहायता दी थी और शत्रुओं का निवारण किया था। "इ. रा." (पृ० १०४) और "वंशावली" क (पृ० ६२) में लिखा है कि बंगाल में उन्होंने कई बार विजय पाया था और ओड़ीसा में बड़ी वीरता दिखलाई थी। "हिन्दी विश्वकोश" (पृ० ४१३) में यह लिखा है कि 'कई बार महाराज मानसिंहजी उनको युद्धभूमि में अकेले छोड़ आते थे और पीछे से वह बड़ी होशियारी से काम करते थे।' "मआसिरुल उमरा" (पृ०१४३) के अनुसार जगतसिंहजी ने २१ वें वर्ष में २१ हज़ार सेना के 'सेनापति" का पद पालिया था और उसे भली भाँति निभाया था'। "शार्ट हिस्टी" (पृ० १०) आदि से आभासित होता है कि काबुल और कन्दहार के युद्धों में उनकी वीरता बहुत विख्यात हुई थी और उनके सहगामी करणसिंहजी ने उसी युद्ध में कन्दहार के बादशाह को हराया था। उस

अवसर में इन लोगों ने अधिक क्रूरता से काम लेकर तमाम शत्रुओं का संहार किया था। "हिन्दी विश्वकोश" (पृ० ४१३) आदि से सूचित होता है कि संवत् १६५४ में महाराज मानसिंहजी ने जिस धूर्त को ब्रह्म पुत्र के परले किनारे पकड़ा था उसको जगतसिंह जी के जिम्मे करके वह अजमेर आ गए थे। उस अवसर में जगतसिंहजो और उनके सहगामी करणसिंहजी आदि ने १ दिन में ६०कोस की यात्रा की थी और नियत मुकाम पर पहुँच कर शत्रु को कब्जे में किया था। "नाथवंश प्रकाश" (पद्य ११४--१५) में लिखा है कि 'करण-करण के अवतार थे और जगतसिंहजी आदि की (२१ हज़ार सेना के हरोल अथवा अग्र भाग में रहे थे।' कन्दहार के पठानों को हराने में उनका बड़ा नाम हुआ था। सम्वत १६५६ में जगतसिंहजी को बंगदेश के जिलाधीश होने का सुयोग मिला। तन्निमित्त सब प्रकार की साधन सामग्री या सामान भेज दिया था और आंगरा से प्रस्थान भी हो गया था। किन्तु दुर्दैव ने उनको अकाल ही में काल की बलि बना दिया "वी.वि."(पृ० ६३) के अनुसार वह रास्ते में परलोक पधारे थे और अन्य इतिहासों के अनुसार आगरा में बैकुण्ठ वासी हुए थे। "जयपुर वंशावली" में लिखा है कि 'जगतसिंहजी की मृत्यु आमेर में हाथी से हुई थी।' किन्तु हाथी से उनकी नहीं उनके भाई की हुई थी। जगतसिंह जी में अनेकों अद्वितीय गुण थे। वह मान के समान दानी-मानी और महाबली तो थे ही इसके सिवा सुन्दर भी थे। अतः गुणत्रय के अनुरोध से (ग) "वंशावली" में यह दोहा यथार्थ दिया है कि "दाता-ते सुंदर नहीं, सुन्दर-ते नहिं शूर। जगतसिंह सब कुछ हुए दाता-सुन्दर-शूर" ॥१॥ "मआसिरुल उमरा" (पृ. १४३) में लिखा है कि जगतसिंहजी का एक विवाह संवत् १६५५ में भोजदेव हाड़ा की पुत्री से भी हुआ था। उनके १० कुँवराणी थी। उनमें ७ सती हुई थी। ऐसे अद्वितीय पुत्र की अचानक मृत्यु हो जाने से महाराज मानसिंहजी ने आमेर में "जगतशिरोमणि" जी का सर्व श्रेष्ट मंदिर बनवा कर उनका अमर नाम किया था। मंदिर जिस प्रकार आकार में अति विशाल और सुन्दरता में नयनाभिराम है इसी प्रकार मजबूती

और सिल्पकला में अद्भुत एवं अद्वितीय है। उसके प्रत्येक पत्थर में आज से ४-५सौ वर्ष पहिले के अनेक प्रकार के चित्र, चरित्र,साजबाज,भेष, भूषा, पहनावा, मूर्तियां, नृत्यकला, संगीत सामग्री और व्यवहार आदि के सुन्दर दृश्य खोद कर दिखाने में बड़ी कारीगरी की गई है जिसके देखने से मन मोहित हो जाता है। विशेष कर उसका तोरण द्वार और गरुड़ गृह अधिक आकर्षक हैं। कहा-जाता है कि तोरण में ७६ हज़ार-गरुड़-गृह में सवालाख* और मंदिर में छः लाख-छत्तीस हज़ार रुपये लगे थे। जो इन दिनों के मँहगे भाव में आज से ४-६ गुणे ज्यादा थे। मंदिर का आरम्भ संवत् १६५६ में हुआ था और समाप्ति १६६५ में की गई थी। अस्तु। जगत् जैसे शिरोमणि पुत्र की चिरस्मृति में जगतशिरोमणि का मंदिर बन जाने से महाराज मानसिंहजी ने कुछ दिन के लिए अचिरशान्ति का अनुभव किया था किन्तु "मिर्जामान" (पृ. ७२) के अनुसार जहाँगीर जैसे कृतघ्न बादशाहों के दुर्व्यवहारों से कुढ़ने और पुत्रमरणादि की सांसारिक घटनाओं से कुंठित होने आदि के अनन्तर संवत् १६७१ के आषाढ़ शुक्ल १० को बराड़ प्रांत के एलिचपुर में मृत्यु होने से उनको चिरशांति मिली थी। जयपुर राज परिवार के परम परिचित पुरोहित पं० हरिनारायणजी बी. ए. के लेखानुसार महाराज मानसिंहजी के २६ राणी ११ पुत्र और ५ पुत्री थी *। राणियों में ६ सधवावस्था में स्वर्ग पधारी थीं ११ सती हुई थीं और ६ पीछे मरी थीं। और पुत्रों में १० तो महाराज को मौजूदगी में मर गये थे शेष एक भावसिंह जी उत्तराधिकारी हुए थे। राणियों में बङ्गाल, बिहार, ओड़ीसा, गुजरात और राजपूताना आदि अनेक देशों की राणी थी और उनके खान पान पहिरान या भेष भूषा और बोली आदि सब अलग अलग थे। अस्तु।

* "वंशावली" (ग) में महाराज मानसिंह जी के २४ राणी और १२ पुत्र लिखे हैं जिनके नामादि नीचे लिखे अनुसार हैं। (१) शृंगारदे (कनकावती जी) रतनसिंह की (इन्होंने जयपुर के समीप कनकपुरा बसाया था) (२) सहोदरा (गौड़जी) रायमलकी (३) आंबवती (चौहानजी) रतनसिंह की (४) सुमित्रा (राठोड़जी) ईशरदास की (५) लाछां

(७) "पुराने कागज" (नं० ३) में लिखा है कि 'करणसिंहजी ने संवत १६५४ में चौमूँ आबाद किया था।' (दूसरे कागजों में एक में संवत १६४५ दूसरे में १६५२ और तीसरे में ६२ भी है। परन्तु यह तत्सम्बन्धी विभिन्न कामों के होने से ऐसा हो गया मालूम होता है) अस्तु। किस प्रकार किया था इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता हाँ जन श्रुति में ऐसा विख्यात है कि करणसिंहजी के पास बाबा बेणीदासजी वयोवृद्ध विद्वान् ब्राह्मण थे उनको मनोहरदासजी गौड़ नगर से सपरिवार लाये थे। करणसिंहजी ने उनसे कहा कि मेरी इच्छा एक गाँव बसाने की है आप उसके उपयोगी अच्छी ज़मीन देखिये। उन दिनों हाड़ोता से वर्त्तमान चौमूँ के

(राठोड़जी) बाघा की (६) श्यामकुँवरि (राठोड़जी) (७) तिलोकदे (जादूनजी) चन्द्रसेन की (८) हमीरदे (बड़गूजरजी) बाघा की (९) चन्द्रमती (खींचणजी) रावदलपत की (१०) रत्नावली (खींचणजी) कपूर की (११) चन्द्रावत (सोलंखिणीजी) जैलाल की। (१२) राणी (कोंचटीजी) विरधीचन्द की (१३) मदनावती (सीकरीजी) भँवरराज की (१४) प्रभावती (उडियाणीजी) भँवर की (१५) इच्छादेवी (उड़ियाणीजी) रामचन्द्र की (१६) लछमावती (कौरव जादूणजी) नरनारायण की (१७) बनारसदेवी मैलणवास के संतोषमल की (१८) प्रतापदेवीबड़ी मेलणवास की (१९) राजकुवरि (चौहाणजी) लिवाली की (२०) प्रभावती (बंगालणजी) कृष्णराय की (२१) आशामती (राठोड़जी) मोटाराजा की (२२) रामकुँवरि (खींचणजी) राजा हमीरसेन की और (२३) मधुमालती तथा (२४) रतनमाला अन्यत्र की थी। इनमें नौ राणी (नं० ३, ४, ११, १२, १३, १४, १५, २१, १०) सधवावस्था में स्वर्ग पधार गयी थीं। छः राणी (नं १, २, ५, ८, १६, १७) विधवा होकर मरी थी। ५ राणी (नं० ७, ९, १८, १९, २०) मत्यु के समाचार सुन कर आमेर में सती हुई थी। और ४ राणी (नं० ६, २२, २३, २४) मानसिंहजी के साथ सत्ती हुई थी। इनके १२ पुत्र हुए उनमें (१) जगतसिंहजी कनकावती के थे (२) सकूतिसिंह (३) हिमतसिंह (४) सवलसिंह (५) भावसिंह (६) दुर्जनसिंह (७) श्यामसिंह (८) कल्याणसिंह (९) केशवदास (१०) अतिबल (११) रामसिंह और (१२) सिकारी थे। पूर्वोक्त नामों में और इनमें अंतर है और संख्या में भी २—१ का न्यूनाधिक्य हुआ है।

आगे तक बीहड़ जंगल था उसके अन्दर सामोद से पश्चिम के गाँवों में और हाड़ोता से दक्षिण के गाँवों में जाने को दो प्रशस्त मार्गों के सिवा सर्वत्र पगडण्डियां थी। बेणीदासजी नित्य कृत्य के लिये नित्य ही उस जंगल में आते और शौचादि से निपट कर वापस जाते थे। उन्होंने एक ऐसे भूभाग को देखा जो सरोवर या झील जैसा था और उसके बीच के वृक्ष समूह समीप जानेपर दीख सकते थे। उसको देख कर बेणीदासजी ने विचार किया कि यदि इस जगह धराधार किला बनाया जाय या गाँव बसाया जाय तो उस पर लड़ाई के निमित्त से अकस्मात् आए हुए शत्रुओं के आक्रमण का सहसा असर नहीं होगा, क्योंकि प्रथम तो वे दूर से दीखेंगे नहीं और दूसरे दूर से फेंके हुए गोलों की चोट ठिकाने नहीं लगेगी अतः विज्ञान के विचार से यह भूभाग अधिक अच्छा है। यह सोच कर उन्होंने करणसिंह जी के करकमल से संवत् १६५२--५४ में 'चौमुहाँगढ़' की नींव लगवाई और चौमूँ बसाने की हरीथूनी गड़वायी।

(८) इस विषय में अधिकांश आदमी यह भी कहते हैं कि 'एक दिन बेणीदासजी ने उपरोक्त जंगल में एक कैर के नीचे ब्याई हुई भेड़ को देखा जिसके सद् जाये बच्चे बैठे हुए थे और वह स्याली या भेड़िया आदि हिंसक जानवरों से उनकी रक्षा कर रही थी।' कहा जाता है कि हिंसक जानवरों ने उसे रातभर हैरान किया था और अन्त में वे हार कर चले गए थे। यह देखकर बेणीदासजी ने विचार किया कि यह भूभाग अवश्य ही अजेय है और इसमें आबाद हुई बस्ती अथवा गढ़ किले अवश्य ही अच्छी हालत में रह सकते हैं। यह सोचकर उन्होंने करणसिंहजी के हाथ से उसी भूभाग में चौमूँ के धराधार गढ़ की नींव लगवाई और चौमूँ बसाने का आरम्भ किया। "बीकानेर का इतिहास" (पृ० ४५) में लिखा है कि 'भारत के कई किले इसी प्रकार गाय, भेड़ या बकरी आदि के विजयी होने की बात को विचार कर बनाए गए हैं और वे चिरकाल तक निरापद रहे हैं। 'चौमुहाँगढ़' अथवा 'चौमूँ' शहर की रचना समय समय में यथा क्रम हुई है और वे कई पीढ़ियों में पूर्ण हुए हैं। आरम्भ में करणसिंहजी ने

केवल वर्तमान जनाने महलों की दक्षिणी पीठ में दोनों बुर्जों के बीच का हिस्सा बनवाया था और उसी के चारों ओर बहुत दूर में कांटों की बाड़ का परकोटा बनवा दिया था जिसके अन्दर हमराही सरदारों के डेरे और फ़ौज पल्टनों के घोड़े आदि रहते थे। पीछे सुखसिंहजी, मोहनसिंहजी और कृष्णसिंहजी आदि ने अपने अपने राजत्व काल में यथाक्रम गढ़ को बढ़ाया और शहर को बसाया है जिसके विवरण उनके स्मृति चिन्हों में आगे दिए गए हैं। इस विषय में यह विदित होजाना भी ज़रूरी है कि जिस कैर के नीचे भेड़ ब्याई थी और उसके विजय को देख कर वहीं गढ़ बनवाया गया था-वह कैर (आज संवत् १९९४ में ३४० वर्ष का हो जाने पर भी) अब तक अपने स्थान में हरा भरा खड़ा है और उसके फल फूल भी यथा समय यथावत् आते रहते हैं। कहा जाता है कि गढ़ के परकोटे की दीवार के बीच में होने से उसे कई बार कटवाया भी था किंतु वह गया नहीं खड़ा रहा। अतः शुभ कामना के अनुरोध और इतिहास की दृष्टि से उसका रहना ही अच्छा है बल्कि उसे सुरक्षित रखना भी आवश्यक है क्योंकि 'चौमुहाँगढ़' की स्थापना उसी पर हुई है। अस्तु।

(९) करणसिंह जी की जीवन घटनाओं में "काँगड़ा की लड़ाई" अंतिम और अधिक महत्व की मानी गई है। कारण यह है कि प्रथम तो काँगड़े का किला दुर्भेद्य था-दूसरे उसको लेने के लिए कई बार चढ़ाई हुई, वे निष्फल गई थी। और तीसरे करणसिंह जी ने उसे बादशाह के हस्तगत कराने में अपने तथा अपने ४ सगे भाइयों के और बहुत से जाति भाइयों के प्राण खोए थे--अतः फतह होजाने पर भी किसी शत्रु के आकस्मिक आघात से करणसिंह जी का काँगडे की युद्ध भूमि में प्राणांत हो जाने से बादशाह उनके कृतज्ञ हुए और उनका परम पुरुषार्थ स्वीकार किया "काँगड़ा" के विषय में "हिन्दी विश्व कोश" "भारत का इतिहास" "मआसिरुल उमरा" "इतिहास तिमिर नाशक" और "भारतभ्रमण" आदि में जो कुछ लिखा है यहाँ उसका आंशिक दिग्दर्शन करा देना आवश्यक है।

(१०) "काँगड़ा" लाहोर से उत्तर के पहाड़ीजिले में पञ्जाब का नामी किला है वह मज़बूती और अजेयता में भी प्रसिद्ध है। पञ्जाब के जमींदारों का कहना है कि यह किला परमात्मा का बनाया हुआ है। संवत् १४४०-४५ के सुलतान फ़ीरोजशाह ने एक बार बड़ी भारी तैयारी के साथ इसको घेरा था किन्तु कई दिनों तक जन और धन का बहुत नाश होने पर भी वह हाथ नहीं आया तब हताश होकर चला गया था। इस विषय में "मआसिरुल उमरा" (पृ० ३८५) की टिप्पणी में लिखा है कि 'किला मिल गया था' अस्तु। दूसरी बार संवत् १६४५ में सम्राट अकबर ने इसके लेने का प्रयत्न किया। तन्निमित हुसेन कुलीखाँ के साथ शाही सेना भेजी गई किन्तु किला नहीं मिला सन्धि हुई। तीसरी बार सम्राट स्वयं काँगड़ा देखने गये थे। उस समय राजा बीरबल की जागीर के 'देसूँथ' गाँव में डेरा किया था। उसी डेरे में रात के समय सम्राट को स्वप्न हुआ कि 'तुम्हारा अभ्युदय अभी और बढ़ेगा अतः तुम इस किला के लेने का प्रयत्न मत करो' तब अकबर वापस आगए। उसके बाद संवत् १६७७ में घोर युद्ध होने के अनन्तर काँगड़े का किला सम्राट जहाँगीर को मिला। "अधिकार लाभ" (पृ० ६) में लिखा है कि करणसिंहजी ने काँगड़े का किला लेने के लिए प्राणान्तक युद्ध किया था उसमें वह और उनके ४ भाई तथा साथ के बहुत से आदमी काम आए थे। उनमें करणसिंहजी कामयाब (सफल मनोरथ) हुए थे और विजय होने पर क़िले का जो सामान हाथ आया था वह बादशाह के पास भेज दिया था इस बर्ताव और विजय से बादशाह उनपर बहुत खुश हुए और उनकी राजभक्ति तथा वीरता की सराहना की।' इसके सिवा इतिहास के विलक्षण विद्वान माधवगोपालजी मण्डाहर के लेखानुसार 'काँगड़ा विजय के उपलक्ष में करणसिंहजी को किरणदार पाघ, जड़ाऊ तलवार, सच्चे मोतियों का कण्ठा, रत्नों के जड़े हुए बहुमूल्य ज़ेवर और बहुत सी मुहरें दी गई थी।' परन्तु सम्भव है यह सामान चढ़ाई के समय दिया गया हो और पीछे विजयोपलब्ध्य के पुरस्कार में लिखा गया हो अस्तु। करणसिंहजी का काँगड़े की युद्ध भूमि में वैकुण्ठवास होने की सुनकर स्वदेश में

उनकी धर्म पत्नी ने लौकिक अग्नि में अपने प्राणों की आहूति दी थी और समयोचित शिष्टाचार सम्पन्न होने के रूप में "सती" * हुई थी।

(११) काँगड़े का क़िला एक पहाड़ पर है उसमें २३ बुर्ज़ और ७ दरवाज़े हैं। अन्दर से उसका घेरा एक कोस से ज़्यादा है। ऊँचाई ११४ हाथ की है। उसके भीतर २ सुन्दर तालाब हैं। वहीं काँगड़ा क़सबा है जो 'नगर

* "सती" होने के सम्बध में कुछ सज्जनों की कल्पना है कि जिस जमाने में विधवाओं को जबर्दस्ती आग में डाल कर जला देते थे उसी जमाने से सती होना शुरू हुआ है किन्तु यह कल्पना पति-प्राणा स्त्रियों के लिए घटित नहीं होसकती। पति में अगाध प्रेम होने के कारण साध्वी स्त्रियां प्राचीनतम काल में भी स्वतः सती होती थी और चिता के काष्ठ को पति के पास पहुँचा ने का साधन तथा धधकती हुई अनन्त ज्वाला मय आग को पतिसहयोग की सुमन पूर्ण सुहावनी शय्या समझती थी। यही कारण है कि पति मरने का समाचार सुनते ही वे प्रेमोन्माद में मस्त होकर बड़े हर्ष और उत्साह के साथ स्नान करती, सुगंध लगाती, बढ़िया वस्त्राभूषण पहनती और सर्वोत्कृष्ट शृंगार से सज कर दान पुण्य, शुभाशिष, अभिवादन और सदुपदेशादि देने के अनंतर हँसी खुशी आसन जमाकर चिता में (पति सहित या युद्धादि में मरा हो तो अकेली) बैठ जाती और आग लगवा कर देखते देखते विना हिले डुले या चीत्कारादि किये बिना ही निश्चल रूप में जल जाती थी। एक प्रकार से उनको पति के पास जल्दी पहुँचने का उत्साह लग जाता था, जिस प्रकार भविष्य में पूरा आराम मिलने की आशा से कई साहसी बिना बेहोशी सूँघे ही भारी चीर फाड़ का अपरेसन हँसी खुशी करा लेते हैं या इसी प्रकार अन्यान्य असहनीय कष्ट सह जाते हैं उसी प्रकार पति मिलने की आशा में सती स्त्रियां राजी खुशी जल जाती हैं और कदाचित उनको इस प्रकार सती होने में बाधा होती है या रोक लग जाती है तो वे घरमें बंद होकर ऊपर से कूदकर, गला घोटकर, समाधि लगाकर या शोकाधिक्य से निर्जीव होकर विरहानल में भस्म होजाती हैं। इस विषय में महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकरजी ओझा ने अपने "राजपूताने का इतिहास" (पृष्ठ १०९२) में सत्य और यथार्थ लिखा है कि 'भारत में प्राचीन काल की स्त्रियां स्वतःसती होती थीं- उनको डरा धमका कर बहका फुसलाकर या ताड़ना आदि देकर जबर्दस्ती आग में नहीं डालते थे।' वास्तव में पतिवल्लभा स्त्रियों के लिए ऐसी क्रिया आवश्यक ही नहीं होती।

कोट' कहलाता है। उसी में महामाया 'ज्वालाजी' का मंदिर है। "मआसिरुल उमरा" (पृ० ३८८) में लिखा है कि जिस समय शिव की अर्धांगना सती ने शरीर त्याग किया था उस समय उनका शीर्षांग कश्मीर के उत्तरी पहाड़ों में कामराज के पास पड़ा था वह "शारदापीठ" कहलाता है। नीचे का कुछ अंश दक्षिण में बीजापुर के पास पड़ा था वह "तुलजा" कहलाता है। कुछ अंश पूर्व (आसाम) में मच्छा के पास पड़ा था वह कामरूप 'कामाक्षा' कहलाता है। और शेषांश नगरकोट के पास पड़ा था वह जालंधरी "महामाया" या ज्वालाजी कहलाता है। "भारतभ्रमण" (पृ० ४७८) में लिखा है कि काँड़गा जिला की केड़हर तहसील "ज्वालाजी" पुराना कस्बा है। उसमें ५४२ मकान और २५०० आदमी हैं। देवी के मंदिर में देवी की छोटी बड़ी १० लपटें निकती हैं। वहाँ गरम जल के ६ झरने भी हैं। जीवहिंसा की सर्वथा मनाही है। एक कूए में पानी उबलता रहता है। इसी भूमि में सती दाह हुआ था इस कारण यह ज्वाला जी कहलाते हैं। सातसो वर्ष पहिले एक ब्राह्मण को यह ज्वाला दीखी थी उसने मंदिर बनवाकर प्रधान आसन से ज्वालाओं का निकास करवाया था तब से यथा विधि पूजन होता है और "मआसिरुल उमरा" (पृ० ३८८) में लिखा है कि 'यहां हजारों यात्री आते हैं और इच्छा फल पाते हैं। आश्चर्य की बात यह है कि जो आदमी जीभ काट कर ज्वाला में डाल देते हैं वह तत्काल जल जाती है और उस आदमी के क्षण भर में दूसरी जीभ उग आती है। नास्तिक मानते हैं कि कटी हुई जीभ स्वभावतः फिर उगती है। परन्तु आस्तिकों ने देखा है कि स्वभावतः कई दिनों में उगती है और ज्वालाजी के यहां तत्काल उग आती है। ऐसी प्रभावशालिनी महामाया के देश में जाकर करणसिंहजी ने अद्वितीय वीरता दिखलाने के अनन्तर वहीं बैकुण्ठवास किया था और उनकी स्त्री सती की भूमि में पती के मरने की सुनकर स्वदेश में सती हुई थी।

(१२) बड़वा पुस्तकों और 'तवारीख नाथावतान्' जैसे पुराने कागजों में करणसिंहजी की जीवन घटनायें तथा उनके मरने की मिती और उनकी स्त्री के सती होने का संवत् आदि बड़े

ही अस्त व्यस्त हैं। किसी में १६४५, किसी में १६७५ और किसी में १६८२ आदि हैं। यहाँ तक कि कई बातें तो बिलकुल असंभव हैं। एक जगह लिखा है कि 'करणसिंहजी काँगड़ा की लड़ाई में मरे (१६७७) में दूसरी जगह लिखा है उनकी स्त्री सती हुई संवत् १६४५ में और तीसरी जगह लिखा है कि शिवाजी को लाए संवत् १७०१ में।' भला ऐसे परिलेखों की संगति किसप्रकार लगाई जासकती है। चौमूँ में उनकी स्त्री की छत्री है परन्तु उसमें उनके सती होने का संवत नहीं है। ऐसा हो नहीं सकता कि करण-सिंहजी संवत् १६७७ में काँगड़ा की लड़ाई में बैकुण्ठवासी हों और संवत् १७०१ या २३ में शिवाजी को लावें और १६४५ में उनकी स्त्री सती होवे इस प्रकार से अस्त व्यस्त संवत होने का कारण आरम्भ में लिख दिया है और सुप्रसिद्ध इतिहासों के आधार से काँगड़ा की तत्कालीन अंतिम लड़ाई के संवत १६७७ को करण मरण की मिती मानकर सन्तोष किया है।

(१३) करणसिंहजी के छः विवाह हुए थे। उनमें (१) कल्याण कुँवरि (मेड़तणीजी) राठोड़ गोरधनदास की (२) अमृत कुँवरि (बड़गूजरजी) अनूपशहर के खंगारसिंह की (३) पूरण कुँवरि (गौड़जी) मारोठ के केशवदास की (४) हर कुँवरि (मेड़तणीजी) राठोड़ राघवदास की (५) रतन कुँवरि (सकवालजी) कूकस के जगन्नाथकी और (६) साहब कुँवरि (बड़गूजरजी) कालिम की पुत्री थी। पहिले इन सबके कोई सन्तान नहीं हुई इस कारण साँवली के मुकन्द सिंहजी को गोद ले लिए थे किन्तु पीछे (१) सुखसिंहजी और (२) चतुर्भुजजी ये दो पुत्र हुए। उनमें सुखसिंहजी को चौमूँ मिला चतुर्भुज जी को भरड़ा का नाँगल दिया और गोद के मुकन्दसिंहजी ने चौमूँ की मुसाहिबी की। स्मृति चिन्हों के विषय में बड़वाजी की पोथी में लिखा है कि करणसिंहजी ने संवत् १६४५ में 'पीहाला कुआ' (जो पहिले जंगल में था और अब शहर के अन्दर है) बन-

बाया था। यह कूआ बहुत विशाल और ८४ हाथ की नाल का है। गाँव भर में इसका पानी जाता है। इसके कई खेल, कोठे, ढाणे और पावँड़ी हैं। प्राचीन काल में इस पर हाड़ोता तथा हाथनोंदा के हाथी और लक्खी बनजारे के हज़ारों बैल पानी पीते थे और हमेश प्याऊ लगती थी।

सातवां अध्याय

॥ श्रीः ॥

नाथावतों का इतिहास।

सुखसिंहजी

(८)

[सुखसिंहजी की जीवन घटनाओं में कोई एसी घटना नहीं है जो लोक प्रसिद्ध हों अतः उनके विषय में पुराने कागजों में जो कुछ लिखा है। उसी का इस अध्याय में समावेश किया है।]

(१) काँगड़ा की लड़ाई में करण-सिंहजी का विजय के साथ बैकुंठवास होने पर उनके बड़े पुत्र सुखसिंहजी उनके उत्ताराधिकारी हुए। यद्यपि अवस्था में वह छोटे थे और बड़े बूढ़े शूर सामन्त या सलाहगीर काँगड़ा में मारे गए थे तथापि सुखसिंहजी की बुद्धि बड़ी तेज थी और वह लोक व्यवहारादि में चतुर थे इस कारण चौमूँ की गद्दी पर बैठते ही उन्होंने पहिला काम यह किया कि करणसिंह जी के विजयोपलक्ष्य में जो सामान बादशाह ने उनके पास भेजा था उसको उन्होंने महाराज जयसिंहजी की सेवा में समर्पण कर दिया। इस बर्ताव से महाराज बड़े सन्तुष्ट हुए। "अधिकार लाभ" (पृष्ट ६) में लिखा है कि 'काँगड़ा की लड़ाई मैं करण-सिंहजी के आदमियों ने एक बार ज़्यादा हाका किया था जिसमें बहुत से आदमी मारे गए थे परन्तु उस हाका से क़िला फतह हो गया इस कारण बादशाह ने महरबानी करके जो सामान नाथावतों को बख्शीस किया उसको सुखसिंहजी ने महाराजा सा-हब की सरकार में दाखिल करा दिया। इस बात से महाराज बहुत खुश हुए।' मगडाहरजी के "मुक्तकसंग्रह" में लिखा है कि 'उस अवसर में सुखसिंह जी के लिए बादशाह ने किरणदार पाघ, जड़ाऊ मूठ कीतलवार, सुनहरी साखत का घोड़ा, बहुमूल्य शिर पेच और ७०० मुहर भेजी थी। और उनके साथ वालों को यथायोग्य ख़िलअत शिरोपाव या इनाम आदि दिए थे।'

(२) पुरोहित रामनिवासजी ऐम. ए. ने अपने अंग्रेजी संग्रह में लिखा है कि

सुखसिंहजी ने पँवाड़ों के धार में जाकर शाह शुजाअ से युद्ध किया था और विजयी होकर आए थे' वास्तव में शुजाअ के साथ दक्षिण में गए थे और वहां के क्रान्तिकारियों को परास्त किया था। इस अंश की यथार्थ संगति "भारत भ्रमण" आदि से इस भांति लगती है कि 'संवत् १३४१ में दिल्ली के दिलावरखां ने धार के देव मन्दिरों से मसजिदें बनवायी थी और संवत् १५१० तक धार राज्य मुग़ल साम्राज्य में शामिल रहा था। पीछे वह दूसरों के अधिकार में चला गया। (उस अवसर में दक्षिण में अनेक प्रकार के उत्पात हुए थे उनको मिटाने के लिए १६९१ में सुखसिंहजी दक्षिण में गए और शांति स्थापन करके वापिस आए।) "मआसिरुल उमरा" (पृ० १५६) में लिखा है कि 'संवत् १६९१ में महाराज जयसिंहजी सुलतान शुजाअ के साथ दक्षिण में गए थे और शत्रुओं को परास्त कर आए थे।' सहगामी सरदारों में सुखसिंहजी ने उस अवसर में अपना पुरुषार्थ प्रकट किया था। इस सम्बन्ध में चन्द कवि ने अपने "नाथवंश प्रकाश" (पद्य १२८) में यह विदित किया है कि 'सुखसिंहजी नाथवंश के भूषण थे। उन्होंने पँवाड़ों को परास्त किया और दक्षिण में महाराज कृष्ण? (नहीं जयसिंहजी) के साथ जाकर शत्रुओं को हराने में अपनी वीरता दिखलायी।' अस्तु। उस ज़माने में शाहजहाँ सम्राट थे। * उन्होंने अपने ४ पुत्रों

* "४ बादशाह" (१) 'अक़बर' का सुखद शासन सतोषजनक था उसमें राजा और रंक सब राजी रहे थे। (२) 'जहाँगीर' की शाही प्रभुता के प्रभाव से इस देश के सरदारों ने शाही पोशाक पसन्द की थी। (३) 'शाहजहां' की सम्पत्ति से दो वस्तुओं ने संसार में नाम पाया और (४) 'औरंगजेब' ने देव मंदिर तुड़वाकर अपनी आसुरी आदत का परिचय दिया। शाहजहाँ की लोक प्रसिद्ध वस्तुओं में एक है (इ. स.)

"तख़्तताउस" यह ३॥ ग़ज लम्बा- २॥ ग़ज चौड़ा और ५ ग़ज ऊँचा था। इसमें ३ सीढी थीं और १२ खंभे थे। खभों के नीचे दो मयूर बड़े ही अद्भुत और मूल्यवान् थे। तख्त में ८६ लाख के रत्न और १४ लाख का हीरा लगा था। उसकी झालर सच्चे मोतियों की थी। वह ७ वष में तैयार हुआ था। उसमें १० करोड़ रुपये लगे थे और प्रत्येक बादशाह ने उस पर बैठ कर अपनी प्रभुता का प्रकाश किया था।

(१) औरंगज़ेब (२) मुराद (३) सुजाअ और (४) दारा को यथाक्रम (१) दक्षिण (२) गुजरात (३) बंगाल और (४) काबुल दे रक्खा था। दारा कमज़ोर किन्तु हिन्दुओं का प्यारा था और औरंगज़ेब सजोर किन्तु हिन्दुओं का दुप्यारा था। साथ ही दारा का सम्राट के समीप रहना औरंग आदि को अखरता था जिनमें सुजाअ भी सामिल था अतः सुजाअ ने अपनी खोटी नीति से दारा पर चढ़ाई की जिसको रोकने के लिए जयसिंहजी गए। संभवतः उस अवसर में सुखसिंहजी साथ गए थे और घायल होकर भी विजय लाभ किया था।)

(३) पूर्वोक्त पुरोहितजी के संग्रह में यह भी लिखा है कि 'सुखसिंहजी ने खोरी के मेवों पर चढ़ाई की थी और उनको परास्त कर सानुकूल किया था।' यह खोरी वर्तमान में अलवर राज्य के अंतगर्त है। मेव लोग वहां प्राचीन काल से रहते हैं। महाराज जयसिंहजी के ज़माने में मतिभ्रम से मेवों में उद्दण्डता का अंश उदय हो

"ताज महल" शाहजहाँ की स्त्री का स्मारक था। वह आगरे में है। सारे संसार में प्रसिद्ध है। उसको प्रत्येक देश के कारीगर सराहते हैं। उसकी सुन्दरता संसार भर में प्रसिद्ध है। वह १८ फुट ऊँचे सम चौरस चबूतरे पर ३१२ फुट चौड़ा और ३१२ फुट ऊँचा है। उसको १०) रु० मासिक से ३हजार मासिक तक के सकड़ों कारीगरों और हजारों मजदूरों ने २० वर्ष में तैयार किया था। उस में ३॥ करोड़ रुपए खर्च हुए थे। वह भारतीय भवन निर्माण कला का देखने योग्य सर्वोत्तम नमूना है। प्रसंगवश यहां बादशाही जमाने के डेरों का परिचय करादेना भी आवश्यक है। (भा. द.। भा. भ्रमण आदि)

"औरंगज़ेब का डेरा" या सफरी कैंप ३ मील में लगता था। उसके चारों ओर कांटेदार तार या खंभे होते थे। उसके अन्दर भारत की रेज़ी का राज्य सर्वत्र व्याप्त रहता था। इस देश की रेजी के बने हुए छोटे बड़े और अतिविशाल खेमे-डेरे-तम्बू-छोलदारी-सायवान और सामियाने आदि रहते थे। वे जाड़ा- चौमासा- और गर्मी- दोनों मोसम के लिए उपयोगी मनोरम और मजबूत होते थे। वर्त्तमान महलों के समान उनमें फाटक, खिड़की, झरोखे, चौक चौबारे, छत्री और दुछत्ते आदि सभी रेजी के बने हुए होते थे। उसके अन्दर ५सौ तोपें ६० हजार घोड़े १ लाख पैदल-५० हजार ऊँट ३हजार हाथी २५० बनजारे और सब तरह के सौदागर कारीगर और पेशाकार साथ रहते थे। डेरा क्या था नगर था। (औरंगज़ेब नामा)

आया था। इस कारण सुखसिंहजी ने उन पर चढ़ाई की और उनकी उद्दण्डता मिटा कर वापिस आए। सुखसिंहजी शांतिप्रिय पुरुष थे इस कारण उनकी जीवन घटनाओं में युद्धादि की बातें अधिक नहीं आयी हैं अतः पूर्वागत इतिहास की अंगपूर्ति के लिए यहां महाराज मानसिंह जी के पीछे के राजाओं का परिचय प्रकट किया गया है।

२८ "भावसिंहजी"

(४) महाराज मानसिंहजी के पीछे नियमानुसार उनके बड़े बेटे जगतसिंह जी आमेर के राजा होते किन्तु उनका असमय में अन्त काल हो जाने से आमेर के सामन्तों की अभिलाषा के अनुसार जगतसिंहजी के बड़े बेटे महासिंहजी दक्षिण में और बादशाह की कृपा के प्रभाव से मानसिंहजी के छोटे बेटे भावसिंहजी आमेर में राजा हुए। इस प्रकार एक साथ दो राजा होने का यह अपूर्व अवसर था और शाही शिरोपाव दोनों के लिए भेजा गया यह तत्कालीन सामंतों का प्रभाव और सम्राट की विचार शक्ति का फल था। किन्तु "मिर्ज़ा-जयसिंह" (पृ० १८) के अनुसार महासिंह जी और भावसिंह जी दोनों मद्यप थे। इस कारण दोनों से ही लोक सेवा नहीं हो सकी और संवत् १६७४ में महासिंहजी तथा संवत् १६७८ में भावसिंह जी परलोक पधार गए। इनकी मृत्यु हो जाने से-

(२९) "जयसिंहजी" प्रथम ने।

(५) आमेर राज्य के समुज्वल सिंहासन को सुशोभित किया। यह जगतसिंहजी के बड़े बेटे महासिंहजी की सीसोदणी राणी 'दमयन्ती' के उदर से संवत् १६६८ के आषाढ वदी १ शुक्रवार को ३।२० के इष्ट १।७ के सूर्य और २।७ के लग्नमें उत्पन्न हुए थे।

जन्मलग्न

मं क्ष ४ | सू बु २ | शु १ | ५ | रा ३ | ६ | १२ | ७ | के ९ | श ११ | च ८ | १०
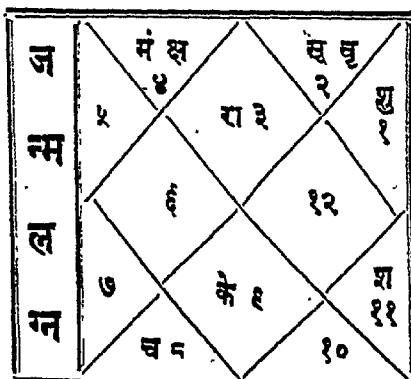
'भावसिंहजी मार न डालें' इस विचार से बचपन में इनको इनकी माता द्यौसा ले गए थे पीछे भावसिंह जी के मरने पर संवत् १६७८ में वापिस आए तब संपूर्ण भाई बेटों ने इनको गद्दी पर बिठा दिया। उस

अवसर में बादशाह की ओर से आमेर में शासन व्यवस्था शुरू हो गयी थी किन्तु थोड़े दिन पीछे महाराज स्वयं बादशाह के समीप गए तब वह व्यवस्था उठ गई। उस समय इनके शरीर की वर्द्धमान आकृति और ओज पूर्ण चेहरा होने से मुसलमान लेखकों ने इनकी बड़ी उम्र मानी थी। वास्तव में यह क्रियाकुशल-बुद्धिमान-विलक्षण निर्भीक,-उद्यमी,-नीतिपटु,दृढ़व्रती, साहसी,-धीर वीर,-उदार और देश भक्त थे। इनके लोकोत्तर गुणों की महिमा प्रख्यात इतिहासों में सब में है। विशेषकर भण्डारीजी के इतिहास में ज्यादा सामग्री दी है और "मिर्ज़ा जयसिंह" में संक्षेप से भी सम्पूर्ण घटना सप्रमाण प्रकट की हैं। यहां उसका किंचिन्मात्र अंश उद्धृत किया है। (१) संवत् १६७६ में जयसिंहजी ने जहाँगीर की आज्ञा से 'जगत-गुसाइन, नाम की बेगम के बेटे खुर्रम को युद्ध में भगाया (२) संवत् १६९० में महाकाय मस्त हाथी के पेट में भाला मारकर बादशाह को बचाया (३) संवत् १६९३ में इन्होंने दक्षिण के अनेकों उत्पाती किलादारों और अफ़सरों को क़ैद किया (४) संवत् १६९५ में क़ाबुल और खंधार को फ़तह किया इस कारण बादशाह ने इनको मान आदि के समान 'मिर्ज़ा राजा' बनाया (५) संवत १६९८ में जम्बू के जगता से विकट युद्ध कर उसको नतमस्तक बनाया। इनकेपहिले करणसिंहजी ने भी उसको हराया था (६) संवत् १७१४ में शाहजहाँ के बीमार होने पर उसके पुत्र दारा, शूजा, औरँगज़ेब और मुराद के आपस में भारी विद्रोह हुआ तब शाहजहाँ की आज्ञा से शूजा को सजा देने में जयसिंहजी ने बड़ी भारी दूरदर्शिता दिखलायी थी (७) संवत् १७१५ में औरंगज़ेब सम्राट हो गये तब पीछे उनकी आज्ञा से संवत् १७२० में जयसिंहजी शिवाजी को पकड़ने के लिए पूना गए। वहां जाकर इन्होंने दूरदर्शिता-गूढमंत्रणा,रणकौशल और पुरुषार्थ के प्रभाव से शिवाजी को चकित कर दिया और (८) संवत् १७२३ में उनको अपने वाग्जाल में बाँध कर औरंगज़ेब के पास आगरे भेज दिया। इस प्रकार प्रत्येक प्रभावशाली पुरुषों तक को अपने अनुकूल बनाने और भारी से भारी शत्रुओं को परास्त करने में

महाराज मिर्ज़ा जयसिंहजी ने अपनी बुद्धि वीरता और सर्वोत्कृष्ट बिचारों का सदैव परिचय दिया था जिनसे मन्त्र मुग्ध होकर औरंगज़ेब जैसे सम्राट भी उनका भय मानते थे और उनको कई बार लाखों रुपए, करोड़ों की जागीर और भारी मूल्य के उपहार भेट किए थे। अंत में वह संवत् १७२४ के आसोज बदी ५ बुधवार को हरिचरणों के शरण हो गए। उनके ६ राणी थीं। (१) मृगावती 'राठोड़जी' (२) राजकुँवरि 'जादमजी' (३) रूपकुँवरि 'चंद्रावत जी' (४) हरकुँवरि 'बीकावतजी' (५) आनन्दकुँवरि 'चौहाणजी' (रामसिंह जी इन्हीं के थे) और (६) राजकुँवरि महलणवास के थे। शिवाजी के भाग जाने में रामसिंहजी की मदत का संदेह कर सम्राट् औरंगज़ेब ने मिर्ज़ा जयसिंहजी की मृत्यु होने पर आमेर में खालिसा बिठा दिया था किन्तु रामसिंहजी को लड़ाई में भेजने की आवश्यकता हुई तब उन से राज़ी हो गए और खालिसा उठा लिया।

३० "रामसिंहजी"

(६) उस पिता के पुत्र थे जिन के भय से औरंगज़ेब ने देवमंदिरों का तुड़वाना बन्द कर दिया था और उन के मरते ही उसी दिन १०१ मंदिर तुड़वाए थे। शिवाजी* के अज्ञात

जन्म लग्न

चं ६ | ४ | मं ३
श ७ | ५
८ | २
६ | सू बृ ११ | शु १
१० | बु १२

* "शिवाजी" मेवाड़ राजवंश के अंशप्रसूत माने गए हैं। "राजपूताने का इतिहास" (पृ.२७९) तथा "वीर विनोद" आदि की टिप्पणियों में उदैपुर के महाराणा अजयसिंह से इनके पूर्वजों का विकाश विदित किया है। इनके दादा मालोजी पिता शाहजी माता जीजीबाई स्त्री सईबाई और पुत्र शंभाजी थे। शिवाजी का जन्म संवत् १६८४ (८६) के फागण वदी १३ शुक्रवार को इष्ट ३०। ९ सूर्य १०। १३ और लग्न ४। २४ में हुआ था। उस वर्ष उस देश में भारी अकाल पड़ा था। उसमें रत्न सुलभ और अन्न दुर्लभ था। भूँख से व्याकुल होकर मनुष्यों को मनुष्य और पशुओं को पशु खागए थे।

रूप में चले जाने से बादशाह ने रामसिंहजी से पूँछा था कि 'वह कहां गए' तब उन्होंने उस समय वीरत्व से भरा हुआ कुछ ऐसा उत्तर दिया जिसको सुनकर बादशाह कुंठित हो गए। वास्तव में रामसिंजी वैसे ही वीर, साहसी और विजयी थे जैसे जयसिंहजी थे। उन्होंने साम्राज्य की रक्षा के लिए अपनी बढ़ी हुई वीरता का अनेक बार परिचय दिया था और अपूर्व प्रतिभाशाली होना प्रकट किया था। उनका जन्म सम्वत १६९२ के दूसरा भादवा बदि ५ शनिवार को इष्ट ४९।१८ सूर्य ४।२० और लग्न

जन्म लग्न

मं शु ४ | २ | चं १
सू बु ५ बृ के | ३ |
६ | १२ |
७ | श ९ | रा ११
८ | १० |
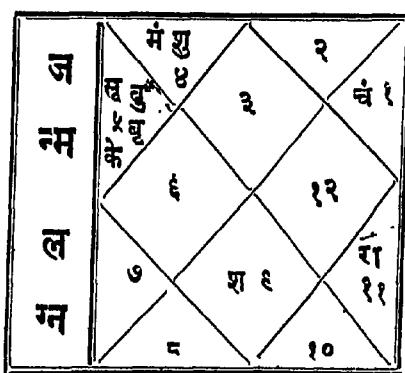
२।२५ में हुआ था और मृत्यु सम्वत् १७४४ में हुई थी। इनके ८ राणी थीं (१) हाड़ीजी (२) राठोड़जी (३) बड़

शिवाजी शिक्षा में अक़बर की भाँति अनक्षर और बुद्धिमें विलक्षण थे। युद्धादि में उनकी स्वभावतः प्रवृति थी। युद्ध ही उनके खेल और शस्त्र ही उनके खिलौने थे। उन्हीं से उनका मनोरंजन होता था। १९ वर्ष की अवस्था में उन्होंने २३ क़िले क़ब्जे में करलिए थे। सम्राट् औरंगजेब उनको परास्त करने के प्रयत्न करता था। कईबार भारी भारी फ़ौजों ने उनपर आक्रमण भी किया किन्तु वह कभी काबू में नहीं आए। अन्त में महाराज जयसिंह जी (प्रथम) ने अपने वाग्जाल में आबद्ध करके भरोसे के आदमियों के साथ उनको औरंगज़ेब के पास भेज दिया। "शिवाजी विजय" से विदित होता है कि 'जयसिंहजी के आदेशानुसार शिवाजी के स्वागत समारोह में उस समय दिल्ली (या आगरा) राजधानी की अपूर्व शोभा कीगई थी। उसके हाट, बाट, चतुराह, राजमार्ग, शाहीमहल और बाग बग़ीचे आदि में विविध प्रकार की अगणित वस्तुएँ आँखों में चकाचोंध डालरही थीं। किन्तु आरम्भ ही में औरंगज़ेब के ओछे वर्त्ताव से शिवाजी नाराज़ होगए तब सम्राट ने उनको एक विशाल भवन में सुख के साधनों सहित नजर कैद कर दिया। जब २-३ महीने तक भी सम्राट ने शिवाजी की कोई सुधि न ली तब उन्होंने अपने एक बीमारी प्रकट की। बादशाह की ओर से सद्वैद्यों ने कई उपाय किए किन्तु वह मिटी नहीं। बादशाह ने विचारा कि अगर इसी से यह मर गए तो आपही काँटा निकल जायगा। न युद्ध करना पड़ेगा और न कलंक लगेगा। उसी अवसर

जेतारणजी (४) चन्द्रावतजी (५) चौहाणजी (६) राठोड़जी (७) जालोर के राठोड़जी और (८) बघेली जी थे। उनके पुत्र (१) किशनसिंहजी हुए परंतु संवत १७३८में वह छोटी अवस्था में ही मरगए थे

(७) ऐसे ही वीर राजाओं और राज कुमारों की सेवा में रहकर सुखसिंहजी ने सुख पूर्वक आयु व्यतीत की थी और अपने पिता के आरम्भ किए हुए महल मकान या क़िला को विस्तारित किया था। चन्द कवि ने लिखा है कि 'वह कछवाहा वंश के भूषण थे। नाथावत कुल के दीपक थे। ग़रीबों के दुख दूर करने में मन रखते थे। रण में चढ़कर मुँह नहीं मोड़ते थे और चौमूँ में गढ़ किला या महलमकानबनवाए थे। पुरोहित रामनिवासजी एम. ए. के अनुसंधान के अनुसार मालूम हुआ है कि संवत १७२४-(२८) में सुखसिंहजी का परलोक वास हुआ था।

(८) सुखसिंहजी के ३ विवाह हुए थे। उन में (१) रामसुखी (चौहानजी) लीमराणा के हरीसिंहजी की (२) सामर्थ्यकुँवरि (चन्द्रावतजी) बलूदा के जगरूप की और (३) सदासुखी (गौड़जी) घाटवा के केशोदास की पुत्री थी। उन में गौड़जी के गर्भ से रघुनाथसिंहजी का जन्म हुआ और वही चौमूँ के मालिक हुए। स्मृति चिन्हों में सुखसिंहजी ने संवत् १६८५ में अपने पिता करणसिंहजी की छत्री बनवायी थी। (उससे प्रतीत होता है कि संवत् १६७७ में काँगड़ा के मैदान में ही करणसिंहजी की मृत्यु हुई थी और शिवाजी को लाने के लिए वह नहीं उनके पुत्र सुखसिंहजी गए होंगे।) अस्तु।

में एक सन्यासी वैद्य शिवाजी के देश से बनावटी सन्यासी के भेष में आया था उसके उपचार से शिवाजी अच्छे होगए और इस खुशी में बड़ी बड़ी कावड़ भर भर कई मण मिठाई सब लोगों के यहां भिजवाई और वैसी ही ढँकी हुई रीती कावड़ों में बैठ कर दोनों पिता पुत्र भी कैद से मुक्त होकर स्वदेश चले गए। शिवाजी गो, ब्राह्मण और ग़रीबों के पोषक थे, देश के प्रेमी थे, यवन राज्य के विरोधी थे, धार्मिक ग्रन्थों के अनुरागी थे, स्त्री धन-का त्याग रखते थे और असहाय की सहायता करते थे। हिन्दुत्व को उन्होंने अधिक उन्नत किया था। संवत् १७३१ में वह बड़ी धूम धाम से रायगढ़ के राजा हुए। अपने नाम 'क्षत्रिय कुलावतंस राजा शिवाछत्रपति' की मुहर जारी की और 'छत्रपति महाराजा शिवाजी' के नाम का सिक्का प्रचलित किया और संवत् १७३७ में वह भी मृत्यु के मुख में प्रविष्ट होगए।

आठवां अध्याय समाप्त।

॥ श्रीः ॥

नाथावतों का इतिहास।

रघुनाथसिंहजी

(६)

(१) सुखसिंहजी का स्वर्गवास होने पर उनके एक मात्र पुत्र रघुनाथसिंहजी उनके उत्तराधिकारी हुए और चौमूँ की गद्दी को ग्रहण किया। सुखसिंहजी की मरण मिती तथा रघुनाथ सिंहजी की जन्म तिथि प्रामाणिक रूप में प्राप्त नहीं हुई। उनकी जीवन घटनाओं का भी कोई विशेष विवरण नहीं मिला। सिर्फ इनके सम्बन्ध में "नाथावत सरदारों का संक्षिप्त इतिहास" (पृ० ४-५) में इतना लिखा है कि 'रघुनाथसिंहजी, सुखसिंहजी की जायदाद के मालिक हुए।' उन्होंने (१) महाराज विशनसिंहजी के साथ संवत १७४७ में जाटों से लड़कर 'जुवार' के क़िले को बरबाद किया और (२) महाराज सवाई जयसिंहजी की तरफ (से) धौलपुर की लड़ाई में लड़ते हुए सम्राट बहादुरशाह की उपस्थिति में घायल हुए। उनके पुत्र का नाम मोहनसिंह था।'

(२) उपरोक्त परिलेख में धौलपुर की लड़ाई का उल्लेख असंबद्ध है। संभव है "तवारीख़ नाथावतान्" से भ्रांतिवश उद्धृत होगया है। क्योंकि वह युद्ध संवत १७६३ के फागण बदी १४ को औरंगज़ेब की मृत्यु होने पर उनके पुत्र मुअज़्ज़म और आज़म के परस्पर में हुआ था और रघुनाथ सिंहजी उसके १२ वर्ष पहिले मर चुके थे। जिसके प्रमाण में उनके पुत्र मोहनसिंहजी की दी हुई "भूमिदान" के संवत १७५३-५७ और ५६ के काग़ज तथा मुहरी पट्टे प्रतिग्राहियों (लेनेवालों) के पास देखने में आए हैं जिनमें 'राज श्रीमोहनसिंहजी' लिखा है। यदि रघुनाथसिंहजी उस समय होते तो पिता की मौजूदगी में पुत्र को 'राज श्री' नहीं लिखते। अतएव यहां केवल जाट जाति के साथ युद्ध हुआ उसी का उल्लेख किया है दूसरे के विषय में मोहनसिंहजी के संबंध की बातों में

दसवें अध्याय में लिखा गया है। जाटों के विषय में प्रसिद्ध इतिहासों का आशय इस प्रकार है कि-

(३१) "विष्णुसिंहजी"—

(३) महाराज रामसिंहजी के पोते थे। इनके पिता कृष्णसिंहजी (जो रामसिंहजी के ज्येष्ठ पुत्र थे) कुँवरपदे में परलोक पधार गए थे इस कारण रामसिंहजी का उत्तराधिकार इन्हीं को मिला। उन दिनों सम्राट औरंगज़ेब दक्षिण की झंझटों में फँसे हुए थे और इधर जाट लोग दिल्ली प्रांत में लूटमार मचा रहे थे। उनमें नन्दा नाम का सुभटजाट प्रधान था वह भरतपुर से दिल्ली तक राहगीरों को लूटता था। उसकी मण्डली में कई निपुण जाट थे और उन्होंने कई जगह गढ़ भी बना लिए थे। कालिंदी के किनारे नन्दा का निज का किला था जिसको "जुआरी का किला" कहते थे। इस प्रकार के दुर्दण्ड जाटों की उद्दण्डता दूर करने के लिए कई बार चढ़ाई कीगई थी परन्तु वे परास्त नहीं हुए थे बल्कि ज़्यादा उद्दण्ड बन गए थे। तब औरङ्गज़ेब ने रामसिंहजी के पोते विष्णुसिंहजी को भेजा। साथ में उनके सहगामी सरदार रघु-(नाथसिंहजी आदि भी गए थे।) संवत् १७४६ के कार्तिक में चढ़ाई हुई थी और बसवा तथा मथुरा आदि में मुठभेड़ होते हुए युद्धयात्री कालिंदी के किनारे पहुँचे थे। वहाँ महाराज की फ़ौजों के और जाटों के परस्पर घमसान युद्ध हुआ। उसमें रघुनाथसिंहजी ने जुआरी के किले का एक ही रात में विध्वंश कर दिया। उनकी इस प्रगाढ वीरता को देखकर जाट लोग परास्त हो गए और महाराज के सम्मुख बादशाही वश्यता स्वीकार की "पुराने काग़ज़" (नं० ३) आदि में इस क़िले का नाम 'जुवार का किला' तथा 'जुवारी की गढ़ी' लिखा है। इससे आभासित होता है कि किला सामान्य श्रेणी का छोटा था। कैसा भी हो--

(४) भूस्वामियों की आत्मरक्षा के अनुरोध से अर्थशास्त्र के अभ्यासियों ने आठ प्रकार के क़िले निर्दिष्ट किए हैं (जिनके नाम आगे के अध्याय में हैं) वे चाहे छोटे हों या बड़े, चढ़ाई करके आनेवाले शत्रु के आकस्मिक आक्रमणों से वे किसी अंश में बचाते हैं। उनके न होने से अस्त्रशस्त्रादि से सजा हुआ बलवान् राजा

भी किसी मौके में सामान्य शत्रु से सहसा हार सकता है और क़िला में रहने वाला सामान्य मनुष्य भी किसी अवसर में बलवान् शत्रु से भी सहसा परास्त नहीं होता। इस कारण प्राचीन काल में किला बनाने का सर्वत्र प्रचार था और उसी विचार से चौमूँ के तत्कालीन अधीश्वर रघुनाथसिंहजी ने चौमूँ के वर्तमान धराधार किले का 'श्रीगणेश' (आरंभ) किया था और वह अंश उन दिनों 'रघुनाथगढ़' कहलाया था। फिर उनके पुत्र मोहनसिंह जी ने उसको कई हज़ार फ़ुटवर्ग भूमि के विस्तार में साँगोपाँग सम्पन्न करवाया और चारों ओर गहरी पक्की खाई (नहर) बनवाई।

(५) उपरोक्त जाट युद्ध के पीछे महाराज विष्णुसिंहजी का संवत् १७-५६ के माघ बदि ७ को काबुल में बैकुण्ठवास हुआ था। "वंशावली" (ग) में उनकी राणियों के ४ नाम हैं जिनमें २ हाड़ी १ चौहान और १ बड़गूजरजी थे किन्तु महामहोपाध्याय पण्डित गौरीशङ्करजी ओझा ने अपने "सवाई जयसिंहजी" निबन्ध में एक राणी का नाम इन्द्रकुँवरिजी लिखा है जिनके उदर से सवाई जयसिंहजी उत्पन्न हुए थे। अतः वंशावली में या तो इस नाम की न्यूनता है या नामान्तर हुआ है। अस्तु। विष्णुसिंहजी के ज़मानेमें "कुलपति" कवि थे उनका वैसा ही आदर था जैसा जयसिंहजी के ज़माने में कवि सम्राट "विहारीलालजी" * का था। दोनों का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया गया है।

* "कवि सम्राट् बिहारीलालजी" महाराज मिर्ज़ा जयसिंहजी (प्रथम) के ज़माने में थे। उनका जन्म कवि सम्राट् केशवदासजी की पत्नी के गर्भ से नाना के घर ग्वालियर में हुआ था। पिता के घर ओड़छा में भी १८ वर्ष रहे थे। वहां से आमेर आगए। यहां रह कर उन्होंने "विहारी शतसई" का निर्माण किया जिसके प्रत्येक दोहे के पुरस्कार में महाराज ने सात सौ मुहर दी और अन्य सब प्रकार से उनका आदर किया। हिन्दी कविता में शतसई का आसन ऊँचा है। उसके एक एक दोहे में अनेकों अर्थ या आशय भरे हुए हैं। उसके गूढाशय गर्भित दोहों का पूरा अर्थ जानने में कई बार भारी से भारी विद्वान् भी अटक जाते हैं। अब तक उस पर पचासों टीका और कई संस्करण हो चुके हैं। जिनमें बहुत सी टीका छप भी गई हैं। कहा जाता है कि

(६) रघुनाथसिंहजी का देहांत कब हुआ इसका लिखित प्रमाण नहीं मिला है परन्तु पुराने कागजों में संवत १७५१ तक इनके नाम से राजकाज का काम हुआ मिलता है और इसके पीछे राज श्री मोहनसिंहजी का उल्लेख हैं अतः संवत् १७५२-५३ उनके मरण का संवत् सम्भव होता है। रघुनाथसिंहजी के ३ विवाह हुए थे। उनमें (१) आनन्द कुँवरि (निर्वाणजी) खण्डेला की तरफ के कल्याण की (२) दीप कुँवरि (बीकावतजी) बीकानेर के प्रतापसिंहजी और (३) जय कुँवरि (करमसोतजी) मारवाड़ के श्यामसिंह की पुत्री थी। इनके गर्भ से मोहनसिंहजी का जन्म हुआ था।

महाराज से परिचय करने के लिए विहारीदासजी ने "नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहि विकाश नहिं काल। अली कली ही में फँस्यो, पीछे कौन हवाल॥ १॥ यह दोहा महाराज के पास भेजा तब उन्होंने उनको आदर पूर्वक रख लिया।

* "कुलपति मिश्र" महाराज रामसिंहजी के जमाने में हुए थे वह विद्वान तो ज़्यादा थे किंतु कविता में विहारीदासजी जैसी उत्कृष्टता नहीं थी। उन्होंने "संग्रामसार" नाम का एक ग्रंथ बनाया था जिसमें द्रोणपर्व का आशय है। वह रामसिंहजी के भेट किया था। उसकी लिखित प्रति है। दूसरा ग्रंथ "दुर्गाभक्तिचंद्रिका" विष्णुसिंहजी की आज्ञा से बनाया था। वह छप भी गया है। इनके सिवा और भी कई एक ग्रंथ हैं जो अमुद्रित अवस्था में ठिकानों में प्राप्त होते हैं।

नवाँ अध्याय

॥ श्रीः ॥

नाथावतों का इतिहास ।

मोहनसिंहजी

(१०)

[गत अध्यायों में गोपाल जी से रघुनाथ जी तक जो कुछ लिखा गया है उसमें ३-४ सौ वर्ष पहले का हाल होने से उस जमाने के मनुष्यों का हाथ का लिखा हुआ कुछ नहीं मिला किन्तु मोहनसिंह जी के जमाने के अधिकांश आदमियों के खुद के लिखे हुए विषय-विवेचन-या तत्कालीन हालात मिलते हैं जिनके आधार से बहुत सी बातें प्रचलित इतिहासों की भी निराधार प्रतीत हुई हैं। अतः उनकी सत्यता में संदेह नहीं किया जासकता।]

(१) संवत् १७५२ में चौमूँ के अधीश्वर रघुनाथसिंहजी का वैकुण्ठ वास होने पर उनके पुत्र मोहनसिंहजी को चौमूँ की गद्दी प्राप्त हुई। करण-सिंहादि के जन्म मरणादि की सही मिती नहीं मिली थी किन्तु मोहनसिंह जी के ज़माने में राज काज की बड़ी अच्छी व्यवस्था रही थी अतः उनके वर्ष जन्म पत्रादि भी प्रत्यक्ष प्राप्त हुए हैं। उनके अनुसार मोहनसिंहजी का जन्म संवत् १७३३ के आषाढ सुदी १४ सोमवार को २२।२० के इष्ट २।७ के सूर्य और ६।२४ के लग्न में हुआ था। उन्होंने अपने जीवन में जो कुछ किया उसका यथा क्रम वर्णन इस अध्याय में दिया गया है किन्तु आरंभ में टाड साहब की उस घटना का उल्लेख कर दिया है जिसका वर्णन अन्य इतिहासों में नहीं आया है और उसका समय भी उन्होंने निर्दिष्ट नहीं किया है।
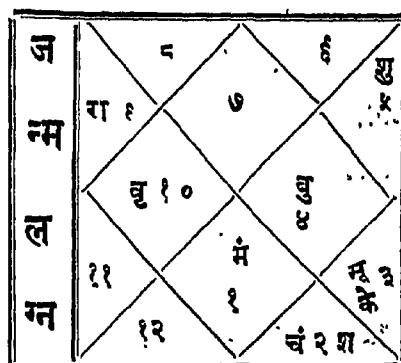
जन्म लग्न

(२) "टाड़राजस्थान" (पृष्ट ५९६ से ६००) में लिखा है कि 'देवती एक छोटा राज्य था। उसकी राजधानी

राजोरगढ़ था। महाराज जयसिंहजी के ज़माने में उसके मालिक बड़गूजर थे। वह अपने को लव के वंशज बतलाते थे। वहाँ के राजा सम्राट् की ओर से सेना सहित अनूपशहर रहते थे। राजोर में राजकुमार का निवास था। ....लड़कपन के जोश में आकर एक बार उसने आमेर से बाहर आए हुए महाराज जयसिंहजी पर भाला चलाया। वह उनके शरीर में नहीं लगा तो भी शरीर रक्षकों ने राजकुमार को पकड़ लिया और महाराज के समीप में भली भाँति पूछ ताछ हो जाने पर महाराज ने राजकुमार को खिलअत शिरोपाव पहना के बड़े आदर के साथ ५० सवारों सहित राजोर भेज दिया। उसके थोड़े दिन पीछे महाराज ने राजोर को जयपुर राज्य में मिला लेने के विचार से साँवली के फतहसिंहजी बणवीर पोता की संरक्षता में ५हज़ार फौजें भिजवाई जिसका आमेर के सामंतों ने निषेध भी किया था किंतु फतहसिंह ने राजोर को फतह करने के सिवा वहाँ के राजकुमार का शिर काट लाने की शेखी और दिखलाई। वह शिर महाराज के सन्मुख सामंतगणों को दिखलाया जिस पर चौमूँ के अधिपति मोहनसिंहजी की आँखों से आँसू आगए। तब महाराज ने कुछ ऐसे वचन कहे जिनको सुनकर वहबाहर चले गए और महाराज ने राजोर तथा चौमूँ दोनों देशों को जयपुर में मिला लिया।'

(३) देखा जाय तो यह घटना मामूली नहीं थी। पुराने काग़ज़ों या इतिहासों में लिखी जाने योग्य थी। किन्तु किसी में इसका वर्णन देखने में नहीं आता। सिर्फ फतहसिंहजी राठोड़ ने अपनी "जयपुर हिस्ट्री" (अध्याय२) में जो कुछ लिखा है वह टाड की नक़ल मात्र है। और "वीरविनोद" (पृ०१४४) में देवती झील का सिर्फ अलवर के समीप होना सूचित किया है। इनके सिवा "राजपूताने का इतिहास" (पृ० १३५) में देवती राज्य के विषय में एतावन्मात्र लिखा है कि-'प्रतिहार गोत्र के गुर्जर राजा मंथनदेव की राजधानी राजोरगढ़ ही थी बड़गूजरों का राज्य उसदेश पर बहलोल लोदी के समय तक रहा था उसके पीछे कछवाहों ने उनकी जागीरें छीनी होंगी।' बहलोल का समय विक्रम संवत १५१५ के कुछ वर्ष पीछे तक रहा था। यदि टाड़साहब

की उक्त कहानी उनके लिखे अनुसार किसी भी अंश में साधार या सत्य होती तो ओझा जी उस पर अवश्य कुछ लिखते किन्तु उन्होंने इस विषय पर कुछ नहीं लिखा। बड़वा पुस्तकों में मोहनसिंहजी के विषय में रूपान्तर से यह लिखा मिलता है कि-'एकबार वह नाराज होकर जयपुर से उदयपुर चले गए थे। रास्ते में जोधपुर वालों ने उनको जागीर दी जिसके कई गाँव अब 'नाथावतों का गाँव' नाम से विख्यात हैं। वहाँ से उठ कर वह उदयपुर गए वहाँ भी उनको जागीर दीगई और वह कई दिन वहाँ रहे। फिर महाराज जयसिंहजी अपने विवाह में उदयपुर गए तब उनको ले आए।'

(४) जयसिंह जी का विवाह उदयपुर कब हुआ था इस विषय में "राजपूताने का इतिहास" (पृ० ९१३) में लिखा है कि-'विक्रम संवत् १७६५ आषाढ बदी २ को महाराणा अमर-सिंह (द्वितीय) की पुत्री चन्द्रकुँवरि का विवाह आमेर के महाराज सवाई जयसिंहजी के साथ हुआ था।' यदि बड़वाजी के लेखानुसार मोहनसिंहजी का उदयपुर जाना मान लिया जाय तो टाड्साहब की उक्त कहानी संवत् १७६५ से पहले की होती है और संवत् १७५२ से १७६५ तक के पुराने कागजों में महाराज के मनोमालिन्य से मोहनसिंह जी के बाहर चले जाने या चौमूँ को जयपुर में मिलाने आदि की गंध तक नहीं है-बल्कि उस जमाने के कागजों में तो मोहनसिंह जी के प्रति महाराज सवाई जयसिंह जी के स्नेह-श्रद्धा-विश्वाश-और आत्मीयभाव प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होते हैं और उदयपुर भी वह अकेले नहीं गए थे महाराज के साथ गए थे ऐसा आभा-सित होता है। उदाहरणार्थः—

(१) संवत १७५९ वैशाख सुदी १५ और संवत् १७६० काती बदी ८ के कागदों में मोहनसिंहजी के काम-दारों ने चौमूँ ठिकाने के प्रत्येक गाँव की मौजूदा खेती बारी तथा उपज आदि की ब्योरेवार व्यवस्था बतलाई है। (२) संवत १७६१ पौष बदी ८ को······के राजा माधोसिंह ने मोहन-सिंहजी के मार्फत महाराज जयसिंहजी से प्रार्थना की है कि अब वह काम करा दिया जावे। (३) संवत् १७६२ वैशाख सुदि १३ के दो बड़े लंबे चौड़े

कागजों में राज्य प्रबंधादि की प्रत्येक विषय की रिपोर्ट की है। (४) संवत १७६३ के पत्रों में अत्रकुशलं तत्रास्तु (राजी खुशी के समाचार) हैं। और (५) संवत् १७६५ (जो राज का ६४ था) के वैशाख बदी ५ के पत्र में महाराज सवाई जयसिंहजी की आज्ञा से पुरोहित हरसरूपजी फतहचंदजी ने मोहनसिंह जी को लिखा है कि- 'आपके लिए महाराज के खास दसखतों का रुक्का मिला है वह आपके पास नियमानुसार पहुँचेगा। किसी खास काम में कुछ रद्दो बदल करना है इसलिए आप देखते कागद के ज़रूर चले आवैं ढ़ील घड़ी १ की न होनें दें।' ऐसे पत्रों के देखते हुए कभी विश्वास नहीं किया जा सकता कि टाड साहब की कहानी सची थी। अतः मानना पड़ता है कि-उस अवसर में न तो महाराज नाराज हुए थे-न मोहनसिंहजी मेवाड़ गए थे-और न चौमूँ जयपुर में मिलाया था। संभव है किसी ईर्षालु आदमी ने टाडसाहब के सन्मुख ऐसा वर्णन किया होगा। और उस पर विश्वास करके उन्होंने अपने ग्रन्थ में लिख दिया होगा। अस्तु

(६) मोहनसिंहजी के ज़माने में भारत में बादशाहों की ओर से राजाओं को और राजाओं की ओर से सरदार लोगों या जागीरदारों को नित्य ही अनेक प्रकार से तंग करते रहते थे। उन दिनों यह स्वाभाविक होरहा था कि कोई भी राजा बादशाह या जागीरदार किसी भी कमज़ोर की जागीर जप्त कर लेता-उसके ठिकाने में खालिसा बिठा देता-या उसे मौके बे मौके अनिष्टकारी कामों या मुकामों की नौकरी में भेज देता था। और किसी अंश में "लाठी जिसकी भैंस" बना रक्खा था। आज़म और मुअज्जम की लड़ाई भी ऐसे कारणों की जड़ थी। यहाँ उसका उल्लेख इसलिए किया गया है कि "शार्ट हिस्ट्री" (पृ० १०) के अनुसार उसमें चौमूँ के अधीश्वरों ने भी महाराज की सेवा में रहकर सहयोग दिया था। "वीर विनोद" (पृ० ७१) तथा "जयसिंह-जीवनी" (पृ० २-३) में लिखा है कि 'संवत् १७६३ फागण बदी १५ को अहमदनगर में औरंगज़ेब की मृत्यु हुई उस समय उसका बड़ा बेटा मुहम्मद पहले मर गया था-दूसरा बेटा मुअज्जम (जो आमेर के भोमियां

विजयसिंह सहित काबुल में था) अपने को बादशाह सूचित कर दिया था और तीसरा बेटा आज़म (जो दक्षिण में था) वह भी अपने को बादशाह बतला रहा था। इस प्रकार से दोनों तैयार हो कर दिल्ली चल दिए थे। रास्ते में धौलपुर तथा आगरा के बीच 'जाजऊ' के पास दोनों में लड़ाई हुई जिसमें छोटा भाई आज़म मारा गया और बड़ा मुअज्जम (बहादुरशाह) बादशाह बन गया। उक्त लड़ाई में जयसिंहजी ने आज़म का पक्ष छोड़ कर मुअज्जम का पक्ष लिया था फिर भी वह बहादुरशाह हुआ-तब आमेर में अपनी ओर से सैयद हुसेनखाँ बारहा को फ़ौज़दार करके रख दिया। "नाथवंश प्रकाश" (पद्य १३३ से ४३ तक) में लिखा है कि 'इस लड़ाई में नाथावत, कूँभावत, नरूका, खंगारोत, सुरताणोत, कल्याणोत, पच्याणोत, स्योब्रह्मपोता और चतुर्भुजोत आदि भाई बेटे भी महाराज के साथ थे।'

(७) खालसा के दिनों में महाराज जयसिंहजी को विजयसिंहजी की बाई का विवाह करने के लिए आमेर आना था उसके लिए महाराज ने बादशाह से सीख माँगी परन्तु वह नहीं मिली। तब "अधिकार लाभ" (पृ० १०) के अनुसार चौमूँ सामोद के नाथावत सरदार महाराज के बाई जी को (जो विवाह के योग्य हो गए थे) सामोद लेगए और वहां राजा बिहारीदासजी के महलों के दीवान खाने में भादवा वदी ८ को बड़ी धूमधाम के साथ विवाह कर दिया। ब्याहने के लिए बूँदी के बुधसिंहजी हाड़ा आए थे और विवाह के सब दस्तूर जो माता पिता किया करते हैं चौमूँ सामोद के सरदारों और उनकी राणियों ने किए थे। "वंशभास्कर" तथा "बुधसिंह चरित्र" में भ्रमवश यह लिखा है कि 'महाराज जयसिंहजी ने अपनी पुत्री का विवाह सामोद लेजाकर किया था। किन्तु उनको स्वदेश जाने की सीख ही नहीं मिली थी।'

(८) उन्हीं दिनों में बहादुरशाह के छोटे भाई कामबख्श ने दक्षिण में विद्रोह किया तब बहादुरशाह उसको दबाने के लिए सम्वत १७६४ के फागण बदी १४ को आमेर होते हुए मेड़ता पहुँचे। "इतिहास राजस्थान"

(पृ० ११०) में लिखा है कि 'उसी अवसर में उन्होंने जोधपुर को भी खालिसे कर लिया और जोधपुर के अजीतसिंहजी को अपने साथ लेलिए। जयपुर के महाराज जयसिंहजी और जोधपुर के महाराज अजीतसिंहजी इन दोनों ने अपने राज्य वापिस आ जाने की आशा से नर्मदा के किनारे (इन्दौर) तक बादशाह का साथ दिया किन्तु राज्य मिलने की संभावना न देखकर दोनों राजा बिना पूछे ही वापिस चले आए और रास्ते में उदयपुर के महाराणा अमरसिंहजी (द्वितीय) को अपने आने की सूचना दी। महाराज मानसिंहजी तथा महाराणा प्रतापसिंहजी के पीछे इन दोनों राज्यों का आपस में आना जाना बन्द हो रहा था अतः उसको मिटा देने के लिए महाराणाजी ने अपनी माता की सम्मति के अनुसार दोनों राजाओं का बड़े ठाट बाट से स्वागत किया और कुछ दिन वहीं ठहराकर संवत् १७६५ के आषाढ़ वदी २ को आमेर नरेश महाराज जयसिंहजी के साथ अपनी पुत्री का और जोधपुर नरेश महाराज अजीतसिंहजी के साथ अपनी बहिन का विवाह कर दिया। बड़वा पुस्तकों में लिखा है कि 'विवाह के समय महाराणा ने महाराज से यह शर्त लिखवाली थी कि इनके उदर से जो पुत्र होगा वह जयपुर की गद्दी पर बैठेगा और उस पर मोहनसिंह जी आदि के हस्ताक्षर करवाए थे।' किन्तु "अधिकार लाभ" (पृष्ठ ११) में लिखा है कि 'उस समय महाराज के साथ नाथावत राजावत तथा अन्य सभी सरदार थे। महाराज ने महाराणाजी के अनुरोध से सरदार लोगों को हस्ताक्षर कर देने को कहा किन्तु सामंतों ने निवेदन किया कि आपने जो कुछ लिख दिया सो अच्छा किया आप विवाह करें इसमें कोई हर्ज नहीं परन्तु हम लोग इस लिखावट पर बे-क़ायदा दस्तखत नहीं कर सकते।'

(६) "वंशावली" (ग) में लिखा है कि 'महाराज जयसिंहजी ने प्रवास में मोहनसिंह जी को आमेर पर खालसा बैठने की कही तब उन्होंने निवेदन किया था कि आप कुछ भी चिन्ता न करें मैं उसका प्रबन्ध स्वयं करता हूँ। यह कह कर वह उदयपुर से आमेर आए और संपूर्ण भाई बेटों को इकट्ठे करके उनकी २ श्रेणी क़ायम

की। उनमें एक को तो दीवान रामचंद्र के और दूसरी को श्यामसिंह पचेवर वाले के आधीन करके सैयदों पर धावा बुलवा दिया। सर्व प्रथम काणोता पर अधिकार किया और उस के पीछे प्रत्येक स्थान को सैयदों से खाली करवा लिया। "शार्ट हिस्ट्री" (पृ० ९) में लिखा है कि मोहनसिंहजी ने संवत् १७६६ में आमेर पर से बादशाही थाणा उठा दिया था और सैयदों को हटाने में अपनी वीरता दिखलाई थी।'

(१०) खालिसा के सम्बन्ध में "जयसिंह जीवनी" (पृ० ३) में लिखा है कि 'उदयपुर में रहते समय उक्त तीनों (जयपुर, जोधपुर और उदयपुर के) राजाओं ने यह स्थिर किया था कि जयपुर और जोधपुर को अपने बाहुबल से लेने चाहियें, तदनुसार तीनों की संमिलित सेना ने जोधपुर को जाघेरा और कुछ शर्तों के साथ शाही फौज़दार को हटाकर महाराज अजीतसिंहजी का अधिकार करा दिया। उसके पीछे आमेर जाकर वहाँ रामचन्द्र दीवान और श्यामसिंह आदि के द्वारा शाही फौज़दार हुसेन खाँ को हटाया। इस प्रकार महाराज जयसिंहजी ने अपने राज्य सिंहासन को प्राप्त किया।' "वंशावली" (ग) (पृ० ४८) में यह विशेष लिखा है कि 'आमेर आते हुए दोनों राजाओं की फौज़ों ने रास्ते में साँभर पर क़ब्जा किया तब बादशाह नाराज हुए किन्तु इन दोनों ने उत्तर दिया कि 'हमलोग आपकी सेवा में रहकर आपका अन्न खाँय तब नमक कहाँ से लावें। यह सुनकर सम्राट सन्तुष्ट हो गए और साँभर झील जयपुर, जोधपुर तथा शामलात में देदी।' (वहाँ अब दोनों राज्यों के हाकिम रहते हैं और शामलात की कचहरी में बैठकर काम करते हैं। अस्तु।

(११) टाड साहब ने महाराज जयसिंहजी के विषय में एक विलक्षण घटना और लिखी है उसका भी अन्य इतिहासों में उल्लेख नहीं मिलता है किन्तु "पुराने काग़ज़ों" से उसका होना पाया जाता है। "टाड राजस्थान" (पृ० ५९१) में लिखा है कि 'महाराज विशनसिंह जी के जयसिंह जी और विजयसिंह जी दो पुत्र थे और दो राणियों के जुदे २ समय में हुए थे।

उनमें जयसिंहजी आमेर के राजा हुए और उन्होंने विजयसिंहजी को बसवा देने का बचन दिया परंतु विजयसिंहजी की माता ने अपने पुत्र को दो बहु-मूल्य ज़ेवर देकर बादशाह के पास दिल्ली भेज दिया और यह कहला दिया कि आमेर हाथ आजाने पर ५ करोड़ रुपए तथा आवश्यकता होने पर ५ हज़ार सेना सहायतार्थ भेज देंगे। इस प्रलोभ से बादशाह ने आमेर से जयसिंह जी को बदल कर विजयसिंहजी को आमेर देने की आज्ञा दी। बादशाह के समीप में खानदौरान एक उच्चाधिकारी अफ़सर था वह महाराज जयसिंह जी का 'पगड़ी बदल भाई' था। उसने कृपाराम के द्वारा जयसिंहजी की की हुई अदला बदली का रहस्य चुपचाप पहुंचा दिया तब जयसिंहजी ने चौमूँ के ठाकुर मोहनसिंहजी जैसे प्रधान सामन्तों को इकट्ठे करके कहा कि 'आप लोगों ने मुझे आमेर का राजा बनाया है। परंतु बादशाह अब विजयसिंह को राज देना चाहते हैं। इसमें आप लोगों की क्या मरजी है।' यह सुनकर प्रधान सामंत मोहनसिंहादि ने महाराज को धीरज बँधवा कर निवेदन किया कि आप कोई चिंता न करें। विजयसिंहजी को बसवा देदेवें फिर आपको आमेर से कोई नहीं हटा सकेगा। महाराज ने बसवा का पट्टा लिख कर 'बारह कोटड़ी' वालों को सौंप दिया तब उन लोगों ने अपने प्रतिनिधि भेज कर विजयसिंहजी को बुला लिया। उनके आने पर सामंतों ने सोचा कि दोनों भाई मिललें तो अच्छा है। इस बात को विजयसिंह जी ने इस शर्त पर स्वीकार किया कि 'सम्मेलन आमेर न हो अन्यत्र हो।' तब "पुराने कागज" (नं ९३) के अनुसार मोहनसिंहजी ने कहा कि 'सम्मेलन चौमूँ होना चाहिये वहाँ सब तरह की शोभा-सुविधा और संरक्षा के साधन मौजूद मिलेंगे।' किन्तु दुर्दैव के दबाव से वैसा नहीं हुआ साँगानेर में होने का निश्चय रहा। उसी अवसर में एक दूत ने आकर अर्ज़ किया कि उस सम्मेलन को माजी साहिबा (विजयसिंहजी की माता) भी देखना चाहते हैं तब सामंतों ने उनके लिए स्वीकृति देदी और मिती नियत करवादी।

(१२) यथा समय साँगानेर के महलों में सम्मेलन शुरू हुआ। जय विजय

शूर सामन्त और सरदारगण सब उपस्थित होगए। उसी अवसर में माजी साहिबा की सवारी भी आमेर से आपहुँची। उनके साथ में तीनसौ रथ थे और महाड़ोल में माजी आए थे। क़ायदा के मुताबिक़ वह ज़नाने महलों में चले गए और महाराज तथा सरदार लोग बाहर रहे। थोड़ी देर बाद नाजर ने आकर पूछा कि-महाराज अन्दर पधारेंगे या माजी यहाँ आवें। तब महाराज ने कहा कि सामंतों की जैसी इच्छा हो वैसा किया जाय तब सामंतों ने दोनों भाइयों को अन्दर भेज दिया। कदीमी क़ायदा के अनुसार महाराज ने प्रवेशद्वार में अपने अस्त्र शस्त्र ड्योढी पर रख दिए तब विजयसिंहजी ने भी वैसा ही किया किन्तु अन्दर जाकर देखा तो न माजी थे न दासियाँ थीं और न सम्मेलन की सामग्री (कलश आरता आदि) थे। वहाँ तीन सौ रथों में आए हुए शस्त्रधारी सैनिक और महाड़ोल में आया हुआ हट्टा कट्टा उग्रसेन भाटी था उसने विजयसिंहजी को जाते ही बाँध दिया और पूर्वागत महाड़ोल में बिठा कर यथापूर्व आमेर भेज दिया बाहर वालों को इसका कोई पता नहीं लगा। उन्होंने समझा कि माजी मिल कर वापस गए। किन्तु थोड़ी देर पीछे अकेले जयसिंहजी आए और उन्होंने सूचित किया कि 'परंपरा की मर्यादा को तोड़ कर विजयसिंह बादशाह की सहायता से आमेर का राजा होरहा था उसके राजा होने से आप लोगों की मान मर्यादा अनेक अंशों में हीन हो जाती अतः मैंने उस को पेट में रख लिया है।' यह सुन कर सामंत गण विदा होगए और बादशाह की फौजें वापस चली गई। जयसिंहजी कैसे विचित्र बुद्धि थे कार्य सिद्धि के पहिले उनका कोई विधान प्रकट न हो सका। पेट में जाने को सही मानकर वंशभास्कर आदि बनाने वालों ने महाराज को भ्रातृहन्ता लिखा है किन्तु उन्होंने भाई को मारा नहीं था आमेर में क़ैद किया था। वहाँ उनके संतान भी हुई थी। वंशावलियों में उनके वंश को 'विजयसिंहोत' लिखा है। इस विषय में वृद्ध मनुष्यों का यह भी कहना है कि 'महाराज ने उनको कृष्णपक्ष की काली रात में काले बैल और काली साखत के रथ में बिठाकर वन में भेजे थे और हितचिंतक वाहक उनको वापस ले आए थे।' तब पीछे वह आजन्म आमेर में रहे।

(१३) "शार्टहिस्ट्री" (पृ. १०) और "नाथावतों का संक्षिप्त इतिहास" (पृष्ठ ६) में लिखा है कि 'महाराज सवाई जयसिंहजी की सेवा में रह कर सोहनसिंहजी ने "पारागढ़" की लड़ाई में फतह पाई थी और उसके इनाम में राज्य से रैणावाल मिली थी। इसके बाबत "पुराने कागज" (नं. ६०) में लिखा है कि 'संवत १७८५ में सोहनसिंहजी के जो जागीर थी उसी के पट्टे में रैणावाल के देने का उल्लेख किया गया था।' अतः यह लड़ाई पारागढ़ में नहीं तारागढ़ में हुई थी भ्रम वश किसी ने तारा का पारा बना दिया। क्योंकि उक्त कागज के ५ वर्ष पहिले तारागढ़ पर ही चढाई हुई थी, और उसी में मोहनसिंह जी ने फतह पाई थी। युद्ध क्यों हुआ था? इस विषय में विषयांतर की दूसरी बात विदित होने से असली बात ध्यान में आती है। "टाड़राजस्थान" (पृ.१४८) में लिखा है कि 'फर्रुखशियर के राजत्व काल (संवत १७७४) में शाही मन्त्रियों के परस्पर झगड़ा हुआ था उनमें एक ओर मुग़ल अमीर और दूसरी ओर सय्यद भाई थे। उन्होंने अपनी शोचनीय दशा होने के विचार से जोधपुर के अजीतसिंह जी को बुलाए और स्वार्थ सिद्धि के लिए दोनों पक्ष ने उनका भरपूर सम्मान किया। समय का प्रभाव देखना चाहिये किसी दिन अजीतसिंह जी जोधपुर के लिए औरंग ब के पीछे पीछे इन्दौर तक गए थे और आज औरंगज़ेब के उत्तराधिकारी बादशाही बनी रखने के लिए अजीतसिंहजी का सहारा लेरहे हैं। फिर भी उनका स्वार्थ सिद्ध नहीं हुआ। फर्रुखशियर की हत्या हो जाने से थोड़े ही दिनों में दो तीन बादशाहों की अदला बदली होगई। उन दिनों महाराज सवाई जयसिंहजी का फर्रुखशियर के साथ स्नेह भाव होने से सैयदों ने महाराज पर कुदृष्टि की थी किन्तु संवत् १७७७ के वैशाख में अजीतसिंह जी की बाई का विवाह जयसिंहजी के साथ होजाने से उनकी कुदृष्टि का कोई फल नहीं हुआ। उसी अवसर में अजीतसिंहजी को सूचित हुआ कि 'दिल्ली सम्राट् मुहम्मदशाह उनपर चढ़ाई करेंगे।' यह सुनकर अजीतसिंहजी ने उनके चढ़ने से पहिले ही बादशाही साम्राज्य के एक बड़े

इलाक़े "अजमेर" * को घेर लिया और उसके राज काज वर्त्ताव व्यवहार और क़ानून क़ायदे आदि सब पर अपना प्रभुत्व स्थिर कर दिया। उसके दो वर्ष बाद संवत् १७७६ में मुहम्मदशाह ने अजमेर लेने का फिर प्रयत्न किया और महाराज सवाई जयसिंह जी के संरक्षण में फौजें भेज कर अजमेर पर चढ़ाई की। कवि करणीदान जी ने लिखा है कि 'एक तरफ तो बादशाह की बाईसी थी और दूसरी तरफ अकेले अजीतसिंहजी थे किन्तु रणबंके राठोरों से अजमेर को सहसा नहीं लेसके। अन्त में महाराज के सहगामी मोहनसिंहजी आदि ने तारागढ़ में पहुँच कर भीषण युद्ध किया और इधर अजीतसिंहजी को जयसिंह जी ने समझाया तब उन्होंने अजमेर पर से अपना अधिकार हटा लिया और "तारागढ़" * को खाली कर दिया। ऐसे ही अवसर में मोहनसिंह जी की बुद्धि वीरता और साहस को सराह कर महाराज ने उनको रैणवाल की जागीर इनाम में दी थी। अस्तु।

* "अजमेर" राजपूताना के अन्तर्गत (अँग्रेजी राज्य में) एक प्रसिद्ध शहर है। इसको "भा. भ्र." (पृ. २०५) के अनुसार संवत् २०२ में अजयपाल पाल ने बसाया था। दूसरी बार "रा. पू. इ." के अनुसार संवत् ११५०-५५ या ६०-६५ में अर्णोराव (आनल्लदेव) ने या उसके पुत्र अजदेव ने बसाया था। हरकेलि आदि के निर्माता विग्रहराज (बीसलदेव) अजमेर के राजा थे। और "अढाई दिन का झौंपड़ा" उनकी संस्कृत पाठशाला था। "भा. भ्र." के अनुसार अजमेर ७० हजार मनुष्यों की बस्ती है। उसमें आनासागर- पाईसागर- पुष्करक्षेत्र- ख्वाजासाहिब की दरगाह- अक़बर के महल तारागढ़ नसियां-रेल्वे दफ्तर तथा उसका लोहे का कारखाना-सीसे की खान मेयो कालेज-आर्यसमाज और अढाई दिन का झोंपड़ा देखने योग्य हैं।

* "तारागढ़" अजमेर के पहाड़ों से १३०० फुट ऊँचे शिखर पर दुर्भेद्य किला है। भूतल से १ कोस ऊँचा जाने पर तारागढ़ में पहुँच सकते हैं। चौहानों के जमाने में यह उनका पहाड़ी क़िला था। किले की पहाड़ी स्वास्थ्य के लिये लाभदायक है। रोगग्रस्त अँग्रेज वहां रहा करते हैं और वहीं मीरहुसेन की दरगाह है।

* "ख्वाजासाहब की दरगाह" में हिन्दू मुसलमान सब जाते हैं। उसमें लोहे की एक देग कई मण अन्न पकाने योग्य है। वहां के वार्षिक मेले में २ लाख यात्री आते

(१४) उन दिनों बादशाही साम्राज्य की आपत्तियां अलग करते रहने आदि कारणों से यद्यपि इस देश के राजाओं को अपने राज्य को सम्हालने का अवकाश नहीं मिलता था तथापि आमेर नरेश महाराज सवाई जयसिंह जी ने उस अवसर में भी अपने राज्य को सदूव्यवस्थ बनाए रखने का सदैव ध्यान रक्खा और मोहनसिंहजी जैसे कर्मवीर साहसी सरदारों के आधिपत्य में आमेर राज्य के कई देशों को इजारे के रूपमें परिणत करके आयवृद्धि के आयोजन किये। "पुराने काग़ज" (नं० १६) से सूचित होता है कि ऐसे आयोजन संवत् १७६०-६५ में अंकुरित हुए थे और सर्व प्रथम संवत् १७७०-७५ में मोहनसिंह जी के सत्वाधिकार में आए थे। उन दिनों मोहनसिंह जी के निजकी जागीर के और इजारे के सम्पूर्ण गाँवों की संख्या सौ के लगभग थी। उनमें (१) पहिले पहल आमेर के समीपवर्ती खोह के गाँव आए थे- पीछे (२) द्योसा (३) हसतेड़ा (४) शेखावाटी और (५) तौंरावाटी के देशों में यथाक्रम आधिपत्य हुआ था। राज्य के विभिन्न देशों को इजारे के रूप से पर हस्त रखने में अनेक प्रकार की सुविधा और लाभ थे। राज्य अपने ठहराव के रुपए प्रतिवर्ष लेलेता और चिन्ता दुविधा हानि आपत्तियां अथवा सुख सौभाग्य इजारदार के जिम्मे रहते। उसमें उनके किसी समय कूँते हुए से भी ज़्यादा लाभ हो जाता और कभी अधिक आपत्तियाँ सहने परभी हानि होती, परंतु उसमें किसीको असन्तोष नहीं था। जिस भाँति बादशाहों की ओर से बंगाल बिहार आदि के हाकिम अपने प्रांत के देशाधिपति होकर रहते थे उसी भाँति इजारदार लोग भी अपने

हैं। "ख्वाजासाहब" संवत् ११९९ में एक ग़रीब के घर जन्मे थे। नाम मुईनुद्दीन चिस्ती था। बड़े पहुँचे हुए महात्मा थे। ऐसे ४ महात्मा प्रसिद्ध हुए थे। उनमें (१) पाटपटम के बाबा फ़रीद शकरगंज (२) दिल्ली के शेख़निजामुद्दीन ओलिया (३) गुलबर्गा के बाबा गीसूदराज़ और (४) अजमेर के ख्वाजेसाहब थे।

* "पुष्कर" अजमेर के वायव्य में ७ मील पर है। पुराणों में पुष्कर को तीर्थों का राजा बतलाया है। कार्तिक में वहां बड़ा भारी मेला होता है जिसमें लाखों नरनारी स्नान के मिमित्त जाते हैं और उस अवसर में ऊँट घोड़े और बैल खरीद लाते हैं।

अधिकार के देशों में देशाधिपति की हैसियत से रहते थे। उनमें कोई भी इजारदार किसी भी देश में जाते तो वहाँ सर्वप्रथम राज्य के पंचरंग के नीचे उनकी कोठड़ी क़ायम होती और वही उनदिनों की कचहरी या दफ्तर था। उसीमें प्रत्येक गाँव के न्याय तफावत या प्रवन्धादि होते और वहीं से प्रत्येक प्रकार के व्यवस्थापक आते जाते थे। सत्वाधिकारियों के आधिपत्य में कामदार ओहदादार सेनासमूह सवारी और लवाजमा आदि अपने निज के तथा राज्य के भी यथा योग्य रहते थे। अपने अधिकृत देशों में रह कर वह लोग कृषि और कृषकों को सम्हालते, स्थानीय या बाहर से आए हुए लोगों को खेती बाड़ी या व्यवसाय में लगाते, समय पर बाहजोत करवाते, उचित मात्रा में जल खाद और उत्ताम बीज देते, कृषक परिवार को पालते, उनको हर अवसर में सहायता पहुँचाते, सबको राजी रखते, आश्रितों के लिए छान, छप्पर, झोंपड़े या मकानादि बनवाते और प्रति वर्ष फालतू ज़मीन को सुधराकर खेती या आबादी में लगा के आमदनी बढ़ाने के नित्य नये तरीक़े करते रहते थे। ऐसा करते हुए पूर्व निश्चय की आमदनी बराबर बढ़ती रहती तो मियाद पूरी होने पर राज्य उसकी मात्रा बढ़ा देता और दूसरी अवधि पूरी होने तक उसी माफिक लेता रहता था जिसमें राज्य की आमदनी स्वतः बढ़ती और कृषिरक्षण में सहयो आदि की दुविधा नहीं होती थी। ऐसे प्रबन्धों में कभी कोई कुजीव बाधा डालते तो इज़ारदारों का सत्वस्थिर रखने के लिए राज की ओर से भी सेनासमूह या अफसरगण यथावश्यक जाते और सत्वाधिकारियों के अनुकूल रहकर उपद्रवकारियों को परास्त करते थे।

(१५) पूर्वोक्त प्रवन्ध के सम्बन्ध में मोहनसिंहजी की अधिक प्रशस्ती हुई थी। वह कार्यदक्ष-प्रभावशाली और आत्मीय मनुष्य थे। महाराज सवाई जयसिंहजी ने उनकी अवस्था व्यवस्था और आत्मीयता आदि के अनुरोध से उनको यथाक्रम अनेक देशों के सत्वाधिकारी किए थे और इजारा आदि की व्यवस्थाओं का सुचारुरूप में प्रचार करवाया था। इस विषय में मोहनसिंह जी का अधिक अनुभव था। वह महाराज की सेवामें यत्र तत्र

बाहर रहते हुए भी यहाँ आते और सब तरह की सम्हाल कर जाते थे। उन्होंने आमेर राज्य के चारों ओर के गाँवों में संवत् १७६९-७० से ही स्त्वाधिकार का अनुभव--यथाक्रम शुरू कर दिया था और इस विषय में महाराज की ओर से भी उनको समय समय पर खास रुक्के-अफसरगण-फौजें और हमराही आदि उपलब्ध होते रहे थे। विशेष कर शेखावाटी प्रांत में उनका अधिक महत्व मान्य हुआ था। वहाँ झूँझणूँ--नरहड़--गाँवड़ी--बबाई--और उदयपुर ये पाँच परगने (जो प्राचीन काल में महल कहलाते थे) उनके स-त्वाधिकार में रहे थे। उनमें (१) हरिसिंहजी छाबड़ा (जो खण्डेलवाल वैश्य थे और शाह भी कहलाते थे) तथा (२) शार्दूलसिंह जी शेखावत (जो साधानियों के आदि पुरुष थे' और साधू या सादाजी भी कहलाते थे) दो हिस्सों के अधिकारी थे। इन लोगों को (प्रत्येक को) उस देश के पूरे प्रमाण के १४६२७३।) का एक तृतियांश ४८७५७॥।) राज्य को देना पड़ता था जिनका विशेष परिचय "पुराने कागज" (नं० २०१ से २२१ तक) देखने में आया था प्रतीति के लिए यहाँ भी उनका (दो चार का) सारांश दिया है। (१) संवत् १७६९ भादवा सुदी ७ को संघी धनराजजी ने मोहनसिंहजी को लिखा था कि 'शाह हरीसिंहजी इजारे में रद्दोबदल कराने के प्रयोजन से आपसे मिलना चाहते हैं।' (२) संवत १७७३ जेठ सुदी १४ तथा आषाढ बदी १० के पत्रों में राय खींवसिंहजी तथा पेमसिंहजी ने विनम्रभाव से मोहनसिंह जी को लिखा था कि 'उदैपुर ज़िला में बाहजोत का जल्दी प्रबन्ध करावें इस समय ज़मीनदार लोग ज़्यादा मिलते हैं।' (३) संवत् १७७३ फागण बदी ८ को आमेर के दीवान किशोरदास जी ने द्यौसा--भात्री--चाटसू--और हसतेड़ा आदि के पूर्वी दक्षिणी और पश्चिमी प्रांतों के प्रधान कामदारों को इत्तिला दी थी कि 'मोहनसिंहजी वहाँ कोटड़ी बनवावेंगे, अनुकूल अवसर में बाहजोत करावेंगे, बाहर से आने वालों को यथा रुचि बसावेंगे, उनसे अपनी लाग बाग पेशकस या अन्य आवश्यक काम लेंगे और वहीं अपना दफ्तर या न्यायालय आदि रक्खेंगे। इसलिए इनके किसी काम में रोक टोक न हो और सहयोग दिया जाय।(४)

संवत् १७७०-७५ से प्रत्येक अवसर में दी गई ऐसी रसीदें देखने में आई थी जिनमें मोहनसिंहादि के गुमास्तों के मार्फत मिले हुए रुपये यथा नियम प्राप्त होकर आमेर के खजाने में जमा हुए थे और उन पर राज के दफ्तर के संकेत मुहरें तथा हस्ताक्षरादि किए गए थे और (५) संवत् १७८६ के आसोज सुदी १५ आदि के कई पत्रों में आमेर राज्य के प्रधान कार्यकर्ता राजा छायामलजी आदि ने अपने सहकारियों जुदे जुदे ज़िलाधीशों और सरदार लोगों आदि को लिखा था 'कि राज्य श्रीमोहनसिंहजी झुणझुणूँ वा गाँवड़ी (नीमकाथाणा) वग़ैरह की तरफ (दौरा करने को) हजूर से विदा हुए हैं सो उनको ज़रूरत पड़े और बुलावें तो आप अच्छी ज़मीयत (अर्थात् हमराही शूरसामंतों को) साथ लेकर उनकी सेवा में हाजर हो जाना।' इनसे ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार के काग़ज उन दिनों सभी इज़ारदारों के ठिकानों में यथा योग्य आये गए थे। किन्तु बहुत वर्ष हो जाने से संभव है उनको कीड़े आदि ने विगाड़ दिए थे और इस महत्व सम्पन्न व्यवस्था को बहुत लोग भूल गए थे। (किन्तु संवत १९९०-९१ में विलायत के विशेषज्ञ विद्वान विल्स साहब ने कुछ दिन जयपुर निवास करके उपरोक्त व्यवस्था को फिर विस्मृति के अन्तस्तल में से सहसा निकाली थी और उसे फिर सजीव बना कर बहुत से भूस्वामियों को इस विषय में परिचित और जागृत किए थे।) अस्तु। महाराज सवाई जयसिंहजी की प्रचलित की हुई उक्त व्यवस्था दो तीन पीढ़ी तक चालू रही और मोहनसिंहजी के पड़पोते रणजीतसिंह जी तक ने उसका अनुभव किया किंतु पीछे वह लुप्त हो गई। अस्तु।

(१६) महाराज की दूसरी योजना थी 'आमेर के पुराने दफ्तर की नवीन व्यवस्था'। वह संवत १७६० में शुरू हुई थी। उसके लिए महाराज ने अपने मत के साथ में अक़बरी ज़माने के व्यवस्थापक राजा टोडरमल का मत भी मान्य किया था। उस व्यवस्था में राजा और प्रजा के कामों को क़ायम करके उनके लिए एक या एकाधिक लेखक और व्यवस्थापक बनाए थे। और पहिले जो काम ज़ुबानी या ४-अंगुल के काग़ज के टुकड़ों में होजाते थे और उन्हीं पर मालिक या मुसाहब

की श्री मिती सही सैनाणी मुहर कटारा या हस्ताक्षर आदि होते थे वे सब निश्चित नियमों के अनुसार होने लगे थे और उक्त व्यवस्था व्यापक बन गई थी। चौमूँ में उस व्यवस्था का आरंभ मोहनसिंहजी ने किया था। उनके समीप में बाहर से आए हुए शाह दत्तरामजी जो भुखमारया वंश के खण्डेलवाल वैश्य थे और मियाँ विलायतखाँजी जो पठान वंश के मुसलमान मुसाहब थे दोनों दीवानी और फौज़दारी के कामों में होशियार थे। उन्होंने चौमूँ में राजस्व तथा शासन विभाग को सुस्पष्ट और समुन्नत किया था। यद्यपि विलायतखाँजी मुसलमान थे तथापि हिन्दू राजाओं के समीप में ... राजा प्रजा दोनों को राजी ...ना और राज्य को हर हालत में उन्नत करना उनको याद था। वह अभिवादन में राम राम या सीताराम कहते, सदनुष्ठानादि में योग देते, दान पुण्य पूजा पाठ या ब्राह्मण भोजनादि में श्रद्धा दिखाते और प्रजा की पुकार तथा स्वामी की सेवा में मन रखते थे। उन दिनों चौमूँ के मुसाहब को जयपुर राज्य से भी तनखा मिलती थी इस कारण मियाँ विलायतखाँजी को १५००) रुपये वार्षिक आय की जागीर मिली थी। उन्होंने चौमूँ से बाहर 'नाड़ा' स्थान में एक मसजिद बनवाई थी और एक बाग लगवाया था उसमें सोनजाय, दाऊदी, कमरख और खिरनी ज़्यादा नामी थे। जयपुर बसाया गया उस समय सैंकड़ों पेड़ गुलाब, दाऊदी और सोनजाय के इसी बाग से गए थे। अब वह बाग नष्ट होगया। शाहदत्तरामजी नाप-जोख-तोल-मोल-हिसाब-किताब-देनलेन व्यापार व्यवसाय और राजकाज आदि में अधिक अनुभवी थे। राज्य से उनको ७५) मासिक मिलता था उन्होंने चौमूँ में आकर राजकाज के संपूर्ण कामों को उपरोक्त व्यवस्था के अनुसार लेख बद्ध रखने का क़ायदा जारी किया था और दफ्तर के जुदे२ विभाग बनाकर प्रत्येक को आदर्श बनाया था। उन दिनों हाथ के बने हुए काग़ज काम में आते थे। वे मोटे पतले मज़बूत और सुन्दर सब तरह के होते थे और उन पर लाख के पानी में काजल घोलकर बनायी हुई पक्की तथा गौंद आदि के पानी में काजल घोटकर बनाई हुई कच्ची स्याही से शुद्ध स्वच्छ और सुन्दर अक्षर लिखे जाते थे। उन दिनों

की कागज स्याही और परिलेख आज सैंकड़ों वर्ष के होजाने पर भी आज के से मालूम होते हैं और उन से उस ज़माने की संपूर्ण अवस्था व्यवस्था तथा व्यवहारादि सजीव रूप में देखे जासकते हैं। काम के काग़ज़ों पर जो मुहरें लगाई जाती थीं उनमें चौमूँ या जयपुर में पहले फारसी पीछे हिन्दी फारसी और उसके बाद हिन्दी रही थी और उनके आरम्भ में पहले 'श्रीविष्णु' पीछे 'श्रीरामो' या 'श्रीसीतारामो जयति' उसके बाद 'श्रीरामजी' और फिर 'श्रीकृष्णः शरणंममः' आदि अभीष्ट नाम रहे थे। इस प्रकार की मुहरों का उपयोग काम और क़ायदा के अनुसार किया जाता था और उनमें मालिक मुसाहब या दीवान आदि का नाम यथोचित अंकित रहता था। इसी प्रकार श्री मिती या सही सैनाणी आदि में भी जाति-पद-पेशा और कार्य गौरव का ध्यान रक्खा जाता था। ये सब बातें शाहदरारामजी के ज़माने के काग़ज़ों में प्रत्यक्ष थीं। वास्तव में वह उस ज़माने के राजा टोडरमल थे और अपने कामों को आदर्श कर गए थे। चौमूँगढ़ के अन्दर उनका बनवाया हुआ सीतारामजी का शिखर बंध विशाल मंदिर है और वह उनकी सत्कीर्ति का स्मरण कराता है।

(१७) महाराज की तीसरी योजना थी "जयपुर" का बसाना। इसके लिए उन्होंने भूतत्वज्ञ विद्वानों-शिल्पशास्त्र के पंडितों और भवन निर्माण कला के जानने वालों की सम्मति के अनुसार देश देशांतर के नामी नगरों से अनेक प्रकार के नक़शे और चित्र मँगवाए थे और उनसे अपनी पसन्द के अनुसार संवत् १७८४ के मार्ग कृष्णा ५ बुधवार (या पं० श्री ओझाजी के लेखानुसार पौषवदी ८ शनिवार) को इष्ट ६।० सूर्य ६।२२ और लग्न ८।९

जन्म लग्न

श १० | शु ८ | के ९ | ११ | सू ७ बु | १२ | ६ | १ | रा ३ चं | मं ५ | बृ २ | ४
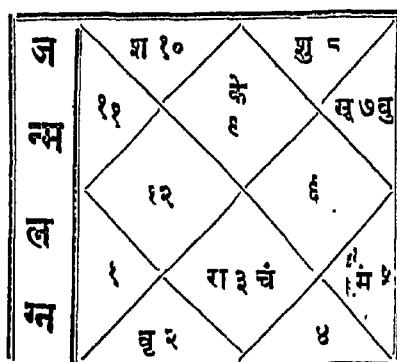
में नगर निर्माण की नींव लगवा कर इसे सब प्रकार की शोभा सुविधा और सानुकूलता से सम्पन्न किया था। "भारत के देशीराज्य" (पृ. ७८) में

लिखा है कि 'जयपुर भारत का पेरिस *है और जनश्रुति में ऐसा विख्यात है कि यह "तारातम्बोल"* का प्रतिनिधि है। अवश्य ही इसके मार्ग मुहल्ले, गली, चौराहे, गढ़किले, महल, मकान, कूए, बावड़ी, बाग बगीचे और देवमंदिर प्राचीन भारत की अद्भुत कला के अनोखे नमूने हैं और उनकी शोभा सुन्दरता तथा विचित्र बनावट आदि को देखकर बहुदर्शी विद्वानों ने इसकी मनभर प्रशंसा की है। यही कारण है कि "भारत भ्रमण" "जयपुर दर्शन" "विश्वकोश" और सामयिक साहित्य के "समाचारपत्रों" आदि में इसका अति विस्तृत सचित्र वर्णन देखने में आया है और इसे भारत के नामी नगरों में चौथा तथा राजपूताना के सर्व श्रेष्ठ शहरों में पहिला बतलाया है। यह एक ऐसे भूभाग की पीठ पर बसाया गया है जिसमें आरोग्य रक्षा के हरेक विधान हर मौसम में मिलते रहते हैं और आपत्ति जनक प्रकृति के आक्रमणों का असर भी सहसा नहीं होता है। इसकी बनावट में यह अद्वितीय विशेषता है कि इसके समसूत्र में बने हुए मार्ग मुहल्ले या चौपड़ चौराहे आदि में रास्ता भूले हुए अलहँदे आदमी भी अपने आप सम्हल जाते हैं और प्रत्येक मकान के अगल बगल में चारों ओर गली होने से दुर्गंध से बनी

* "पेरिस" विलायत के नामी नगरों में सर्वश्रेष्ठ शहर। है उसके महल मकान-बाग बगीचे-सड़क चौराहे और व्यवसायी बाजार आदि भव्य मनोहर बहुमूल्य और सुन्दर हैं।

* "तारातंबोल" दुनियाँ के सर्वोत्तम शहरों में उच्चश्रेणी का माना गया है। उसकी समसूत्र में गई हुई विस्तृत सड़कें साफ सुथरी और चौड़ी हैं। मकान ४ मंजिल तक के हैं। वे सब सिलसिलेवार बने हुए सुन्दर हैं। शहर में ५०० मसजिद या देव मंदिर अथवा उपासनागृह हैं। १७१ तीर्थस्थान या जलाशय अथवा स्नानागार हैं। ३३४ सराय या धर्मशाला हैं। १२ कालेज और ५ पुस्तकालय हैं। ३०५ होटल या उपाहार गृह अथवा ढाबे हैं और ये पंक्तियां सन् १९०२ की छपी हुई स्कूली किताब से ली हैं। "मुक्तकसंग्रह" में लिखा है कि महाराज सवाई जयसिंहजी ने फ्रांस के इञ्जीनियर को इस शहर में भेज कर इसका नक़शा मँगवाया था और उसके उपयोगी अंश को काम में लिया था।

हुई दूषित हवा अपने आप निकल जाती है। आरम्भ में इसके 'सूर्यपोल' (पूर्वीदरवाजा) से 'चाँदपोल' (पश्चिमी दरवाजा) तक 'शिवपोल' (सांगानेर दरवाजा) से 'ध्रुवपोल' (आमेर दरवाजा) तक और 'कृष्णपोल' (अजमेरी दरवाजा) से नाहरगढ़ के पेंदे तक सड़कों के किनारे के मकान, बाजारों की दूकान, अधिकांश मुहल्लों की हवेलियां और चारों ओर के परकोटे की बुर्ज तथा उसके कई एक अंग प्रत्यंग तय्यार हो गये थे और शेष यथाक्रम बनते रहे थे। "पुराने कागज" (नं० २५०) से सूचित होता है कि नगर निर्माण के कामों में चौमूँ के अधिपति मोहनसिंहजी का और जयपुर के दीवान विद्याधरजी आदि का विशेष सहयोग रहा था। महाराज ने आरम्भ ही में यह निश्चय किया था कि 'जयपुर के अन्दर राज के भाई बेटे तथा सरदार लोग अपनी अपनी हवेली बनवालें तो शहर की शोभा और आबादी अच्छी होजावे।' अतः उस निश्चय को कार्य रूप में परिणत करने के लिए सर्व प्रथम मोहनसिंह जी ने संवत १७८४ के माघ में जयपुर के ध्रुव प्रदेश (उत्तरी भाग) में अपनी हवेली बनवाई और उस प्राँत को अनुकूल रूप में आबाद किया। उसके पीछे अन्य सरदारों की हवेलियां भी यथाक्रम तैयार हुई। इस संबंध में संवत १७८५ के चैत बदी ६ का एक परवाना देखा था जिस में प्रत्येक प्रांत के अमीन और आमिलों को लिखा है कि 'सवाई जयपुर में ठाकुर लोगों (या जागीरदारों) की हवेलियां बनेंगी इस लिये उनकी जागीर की वार्षिक आमदनी में से प्रतिशत १०) रु. लेते रहने का इक़रार हुआ है जिनकी फहरिस्त भी सब के पास भेजी हैं सो उनके मुताबिक तहसील करके चुकती रुपए जैपुर विद्याधरजी के पास भेजना और किसी में कुछ बाकी मत रखना।' (ऐसे परवाने प्रायः सब प्रांतों में गए थे।) इससे सूचित होता है कि अधिकांश हवेलियों में पहिले राज्य के रुपए लगे थे और फिर उनसे यथाक्रम ले लिए थे। यद्यपि सम्पूर्ण कछवाहों की ५३ शाखा हैं और वे सब आमेर राजवंश के अंश प्रसून हैं। तथापि उन दिनों

के 'सामंत मण्डल' में (१) नाथावत (२) राजावत (३) कूँभावत (४) धीरावत (५) चन्द्रावत (६) बांकावत (७) गोगावत (८) शेखावत (९) चतुर्भुजोत (१०) बलभद्रोत (११) कल्याणोत (१२) सुलताणोत (१३) पच्याणोत (१४) पूरणमलोत (१५) शिवब्रह्मपोता (१६) बणवीरपोता (१७) भाटी (१८) कूँभाणी (१९) चौहान (२०) नरूका (२१) शिखरवाल और (२२) बड़गूजर मुख्य थे और तत्काल में (१) मोहनसिंहजी 'नाथावत' चौमूँ (२) दीपसिंहजी 'कूँभाणी' बांसखोह (३) जोरावरसिंह जी 'शिवब्रह्मपोता' नींदड़ (४) कुशलसिंहजी 'राजावत' भिलाय और (५) फतहसिंहजी 'बणवीर पोता' लाँवली आदि वर्त्तमान थे। इन सरदारों में अधिकांश की कोठियाँ अब शहर से बाहर भी बनगयी हैं और वे आराम की दृष्टि से अच्छी भी हैं।

(१८) इस प्रकार के नवनिर्मित या नवीन बसाये हुए जयपुर में राज काज लोक व्यवहार तथा व्यापार व्यवसाय आदि की यथोचित व्यवस्था हो जाने पर महाराज सवाई जयसिंहजी (द्वितीय) ने "आमेर" * के बदले
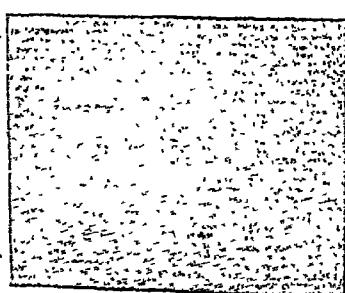
* "आमेर" राजपूताने के ढूँढाड़ में बहुत पुराना नगर है। जुदे जुदे ग्रन्थों में इसके जुदे जुदे नाम हैं। "हिं. वि. को" (भा० ९३) में इस के नाम अंबा, अंबर, अंबरीष, अंबिकेश्वर और आम्रदाद्रि नामों से सम्बन्ध बतलाया है। इनसे इसके महत्व-हालात और प्राचीनता प्रकट होते हैं। (१) 'जनश्रुति' में प्रसिद्ध है कि यहाँ अंबरीष ने तप किया था। (२) 'ख्यातों' में विख्यात है कि अंबा भक्त काकिल ने इसे बसाया था। (३) 'वंशावली' (क) से सूचित होता है कि पुराने खण्डहरों में से अंबिकेश्वर प्राप्त हुए थे। (४) 'वीर विनोद' में लिखा है कि राजदेव ने इसे अंबिकापुर बतलाया था। (५) यहां अंबर अर्थात् आकाश तक पहुँचे हुए पर्वत होने से आँबेर प्रसिद्ध हुई है। (६) अंबिका अधिष्ठाता होने से भी आँबेर होना सूचित होता है। 'रा० पू० इ.' के अनुसार किसी जमाने में यहां आम ज्यादा थे इस कारण आम्रदाद्रि भी विख्यात हुआ है और 'आमेर' नाम तो सर्वत्र प्रसिद्ध है ही। अस्तु। "भा. भ्र." (पृ० १९१) में लिखा है कि आमेर ४०० फुट ऊँचे पर्वत पर है। ४–५ हजार की

जयपुर को राजधानी बनाकर अद्वितीय काम किया था और इस में प्रत्येक अवसर के आगत स्वागत, बैठक, दरबार, उत्सव, मेले, पोशाक, पहनावे, शिष्टाचार और धर्माचरण आदि के बहु सम्मत विधानों को प्रचलित कर के इसे राम राज्य की अयोध्या बना दिया था। वाल्मीक रामायण में उस ज़माने की अयोध्या का जो कुछ स्वरूप वर्णन किया है वह जयपुर में जयसिंहजी द्वितीयके ज़माने से देखने में आरहा है और वर्ताव व्यवहारादि की अनेक बातों में यह उसी अयोध्या का प्रतिबिंब है। अस्तु

बस्ती है। प्राचीन राजधानी है। विख्यात है। यहाँ संवत् १६५७ के मान के बनवाये महल मंदिर गढ़ किले परकोटे (और माधव स्थापित) तहसील, निज़ामत, थाणा और राहधारी आदि हैं। मिर्जा जयसिंह ने यहाँ जयगढ़, धनागार और जयस्तम्भ स्थापन किए थे। 'जनश्रुति' में विख्यात है कि जयस्तंभ पर मीणे लोग दीपक रखते थे और रात में दूरदेश से उसी के आधार पर आमेर आते थे 'भा. भ्र.' (१२) के अनुसार सं० १०२४ के पहले आमेर उन्नत दशा में थी। 'मुक्तकसंग्रह' से मालूम होता है कि संवत् ६६०-७० में आमेर में जैनी अधिक थे। व्यापार बढ़ा हुआ था। मनुष्य अनार के दाणों की भांति भरे हुए चमकते थे और उन दिनों यहाँ कई हज़ार पेशाकार थे। कटाई, खुदाई, बुनाई, रँगाई छपाई, ढ़लाई और सिलाई आदि के अगणित काम होते थे। सब प्रकार के विचित्र शस्त्र ढ़लते, बनते और विदेशों में जाते थे। यहां की सेल, बंदूक और तलवारें विख्यात थीं। उस ज़माने में किसका राज्य था सो पता नहीं परन्तु मीणों के ज़माने में पुरानी आमेर ऊजड़ होगई थी और पहाड़ी नले, टेकड़ी, घाटे और शिखर आदि में उनकी ढानी गढ़ी या राजधानी थी। जब कछवाहों ने इस पर अधिकार किया तब महाराज काकिलजी के हाथ से इसका फिर उद्धार होना आरम्भ हुआ और पुराने खंडहरों में से अंबिकेश्वर जी के प्राप्त होने और कछवाहों की राजधानी रहने से यह फिर विख्यात हुई। काकिलजी के पीछे कई राजाओं ने इसमें गढ़, परकोटे, महल, मकान, जलाशय और देवमंदिर आदि बनवाये जिनसे इसका नाम और महत्व बहुत बढ़ गया था परन्तु जयपुर राजधानी हो जाने से इस को विश्राम मिल गया। इसमें शीशमहल शिलादेवी या मावठे का जलाकर्पण, बाहर का नौलखा बाग़ और कई एक कूए बावड़ी और मकान बड़े ही भव्य मनोहर सुन्दर और अद्भुत हैं और उनकी कारीगरी तथा अनोखापन देखने योग्य हैं।

(१६) ऐसे मनोहर शहर को मीठा जल पिलाने की इच्छा से महाराज सवाई जयसिंह जी ने एक एक करके ३ प्रयत्न किए। उनमें (१) सर्व प्रथम एक नहर खुदवाई जो जयपुर से बांडी नदी तक लगभग १६ मील लंबी थी। उसके शुभागमन के लिये हरमाड़ा के मार्गमध्य का पहाड़ फोड़ा गया था और चूँप की तरफ से ऊँची दीवार या पुल के जैसे आकार की कई मील लम्बी सहायक नहर से उसका सम्बंध जोड़ा गया था किन्तु जयपुर का शहरी प्रांगण कुछ ऊँचा होने से नहर का जल यथेष्ट नहीं आसका तब (२) बालानन्दजी * के मंदिर के पीछे १ अति विशाल कुँड बनवाया जिसके चारों ओर की ऊँची दीवारों में टांके और हौज़ बनवाए थे और उन का संबंध शहर में जाने वाली मोरी या नालियों से जोड़ा गया था। परन्तु उन में महलों के सिवा सारे शहर को जल नहीं मिल सका तब (३) नला अमानीशाह में पक्का बंधा बँधवाया और एक ऐसी नहर बनवाई जो जयपुर के पश्चिमी भागों से प्रारंभ होकर बाज़ारों के बीच से होती हुई शहर के पूर्वी भागों तक चली गई। वह चूना और पत्थरों से बनी हुई बड़ी पक्की और पलस्तर की हुई थी उसकी चौड़ाई इतनी अधिक थी जिसमें घोड़ों के ५-७ सवार अंदर ही अंदर आ जा सकते थे। उसकी छत में अनेक जगह हौज़ की भांति के मोरे या मोखे बने हुए थे जिनसे सर्व साधारण तक को यथा समय जल लेते रहने का सुभीता था। कुरङ्ग रूपा थी नवीन राजधानी के लिए एक प्रकार की "गुप्तगंगा" या गुप्त नहर थी। उसके द्वारा शहर के अनेक भागों में यथेष्ट जल पहुँचता था किन्तु संवत् १९०१ पीछे

* "बालानन्दजी" पूरे हठ-वीर साधु थे और उनके हनूमानजी का इष्ट था। उन्हीं की कृपा से उन्होंने अपने ज़माने के बादशाह की क़ैद में से अनेकों साधुओं को निकलवाये थे। वह जब कभी किसी धर्म द्रोही पर चढ़ाई करते तो हनूमानजी से प्रार्थना करके उनकी ध्वजा हाथ में लेकर करते थे और दुष्ट दुर्जनों को मारते थे। उनके ज़माने में भैरोंगिरि और लच्छी गिरि ने सम्प्रदायों के विरुद्ध आंदोलन किया था उनका बालानन्द जी ने वीरता के साथ वध कर दिया। जयपुर में बालानन्दजी का स्थान विद्यमान रहने से उनका नाम भी विद्यमान रहेगा।

शहर में पक्की सड़कें होजाने पक्का बंधा टूट जाने और डूँटी (का जल) लगजाने से वह नहर बाज़ारों के बीच में दब गई और उसके पहले के अति विशाल कूए मिट्टी में मिल गये।

(३२) "जयसिंहजी" (द्वितीय)

(९०) जयपुर के राजाओं में अवश्य ही अद्वितीय थे। उन्होंने अपने राजत्व काल में कई काम ऐसे किए थे जिनकी जयपुर को बहुत ज़रूरत थी, और वह पहिले हुए नहीं थे। उनका जन्म संवत् १७४५ के मार्गकृष्णा

जन्म लग्न
स बु शु ८ | ६ | ९ | मं श के ७ | ५ | वृ १० | चं ४ | ११ | १ रा | ३ | १२ | २
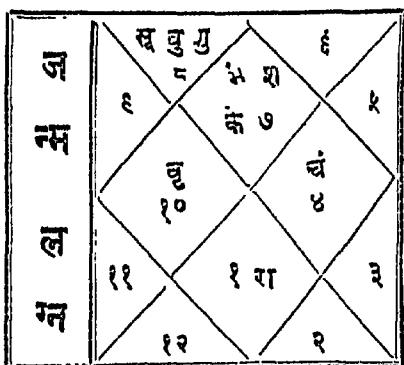
६ शनिवार को इष्ट ५४। १३ सूर्य ७। २० और लग्न ६। २१ में हुआ था। संवत् १७५६ के माघ में उनके पिता 'विष्णुसिंहजी' का काबुल में बैकुंठ-वास हो जाने पर आप आमेर राज्य के अधीश्वर हुए। "अधिकार लाभ" (पृ० १०) के अनुसार राज तिलक के शिष्टाचार मोहनसिंहजी ने सम्पन्न किए थे और सर्व प्रथम उन्होंने ही महाराज की नज़र की थी। "पुराने कागज" (नं० १००) के अनुसार उन दिनों १) मुहर १) रु० नज़र किया जाता था और मुहर ११) की थी अतः कई बार मुहर के अभाव में १२) नक़द नज़र होते थे और महाराज कुमार के होने पर महाराज के १ मुहर और महाराज कुमार के ५) रु० नज़र किए जाते थे। कालान्तर में महाराज कुमार के न होने पर भी ५) स्थिर होगये। अस्तु। राज्याधिकारी हुए पीछे महाराज सम्राट् की सेवा में उप-स्थित हुए तब औरंगज़ेब ने आपके दोनों हाथ पकड़ कर पूछा कि अब तुम क्या कर सकते हो? तब महाराज ने अपनी बालोचित स्वाभाविक निर्भ-यता से उत्तर दिया कि 'जब एक हाथ पकड़ाई हुई औरत सब कुछ कर स-कती है तो फिर दोनों हाथ पकड़ाया हुआ मरद क्या नहीं कर सकता'। यह सुन कर सम्राट ने आपको 'सवाई' किए। तत्पश्चात् संवत १७५८ में आपने खेलणाका क़िला कब्जे में किया जाजऊ (धौलपुर) की लड़ाई में आप का सहयोग होने से बहादुरशाह ने

आमेर में खालसा बिठा दिया था। किन्तु थोड़े ही दिन पीछे आपने उसे अपने भुजबल से अलग किया। संवत् १७६८ के फागण में बहादुरशाह के मर जाने पर फर्रुखसियर बादशाह हुए तब उन्होंने सवाई जयसिंहजी को उनकी साहस पूर्ण वीरता के अनुरोध से ओझाजी के मतानुसार 'राजाधिराज' की और अन्य इतिहासों के लेखानुसार 'राजराजेन्द्र' की पदवी दी और माहीमुरातब देकर सर्वोच्च सम्मान किया। संवत् १९८९ की "विड़ला पत्रिका" के एक विशेषांक में पं० श्री ओझाजी ने प्रगट किया है कि 'फर्रुखसियर के मरजाने से सैयदों ने बहुत सिर उठाया था उस समय जयसिंहजी ने केसरियाँ पोशाक पहन कर मस्तक पर मंजरी धारण कर के आमेर राज्य की श्री और सीमा बढ़ाने में अपनी साहस पूर्ण वीरता दिखलायी थी जिसको देखकर सैयद भाई कांप गये थे और आमेर की अग्रिम सीमा आगरे से इधर ८० मील तक पहुँच गई थी। संवत् १७७७ में जयसिंहजी ने हिन्दुओं के दुखदायी जजिया कर को उठवाया था। संवत् १७८० में आगरा के ज़िलाधीश होकर 'थूण' (या नहून अथवा नवनगढ़) के जाटों को परास्त कर उस पर अधिकार किया था। इस युद्ध में मोहनसिंहजी भी महाराज के साथ थे। "नाथवंशप्रकाश" (पद्य १३५) में लिखा है कि वह सब प्रकार के सुख या दुःख की अवस्था में महाराज के साथ रहे थे। एक बार महाराज सवाई जयसिंहजी ने सुधार की कामना से जनसमूह को ऐसा उपदेश दिया था जिस को सुनकर सब लोग मंत्र मुग्ध की भाँति तल्लीन होगये थे। रक्त विकार से परित्राण पाने के लिए एक बार आपने त्रिवेणी तट पर निवास किया था और ढलती अवस्था के आगमन में आपने संवत् १७९१ श्रावण शुक्ल ९ से वाजपेय यज्ञ का आरंभ करके भादवासुदी १२ को उसको पूर्ण किया था। यज्ञ में पुण्डरीक जी रत्नाकर प्रधान आचार्य थे उनके सिवा अनेक देशों के वेदज्ञ ब्राह्मण वरण में शामिल हुए थे। यज्ञ के निमित्त घोड़ा छोड़ा गया था वह त्रिवेणी तट तक निरापद गया था। यज्ञ सामग्री में एक लाख रुपये लगे थे और यज्ञांत स्नान के समय यथा योग्य गो भूमि दास दासी गाँव सोना और पौनेदो लाख नक़द दिये

गए थे। यज्ञ के सम्बन्ध की विचित्र बातें * नीचे टिप्पणी में दी हैं। एक बार आपने नरेन्द्रमण्डल एकत्र करके उसकी समान रक्षा के विधान बतलाए थे। "जयपुर हिस्ट्री" (अ० ३) में लिखा है कि महाराज सवाई जयसिंह जी ने दक्षिण में उमेदिनी की तापी नदी के पास महल बनवा कर वहीं सुवर्ण के ७ समुद्र बनवाये और उनका दान किया। (दानपुण्यादि में उन्होंने कुल ३३ करोड़ रुपये खर्च किये थे)। उज्जैन के वाईसराय रहे थे। हाथियों का रथ बनवाकर बादशाह के भेंट किया था। अनेक जयसिंहपुरे बसाये थे। उनमें ४ के पक्के परकोटे भी बनवाए थे। जयपुर में शहर के अँदर आतिस, (अश्वशाला) तालकटोरा, गोविंदभवन, चन्द्रमहल और दिल्ली, काशी, उज्जैन तथा जयपुर में यंत्रशाला बनवाई थीं। "मुक्तक संग्रह" से मालूम हो सकता है कि संवत् १७६०-६० में इजारे के द्वारा आयवृद्धि के आयोजन किए। संवत् १७८४ में जयपुर बसाया। कई प्रकार की नहरें और सुरंगें बनवाई सं. १७८४ के बसन्त में जयपुर को राजधानी नियत किया। सं० १७८६ से उसमें न्यायालय स्थापन किए और विद्वानों को ज्योतिष विषय के कई एक गूढ़ सिद्धांत बतलाए। अनेक इतिहासों से आभासित होता है कि आप हिन्दी, फारसी संस्कृत तथा ज्योतिष विद्या के प्रगाढ़

*"यज्ञविषय की दो बातें" दन्त कथाओं में विख्यात हैं। (१) कहा जाता है कि 'वाजपेय यज्ञ के अवसर में मारवाड़ के श्याम पाण्डे भी आये थे। उन्होंने अपने मंत्रबल के द्वारा किसी अज्ञात देश के वासुकी वंश के वृहत् काय ऐसे सर्पराज का आवाहन किया था जो हरे वर्ण का था और उसकी लम्बाई ५२ हाथ थी। उसके दर्शनों से दर्शकों को भय के बदले देखने की अभिलाषा उत्पन्न हुई थी। वह यज्ञारम्भ से यज्ञसमाप्ति पर्यन्त अपने नियत आसन पर निश्चल रूप में विराजमान रहा था और यज्ञांतक अवभृथस्नान होगये पीछे अपना आप अलक्षित होगया था। दूसरी बात थी एक कुमारी कन्या के अद्भुत कथन की। वह पूर्णाहूति के अवसर में सुपूजित होकर एकासन से बैठी हुई थी। उस समय उसने बहुतसी बातें ऐसी कहीं जैसी परलोक विद्या के ज्ञाता कहलाया करते हैं। अन्त में उसने भूतकाल के कई एक बादशाहों की अवस्था का दिग्दर्शन कराया और भविष्य के सम्राट् बतलाए।

पंडित थे और १४ विद्या, ६४ कला, तथा १०९ अन्य गुण जानते थे। इस प्रकार के अद्वितीय महाराज का सं० १८०० के आसोज सुदी १४ को परलोकवास हुआ था। उनके २४ राणी और ३ पुत्र थे। प्रथम पुत्र शिवसिंह असमय में मर गये थे। दूसरे पुत्र ईश्वरीसिंहजी राजा हुए थे और तीसरे माधवसिंह जी ने आमेर राज्य प्राप्त किया था।

(२१) "टाडराजस्थान" ख. दू. (पृ.१३९) की टिप्पणी में एक आश्चर्यजनक बात और लिखी है। वह यह है कि 'एक बार बादशाह अपनी हिंदू बेगमों के आग्रह से कुरुक्षेत्र गए थे, वहां भीष्म कुण्ड के समीप डेरा किया। अन्तःपुर के संरक्षक जयसिंह जी आदि थे। वहीं एक बहुत पुराना वट वृक्ष था जिसकी लम्बी शाखाओं से भीष्म कुण्ड ढक रहा था। एक रोज एक विराट काय पक्षी ने वट की शाखा पर बैठकर अट्टहास के साथ मानव भाषा में कहा कि 'दैव की बड़ी विचित्र लीला है। जिस दिन कौरव पाण्डवों के युद्ध में योद्धा के पड़े हुए हाथ को लाकर मैं खाने लगा तो वह कुंड में गिर गया और आज अपना सामान्य भोजन खाने लगा तो वह भी गिर गया।' इस वाणी को सुन कर सब लोग चकित होगए किन्तु जयसिंहादि ने अपने सुदक्ष तैराकों (गोता खोरों) को बुलाकर भुज दण्ड निकलवा लिया उसमें पाव पाव भर के तेरह रत्नों का 'भुजबन्ध' था। सम्राट ने उसमें से २ रत्न जयसिंह जी को और १ अजीतसिंहजी को देकर शेष १० अपने पास रख लिए।' कहा जाता है कि वे तीनों रत्न देव तुल्य पूजे जाते हैं। पता नहीं इसका असली रहस्य क्या है। अस्तु।

(२२) मोहनसिंहजी निर्मोह सरदार नहीं थे वह सबको आत्म तुल्य मानते थे। यही कारण था कि जयपुर राज्य के सम्पूर्ण शूर वीर और सामन्त गण उनके मत में सहमत रहते थे। और अवसर आए हज़ार आपत्ति होने पर भी उनके मत से आगे पीछे नहीं होते थे। पुराने कागजों से सूचित होता है कि 'जयपुर राज्य के अतिरिक्त उदयपुर जोधपुर बीकानेर और जैसलमेर आदि के राजाओं तक में उनका मान था और प्रत्येक देश के प्रभावशाली पुरुष

उनके महत्व को मानते थे। विविध देशों और जुदे जुदे रजवाड़ों के राजा-रईश-सरदार लोग या सामान्य जागीरदारों आदि के विनय-नम्रता-स्नेह-भाव या आत्मीय अनुराग से भरे हुए सैंकड़ों पत्र तथा मोहनसिंह जी की ओर से उनके उत्तर में भेजे हुए रुक्के पट्टे-परवाने-चिट्ठियां या पत्र आदि ऐसे थे जिनपर मोहनसिंहजी के खुद के हस्ताक्षर-हाथ का कटारा-संकेत की सही-नाम की मुहर-मन्त्री और मुसाहबों के हस्ताक्षर या मुहर आदि अंकित होकर जाते थे उनके देखने से मोहनसिंह जी का मान्य और महत्व मालूम होसकते हैं। ऐसी दशा में जयपुर राज्य के अंतर्गत शेखावाटी-राजावाटी बर्त्तीशी-छत्तीशी या काठोड़ा आदि के सरदार या भोमियां आदि उनको अपने सच्चे स्नेही-हितैषी या रक्षक मान कर मौके मौके में यह लिखते रहे हों कि 'हमारे तो आपही मालिक हैं आपके बिना हमारी मान मर्यादा कौन रख सकते हैं। यहां जो ५ ठाकुर लोग और ४ घोड़े हैं ये सब आप ही के हैं अतः जब कभी जरूरत पड़े तो बुलाने में संकोच न करें।' इत्यादि-तो कौन बड़ी बात है।

(२३) मोहनसिंहजी सरल वर्त्ताव के ओजस्वी सरदार थे और उनका जमाना भी सरल-सुलभ-या सस्ता था। मानव समाज में हिल मिल कर चलने की स्वाभाविक चाल थी और वीर पुरुष एका मौजूदी से काम लेते थे। अतः किसी भी देश का कोई भी शत्रु उन पर सहसा हमला नहीं कर सकता था और वे अपने नियमित या परिमित खान पान पहरान या व्यवहारादि से सन्तुष्ट रह कर शांति के साथ समय बिताते थे और जब कभी बादशाहों आदि की आपत्तियां आतीं तो उनको अपनी साहस पूर्ण वीरता के प्रभाव से बच्चों के खेल की तरह हवा में उड़ा देते थे। उन दिनों के सस्ते आदमी और सस्ते भाव देखिए-बड़े आदमियों की ओर से दौरे में गए हुए ४ आदमी १ बैल और १ घोड़ा सिर्फ छः आने में अच्छी खुराक खाकर मौज उड़ाते थे और सर्व साधारण दो पैसे में भरपेट भोजन कर के मस्त होजाते थे। उन दिनों आज के ८) के काम १) में भी सुन्दर और मजबूत होते थे (१) सम्वत् १७५० में (२८ टके या ८५ तोला सेर के तोल से) जौ १) रुपए के १।) मण गेहूँ १)

के १)१ चणे १)६ मूँगमोठ १)७ बाजरा १)८ जुआर १।)२ घी ऽ५॥ तेल ।)३ सकर ।) ८- गुड़- ॥) १ टके १५- और मुहर १२) की थी। (२) संवत् १७७० में (अकाल होने के कारण) जौ ।)६ गीहूँ ।)२ चणे ।)४ मोठ ।)५ तेल ऽ३ घी ऽ२ और टके १) के १६ थे। (३) संवत् १७८६ में जौ १॥)५ गीहूँ १।४ चणे १॥)५ मूँग १)७ मोठ १॥) बाजरा १।)६ उड़द १।)२ सरसों १) घी ऽ५॥ और तेल ॥) था (४) संवत् १७८८ में जौ ॥) १ गीहूँ १)७ चणे ।)८ मूँग ।)३ मोठ ।) ५ बाजरा ।) ५॥ घी ऽ३ तिल ऽ८ तेल ऽ४ रुई ऽ३॥ और गुड़ ऽ९ था (५) और संवत १७९० में गन्धक ऽ९ कागज स्यालकोट के २० दस्ते १०॥) जयपुर के २० दस्ते ७॥) ४।) स्याही १) की ऽ॥= ढाई पाव कलम की २०० पेली १॥=) सूतली १) की ऽ३॥ रेजी १ थान (१६ गज) ॥) धुलाई १ थान की १ छदाम रंगाई दो पैसे, अँगरखे की सिलाई ४ पैसे घाघरे की =) खोल की -) जाजम की ।) और जामा की ८ आने थी। मूँज १) की ४ मण चूना १) का ७० मण पत्थर १) के २॥ सौ मण पूले पानी के १) के २५० किराया प्रति कोस १ आदमी दो पैसा-ऊँट १ पैसा रथ भैल ३ पैसे मजदूरी प्रति दिन १ बच्चा १ अधेला औरत १ पैसा मर्द २ पैसे से छः तक। कारीगर (चेजारा) =) से ।-) तक और मुहर ११) की थी इस प्रकार के सस्ते भाव होने से ही उन दिनों में चौमूँ के विशाल काय महल मकान कोट परकोटे या नहर आदि बने थे।

(२) मोहनसिंहजी के जमाने में मकानों की बहुत वृद्धि हुई थी। उन्होंने (१) संवत् १७५५ में अपने तथा अपने मुसाहिबों के नाम की ४ प्रकार की राजमुद्रा (मुहर) बनवायी थीं (२) संवत् १७७० में चौमूँ का धराधार किला * निर्माण करवाया था,

* "आठ प्रकार के क़िले"—गढ़ गढ़ी किला या दुर्ग उस साधन के नाम हैं जिसमें रहने से गढ़ाधीश को अपनी आत्मरक्षा का बहुत भरोसा रहता है और उसमें रहते हुए उसे बलवान् शत्रु भी सहसा सता नहीं सकते। ऐसा भरोसा बिलवासी या गुहानिवासी सामान्यजीवों को भी होता है। "नरपतिजयचर्या" (पृ. १७५-७६) में आठ प्रकार के किले बतलाए हैं। उनमें (१) पहला "धूलकोट" मिट्टी का होता है (२) दूसरा "जलकोट" जलपूर्ण खाड़ी आदि से होता है। (३) तीसरा "नगरकोट" जनसमूह से भरा हुआ

इस किले के अधिकांश अँग भारतीय हिन्दू शास्त्रों के अनुसार सम्पन्न हुए थे (३) संवत् १७७२ में रणी बनी थी (४) संवत् १७७६ में किले की खाई (नहर) तैयार हुई थी (५) संवत् १७८० में मोहनसिंहजी की धर्मपत्नी के नाम से "ऊदावतजी की कोठी" बनी थी (६) संवत् १७८५ में जयपुर

रहता है (४) चौथा "गिरिगह्वर" गुफा के रूप में बनता है (५) पाँचवां "गिरिकोट" पार्वतीय (पहाड़ों के) परकोटे से घिरा रहता है (६) छठा "डामरकोट" डमरू की आकृति में बनता है (७) सातवां "विषमभूमि" आवड़ खावड़ भूमि का होता है और (८) आठवां "विषमाख्य" बाँकी टेढ़ी सुरंगों से युक्त होता है। "कौटलीय अर्थशास्त्र" (पृ. ९९) में ४ प्रकार के किले बतलाए हैं उनमें पहला "औदक" जिसके चारों ओर (१) या तो नदी हो या (२) जलपूर्ण खाड़ी आदि में बनाया गया हो-दूसरा "पार्वत" जिसके चारों ओर या तो (३) पर्वतों के परकोटे हों या (४) उसे पर्वत को काट कर गुहा के रूप में बनाया हो-तीसरा "धान्वन" जिसमें यातो (५) जल तृणादि की सर्वथा शून्यता हो या (६) उसके चारों ओर बालू के बड़े बड़े टीबे हों -और चौथा "वनदुर्ग" जिसमें या तो (७) सर्वत्र कीचड़ हो या (८) कंटकाकीर्ण झाड़ियों के जंगल हों- ऐसे किले खोटी नीति से आए हुए राजाओं की फौजी ताकत तोड़ने में काम देते हैं। भारतीय "हिन्दू शास्त्रों" में लिखा है कि (१) जो किला बहुत ऊँचा हो (२) उसके चारों ओर जलपूर्ण गहरी खाई हो (३) उसमें नरभक्षी मगरमच्छ हों (४) उसके बहुसंख्यक बिलों में भयंकर साँप फुफकारते हों (५) शिरोभाग की बनावट के किनारे कमल फूल की पत्ती तुल्य हों (६) उन पत्तियों में सर्वत्र अगणित छिद्र हों जिनके द्वारा दुर्गरक्षक तोप तमंचे तीर या बन्दूक आदि निरंतर दागते रहें। (७) उसके अति उच्च शिखरों पर नर वानरों की अगणित प्रतिमायें ऐसी हों जिनसे दुर्गरक्षकों की अधिक संख्या आभासित होती रहे। (८) वहाँ कोई ऐसा जलप्रपात हो जिसकी वेगवान् धारा में समीप के सेना समूह स्वतः बह जावें (९) या उसके चारों ओर पर्वत मालाओं के परकोटे हों और (१०) उसमें कई एक ऐसी सुरंग हों जिनमें होकर आपत्ति के अवसर में धन जन सहित बाहर भाग जावें। बहुदर्शी मोहनसिंहजी ने चौमूँ के धराधार किले में उपरोक्त किलों का अनेक अंशों में अनुकरण किया था। (१) आरंभ में इस किला के चारों ओर कैर-खैरी और झाड़ी आदि का दुर्गम वन था (२) इसे विषम भूमि के गहरे भूभाग में

में चौमूँ की "बड़ी हवेली" तैयार हुई थी (७) संवत् १७९९ में उनकी पोती फतहकुँवरि के अनुरोध से जानरायजी का जूना मंदिर बनवाया गया था (८) संवत १७९९ में हाथियों के ठाण में मोहनलालजी का मंदिर बना था (९) संवत् १७९९ में आमेर की शिलादेवी का नकशा बनवाया था और तद्रूप मूर्ति निर्माण कराने का विचार किया था किन्तु शरीरांत होजाने से वह काम उनसे छः पीढी पीछे पूर्ण हुआ था। (१०) उनदिनों चौमूँ के वर्तमान किले का प्रवेश द्वार उत्तराभिमुख था और उसी के सामने पीहाला कूआ की तरफ का बजार था।

(२५) मोहनसिंहजी के ३ विवाह हुए थे। उनमें (१) पहिले अजब कुँवरि (काँधलोतजी) चोरू (बीकानेर) के ठाकुर कुशलसिंहजी की पुत्री थे। दूसरे विचित्र कुँवरि (ऊदावतजी) हाथीदह के प्रहलादसिंहजी की पुत्री थे (वर्तमान भक्त विहारीजी के महन्तों के पूर्व पुरुष स्वामी खेमदास जी उनके आग्रह से ही चौमूँ आए थे। उनका आदू आश्रम आमेर के पास ठाँठर में था वहां आमेर राज्य से उनको सेवा पूजा का सामान मिलता था। पीछे चौमूँ आगए तब मोहनसिंहजी ने उनका सब प्रबन्ध किया था। चौमूँ में आते ही उनका ठाकुर द्वारा पहिले ऊदावतजी की कोठी पर स्थापित हुआ पीछे जानरायजी के जूने मंदिर में स्थायी नियत कर दिया गया। उनकी सेवा पूजा के खर्च के लिए सरकार से जो पट्टा दिया गया था उसमें दूरदर्शी मोहनसिंहजी ने 'कुसासरहसी जबतक दियां जास्यां' का उपयोग किया था। उक्त

शिल्पशास्त्र की विधि से बनवाया था (३) इस किले की दीवारें ३०७७ फुट के विस्तार में हैं उनकी ऊँचाई २३ फुट और चौड़ाई ७-१२-१५ फुट तक है। (४) इस के चारों ओर पक्की खाई है। उसकी चौड़ाई ८० फुट गहराई ३५ फुट और संपूर्ण विस्तार लगभग ५॥ हजार फुट है। पहले इस नहर में पानी बहता था कालांतर में वह सूख गया तब साँप रहने लगे थे अब इस में फल पुष्पादि के बाग लगे हुए हैं। किला के शिरोभाग की बनावट में सर्वत्र कमल फूल की पत्ती हैं और प्रत्येक पत्ती में तीर तमचे तोप या बन्दूक चलाने के ५-५ छिद्र हैं। बुर्जों की चौड़ाई और ऊँचाई वैसी ही है जैसी इस देश के किलों में हुआ करती है। अस्तु।

स्वामीजी तपस्वी, तेजस्वी, जटाधारी, तथा खाकी साधू थे और अवसर आए क्षात्रोचित काम करने में भी मन रखते थे।) (३) मोहनसिंहजी की तीसरी स्त्री ईशरोद (मेड़तणीजी) समेल के ठाकुर परशुरामजी की पुत्री थे। वह मोहनसिंहजी के मरने पर मोहनबाड़ी में सती हुए थे। (उनकी सास रघुनाथसिंहजी की स्त्री भी सती हुए थे किन्तु विस्मृति बस पिछले अध्याय में उनका उल्लेख नहीं हुआ था) अस्तु। पूर्वोक्त मेड़तणीजी के उदर से २ पुत्र उत्पन्न हुए उनमें (१) बड़े पुत्र जोधसिंहजी चौमूँ के मालिक हुए और (२) छोटे भगवन्तसिंहजी रेणवाल के ठिकाने पर गए।

दसवां अध्याय

॥ श्रीः ॥

नाथावतों का इतिहास।

जोधसिंहजी

(११)

(१) "शार्टहिस्ट्री" (पृ० १२) में लिखा है कि "संवत १८०० की काती में मोहनसिंहजी की मृत्यु होने पर उनके ज्येष्ठ पुत्र जोधसिंहजी चौमूँ के मालिक हुए। उसी महीने में उन के पहिले ईश्वरीसिंहजी को जयपुर राज्य का सुवर्ण सिंहासन प्राप्त हुआ था। स्वामी (ई० सिं०) और सेवक (जो० सिं०) के साथ साथ अधिकार ग्रहण करने का यह दैवदत्त अवसर था। राज्याभिषेक के समय ईश्वरीसिंहजी की अवस्था २२ वर्ष की और जोधसिंह जी की ४० वर्ष की थी अर्थात् जोधसिंहजी का जन्म संवत् १७६० में और ईश्वरीसिंहजी का १७७८ में हुआ था। आगे के वर्णन से विदित होगा कि ईश्वरीसिंहजी की सेवा के लिए जोधसिंहजी ने आपत्ति के अवसर में किस प्रकार की तल्लीनता और दूरदर्शिता से काम लिया था।

(२) जोधसिंहजी के दो विवाह हुए थे। प्रथम विवाह संवत् १७७५ के आरम्भ में और दूसरा संवत १७८० के मँगशिर में हुआ था। प्रथम स्त्री के कोई सन्तान नहीं हुई किन्तु दूसरी भाग्यशीला के यथाक्रम ७ पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें भँवर (अर्थात् पितामह की मौजूदगी में पैदा हुए पोते) हम्मीरसिंहजी का जन्म संवत् १७८९ के पौष में हुआ था "पुराने कागज" (नं. ६५) से सूचित होता है कि उस समय मोहनसिंहजी ने पोते के जन्मोत्सव का अच्छा जलसा किया था और उनकी धर्मपत्नी 'मेड़तणी जी' ने वधू की मुँह दिखलाई में २०) मुहर तथा अन्य आशार्थियों को यथा योग्य उपहार और पुरस्कार दिये थे। सुयोग आने पर हम्मीरसिंहजी को जयपुर राज्य ने रावल पद दिया और सामोद के मालिक बनाए।

(३) संवत १७८५ के मँगसिर में महाराजकुमार ईश्वरीसिंह जी का विवाह हुआ। उसमें सामिल होने के लिए महाराज सवाई जयसिंह जी ने मोहनसिंहजी को आदर के शब्दों का निमंत्रण पत्र भिजवाया था। "पुराने कागज" (नं. १८) के अनुसार संवत १८८५ के मँगसिर वदी ६ को महाराज के उच्चाधिकारी हेमराजजी ने लिखा था कि- 'श्रीजी ने फरमाया है महाराज कुमार की जनेत वास्ते जमियत (सहगामी सरदारों आदि) में बड़े आदमी साथ लेकर पधारना।' यह आग्रह आत्मीय होने के अनुरोध का था और उसका निर्वाह दोनों ओर से अब तक होता है। ईश्वरीसिंह जी को इतनी छोटी अवस्था में पाणिग्रहण कराने का एक कारण था जो आगे प्रगट किया है। उक्त विवाह के छः वर्ष बाद उनके एक पुत्र हुआ। जिसको जयसिंहजी ने अपने किए हुए यज्ञ का फल समझा किन्तु वह जीवित नहीं रहा।

(४) पिछले अध्याय में प्रगट किया गया है कि 'महाराज सवाई जयसिंहजी को उदयपुर के महाराणा अमरसिंह जी ने संवत १७६५ के आषाढ़ में अपनी पुत्री का पाणिग्रहण कराते समय इस बात के लिए वचन बद्ध किए थे कि 'इस (शीशोदणी जी) के जो पुत्र हो वह आपके जेष्ठ पुत्र से छोटा होने पर भी जयपुर राज्य का अधिकारी किया जाय।' ऐसी प्रतिज्ञा कराने के दो वर्ष बाद ही महाराणाजी का बैकुण्ठवास होगया और महाराज सवाई जयसिंहजी ने उक्त प्रतिज्ञा के पालन तथा आमेर राज्य की परंपरागत (ज्येष्ठ पुत्र के अधिकारी होने की) मर्यादा की रक्षा के लिए समय समय पर अनेक प्रयत्न किए किन्तु उनके फलदायी होने के पहले ही वह स्वयं स्वर्गवासी होगए। उस समय सामन्त मण्डल की सामूहिक सम्मति के अनुसार ईश्वरीसिंहजी राजा हुए और शीशोदणीजी के उदर से उत्पन्न हुए माधवसिंहजी अपने मामा के घर रहने में राजी रहे।

(५) यद्यपि ईश्वरीसिंहजी के राज्यारोहण में कोई बखेड़ा नहीं हुआ और न माधवसिंह जी ने ही किसी प्रकार का हस्तक्षेप किया किन्तु जो लोग जयसिंह जी के प्रभाव पूर्ण जमाने से

कुढ़ते आरहे थे उन लोगों ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए महाराज के मरते ही अनेक प्रकार के षडयन्त्र शुरू कर दिए और अवसर आने पर ईश्वरीसिंहजी के उज्वल भविष्य में कालिमा लगाने के लिए जगह जगह विद्वेष वन्हि की धूआँ फैलादी। उन दिनों कोटा, बूँदी नागोर (मारवाड़) और मेवाड़ आदि में सर्वत्र ही साम-दामादि का गुण ज्ञान बढ़ रहा था और विशेष कर भेद से काम लेते थे

(६) ईश्वरीसिंह जी के लिए इस प्रकार के कारण उदय होने की मुख्य जड़ मेवाड़ में थी और उसके पोषक तन्तु कोटा, बूँदी और मारवाड़ थे। क्योंकि (१) बुधसिंह जी की बूँदी को जयसिंहजी ने छीन ली थी और दो पीढ़ी (उम्मेदसिंहजी) तक प्रयास करने पर भी वापिस नहीं दी थी इस कारण वह कुंठित थे। (२) बूँदी देने के विषय में कोटा नरेश के कहने पर भी ईश्वरीसिंहजी इन्कार हो गए इस कारण वह क्रोधित हुए थे। (३) जयसिंहजी के जमाने के अपमान की याद आने से मारवाड़ वाले भी नाराज थे और (४) माधवसिंहजी के राजा न होने से मेवाड़ के महाराणा पहिले से ही राजी नहीं थे। अतः राव बहादुर ठाकुर नरेन्द्रसिंह जी मनसबदार ने "ईश्वरीसिंह चरित्र" (पृ० ४४) में यह ठीक ही लिखा था कि 'इस प्रकार के विद्वेष वायु से बहाए हुए उत्पातकारी, बादलों की काली घटा को हटाने के लिए महाराज सवाई ईश्वरीसिंहजी ने राजा होते ही वीरपुरुषों की भरती शुरू की थी और अवसर आते ही शत्रु संहार के लिए कमर कसकर तैयार होगए थे।' उन्होंने कोटा, बूँदी और मेवाड़ के साथ अनेक अवसरों में यथाक्रम कई युद्ध किए और साम-दामादि के द्वारा सदैव विजयी हुए। विस्तार भय से यहाँ उनका वर्णन नहीं किया है केवल ज्ञातव्य बातों का यत्किञ्चित् उल्लेख कर दिया है।

(७) "राजपूताने का इतिहास" (पृ० ९४४) में लिखा है कि 'जयपुर की गद्दी पर ईश्वरीसिंहजी के बैठने की बात सुनकर उनको हटाने के लिए उदयपुर के महाराणा जगतसिंह जी (द्वितीय) ने कोटा के दुर्जनसालजी को सामिल किया और जहाजपुर के जामोली गाँव में डेरा लगा कर ४०

दिन व्यतीत किए। उधर से ईश्वरीसिंहजी ने उनसे सामना करने के लिए अपनी सेना सजाई और जयपुर से प्रस्थान करके पंडेर में डेरे किए। (किन्तु दो राजाओं को एक ही बार में परास्त करना कठिन मान कर) अपने प्रवीण खत्री "राजामलजी"* के द्वारा भेद नीति से सफलता प्राप्त की और महाराणा जी को वापिस भिजवाकर विजय के साथ जयपुर आ गए।' "उम्मेदसिंह चरित्र" (बूँदी का इतिहास) 'पृ० ४८' में लिखा है कि 'दलेलसिंहजी के हाथ में दी हुई बुधसिंहजी की बूँदी उनके पुत्र उम्मेदसिंह जी को दिलाने के लिए कोटा के महाराव दुर्जनसालजी ने उनसे दो लाख रुपये का जेवर लिया था और सहायता की सफलता में संदेह मानकर अपने परम विश्वासी बेणीराम नागर को भेद नीति से काम कर आने के लिए ईश्वरीसिंहजी के समीप भेजा था। किन्तु ईश्वरीसिंहजी ने कोरा जवाब दे दिया कि 'बूँदी अब हाथी के पेट में चली गई।' इस बात से क्रुद्ध हो

* "राजामलजी" खत्री जाति के नररत्न थे। राजनैतिक मामलों में उनकी सुतीक्ष्ण बुद्धि बड़ा काम करती थी। वह अपने मनोगत भावों को छुपे हुए रखने में जैसे प्रवीण थे वैसे ही अपने सिद्धान्तों को शत्रु तक के हृदय में स्थिर कर देने में सुदक्ष थे। जयपुर महाराजाओं की सेवा में रहकर उन्होंने राज्य रक्षा के विधान बनाने में अपनी विलक्षण बुद्धि का बहुत ही अच्छा परिचय दिया था। महाराणा जगतसिंहजी ने अपनी और कोटा आदि की सेना साथ लाकर जयपुर पर चढ़ाई की थी उस समय राजामलजी ने नीति पूर्ण वाक्यों में बड़ा ही मर्मस्पर्शी उपदेश दिया था जिसको सुनकर महाराणा जी चुप होगये थे और माधवसिंह जी के लिए ५ लाख वार्षिक आय के टोंक का पट्टा राजामलजी से लेकर वापिस चले गये थे। उस अवसर में खत्री राज ने कितने प्रकार के कारण बतलाये थे उनके जानने के लिए "ईश्वरीसिंहचरित्र" (पृ० ५६) देखना चाहिए। जयपुर में राजामलजी के नाम का बहुत बड़ा तालाव है। पहिले उसमें अथाह पानी था और अब शहर की मिट्टी भरी हुई है। महामति केशवदासजी इनके पुत्र और नारायणदासजी भाई थे।

कर बेणीराम वापिस आगये।'

(८) "ईश्वरीसिंह चरित्र" (पृ० ६२) से विदित होता है कि 'जिस समय महाराणा साहब ने २५ हज़ार फौजें अपनी, १० हज़ार अपने भानजे (माधवसिंहजी) की और कई हज़ार कोटा आदि की लेकर जयपुर पर फिर धावा किया था उस समय अधिकार लाभ के लिए महाराज ईश्वरीसिंहजी सम्राट् मुहम्मदशाह की सेवा में दिल्ली गए थे। "पुराने कागज" (नं. ५५) से विदित होता है कि "महाराज के साथ में जोधसिंहजी आदि हितचिंतक कई सरदार भी थे। उनका डेरा जयसिंहपुरा के महलों में हुआ था।' ऐसे अवसर में जयपुर के हितैषी सरदारों ने महाराणाजी से सामना करना उचित नहीं समझा और माया जाल से काम चला लिया। "राजपूताने का इतिहास" (पृ० ९४६) के अनुसार जयपुर के सामंत मण्डल ने महाराणा जी से कहा कि 'हम भी माधवसिंह जी को चाहते हैं। ईश्वरीसिंहजी के आने पर हम उनको गिरफ्तार करवा देंगे। अतः आप व्यर्थ युद्ध न करें। यह सुन कर महाराणाजी उनके धोके में आगये और युद्ध रोक दिया।' किन्तु ईश्वरीसिंहजी के दल बल सहित दिल्ली से वापिस आते ही मरहटों को भी जयपुर की सहायता में प्रस्तुत देख कर महाराणा जी असमञ्जस में पड़ गये और उदयपुर लौट गये।

(९) 'ईश्वरीसिंहचरित्र" (पृ० ६७) में लिखा है कि-'महाराणाजी के प्रलोभ में फँसे हुए मरहटों को अपने में मिलाकर जिस समय राजामलजी जयपुर आरहे थे उस समय उन्होंने रास्ते में कोटा को घेर लिया और तोपों की भीषण मार से उसे जर्जर कर दिया किन्तु उनको रोकने के लिए वहाँ का एक भी हाड़ा आड़ा नहीं हुआ। तब जयपुर की सेना ने महाराणा साहब की सेना को आधीरात में अचानक घेर कर १ पहर तक लोहा बजाया और विजयी होकर जयपुर आगये।

(१०) "राजपूताने का इतिहास" (पृ० ९४६) में लिखा है कि 'पूर्वोक्त युद्ध में सफलता न मिलने से महाराणा निराश नहीं हुए। उन्होंने सं० १८०४ के कार्तिक में मल्हारराव हुल्कर

को दो लाख रुपए देकर उनके बेटे खाण्डेराव को उनके तोपखाने सहित साथ लिया और जयपुर पर (प्रवल वेग से) फिर चढ़ाई की। उधर ईश्वरीसिंह जी की ओर से हरगोविंद जी नाटाणी * की अध्यक्षता में जयपुर की सेनाओं ने प्रस्थान किया। (देवली के समीप) बनास नदी के किनारे "राज महल" के पास युद्ध हुआ। उस युद्ध में "ई० च०" (पृ० ७७) के अनुसार हरगोविंदजी नाटाणी ने वणिक पुत्र होकर भी महाबली क्षत्रिओं के समान ऐसा भीषण युद्ध किया जिसके सामने महाराणाजी की फौजें ठहर न सकी और असफल होकर पीछे हट गईं। "जयपुर हिस्ट्री" (अ. ४) से सूचित होता है कि जयपुर की सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वोच्च इमारत "ईश्वरलाट" उसी विजय का स्मारक है और जयपुर के देखने योग्य मकानों में वह भी मुख्य है। अस्तु।

(११) ऊपर के अवतरणों से सूचित होता है कि 'महाराणा उदयपुर के समीप माधवसिंहजी के राजा होने की लिखित प्रतिज्ञा होने पर भी

* "हरगोविन्दजी" नाटाणी खण्डेलवाल वैश्य थे। महाराज ईश्वरीसिंह जी की उन पर विशेष कृपा थी। वह राज के उच्चाधिकारियों में एक थे। अवस्था उनकी छोटी और बुद्धि बहुत बड़ी थी। युद्धादि के अवसरों में उन्होंने बड़े बड़े शत्रुओं को हराया था। यह सब कुछ होने पर भी ईश्वरीसिंह जी की असामयिक मृत्यु होने के मुख्य कारण यही माने गए थे। जिस समय महाराणाजी की प्रेरणा से प्रेरित होकर जयपुर पर आक्रमण करने के लिए हुल्हकर ने जयपुर के परकोटे के पास मोती-डूँगरी के मैदान में डेरा डाला था उस समय महाराज के अनेक बार कहने पर भी पहिले तो हरगोविन्द जी यह कहते रहे कि 'आप निश्चित रहैं एक लाख कछवाहे मेरे खीसे (जेब) में हैं' और फिर ऐन मौके पर यह धोका दिया कि 'खीसा फट गया' ऐसे विश्वास घात से ही महाराज की अपमृत्यु हुई। जयपुर में नाटाणीयों की २ हवेली प्रसिद्ध और देखने योग्य हैं और ७-७ चोक की बहुत ही बड़ी हैं। पहले एक में नाटाणी परिवार के नर नारी रहते थे और अब उसमें कोटवाली का दफ़्तर तथा गर्लस्कूल हैं।

ईश्वरीसिंह जी के राजा होने और माधवसिंहजी को राज्य लाभ से वंचित रखने आदि कारणों से महाराणा जी ईश्वरीसिंह जी पर आरम्भ से ही नाराज़ थे और राजामल के द्वारा मिली हुई टोंक तथा राणाजी के दिये हुए रामपुरा के परगनों से माधवसिंह जी संतुष्ट हुए थे किन्तु "टाड राजस्थान" (पृ० ६०४) के लेखानुसार आगे जाकर होने वाले बखेड़ों की जड़ काटने के लिए जयसिंह जी ने जीवित अवस्था में ही माधवसिंहजी को टोंक-फागी-रामपुरा और मालपुरा जैपुर से तथा भानपुरा और रामपुरा उदयपुर से दिला दिये थे जिनसे संतुष्ट होकर माधवसिंहजी ने ईश्वरीसिंहजी से कोई नाराजी नहीं की। किन्तु पाँच वर्ष पीछे उपरोक्त उपद्रव हुए और राजमहल के भारी युद्ध में ईश्वरीसिंह जी ने विजय लाभ किया। अस्तु।

(१२) उपरोक्त युद्धों में जोधसिंहजी का किसस्थान में कैसा सहयोग रहा था इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता किन्तु प्रवास में वह हर जगह ईश्वरीसिंहजी के साथ रहे थे इसके कई पत्र देखनें में आये हैं राजमहल की लड़ाई के दो महीने पीछे ईश्वरीसिंहजी दिल्ली गये थे। उस समय भी जोधसिंहजी उनके साथ थे। उन्होंने वहाँ जाकर संवत् १८०४ के पौषसुदी में अपने कामदारों को जो पत्र दिया उसमें लिखा था कि चौथ शुक्रवार को सम्राट के साथ महाराज की मुलाकात होगई है डेरा जयसिंहपुरे के महलों में ही हुआ है। हमारा डेरा भी उनके समीप ही में है यहां अपने निज के ५० आदमी हैं उनमें ५० ६० रुपये नित्य खर्च होते हैं। इन दिनों यहाँ घोड़े बहुत सस्ते हैं अतः खर्ची पूरकस (अधिक) भेजो तो लेते आवें। अस्तु।

(३४) "ईश्वरीसिंहजी"

(१३) संवत् १७७८ में उत्पन्न हुए थे। संवत् १८०० के कार्तिक में राज्यलाभ किया था। वह बड़े वीर और बुद्धिमान् थे। उनके जमाने में सिलपकला की बड़ी उन्नति हुई थी। उनका मंत्र शास्त्र पर बहुत विश्वाश था। कहा जाता है कि मन्त्रबल से वह शत्रु सेना का स्तंभन करना जानते थे और सतरंज के अद्वितीय खिलाड़ी थे। उन्होंने अपने रहने के महलों में कई एक मकान

ऐसे बनवाए थे जिनमें प्रत्येक मौसम के सुख साधनों का विलक्षण विधान था और उनका एक एक खण्ड जमीन के अन्दर होने पर भी उनमें सर्दी गर्मी या चौमासे के दुःख असर नहीं करते थे। विशेष कर दूषित वायु का संग्रह या संचार बिलकुल ही वर्जित था। "टाडरास्थान" (पृ. ६२४) में लिखा है कि 'जयपुर के कई एक सरदार ईश्वरीसिंह जी से नाराज थे और माधवसिंहजी को चाहते थे।' इस बात के लिखित प्रमाण भी देखने में आए हैं जिनका उल्लेख आगे किया गया है। किन्तु जोधसिंहजी उनसे नाराज नहीं थे वह बड़े बेटे को उत्तराधिकारी बनाने के पक्ष में थे। ईश्वरीसिंह जी के सम्बन्ध में अनेक इतिहासों में "मन्त्री मोटामारिया खत्री केशवदास राजकरण की ईशरा तब से छोड़ी आश" का दोहा देखने में आया है। इसके चरितार्थ होने का यह कारण बतलाया है कि केशवदास खत्री के प्रभुत्व से हरगोविन्द जी नाराज थे अतः उन्होंने उनपर राज्य के कई परगने शत्रुओं को देते रहने का लांछन लगाया था। इस कारण उनका विष प्रयोग से प्राणांत होगया। तब पीछे हरगोविन्दजी ने सम्वत् १८०७ तक कई काम मन माने किए और महाराणा उदयपुर की अंतिम सहायता में आए हुए मल्हार राव की फौजों का निवारण करने के समय महाराज ईश्वरीसिंहजी को "खीसा फटगया" कहकर ऐसा ठोका दिया कि उनका सहसा प्राणांत होगया। ईश्वरीसिंहजी के ९ राणी थीं। (१) राणावत जी (२) दूसरे राणावतजी (३) हाड़ीजी (४) बीकावतजी (५) सकतावत जी (६) जादम जी (७) बीरपुरीजी (८) सीसोदणीजी और (९) राठोड़जी इनके १ पुत्र हुआ वह जीवित नहीं रहा।

(१४) ईश्वरीसिंहजी का अकस्मात प्राणांत होजाने पर मेवाड़ में विराजे हुए माधवसिंहजी का आदर के साथ आवाहन किया गया। "पुराने काग़ज" (नं.६७) से सूचित होता है कि उन दिनों जोधसिंहजी जयपुर में नहीं थे बाहर गए हुए थे अतः माधवसिंहजी के स्वागत में सामिल होने के लिए जयपुर के तत्कालीन प्रधानों की ओर से संवत् १८०७ के पौषशुदी ७ को जो रुक्का भेजा गया उसमें लिखा था कि 'उदयपुर से राजा माधोसिंह जी आ

रहे हैं अतः उनको सांमाँलेने' अर्थात् (स्वागत करने) के लिये आपभी अपने सब भाई बेटों सहित आओ।' इस के अनुसार जोधसिंह जी तत्काल चले आए और कदीमी कायदा के अनुसार माधवसिंहजी के राज्य ग्रहण के अवसर के सब कामों को सहर्ष सम्पन्न किया। इस विषय में 'जनश्रुति' में यह विख्यात है कि 'मोतीडूँगरी से चलकर मल्हारराव और माधवसिंहजी दोनों एक हाथी पर बैठकर आए थे। किन्तु 'शिरह ड्योढी' से आगे जाने में संदेह करके मल्हारराव वापिस चला गया और माधवसिंहजी महलों में गए। वहाँ जाकर उन्होंने मृत ईश्वरी सिंहजी को गद्दी मसन्द लगाए बैठे हुए देखे तब उनके तेज युक्त चेहरे से उनको भारी भय हुआ किन्तु ढलैतों ने समझाया कि 'यह तो मरे हुए हैं' तब वह भ्रातृ वियोग से विह्वल होगए और उनके प्राणांत में अपने को मुख्य मान कर बहुत विलाप किया।'

(१५) "अधिकार लाभ" (पृ. १३) में लिखा है कि 'राज्यासन प्राप्त हुए पीछे महाराज सवाई माधवसिंहजी ने चौमूँ के सरदार ठाकुरां जोधसिंहजी से फरमाया कि "मैं उदयपुर था उन दिनों दादाभाई ईश्वरीसिंहजी को राज्याधिकार से हीन करके मुझे राजा बनाने के विषय में यहाँ से बहुत से सरदारों के पत्र गए थे। परन्तु आपने उस सम्बन्ध में सहयोग देनें आदि का कभी कुछ संकेत नहीं किया"। इसके उत्तर में जोधसिंहजी ने स्पष्ट शब्दों में सूचित किया कि 'जिस समय उदयपुर में महाराज जयसिंह जी ने आपको अधिकारी बनाने की लिखावट पर मेरे पिता (मोहनसिंहजी) के हस्ताक्षर होने की आवश्यकता प्रकट की थी' उस समय पिताजी ने उस पर बेकायदा हस्ताक्षर नहीं किए थे इस कारण मैंने भी आपको पत्र नहीं दिया। असल में हम लोग किसी के पक्ष विपक्ष में नहीं होते। हम तो राज की रक्षा के पक्ष में रहते हैं और परंपरा गत पद्मर्यादा का पालन करते हैं। साथ ही राज्यासन पर बैठे हुए राजाओं को अपने मालिक मान कर उनकी सच्चे मन से सेवा करते हैं। अतः जब तक ईश्वरीसिंह जी राजा रहे तब तक उनको मालिक माने और अब आपको सर्वेश्वर मानकर सेवा

में सदैव हाजिर रहेंगे। हमारी मौजूदगी में किसी की हिम्मत नहीं जो किसी प्रकार का न्यूनाधिक करें।" इस श्रद्धापूर्ण भाषण को सुनकर महाराज माधवसिंहजी बड़े संतुष्ट हुए और जोधसिंहजी को अधिक आदर के साथ अपने पास रखने लगे।

(१६) पुराने कागज" (नं. ६२) से सूचित होता है कि- संवत १८०८ में जौ १॥)४ गीहूँ १)५ मक्का १॥)६ चणा १)२ मूँगमोठ १॥) खाँड़।)७ गुड़ ॥)३ तेल।)३ टके १) के १४ या पैसे २८ और घी ऽ५॥। था। उन दिनों इस देश में १॥ तोला वज़न के और छोटे आकार के झाड़शाही मोटे पैसे चलते थे। आज की इकन्नी वैसे दो पैसे में आ सकती थी। (पु. का. नं० ६३) सं० १८१३ में दक्खिणियों के द्वारा हमले होने के हल्ले होरहे थे वे जैपुर में होते हुए पाटन की तरफ जाना चाहते थे किन्तु जैपुर के जोधसिंहादि सामन्तों ने उनको इधर से नहीं जाने दिया। बड़वा पुस्तकों में लिखा है कि सामोद के रावल रामसिंहजी संवत १८१४ में मरे थे किन्तु संवत १८१५ के चैत सुदी १३ (नं ६४) के उनके खुद के लिखे हुए पत्र से प्रकट होता है कि उस समय वह जीवित थे और उनके राजकाज की सम्हाल चौमूँ के कामदार करते थे। अस्तु।

(१७) राज्य लाभ के ७ वर्ष बाद ही भाग्यशील माधवसिंहजी को एक ऐसी वस्तु मिली जिसके लिए जयसिंहजी ने २-३ बार प्रयत्न किये थे और अन्यान्य राजा बादशाह भी लालायित रहे थे। वह देव दुर्लभ वस्तु भारत का दुर्भेद्य दुर्ग "रणथंभोर था। यहाँ उसका आंशिक परिचय प्रगट कर देना और उसके पूर्वापर की परिस्थति का दिग्दर्शन करादेना अनेक दृष्टियों से आवश्यक हुआ है। "पुराने कागज (नं० ५३) से प्रकट होता है कि 'संवत १८१४ तक 'रणथम्भोर' में दिल्ली के बादशाहों का हस्तक्षेप रहा था उस समय किले में उनकी ओर के आदमी रहते थे। किन्तु उन दिनों अहमदशाह दुर्रानी के आक्रमण और अत्याचारों से मुग़लराज्य की हीन दशा होरही थी। बादशाही भाग्य भास्कर एक प्रकार से अस्ताचल के अति समीप पहुँच गया था। उसके प्रकाश की दाहक आतप बहुत

ठंडी होगई थी। उनके बदले जहाँ तहाँ सरहदे सितारे चमकने लग गये थे और बादशाह अपने हाथ के नीचे के अधिकारों तक को हस्तगत रखने में असमर्थ हुये जारहे थे। ऐसी दशा में रणथम्भोर के प्रबंध सबंध में ध्यान देते रह कर उसके अनिष्टकारी कारणों को हटाने का उनको अवकाश ही कहाँ था। अत्यावश्यक कामों के लिए किले वालों ने कई बार लिखा पढ़ी की तौ भी कुछ उत्तर नहीं आया उन्होंने यहाँ तक मौन धारण किया कि किले वालों को दो तीन वर्ष तक खर्ची तक नहीं भेजी। और उधार खाते खाने से किले वाले कर्ज़दार होगये तब लाचार होकर उन्होंने उक्त किला दूसरों के अधिकार में देना निश्चय किया।

(१८) ऐसे ही अवसर में जयपुर राज्य के अंतर्गत पचेवर के ठाकुर अनूपसिंहज़ी किले वालों से मिले और किला के विषय में बात चीत की तब यह निश्चय हुआ कि 'किला के तत्कालीन किलेदारों को जयपुर राज्य से जागीर दिला दी जाय और किला महाराज के अधिकार में कर दिया जाय।' तदनुसार संवत् १८१४ के मँगशिर सुदी १३ को "पुराने काग़ज़" (नं॰५४) के अनुसार आपस के धर्म कर्म और प्राचीन काल के कायदे की लिखा पढ़ी होने के बाद किले के खजाने, ज़खीरा, जौंहराभोंरा नौलखा, सतपोल, सूरजपोल और दिल्ली दरवाज़ा आदि की तमाम कुंञ्जियाँ शिवलाल तहवीलदार को सम्हला दीं और संवत् १८१५ की काती में मुहम्मदशाह के नाम पर रसीद लिखवा दी। यह होजाने पर अनूपसिंहजी जयपुर आए और महाराज से सब हाल निवेदन किया। उन दिनों किला के मुख्य संरक्षक (या मालिक) मिर्ज़ा इमामबक्सजी 'हज़ारी' थे अतः काग़ज (नं. ५५) के अनुसार संवत १८१५ की काती सुदी २ को अनूपसिंहजी के ठहराव के मुताबिक उनके आवश्यक खर्च के लिए जयपुर से बारह सौ वार्षिक आय का प्रबंध कर दिया और दो घोड़े दो पालखी तथा एक मकान दे दिया। साथ ही अनूपसिंहजी के प्रति कृतज्ञता प्रकट की गई।

(१९) उन दिनों रणथंभोर में

सदीवाल, रिसालदार, जमातदार, बागवाले, मिलकी और हज़ारी आदि के अतिरिक्त ६) मासिक पाने वाले एक हज़ार सैनिक(या डील) थे और उन सबके वार्षिक व्यय में १०३६००) लगते थे। अतः इन सब कामों के व्यय निर्वाह के निमित्त जयपुर की ओर से जागीर की गई और उसके प्रमाण पत्र पर संवत १८१५ की काती सुदी ६ को (१) ठाकुराँ जोधसिंहजी नाथावत चौमूँ (२) ठा० कुशलसिंह जी राजावत झिलाय (३) ठा० अनूपसिंह जी खंगारोत पचेवर और (४) ठा० दलेलसिंहजी राजावत धूला के हस्ताक्षर एवं मुहर हुई। उनके पीछे उक्त किला अनूपसिंहजी के द्वारा महाराज के अधिकार में आगया और सर्वप्रथम संवत् १८१५ की काती में चौमूँ के अधीश्वर ठाकुरां जोधसिंहजी परंपरा के लिए रणथंभोर के दुर्गाध्यक्ष (किलादार) नियत हुए। उनके पीछे ७ किलेदार रहने लगे। उनमें (१) चौमूँ (२) पचेवर (३) अमारवा (४) वरनाला (५) झिलाय (६) धूला और (७) खालसा के ठाकुर अथवा हाकिम थे और प्रत्येक के ७२-७२ सैनिक (डील) रहते थे। इनको जागीर के रूप में लगभग १३९९४।-) प्रत्येक को मिलता था। और राजा रंक रईस कोई भी दर्शक इन सातों के हस्ताक्षर युक्त प्रवेश पत्र के प्राप्त होने पर रणथंभोर में जासकते थे। अब पूर्वोक्त प्रकार के प्रवन्धों में परिवर्तन होगया है और क़िलेदारों से सेना खर्च के रुपये ले लिये जाते हैं।

(२०) "रणथंभोर" जयपुर स्टेट और मथुरा नागदा रेल्वे के सवाई माधोपुर स्टेशन के समीप है। उसका बनाने वाला कोई महा बुद्धिमान् था उसने सैंकड़ों वर्ष पहिले और सैंकड़ों वर्ष आगे के देश काल जनित शांति उपद्रव--सम्पति--विपति-दैवी उत्पात या प्राकृतिक दुर्घटनाओं आदि के पूर्वापर को विचार कर इसे बनाया था। यह किला किस ज़माने में बना इसका कोई पता नहीं लगता सिर्फ इतिहासों से यह मालूम हुआ है कि (१) पृथ्वीराज के ज़माने में यह अपनी युवावस्था में मौजूद था उसके पोते गोविन्दराज ने इसको राजधानी बनाया था। उसके पीछे उसी के बेटे पोते पड़पोते (२) बलहन (३) प्रहलाद (४) वीरनारायण और (५) हम्मीर हुए।

इनके ज़माने में रणथम्भोर ज़्यादा विख्यात हुआ। "हम्मीर"(महाकाव्य) में लिखा है कि 'उनदिनों इसमें हज़ारों घरों की वस्ती थी। अनेक प्रकार के व्यापार होते थे। विविध प्रकार की वस्तुएं बनती थीं। वीर योद्धाओं के अनेक समूह थे शत्रुसंहार के शस्त्रास्त्रों का वाहुल्य था। बाग बगीचे-फल फूल अथाह जल के सागर सुवर्णादि के महल मकान और कई प्रकार के धनागार थे। भारी मूल्य के असंख्य रत्नों से हम्मीर के महल और सीढियाँ चमकते थे। उनके पीछे (६) संवत् १२६७ में दिल्ली सम्राट् शमशुद्दीन ने (७) १३३८ में खिलजी ने और (८) १३५६ में अलाउद्दीन ने इस पर चढ़ाई की अथवा अधिकार किया। उनके पीछे (९) १४५८ में मेवाड़ के (१०) १५८०-८५ में दिल्ली के बादशाहों के और (११) १६०० के आरम्भ में बूँदी के अधिकार में गया। फिर (१२) संवत् १६२५ में अकबर ने लिया (१३) सं १८१४ तक बादशाहों के अधिकार में रहा। और उनके पीछे (१४) सं० १८१५ के कार्तिक में जयपुर नरेश महाराज माधवसिंहजी (प्रथम) के अधिकार में आगया।

(२१) यह किला कई एक पहाड़ों के परकोटों से और सिंह व्याघ्र-वराहाक्रांत खैरी आदि के बीहड़ जंगलों से घिरे हुए बहुत ऊँचे पहाड़ के अति उच्चशिखर पर 'शिवपिण्ड' पर रखे हुए बील पत्र की भाँति फैला हुआ उपस्थित होरहा है। जिस पहाड़ पर यह बनाया गया है उस पहाड़ के कई पसवाड़े ५०-५० हाथ नीचे तक ऐसे तराशे हुए हैं जिनपर किसी प्रकार भी कोई चढ़ नहीं सकता। इसके दक्षिणी द्वार से निकलते ही दो तीन मील लंबे मार्ग में ऐसा रास्ता है जिसमें सिंहादि हिंसक जानवरों और भयंकर सर्पादि विषधर जंतुओं का भारी जमघट होने पर भी उसमें शत्रु की हज़ारों फौजें आराम से खड़ी रहकर गोले वर्षा सकती हैं किन्तु जबतक "रण की डूँगरी" या (रणतया की डूँगरी) पर आरूढ़ होकर आक्रमण न किया जाय तब तक अविच्छिन्न गोला वर्षाने पर भी किला खण्डित नहीं हो सकता। प्राचीन काल में किले के अंदर अथाह पानी के समुद्रोपम तालाब थे जिनके पेंदे के छुपे हुए छिद्रों को खोल देने से अतिवृष्टि की बाढ़ से बहाए हुए ग्रामादि की भाँति पूर्वोक्त पश्चिमी

भाग की फौजों को क्षण भर में घहा देते थे। किसी ज़माने में किले के अन्दर दुर्गाध्यक्षों के महल मकान, बाग बगीचे, पुष्पोद्यान-ताल तलाई नाले--या सेना समूहादि के सिवा हज़ारां घर नगर निवासियों के थे। (कहा जाता है कि प्राचीन काल में रणथम्भोर कई हज़ार घरों का क़स्बा था और इसमें अनेक प्रकार के व्यापार व्यवहार या रोजगार के काम भी होते थे)। उन दिनों इसके परकोटे पर जहां तहां वाल्मीक रामायण में बतलाए हुए मर्कटी, या ढिंकुली यंत्र भी थे जिनके सीधे सादे खटके से शत्रु की फौजों पर पत्थरों के गोले या हज़ारों मन पत्थर फेंके जा सकते थे और इसके दर्शनीय स्थानों में पद्मिला तालाब, कमलसागर तालाब, गुप्तगंगा, पद्मिनीभवन, राजप्रासाद, जौंहरेभौंहरे, और गणेशजी आदि मुख्य हैं। विशेष हाल जानने के लिए "हठी हम्मीर" "रणथम्भोर" "हम्मीर" (महाकाव्य) "टाडराजस्थान" "इतिहासराजस्थान" "वकायाराजस्थान" "तिमिरनाशक" "चरितांबुधि" "विश्वकोश" और "भारतभ्रमण" आदि का देखना आवश्यक है। आरंभ में रणथंभोर की आर्थिक स्थिति कैसी थी इसका कोई परिलेख देखने में नहीं आया। किन्तु संवत् १६२५ में सम्राट् अकबर ने इसमें अधिकार किया उस समय इसमें जौ गैंहू और अलसी आदि अनाजों के सैकड़ों ढेर थे हज़ारों घड़ों में तेल और शहद भरे हुए थे अपरिमित बारूद के कई भण्डार थे छोटे बड़े सब प्रकार के गोलों के पहाड़ लगे हुए थे हज़ारों मण मण, सूत, रुई, लवण और अफीम आदि के जुदे जुदे मकान भरे हुए थे अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों से कई शस्त्रागार पूर्ण हो रहे थे और सोना चाँदी तथा जवाहरात के भरपूर भण्डार थे।

(२२) इस प्रकार के देवदुर्लभ रणथंभोर को लेने के लिए मल्हारराव हुल्कर कई दिनों से मन चला रहा था उसने उसके लिए पहिले भी दोबार प्रयत्न किया था किन्तु किला वालों की मज़बूती से वह हाथ नहीं आया। अन्त में संवत् १८१६ के मंगसिर में स्वदेश जाते समय उसने फिर साहस किया, और तन्निमित किले से कई कोस इधर ककोड़ के मैदान में पड़ाव डाला। उस समय पूर्वोक्त प्रमाण के

अनुसार किला के 'दुर्गाध्यक्ष' चौमूँ के अधीश्वर ठाकुरां जोधसिंहजी जैपुर महाराज की सेवा में उपस्थित थे अतः "नाथवंश प्रकाश" (पद्य १५५ से १७५) के अनुसार महाराज ने दुर्ग रक्षा के प्रबन्ध के लिए जोधसिंहजी को आज्ञा दी और सेनापति के संमान का हाथी शिरोपाव देने के सिवा एक हज़ार घुड़सवार, एक हज़ार पैदल, २० छोटी तोपें, १० बड़ी तोपें और बहुत से हाथी, घोड़े, ऊँट, गाड़ियां तथा जंगी सामान साथ किया। महाराज की आज्ञा मिलते ही जोधसिंह जी ने राज की सेना के अतिरिक्त ५ सौ सैनिक अपने सहगामी सामंतों के लिए और सब प्रकार से सुसज्जित होकर प्रस्थान किया। उस समय बगरू के ठाकुर गुलाबसिंहजी तथा सामोद के षोड़शवर्षीय सुकुमार रावल रामसिंहजी (जिनका उन्हीं दिनों में विवाह हुआ था और वह १ वर्ष पहिले ही गद्दी पर बैठे थे) जोधसिंह जी के साथ गए थे। लड़ाई के मैदान में पहुँच कर इन लोगों ने शत्रु पक्ष का संहार करने में अपने पुरुषार्थ को बहुत ही अधिक मात्रा में प्रकट किया। चन्द कवि ने लिखा है कि 'मरहटों की १२ हज़ार फौजों के सामने जोधसिंह जी के इनेगिने जवान कुछ भी नहीं थे किन्तु उतने ही वीरों ने अपने बढ़े हुए साहस वीरता और उत्साह से हज़ारों मरहटों के छक्के छुड़ा दिए और वीर शिरोमणि रामसिंहजी जैसों के लोकोत्तर युद्ध से शत्रु की सेना में भगदड़ मच गई। देखते २ मरहटों से मैदान खाली होगया और विजयश्री प्राप्त करके जोधसिंहजी स्वर्ग पधार गए। "वीरविनोद" (पृ० ७६) में लिखा है कि 'जयपुर के वीरों की चोट से घायल होकर गंगाधर तांत्या भाग गया था।'

(२३) इतिहासों से आभासित होता है कि युद्ध भूमि में अडिग खड़े रहने से जोधसिंहजी के शरीर में बड़े २ कई घाव होगए थे जिनकी असह्य पीड़ा से मूर्छित होजाने पर सेवक लोग उनको शिविका (पालखी) में बिठा कर डेरे ले आए थे। उसी अवसर में उनके पुत्र रावल रामसिंह जी ने अपने युद्ध कौशल से शत्रुओं को चकित किया और शरीर से मस्तक के अलग हो जाने पर भी उन्होंने शत्रुओं की सेना पर प्रबल वेग से

ऐसा धावा किया कि वह उनके अग्र भाग में पहुँच गए। इस प्रकार के लोकोत्तर युद्ध से मल्हार राव की फौजों ने युद्धक्षेत्र को खाली करदिया और जोधसिंहादि के मार्फत महाराज के लिए विजय श्री भेटकर स्वदेश चले गए। उधर मूर्छा दूर होने पर जोधसिंह जी ने युद्ध भूमि का हाल पूछा तब प्रधान ने निवेदन किया कि कुँवर रामसिंहजी उपरोक्त प्रकार से विजयी होकर स्वर्ग पधार गए और शत्रुओं की सेना में भगदड़ मचाकर मरहटों को हरा गए।' रणथम्भोर की रक्षा और जयपुर राज्य की सेवा के लिए प्राण प्रिय पुत्र का इस प्रकार प्राणांत होना सुनकर जोधसिंहजी हर्षित हुए और शेष शत्रुओं का संहार होजाने के अनन्तर उसी युद्ध भूमि में स्वर्ग पधार गए। इसी प्रकार बगरु के ठाकुर गुलाबसिंहजी के भी शत्रुओं के हराने में अपने पुरुषार्थ की पराकाष्ठा प्रकट की थी और विजय लाभ के अनन्तर ही स्वर्ग पधारे थे। "वंशभास्कर" में उक्त राजभक्तों के विषय में यह दोहा यथार्थ ही लिखा है कि- "नाथ जोध चौमूँ जबर, उत गुलाब बगरूप। ढ़ाल युगल ढूँढाड़हू, त्याग्यो अंग अनूप ॥ १ ॥" इसी लिए इन लोगों की सत्कीर्ति गाई जाती है और महाराज कुमार रामसिंहजी चौमूँ सामोद जयपुर और ककोड़ में अब तक देव तुल्य पूजे जाते हैं। अस्तु।

(२४) जोधसिंहजी का बाल्य काल उनके पिता के बड़े बूढ़े सेवकों की निगरानी में और जवानी जयपुर महाराजाओं की सेवा में व्यतीत हुए थे। उनके ठिकाने में शाहदत्तरामजी, हरकिशनजी, दूलहसिंहजी, चन्द्रभान जी विलायतखाँजी और आलम आदि कई आदमी प्रत्येक प्रकार के कार्य साधन में प्रवीण व्यवहार में कुशल और वीर साहसी मितव्ययी तथा स्वामीभक्त थे। जोधसिंहजी ने अपने पिता के नियुक्त किए हुए नोकर चाकरों मंत्री मुसाहबों या अन्य प्रकार के पदाधिकारियों आदि के साथ अणुमात्र अपराध होते ही अलग करने, उलहना देने, या हानि पहुँचाने आदि का कभी ओछापन नहीं किया था। वह अपने आदमियों के साथ सदैव सदूव्यवहार रखते थे। विशेष कर शाहदत्तरामजी और मियाँ विलायतखाँजी का आत्मीय तुल्य आदर करते थे और ये लोग भी उनको अन्तः करण से सच्चे अन्त-

दाता मानते थे। इन लोगों ने चौमूँ के ठिकाने की अनेक अवसरों में अद्वितीय सेवा की थी। अतः शाहदत्तारामजी के वंशज 'सुखमारथा' और मियाँ विलायतखाँजी के वशज 'कप्तान बांधव' (पठान) इस ठिकाने में अब तक आश्रय पारहे हैं और यथा योग्य पदों पर काम कर रहे हैं। मियाँ विलायतखाँजी मुसलमान होकर भी हिन्दुओं के हितसाधन में अधिक ध्यान देते थे। उनकी दृष्टि में हिन्दुओं के धर्म कर्म देवी देवता और व्रतोत्सवादि वैसे ही आराध्य थे। जैसे हिन्दुओं के मत में माने जाते थे "पुराने कागज" (नं० २७) से सूचित होता है कि-जोधसिंहादि के कभी कुछ ज़रासा भी दुःख दर्द या उद्वेगादि हो जाते तो विलायतखां जी तत्काल ही उनके लिए देवी देवता पुजवाते और अनेक प्रकार के दान पुण्य सदनुष्ठान या शांति आदि सरकार की ओर से कराते और आप स्वयं भी करते थे। "पुराने कागज" (नं० ४६) से मालूम होता है कि (उनको चौमूँ के मुसाहब होने की वजह से जयपुर राज्य से १५००) वार्षिक आय की जागीर उपलब्ध थी) और ३३३।-)। हर चौमाहे या १०००) वार्षिक सरकार से दिये जाते थे। उनदिनों राजाओं के अन्तःकरण में प्रजा की भलाई तथा उनको हर हालत में सुखी और संतुष्ट रखने की सच्ची भावना सदैव बनी रहती थी। वह भावना जोधसिंहजी के हृदय में भी मौजूद थी। "पुराने कागज़" (नं० ४६) से सूचित होता है कि संवत् १७९० तथा १८१३ में इस देश में दक्षिणियों के उपद्रव होने लगे उस अवसर में जोधसिंहजी ने प्रजा रक्षण के यथायोग्य उपाय सब के लिए करवाए थे और उनपर उपद्रवकारियों की आतप नहीं आने दी थी। उस समय के रक्षा विधानों में यह भी था कि सद्गृस्थों की बहू बेटियों या उनके परिवारों को शहर से बाहर सुरक्षित स्थानों में भिजवा दिए थे और यत्र तत्र पहरेचूली या सैनिकगण नियुक्त करवा दिए थे।

(२५) चन्द कवि ने अपने "नाथवंश" में प्रकाशित किया है कि 'महाराजसवाई माधवसिंहजी (प्रथम) के राज्य लाभ के आरंभ में जितने प्रकार के बाधक और बाधाएं थीं उन सब का स्वामीभक्त जोधसिंहजी ने

बड़ी बुद्धिमानी और दूर दर्शिता के साथ निवारण किया था और गत महाराज ईश्वरीसिंहजी को तथा तत्कालीन महाराज माधवसिंहजी को अपने निष्कपट एवं सद्वर्तावों से सदैव संतुष्ट या प्रसन्न रखे थे। अस्तु। अध्याय के आरंभ में लिखा गया है कि जोधसिंहजी के दो विवाह हुए थे। उनमें (१) जयकुँवरि (बीदावतजी) बीदासर के हिंदूसिंहजी की पुत्री और (२) जड़ावकुँवरि (कूँपावतजी) उदयभानजी की पुत्री थे। दूसरी स्त्री के ७ पुत्र हुए उनमें (१) हम्मीरसिंहजी सामोद के मालिक हुए (२) रामसिंहजी भी सामोद ही गए और ककोड़ के युद्ध में अपुत्र मरे (३) रतनसिंहजी चौमूँ के मालिक हुए (४) सुलतानसिंहजी सामोद गए (५) गुलाबसिंहजी अपुत्र मरे (६) भोपालसिंहजी अजैराजपुरे अपने चचा भगवंतसिंहजी के गोद गए और (७) बहादुरसिंहजी रैणवाल के मालिक हुए। „स्मृति चिन्हों" में (१) जोधसिंहजी की बड़ी पुत्री फतेहकुँवरि ने संवत् १७९९ में चौमूँ के जानराय जी का (जूना) मंदिर बनवाया (२) उनकी बड़ी भार्या बीदावतजी ने सं० १८०३ में जयपुर हनुमत बाड़ी में अपने श्वसुर मोहनसिंहजी की छत्री बनवाई (३) सं० १८१३ में सामोद के गोविंद देवजी का विशाल मंदिर बनवाया (४) उसी वर्ष चौमूँ के रामबाग (नाड़ा स्थान) में रामकुमारजी का मंदिर बनवाया (५) संवत १८१५ में वृन्दावन में लड़वा कुञ्ज की स्थापना की (६) सं० १८१५ में जोधसिंहजी ने वंश परंपरा के लिए रणथम्भोर की किलेदारी प्राप्त की (७) सं० १८१६-१७ में जोधसिंहजी की स्त्री ने ककोड़ में अपने पति (जोधसिंहजी) तथा पुत्र (रामसिंहजी) की अति विशाल छत्री बनवाई और उनकी नित्य पूजा होते रहने का प्रबंध किया और (८) संवत १८२४ में चौमूँ वृजराज का सुविशाल मंदिर बनवाया।

ग्यारहवाँ अध्याय

शुभमस्तु

॥ श्रीः ॥

नाथावतोँ का इतिहास ।

रतनसिंहजी

(१२)

(१) संवत् १८१६ में जोधसिंह जी का स्वर्गवास होने पर उनके तीसरे पुत्र रतनसिंह जी चौमूँ के मालिक हुए। उन से बड़े (१) हम्मीरसिंहजी स्वाभाविक मृत्यु से सामोद में और (२) रामसिंहजी शत्रुओं के शस्त्राघात से ककोड़ में स्वर्ग पधार गये थे इस कारण शेष पुत्रों में रतनसिंहजी ही ज्येष्ठ थे। उनका जन्म संवत् १८०५ के माघ शुक्ल ९ सोमवार को इष्ट २२।२६ सूर्य १०।२ और लग्न ३।५ में

जन्म लग्न

श ५ ६ के ४ ३ २ ७ १ चं मं ८ शु १० रा १२ ११ ९ सू बु बृ
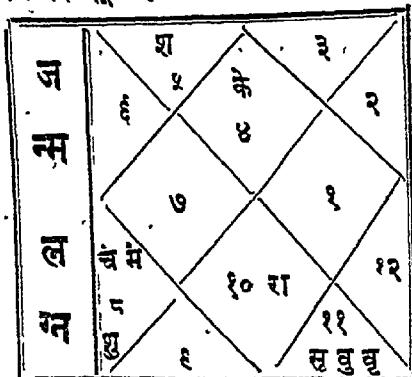
हुआ था। चौमूँ सामोद के राजकुमारों को, आत्मीयता के अनुरोध से जयपुर राज्य से ५-७ या १० हज़ार की 'कँवरपदा की' जागीर सदा से मिलती आरही है इस कारण रतनसिंह जी का जन्म हुआ तब जयपुर राज्य की ओर से उनको वहात्तरी परगना के 'चोवड्यांवाला' गांव की ५ हज़ार की जागीर मिली थी परन्तु जब वह अपने पिता के कदीमी ठिकाने के मालिक हो गए तब वह जागीर उनके भाई भोपालसिंहजी को इस लिहाज से दी गई कि उन्होंने ककोड़ की लड़ाई में बहादुरी दिखलाई थी।

(२) इस सम्बन्ध में "पुराने कागज़" (नं० ३२६) में जो कुछ लिखा है उसका सारांश यह है कि 'रतनसिंह जी अपने पिता की परंपरागत जागीर के मालिक होगए तब उनकी (कँवरपदा की) जागीर का ५०००) आय का 'चोवड़्यां वाला' गाँव उनके भाई भोपालसिंहजी को दे दिया।' इस आशय के मूल कागज़ पर महाराज

माधवसिंहजी की मुहरें तथा राजा हरसहायजी खत्री के हस्ताक्षर और दफ्तर के परिलेखादि थे और प्रत्येक आशय की जुदी २ मिती के सिवाय अन्तिम मिती फागण बुदी ४ (सं० १८१६) थी। यहां इस अंश को इस लिए उद्धृत किया है कि ककोड़ में मरे हुए मनुष्यों की मिती से अधिकांश आदमी असँहदे हैं उनमें कोई मँगसिर मानते हैं, कोई भाद्वा बतलाते हैं और कोई १८१६ को १४ स्थिर करते हैं। अतः इस सम्बन्ध में जैपुर राज्य के कागज़ों में जो मिती दीगई है वह असल मिती मानी जासकती है। "पुराने काग़ज" (नं० ३२६ तथा २-६६) में साफ लिखा है कि 'संवत् १८१६ के मँगशिर बदी १४ दीतवार को दिखणयां की लड़ाई में काम आए-फतह पाई–या भला दिखाया' इस लिए जयपुर राज्य की ओर से उनको खुद को या उनके उत्तराधिकारियों को माफी, इजाफा या इनाम आदि यथा योग्य दिये गए थे और सहानुभूति दिखलाई गई थी।

(३) "पुराने काग़ज" (नं. १-६६) से सूचित होता है कि पुरस्कृत मनुष्यों में (१) रतनसिंहजी जोधसिंहजी के (२) सुलतानसिंह जी जोधसिंहजी के (३) भोपालसिंहजी जोधसिंहजी के (४) भगवंतसिंहजी मोहनसिंहजी के (५) पेमसिंह जी सकतसिंहजी के (६) डूँगरसिंहजी श्यामसिंहजी के (७) कनकजी तिलोक जी के (८) नरसिंहजी पद्मसिंहजी के (९) किशनजी देवीसिंहजी के (१०) जयसिंहजी देवीसिंहजी के (११) देवीसिंहजी गुमानजी के (१२) सावंत जी गुमानजी के (१३) ग्यानसिंहजी सूरजसिंह जी के (१४) गुलाब जी भूझारजी के (१५) भवानीसिंहजी तेजसिंह जी के (१६) गुमान जी रामचन्द्र जी के (१७) शिवसिंह जी गुमान जी के (१८) जोधसिंह जी रायसिंहजी के (१९) ईश्वरीसिंहजी मोहकमसिंहजी के (२०) ज़ालिमसिंह जी बख्शीरामजी के (२१) गुलाबजी किशनजी के (२२) जालिमजी सांवल जी के (२३) नाहरसिंहजी सुलतानसिंहजी के (२४) सूरजमलजी तथा (२५) पोपसिंहजी फतहसिंहजी के (२६) हरभानजी अरजुनजी के (२७) दौलतजी मोहबतजी के (२८) शंभूसिंह जी सांवतसिंह जी के (२९)

गुमानजी हरीसिंहजी के (३०) सुजान जी रामसिंहजी के (३१) छीतरजी पद्मजी के (३२) संग्रामसिंह जी राजावत अमरसिंहजी के (३३) बुधसिंहजी साहिबसिंहजी के (३४) सरदारसिंहजी राठोड़ टोड़रमलजी के (३५) समरथसिंहजी जैसिंहजी के (३६) अचलजी प्रह्लादजी के (३७) कल्याण जी गुमान जी के (३८) सवाईसिंहजी प्रह्लादजी के (३९) हरीसिंहजी पवाँड़ रामदासजी के (४०) ज्ञानसिंहजी हमीरदे-तेजाजी के (४१) असरफखाँजी पठान ईसनखाँ जी के (४२) दरावखाँजी महरावजी के (४३) पीरखाँजी स्यामखाँजी के (४४) हिम्मतखाँजी अलावक्शजी के (४५) महरावखाँजी सिकंदरखाँजी के (४६) मुरादखाँजी मरदखाँजी के और जुम्मरदीखाँजी महमूदखाँजी के आदि मुख्य थे। अस्तु।

(४) जिस समय रतनसिंह जी चौमूँ के मालिक हुए उस समय उनकी अवस्था सिर्फ ११ वर्ष की थी फिर भी उन्होंने अपने संपूर्ण कामों को भली भाँति सम्हाल लिया था और पुराने कामदारों के सहयोग एवं माता की सत्सम्मति के सहारे से कार्य भार के उठाने में उनको किसी प्रकार की अड़चन या असुविधा नहीं हुई थी। बल्कि जयपुर राज्य की ओर से उणियारे पर जो चढ़ाई हुई उसमें उन्होंने अपनी बुद्धि और वीरता का विशेष परिचय दिया था "जयपुर हिस्ट्री" (पृ. ८०) में लिखा है कि संवत् १८१८ में उणियारा के तत्कालीन रावजी ने जयपुर राज्य की आधीनता से अलग रह कर स्वाधीन होने का प्रयत्न किया था किंतु इस प्रकार के असद्विचारों को देखकर जयपुर नरेश महाराज माधवसिंह जी ने रतनसिंहादि के संरक्षण में फौजें भिजवा के उणियारे को घेर लिया और वहाँ के किले पर कब्जा कर लिया। इस काम के लिए रतनसिंहजी को दो तीन बार उणियारे जाना पड़ा था अंत में उणियारा राव जी का असद्विचार बदल गया तब जयपुर राज की फौजें वापस आगई और किला रावजी को दे दिया। उनके थोड़े दिन पीछे कोटा महाराज ने भी मल्हार राव की सहायता लेकर उणियारे पर चढ़ाई की थी किन्तु वहाँ जयपुर राज्य की फौजें उपस्थित होने से कोटा नरेश उणियारे की कुछ हानि नहीं कर सके और हताश

रूप में वापिस चले गए। उस अवसर में मल्हार राव का बेटा मारा गया था। "पुराने कागज" (नं. ३२८ तथा ३३६) से सूचित होता है कि युद्धादि के अवसरों में भी रतनसिंह जी की माता उनको अपने प्रबोधात्मक पत्रों से सचेत या होशियार करते रहते थे। वह उणियारे में थे उस समय उनकी माता बीदावत जी ने जो पत्र भेजे थे उनका आशय उन्हीं के शब्दों में यह था कि 'लालजी थे स्याणा छो; जतन सूं चालज्यो; घुड़सवार तथा पहरा पूली को जावतो रखाज्यो; मँहगाई को मोको छै सब तरह को खर्च लागे छै-निगह राख ज्यो; उणियारा का हाल लिख ज्यो और किसी बात की चिन्ता मत करज्यो भगवान् सब भली करैला।' कैसा अच्छा आशय था, भय चिन्ता या उद्वेग की कोई बात ही नहीं लिखी थी।

(५) "पुराने कागज" (नं. ३३७) से सूचित होता है कि 'संवत १८१८ के मँगशिर में मरहटों ने इस देश में ज़्यादा उपद्रव किया तब जयपुर नरेश महाराज माधवसिंहजी ने शांति रक्षा के लिए उत्तर प्रांतों का दौरा किया था और रतनसिंहादि सामन्त भी साथ गए थे उस अवसर में रतनसिंह जी के एक प्रधान अफ़सर असरफखाँ जी ने उपरोक्त मिती के पत्र में उनसे पूछा था कि 'यहाँ मरहटों के उपद्रवों की अवाई (चर्चा) सुनकर लोग घबड़ा रहे हैं और माल असबाब को इधर उधर छुपा कर जहाँ तहाँ भाग रहे हैं इसलिए माणस कबीले तथा राछ पोछ सवाई जयपुर रहेंगे या आमेर' इसके उत्तर में 'तकणेतांकागढ़' के डेरे से रतनसिंहजी ने लिखा था कि 'मौके पर जहाँ मुनासिब हो वहीं रहें' इससे सूचित होता है कि जयपुर तथा आमेर में चौमूँ ठाकुर साहिबों की तथा अन्य भाई बेटे या सरदार लोगों की हवेलियाँ शुरू से हैं और आमेर में (चौमूँ ठाकुर साहिबों की हवेली) रतनसिंहादि से भी पहले की है। उसकी प्राचीनतम बनावट से तो यह अनुमान होता है कि आमेर नरेशमहाराज पृथ्वीराजजी या मानसिंहजी आदि के जमाने में बनी होगी, क्योंकि इसकी बनावट वैसी ही है जैसी आमेर के अधिक पुराने महलों की है। जो लोग इसके विख्यात नाम 'संघीजी की हवेली' को देखकर इसके आधुनिक होने का अनुमान करते हैं वह सर्वथा गलत मालूम होता है।

(६) पुराने कागजों से प्रकट हुआ है कि प्राचीन काल में केवल ज़मीन या जागीर के ही इजारे नहीं होते थे द्रव्योपार्जन के और भी बहुत से काम इस रूप में सम्पन्न किए जाते थे, और अकेले राजा बादशाह या सरदार लोग ही नहीं सामान्य मनुष्य भी अपने खेत, बाग़, कुएँ, मकान या नहर आदि को ठेके या इजारे में ही करवाते थे। इस प्रकार कराने में प्रथम तो अपने पास से धन लगाकर भविष्य लाभ की आशा या प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती थी। दूसरे हाकिम या मज़दूरों को मुँह मांगी तनखा देकर भी काम के लिए तकाज़े नहीं करने पड़ते थे। तीसरे घर भर को साथ रखकर सहयोग नहीं देना पड़ता था और चौथे काम या अवधि की समाप्ति में कूँते हुए लाभालाभ की हानिवृद्धि से हर्ष या विषाद होने की ज़रूरत नहीं पड़ती थी। इसी विचार से ठेके या इजारे जारी हुए थे। रतनसिंहजी के जमाने में चौमूँ में डोडी-छोंतरा (अफीम या खस के दाणे की खेती) तेल, तमाखु, कोठियां और राहधारी आदि की आमदनी के ठेके या इजारे अधिक होते थे और उनमें सभी को संतोष था। "पुराने काग़ज" (नं० ३४४) के लेखानुसार 'काशीराम झालाणी ने संवत् १८१८ के मँगशिर में चौमूँ की राहधारी का एक साल का ठेका लिया था और हर महीने ५५१) या सालभर के ६६१२) रु० दिये थे।' इससे सूचित होता है कि रतनसिंहजी के जमाने में राहधारी की आमदनी अच्छी थी और धनी लोगों की अधिकता होने से व्यापार व्यवसाय भी बहुत बढ़े हुए थे।

(७) संवत १८२४ में जयपुर नरेश महाराज माधवसिंहजी (प्रथम) के और भरतपुर के राजा जँवाहरसिंहजी के आपस में अनबन हो जाने से सीमांत प्रदेश के "माँवड़ा" में बड़ी भारी लड़ाई हुई थी। उसका दिखाऊ कारण था जाटराज का 'बे क़ायदा सीमा प्रवेश' और आंतरीय कारण था राजपूताने की विनाश कारिणी सुप्रसिद्ध 'फूट'। उस युद्ध में चौमूँ के अधीश्वर रतनसिंहजी ने अपनी बुद्धि-वीरता और नीति कौशल से काम लेकर विजयाभिषिक्त जाटराज का पराजय किया था। इस विषय में "टाडराजस्थान" खण्ड दूसरा (पृ. ६०६) में जो कुछ ऐतिहासिक वर्णन दिया है उसका

संक्षिप्त आशय यह है कि 'हलजोत कर जीवन निर्वाह करने वाली जाट जाति में 'चूड़ामणि' ऐसा नामी हुआ जिसने अपनी जाति को तेज युक्त बनाया और फर्रुखसियर जैसे सम्राटों के शाही महलों को लूट लेने तक का साहस दिखलाया। उसी का भाई बदनसिंह था जिसको जयपुर के सवाई जयसिंहजी ने डीग का मालिक बनाया था और उसके पुत्रों में सूरजमल, शोभाराम, प्रतापसिंह, और वीरनारायण विख्यात हुए थे। बदनसिंह ने अपने बड़े बेटे सूरजमल को 'बेर' का अधिकारी किया था और पीछे वही भरतपुर का राजा हुआ था। सूरजमल के ५ बेटे (जवाँहरसिंह, रतनसिंह नवलसिंह, नाहरसिंह, और रणजीत सिंह) औरस थे और हरदेवसिंह रास्ते में लब्ध हुआ अनौरस था। इनमें जवाहरसिंह भरतपुर का राजा हुआ किन्तु राज्य लाभ के थोड़े ही दिन पीछे उसने जयपुर राज्य को अपना शत्रु बना लिया। 'बूँदी का इतिहास' 'उम्मेदसिंह चरित्र' (पृ. १२४) में लिखा है कि 'जवाहरसिंह के अत्याचारों से अकथा कर नाहरसिंह सपत्नीक जयपुर चला गया तब जयपुर महाराज ने उसे निवाई का जागीरदार बना दिया किन्तु थोड़े ही दिन पीछे वह मरगया तब सूर्यमल ने उसकी (रूपवती किन्तु विधवा) स्त्री के अपहरण करने का विचार किया यह देखकर उस पतिप्राणा जाटिनी ने प्राण त्याग दिए।' "जयपुर वंशावली" (पृ. ५०) में लिखा है कि महाराज सवाई माधवसिंह जी (प्रथम) ने जाटराज के लिखने पर उस अबला को नहीं भेजा तब जवाहर जाट जयपुर का शत्रु बनगया।'

(८) उन दिनों राजाओं के आपस में यह नियम था कि 'कोई भी राजा किसी भी राजा की राज्य सीमा के अन्दर होकर निकलते तो अनुमति मँगा लेते थे' किन्तु संवत् १८२४ के माघ में जँवाहरसिंह जी पुष्कर जाने लगे तब उन्होंने कदीमी कायदे की कोई परवाह नहीं की और जयपुर के अति समीप होकर अजमेर चले गए।' इस प्रकार कायदा तोड़ कर चाहकर राड़ खड़ी कराने में जोधपुर के महाराज विजयसिंहजी का भी संकेत था। "टाडराजस्थान" (पृ. ६०७) के अनुसार उस समय महाराज माधवसिंह जी उदरामय (पाण्डु रोग) से पीड़ित

थे और उनकी आज्ञानुसार गुरुसहाय हरसहाय जी खत्री काम करते थे। अतः उन्होंने जाटराज को सूचित किया कि 'आगे ऐसा न किया जाय' किन्तु मदगर्वित जाट ने उसपर कोई ध्यान नहीं दिया और यथापूर्व (बेकायदा वापस आने की) सूचना भिजवादी उस पर महाराज ने जाट राज से युद्ध करने का निश्चय किया और सामन्त मण्डल से सम्मति ली तब उस काम में सर्वापेक्षा धूला के रावजी अग्रसर हुऐ। "जनश्रुति" में ऐसा विख्यात है कि 'महाराज ने जाटराज से युद्ध करने के लिए शूरवीरों के सामने बीड़ा रक्खा था उसको सर्व प्रथम धूला के राव दूलेलसिंहजी ने ग्रहण किया तब युद्ध के आयोजन उपस्थित हुए।' जयपुर राज्य की उत्तर सीमा पर नीमका थाणा के अति समीप मँढोली के सामने "माँवड़े" के मैदान में जाटराज और जयपुर राज की शस्त्रास्त्रों से सजी हुई सम्पूर्ण सेनायें इकट्ठी हुई। तोपों की क़तार, बंदूकों की बाढ़, फौजों के जम घटे और हाथियों के समूह से माँवड़े का मैदान भर गया और वहाँ के अधिकांश अधिवासी उस भयंकर दृश्य से भयकंपित होकर भाग गये। इतिहासों से आभासित होता है कि उस युद्ध में जयपुर राज्य के नाथावत, राजावत, शेखावत, कूँभावत, शिवब्रह्मपोता, बणवीरपोता, खंगारोत और राजधर का आदि सभी शाखाओं के शूर वीर और जाट राजा की सम्पूर्ण बाईसी (अर्थात् जितने भी योद्धा थे सब) आए थे। उनमें घनगर्जन जैसा भीषण शब्द करने वाली शतसह शतघ्नी (जंगी तोपों) सहस्रसह शत्रुओं का संहार करने वाली करनाल (बंदूकों) और विद्युत सम प्रकाशवाली (बीजलसार की) अगणित तलवारों से माँवड़े का मैदान वर्षा ऋतु बन गया। भट्ट ग्रन्थों में दोनों ओर की सेनाओं के संघर्ष को पूर्व और पश्चिम से आकर परस्पर भिड़ने वाले वर्षाती बादल माने हैं और उनमें तोपों आदि के उच्चघोष को घनगर्जन बतलाया है साथ ही शूर वीरों के रुधिरश्राव को बेगवती वर्षा का जलप्रपात प्रकट किया है। कुछ भी हो। इसमें संदेह नहीं कि जाटराज के पास धनबल, जनबल, बाहुबल और रचना विधान सब भरपूर थे और जयपुर राज्य के शूरसामन्त उस को किसी भी प्रकार से परास्त कर

देने पर तुले हुए थे। इस कारण दोनों ओर के युद्धोद्धत योद्धा बहुत हताहत हुए और माँवडे के मैदान की भीषण परिस्थिति उपस्थित करदी।

(६) जाटराज मदगर्वित तो था ही साथ ही जोधपुर महाराज का बहकाया हुआ भी था अतः उसने युद्ध सामग्री के भण्डार खोल दिये और वीर जाटों को निःशंक बनादिए। इसके सिवाय उसका सुदक्ष सेनापति "समरू" फिरंगी,* अपने अधिकार की तोपें दागने और सेनाओं को आगे बढ़ाने में बड़ी होशियारी से काम ले रहा था। ऐसे रणपण्डित की पूरी सहायता प्राप्त होने से जँवाहर जाट की जीत के नक्कारे बजने लग गए और जयपुर राज्य के परमोत्साही धूलाराव जी जैसे अगणित वीरों के परलोक पधार जाने से उनमें हतोत्साह का अंकुर उग आया। यह देख कर जयपुर राजवंश के अंश प्रसून परम हित-चिंतक ठाकुराँ रतनसिंहजी चौमूँ तथा रावल सुलतानसिंहजी सामोद आदि ने साम, दाम और दण्ड के बदले भेद नीति को समयोचित मान कर भरतपुर के नवागत सहायक प्रतापराव जी नरूका तथा कुशालीरामजी बोहरा और समरूफिरंगी (जो थोड़े दिन पहले जयपुर राज के ही राजभक्त सेवक थे और किसी प्रकार के मनोमालिन्य से अलग होकर भरतपुर चले गए थे) उनको समझाया कि 'आप लोगों ने जयपुर राज्य का बहुत दिनों तक नमक खाया है और बड़े आदर के साथ रहे हैं। अतएव आज इस लड़ाई में उसी अन्नदाता की आत्मा (स्वरूप सेनाओं) पर दुर्नीति से आघात करना अच्छा नहीं।' यह सुनकर नरूका जी और बोहराजी दोनों चुप हो गए किंतु समरूफिरंगी ने अपनी फौजों की गति मति बदल कर तोपों के घन गर्जन को अधिक कर दिया। इस प्रकार की अदला बदली होने और जयपुर की फौजों में कुछ ज़्यादा उत्साह बढ़ने से जाटराज ने अपने प्रधानों से पूछा तो

* "समरु" फिरंगी- का असली नाम 'वाल्टरटैनहार्ट' था। जन्म संवत् १७७७ में हुआ था उसने संवत् १८२२ में जयपुर तथा २४ में भरतपुर की नौकरी की थी और संवत् १८३२ में वह मर गया था। सेनाओं से काम लेने में वह बहुत ही होशियार था और युद्ध संलग्न वीरों को प्रोत्साहन देने में प्रवीण था। समरूबेगम उसी की स्त्री थी।

मालूम हुआ कि 'जंगीसामान समाप्त होने वाला है और जयपुर के रणोत्साही वीर अभी और आरहे हैं।' यह सुनकर जाटराज ने अपनी फौजों को सत्वर वापिस लौट जाने की आज्ञा दी और आप स्वयं भी माँवडा के एक भोमिया को साथ लेकर चला गया। तब वहाँ के शेष सामान को उपस्थित जनता ने छीन लिया और बहुत से दारू गोले या तोपें आदि ज़मीन में भी गड़े रह गए। कहा जाता है कि जाटराज के अकस्मात् चले जाने से उस के बचे हुए बहुत से धन को उस देश के भोमियों ने लूट लिया था इस कारण वे इतने सबल बन गए थे कि उन की आर्थिक स्थिति अब तक उन्नत हो रही है। इसी लिए उस देश में होली के दिनों में यह कविता बहुत गायी जाती है कि "हैर मँढोली झगड़ो माँच्यो, माल बतीशो खायो। बीती राड़ि जाट कै हारी, सारो भरम गमायो ॥१॥" -"झगड़ो जीति रतन, घर पहुँच्यो, माधव सोच मिटायो। रीति नीति आपाण आदि मैं, ऊँचो रह्यो सवायो ॥२॥" अस्तु।

(१०) उस युद्ध में (१) धूला के राव दूलेलसिंहजी ने बड़ी भारी वीरता दिखलायी थी और जयपुर राज्य की सेवा के लिए बेटे पोते सहित वहीं परलोक पधारे थे। उन के सिवा (२) सीकर राव राजाजी के भाई बुधसिंहजी ४७ वीरों सहित मरे थे। (३) पचार के ठाकुर गुमानसिंहजी (४) धानोता के ठाकुर स्योदाससिंहजी और (५) मूँडरो के ठाकुर रघुनाथसिंहजी वहीं मरे थे। (६) जयपुर के तत्कालीन अधिकारी राजा हरसहाय जी गुरूसहायजी खत्री भी वहीं मारे गए थे। (७) कछवाहा नाम को अमर रखने वाले पद्मपुरा, किसनपुरा, डूँगरी, चौमूँ-सामोद और चीतवाड़ी आदि के अधिकांश आदमी उसी रणक्षेत्र के भेंट होगए थे और (८) जयपुर राज्य की सेवा के लिए चौमूँ के ठाकुर रतनसिंहजी तथा सामोद के रावल सुलतानसिंहजी मूर्छागत अवस्था में भी उसी मैदान में पहरों तक पड़े रहे थे। "सीकर का इतिहास" (पृष्ट ८९) में लिखा है कि 'सीकर के ठाकुर बुधसिंहजी अपने ४७ वीरों सहित मरे थे और उनके १५० आदमी घायल हुए थे।' "खेतड़ी का इतिहास" (पृ. ४५) में लिखा है कि 'माँवड़ा के मैदान में खेतड़ी के भोपालसिंहजी

ने बड़ी वीरता दिखलाई थी। जाटराज भागकर चला गया तब उसकी १ तोप जो समरूबेगम की फौज की थी उसको भोपालसिंहजी लेगए थे और वह अब भोपालगढ़ में सुरक्षित है'। "भारत के देशी राज्य" (पृष्ठ ६२) में यह गलत लिखा है कि 'माँवड़े के मैदान में जयपुर नरेश महाराज माधवसिंहजी स्वयं गए थे और अधिक घायल होकर ५ दिन पीछे परलोक पधार गए थे।' अन्य इतिहासों में लिखा है कि 'माँवड़े के मैदान में जितने वीर मारे गए या घायल हुए अथवा वीरता दिखलाई उन सबको ठाकुर रतनसिंहजी आदि के निवेदन करने पर महाराज माधवसिंहजी ने यथा योग्य पुरस्कार - उपहार - या जागीर आदि दी थीं और रतनसिंहजी ने खुदने भी अपने ठिकाने की जागीर में से बहुत से वीरों को पारितोषिक प्रदान किया था। "ईश्वरीसिंह चरित्र" (पृ. ११२) से आभासित होता है कि 'जँवाहर जाट जयपुर का नौकर था उसने जोधपुर के राजा विजयसिंहजी के बहकाने में आकर युद्ध किया था। यदि समरू साथ न होता तो जाटराज स्वयं माँवड़े के मैदान में मारा जाता।' वास्तव में वह युद्ध ऐसा भारी हुआ था कि इस जमाने के मनुष्यों ने वैसा युद्ध नहीं देखा होगा। उस युद्ध में जयपुर राज्य के प्रायः सभी ठिकानों के वीर क्षत्री मारे गए थे और प्रत्येक घर में केवल १०-१० वर्ष के राजकुमार शेष रहे थे।

(११) "माँवडे का मैदान" नीम का थाणा से ५-६ मील आगे है रेल में जाने वालों को उसकी छत्री दूर से दीख आती हैं। छत्री और चबूतरे कई हैं। उनमें (१) १५ हाथ चौड़े और २६ हाथ लंबे पक्के चबूतरे पर दो विशाल छत्री राजा हरसायजी गुरुसहायजी खत्री की हैं। (२) उनके दहिने बाजू २०×२२ के चबूतरे पर वैसी ही दो छत्री धूला के राव दूलेलसिंहजी की तथा उनके युवराज की हैं। (३) उनके समीप में एक बड़ा चबूतरा उनके पोते का—तथा (४) एक छोटा चबूतरा उनके भिस्ती का है (वह युद्धोद्धुत वीरों को पानी पिलाते रहने में मारा गया था) (५) उन सब के सामने एक अति विशाल अच्छा चबूतरा और है जिस पर दो छत्री बनने वाली थीं और उनके दासे-खंभे-सीढियाँ छज्जे-और चूना की भट्टी आदि तैयार होगए थे किंतु वे बनी नहीं (६) उनसे

उत्तर में सामरथा के सरदार उदैसिंह जी (७) तकोताँकागढ़ के राव उमेद-सिंहजी (८) कासली के ठाकुर उमेद-सिंहजी और (९) महार के रावजी के चरणचिन्ह या चबूतरे हैं। (१०) उनके सामने पूर्व में एक बहुत बड़ा चबूतरा और है जो जटिल झाड़ियों से ढँका हुआ होने के कारण दीखता नहीं है। उनके सिवा छोटे बड़े और भी कई गुमटी-चबूतरे या समाधि मंदिर हैं। वे सब उक्त युद्ध में मरे हुए जयपुर राज्य के हितचिंतकों के हैं और सं० १८२५-२६ के बने हुए हैं। उनके समीप में खड़ा होने से आज भी उस युद्ध की भीषणता आँखों के सामने आजाती है और उससे दर्शक के शरीर में यातो कायरता की कँपकँपी लग जाती है या वीरता की उत्तेजना भर जाती है। वहाँ के अधिवासियों का कहना है कि माँवडे के मैदान में पैदा हुए तीतर बड़े लड़ाकू होते हैं और विदेश में उनका मुंह मांगा मूल्य मिलता है। उनका यह भी कहना है कि इस मैदान में कई बार रात के समय अगणित मनुष्यों के हाका करने जैसा बड़ा होहल्ला हुआ करता है और वह किसी अदृश्य जगह में जाकर रुक जाता है। ऐसे भीषण युद्ध में भरती होने के लिए बूँदी के तत्कालीन युवराज अजीतसिंहजी भी जयपुर आए थे किंतु "बूँदी का इतिहास" (पृ० १२६) के लेखानुसार महाराज माधवसिंहजी ने उनको सिर्फ ९ वर्ष की अवस्था होने से उनको युद्ध भूमि में नहीं जाने दिया और आमोद प्रमोद के साथ अपने समीप में ही रख लिया।

(३५) "माधवसिंहजी" (प्रथम)

(१२) का जन्म संवत् १७८४ में हुआ था। बचपन में यह अपने मामा के पास उदयपुर रहे थे इनको राजोचित सम्मान से संयुक्त रखने के लिए महाराणा उदयपुर ने रामपुरा का परगना दिया था। 'टाड़राजस्थान' से उसके प्रमाण पत्र की नकल लेकर अगले पृष्ठ पर इसलिए प्रकाशित की है कि उसका परिलेख बड़ी अवस्था के राज कुमार की प्रत्यक्ष उपस्थिति में लिख-गयासा मालूम होता है और मिती उनकी शैशवावस्था की है संभव है यह उनके निकट भविष्य में बढ़ने वाली वीरता एवं उज्वल भविष्य के विचार से लिखा गया है। इनके जीवन में राजपूताने की परिस्थिति का अभूत

॥ श्रीरामजयतिः ॥

श्रीगणेशप्रसीदतु- श्रीएकलिंगप्रसीदतु

स ह

महाराजाधिराज महाराणा आदेश करते हैं। मेरे भानजे कुमार मधुसिंह को रामपुरा प्रदान किया, अतएव एक हज़ार अश्वारोही और दो हज़ार पैदल सेना सहित तुम वार्षिक छः मास तक राजकार्य में नियुक्त रहोगे और किसी समय विदेश जाने की आवश्यकता होने पर तीन हज़ार अश्वारोही और तीन हज़ार पैदल सेना सहित तुम को युद्ध-क्षेत्र में उपस्थित रहना होगा।

उक्त रामपुरा में जब तक महिमवर राणा का प्रभुत्व विस्तृत रहेगा तब तक तुमको इस अधिकार से हीन होने का कोई भय नहीं है।

संवत् १७८५ चैत्र शु. ७ मंगल | पंचोली रायचन्द महतामल्लदास.

द० म० मदीयभागिनेयमधुसिंह समीपेषु

पूर्व परिवर्तन; रणथम्भोर का अद्वितीय लाभ; भाई की अपमृत्यु और जाटराज का पराजय आदि कई एक घटनाऐं बड़ी महत्व सम्पन्न हुई थीं। उनके सिवा जिस समय माधवसिंहजी ने मृतप्राय ईश्वरीसिंहजी के अंतिम दर्शन किए उस समय उन्होंने भाई की असामयिक अपमृत्यु होने में अपने आपको अपराधी मान कर प्रायश्चित स्वरूप बड़ा ही पश्चात्ताप किया। उस समय उनके नेत्रों से झरने के समान जल बह चला था और वह बहुत देर तक चित्रित प्रतिमा के समान सुस्थिर खड़े रहे थे। बाद में राज्यासन ग्रहण किए पीछे प्रजाहित के अनेकों काम किए और जाट युद्ध के थोड़े ही दिन पीछे संवत् १८२४ की समाप्ति के पहिले परलोक पधार गए। वह शरीर के बड़े हृष्ट पुष्ट बलिष्ट और सुन्दर थे-उनके भेष भूषा आदि का ठाट बाट भारत के अंतिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज चौहान के समान था। जयपुर के विश्व विख्यात "हवामहल" (जिनमें वायु के संचार की कई हज़ार खिड़की हैं और उनके यथा योग्य खुली रखने से मनमानी हवा आने के सिवा अनेक प्रकार की वाद्यध्वनि अपनी आप निकलती हैं) उन्होंने ही बनवाए थे। उनके सिवा मोतीडूँगरी पर और साँगानेर में किले बनवाए। माधवबिलास महल और नक्कारखाना बनवाया। उनके दो राणी और तीन पुत्र थे। उनमें रघुवीरसिंह जी मरगए थे और पृथ्वीसिंहजी तथा प्रतापसिंहजी यथाक्रम राजा हुए थे।

(१३) "अधिकार लाभ" (पृ० १८) में लिखा है कि 'महाराज माधवसिंहजी (प्रथम) ने प्राणांत होने के पहिले अपने बड़े पुत्र पृथ्वीसिंहजी को तथा छोटे पुत्र प्रतापसिंहजी को बुला कर चौमूँ के ठाकुरां रतनसिंहजी तथा सामोद के रावल सुलतानसिंहजी की गोदी में बिठा दिए और सूचित किया कि 'इनको इसी प्रकार गोदी में रखना' उस समय पृथ्वीसिंहजी सिर्फ ५ वर्ष के थे और प्रतापसिंहजी उनसे भी छोटे (३ वर्ष के) थे अतः महाराज की मृत्यु होने पर पृथ्वीसिंहजी के राज्याभिषेक के सम्पूर्ण शिष्टाचार रतनसिंह जी ने सम्पन्न किए। और राज तिलक का दरबार दीवानखाने में हुआ। "वीरविनोद" (पृ० ७९) में लिखा है कि 'पृथ्वीसिंहजी की अवस्था बहुत छोटी थी इस कारण जनानी ड्योढी का हुक्म सर्व मान्य होरहा था और राजकाजकी सद्व्यवस्था बदल गई थी।' इस संबन्ध में "टाडराजस्थान" (पृ. ६१०) में यह सूचित किया है कि 'विधवा महाराणी चूण्डावतजी ने सामन्त मण्डल की अनिच्छा होने पर भी शासन व्यवस्था को बदल दिया और फीरोजखाँ जैसे निकृष्ट मनुष्यों को प्रधान बना दिया तब अधिकांश सरदार असन्तुष्ट हो कर अपने अधिकृत देशों में चले गए और दुर्दिन उपस्थित कर गए।

(१४) वंशावली से विदित होता है कि संवत १८२७ में महाराज पृथ्वीसिंहजी का प्रथम विवाह हुआ था। बरात बीकानेर गई थी "वीर विनोद" (पृ. ८०) से सूचित होता है कि बीकानेर में बरातियों का आतिथ्य सत्कार अभूत पूर्व किया गया था। (और पानी की जगह घी; अन्नादि की जगह मेवे और मिठाइयां; तथा रुपए पैसे की जगह मुहरें और रत्न काम में लिए थे।) इस प्रकार की सरबरांह में लाखों रुपए खर्च हुए। "वंशावली" (ग) से विदित होता है कि 'एक बार पृथ्वीसिंहजी सामन्तों से नाराज होकर सुदर्शनगढ़ (नाहरगढ़) में चलेगये थे और रतनसिंहजी के समझाने पर वापस आये थे।' संवत् १८३१ में अलवर के अधीश्वर प्रतापरावजी नरूका ने ईर्षा बढ़ाने की इच्छा से जयपुर के बसवा कस्बे में बखेड़ा खड़ा किया था तब महाराज पृथ्वीसिंहजी ने नंदराम के द्वारा खास रुक्का भेजकर रतनसिंह जी को चौमूँ से

बुलवाए और प्रतापराव के बखेड़े दूर करवाए। "अधिकार लाभ" (पृ. १६) में लिखा है कि 'महाराज पृथ्वीसिंहजी के जमाने में जयपुर की शासन व्यवस्था बदल जाने से झिलाय के भक्तावरसिंहजी तथा माधवगढ़ के राजसिंहजी के परस्पर तलवार चली थी। उसके बाबत संवत् १८३१ के पत्र में लखधीरसिंह जी ने रतनसिंहजी को लिखा था कि- 'कल्ह "जलेबी चौक" (जयपुर के राजद्वार के एक प्रांगण) में भक्तावर ने राजसिंह को तलवार से मार डाला अतः अब हमारे रक्षक आप ही हैं।' इसपर रतनसिंहजी ने लखधीर को धीरज दिया और यथा समय सहायता की।'

(३६) "पृथ्वीसिंहजी"

(१५) संवत् १८१९ के माघ बदी १४ को उत्पन्न हुए थे पांच वर्ष की अवस्था में जयपुर राज्य का सिंहासन प्राप्त किया था। सातवें वर्ष में उनका विवाह हुआ बहुत दिनों तक राजमाता के समीप रहे और पन्द्रह वर्ष की अवस्था में ही परलोक पधार गये। वह तीतर कबूतर और बाज आदि के बड़े अनुरागी थे उनको हरेक अवसर में अपने समीप रखते थे। उनका बहुत ही छोटी अवस्था में वैकुंठवास हुआ था। उनके तीन राणी थीं और दो पुत्र हुए थे किंतु वे जीवित नहीं रहे तब महाराज के पुत्र हीन अवस्था में परलोक पधार जाने से उनके छोटे भाई प्रतापसिंहजी राजा हुए।

(१६) "नाथवंशप्रकाश" (पद्य २४५ से २५३) में लिखा है कि 'पृथ्वीसिंहजी के पीछे प्रतापसिंहजी जयपुर के राजा हुए। उनकी अवस्था सुकुमार थी और निसर्ग शत्रु प्रताप रावजी नरूका जयपुर राज्य की हानि कर रहे थे। उनकी दुर्नीति को दूर करने के प्रयोजन से प्रतापसिंहजी ने उनको अपने पास बुलवाए किन्तु वह आये नहीं। समीप आना तो अलग रहा उलटे जयपुर राज्य में कई जगह अपने थाने बिठा दिये और बसवा प्रदेश को लूट लिया। इस प्रकार उनको सर्वथा अपने विपरीत देखकर महाराज प्रतापसिंहजी ने चौमूँ से रतनसिंहजी को बुलवाया और राज की फौजें साथ देकर बसवा के लिए सम्मान सहित विदा किया। पुराने कागजों से आभसित होता है कि यह ३ वर्ष तक प्रधान मंत्री भी रहे थे

"वीरविनोद(पृ०१४४)में लिखा है कि 'संवत् १८३६ में रावतों, नाथावतों, तथा दौलतराम जी हलदिया आदि की सलाह से जयपुर के महाराज प्रतापसिंहजी ने प्रतापराव पर चढ़ाई की थी और वसवा में जाकर डेरे किए थे। "पुराने कागज" (नं० ३७) से सूचित होता है कि 'उस समय की सेनाओं का सँचालन रतनसिंहजी के आदेशानुसार हुआ था और वह लगभग दो महीने तक वसवे में रहे थे।' उसी अवसर में एक दिन प्रतापराव ने ५०० सवार साथ लेकर रात के समय रतनसिंहादि को घेर लिया। खौफ या ग़फ़लत के सबब से लश्कर वालों में से किसी ने उनको नहीं रोका उन्होंने वहाँ जाते ही जयपुर महाराज के खेमे के दरवाजे पर जो पखाल का भैंसा खड़ा था उसे मार गिराया और फिर वहां से चलकर नाथावत सरदारों (चौमूँ के ठाकुरां रतनसिंहजी) के डेरे पर कई आदमियों को कत्ल किया। अंत में राजगढ़ की तरफ लौट आए। उस वक्त जयपुर की सेना ने उनका पीछा किया। उसमें प्रतापराव के और रतनसिंहादि के परस्पर भारी लड़ाई हुई दोनों ओरके सैंकड़ों आदमी मारे गए। रात का समय था नींद थकावट या विजयाभिलाषा आदि से जयपुर की फौजों को यह पता ही नहीं रहा कि अमुक आदमी अपना है या पराया; इस प्रकार की वेशोधी के वक्त में उनको एक लाश मिली जो हूबहू प्रतापरावजी नरूका जैसी थी। उन्होंने उससे शत्रु को मरा हुआ मान कर महाराज प्रतापसिंह जी को खबर दी और आज्ञा आने पर दाह कर्म किया। पीछे पता लगा कि वह लाश नरूकाजी की नहीं थी साँवतसिंह निर्वाण की थी। अस्तु।

(३६) "प्रतापसिंहजी"

(१७) संवत १८२१ में उत्पन्न हुए थे। संवत् १८३६ के वैशाख बदी ४ को उनका राज्याभिषेक हुआ था तीन वर्ष की अवस्था में उनके पिता माधवसिंहजी परलोक पधार गये थे और भाई (पृथ्वीसिंहजी) के राजत्व काल में कार्य पटु होने का अवसर नहीं मिला था अतः राजा होते ही कुचक्रियों के क्लेश से सामना करना पड़ा और ऐसे ही अवसर में बोहरा

राजा 'कुशालीरामजी' * ने फीरोज़ का प्रभुत्व लुप्त करके अपना महत्व फैलाया। महाराज प्रतापसिंहजी विद्यारसिक विद्वान राजा थे। 'अमृतसागर' (प्रतापसागर) 'शतकत्रयमंजरी, और 'व्रजनिधि ग्रन्थावली' आदि कई ग्रन्थ बनाए थे जिन से सर्वसाधारण तक का हित हुआ है, हो रहा है, या आगे तक होता रहैगा।

(१८) ऐसे ही राजाओं की सेवा में रहकर नरश्रेष्ठ रतनसिंहजी ने अपना जीवन बिताया था और शत्रुओं के परास्त करने में सदैव विजयी रहे थे। संघी रायचंन्दजी (जो चौमूँ के परंपरागत सेवक थे) ने अपने "आत्म परिचय" में प्रकाशित किया है कि-'रतनसिंहजी की पूर्वोक्त चढ़ाई संवत् १८३९ के आसोज में हुई थी।' संघी रायचन्दजी उस युद्ध में स्वयं शामिल थे। जिस समय महाराज प्रतापसिंहजी की ओर से ठाकुराँ रतनसिंह जी ने तथा कुशालीराम जी ने राजगढ़ पर आक्रमण किया। उस समय उनकी फौजों के अधिकांश आदमियों ने गाँव को लूट लिया था और खेतियों को

* "कुशालीरामजी" जयपुर के समीप नाँगल के निवासी थे। वहाँ उनके महल मकान और हाथियों के ठाण अब भी हैं। उन्होंने माँवडे के मैदान में विजयी होने वाले जाट को अचानक हराया था। फीरोज के फैले हुए प्रभुत्व को लुप्त किया था। जयपुर के अंग को उपांग बनाकर अलवर राज्य स्थापन किया था। वह जयपुर राज्य के मन्त्री भी रहे थे और राजगढ़ की लड़ाई में जयपुर और अलवर के आपस में सन्धि भी करवाई थी। बड़े विलक्षण आदमी थे। अधिकांश लोग उनको जैसा बोहरा के पोता बतलाते हैं परन्तु वह पोता नहीं थे जाति भाई थे।

* !"जैसा बोहरा" कुलदीपक, महाधनी थे। लोगों का कहना है कि 'वह जहां पेशाब करते वहीं धन निकलता था' संभव है उनका धन जमीन में ज़्यादा था वह चाहते तबही निकाल लेते थे उन्होंने जयपुर जैसा एक और शहर बसाने का सूत्रपात किया था और कई एक रस्ते मुहल्ले-या गली बन भी गए थे जिसमें अब श्री माधोपुर बसा है। परन्तु वह आरम्भ ही में अधूरा रह गया। उसके सिवा कई एक कुए बावड़ी और कुण्ड आदि भी बनवाए थे। उनके (१) बाबा भैंवाजी (२) बाप लखमीदासजी (३) बेटा रामसिंहजी (४) पोता रामधन जी (५) पड़ पोता हरदत्त जी और खुद छः भाई थे। ईश्वर की विलक्षण लीला है उनके पिता महा निर्धन और वह महाधनी हुए। "पुराने कागज" (नं. ५)

बरबाद कर दी थी। अंत में बोहरा कुशालीरामजी ने दोनों के परस्पर संधि करवादी और महाराज का विजय कर के वापिस आगए।' खेद है कि संवत १८३९ की काती बुदी १ को रास्ते में ही चौमूँ के अधीश्वर ठाकुर रतनसिंहजी का चौसा के पास पड़ासोली के डेरे में परलोकवास होगया।

(१९) रतनसिंह जी का केवल एक विवाह हुआ था। आपकी धर्म पत्नी पदम कुँवरि (चौहानजी) बावली के सरदार गोपालसिंहजी की पुत्री थे। वह अपने धर्म कर्म और ठाकुर सेवा में रत रहते थे। उन दिनों चौमूँ जानराय जी के जूने मन्दिर के महंतों के पास जटाधारी खाकी साधुओं की बड़ी भारी जमात थी। बहुत से घोड़े घोड़ी और गाय भी रहती थीं। महंतजी की सवारी में तो साधुमण्डली साथ जाती ही थी किंतु अवसर आए शत्रुसंहार के लिए वह शस्त्रास्त्रों से सजकर रतनसिंहजी के साथ भी जाते थे और शस्त्रप्रहारादि से शत्रुओं का निःशंक संहार करते थे। उनके भोजनादि का सब प्रबन्ध चौहानी जी की ओर से था और विशेष के लिए कामधेनु (कावड़) से संग्रहीत किया जाता था। साधुओं के सुयोग अथवा सहयोग से जानरायजी के मंदिर में प्रतिदिन सायं प्रातः शंख भेरी, रणसींगे, झालर, घन्टा और घड़ावड़ आदि की ध्वनि होती थी और आरती की समाप्ती में उच्चस्वर से जयघोष किया जाता था।

(२०) उक्त चौहानीजी के उदर से कोई सन्तान उत्पन्न नहीं हुई तब सामोद से रावल सुलतानसिंहजी के पुत्र रणजीतसिंहजी गोद आए और रतनसिंह जी के उत्तराधिकारी हुए। उनके 'स्मृति चिन्हों' में मुख्य तो 'माँवडे का मैदान' है जिसमें जाटराज को हराकर जयपुर राज्य विजयी हुआ और उस देश के अगणित भोमियाँ क्षत्रियों ने रतनसिंहादि का सम्मान किया उसके अतिरिक्त उन्होंने (र) रतनपुरागाँव (त) रतननिवासबाग और (न) रत्ननिवास महल बनवाया था। उक्त महल की अपूर्व शोभा का यथा योग्य वर्णन 'गणेश कवि ने' अपने बनाए हुए "चौमूँ विलास" (जो सं. १९०४ में लेखबद्ध किया गया था) के पद्य ११६ से १२८ तक के विविध छंदों में किया है। उसके आरम्भ का छंद अवश्य ही अपनी और महल की विशेषताओं को प्रगट करता है। कवि

ने "रत्ननिवास" के मिस से भूमंडल के अनोखे ७ महलों का परिचय दिया है। लिखा है कि 'माया को बनायो' मुनि गेह देवहूती काज, एक रच्यो 'वज्रपुर' मय अति वेश को। एक रच्यो 'इन्द्रपुर' सुधर्मा विश्वकर्मा आय, एकरच्यो 'पुष्पकविमान' अकलेश को॥ एकरच्यो 'इन्द्रप्रस्थ' जामें जलथल को भेद, एक योग मयाजू के भवनविशेष को।' पुराणन में लिखे सुने धाम अनिमेषन के शाक्षात् "रत्नमहल" देख्यो रतनेश को ॥ १ ॥ इस प्रकार आरंभ करके उसके प्रत्येक अंग उपांगों का अच्छा वर्णन किया है।

बारहवाँ अध्याय

॥ श्रीः ॥

नाथावतों का इतिहास।

रणजीतसिंहजी

(१३)

(१) संवत १८३९ के कार्तिक कृष्णा १ को ठाकुर रतनसिंहजी का अपुत्रावस्था में देहांत होजाने से उनके भतीजे रणजीतसिंहजी सामोद से गोद आए और चौमूँ के मालिक हुए। रावल सुलतानसिंहजी रतनसिंहजी के सहोदर (छोटे भाई) थे और वह भी चौमूँ से सामोद गोद गए थे। रणजीतसिंहजी उन्हीं के द्वितीय पुत्र थे। उनके 'टीके का दस्तूर' संवत् १८३९ के कार्तिक कृष्णा १३ रविवार को हुआ था। "पुराने कागज़" (नं० ३७८) आदि से सूचित होता है कि 'उस अवसर में कई जगह के राजा, रईस और सरदार लोगों ने तथा किसनपुरा, उदेपुरा, जसूंता, महसवास, देवाकावास, तिघरथा, लोरवाड़ा, जैतपुरा, जोधपुरा, करणीपुरा, मा[illegible]पुरा, टांकरड़ा और रैणवाल आदि के सहगामी सरदारों ने मुहर, रुपये और दुशाले (या शिरोपाव) यथा योग्य भेजे थे और अपनी ओर से सहानुभूति दिखलायी थी। उनके अतिरिक्त स्थानीय सन्त महन्तों गद्दीधर स्वामियों राज पूज्य पण्डितों और आदरणीय अधिवासियों की ओर से दुपट्टे, प्रसाद आदि दिए गए थे।

(२) टीका के समय रणजीतसिंह जी की अवस्था सिर्फ दश वर्ष सात महीने की थी। उनका जन्म संवत

जन्म लग्न

मं वृ ११ | ९ | सू १२ | १० | ८ | बु के १ | ७ रा | चं २ शु | ४ | ६ | ३ | ५ श

१८२९ के चैत्र शुक्ल ३ चंद्रवार को इष्ट ५१।४८ सूर्य ११।२७।२४।४६ और लग्न ६।२० में हुआ था। शुरू शासन में शाह वंश के वही हरकिशन और

चैनराम तथा मीणावंश के वही वारेखां और सरदारा आदि अनुभवी आदमी थे जिन्होंने मोहनसिंहादि का जमाना देखा था। उन लोगों के बर्ताव में यह विशेषता थी कि वे ठिकाने को हर तरह से सरसब्ज रखने की कोशिश करते थे और अपने मालिक की हर हालत में भली चाहते थे। ऐसे मनुष्यों के सहयोग से रणजीतसिंहजी ने सिर्फ सोलह वर्ष के शासनकाल में ही अपने को; रण में रणजीत, धैर्य में रणधीर, व्यवहार में प्रणवीर और वर्ताव में मेधावान् प्रकट किया और विशेषकर वीरता में उनका नाम सर्वाधिक विख्यात हुआ।

(३) संसार में आकर कुछ काम करजाने के लिए ईश्वर ने उनको सिर्फ २६ वर्ष दिए थे उनमें भी बचपन के १०॥ वर्ष सामोद के आमोद प्रमोद में और शेष १५॥ वर्ष जयपुर राज की सेवा में व्यतीत हुए थे । परन्तु जिस प्रकार मेधावी मनुष्य विचार पूर्वक खर्च करके थोड़े धन से भी कई काम कर लेते हैं। उसी प्रकार रणजीत सिंहजी ने अपनी आयु के इने-गिने वर्षों में भी कईएक काम ऐसे किए जो उनकी छोटी और थोड़ी उम्र के खयाल से बहुत ही ज़्यादा थे। अन्य कामों की अपेक्षा उन्होंने "तूँगा" और "जहाज" की लड़ाइयों में विशेष वीरता दिखलाई थी यहां उन दोनों लड़ाइयों का पूरा वर्णन इसलिए दिया है कि प्राचीनकाल के "क्षत्रियकुमार" छोटी अवस्था में भी कैसे बड़े बड़े काम करते थे। तूँगा की लड़ाई संवत् १८४६ में जयपुर के समीप और जहाज की लड़ाई संवत् १८५४ में फतहपुर (शेखावाटी) के समीप हुई थी।

(४) उक्त लड़ाइयों के सम्बन्ध में यह सन्देह करने की बिलकुल ज़रूरत नहीं कि इतनी छोटी अवस्था के बालक भारी लड़ाइयों में किस प्रकार विजयी हुए होंगे। क्योंकि उन दिनों का जल-वायु ही ऐसा था जिसके प्रभाव से अकेले क्षत्री ही नहीं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी बलवान् बुद्धिमान् या विचारशील होते थे और बचपन से ही अपने जातीय गुणों का प्रभाव दिखलाने लग जाते थे। उन दिनों के शिक्षण, रक्षण या पालन पोषण भी कुछ ऐसे थे जिनसे छोटी अवस्था में ही आत्माभिमान के भाव प्रकट हो

आते थे। प्रतीति के लिए यहां ऐसे बालकों का परिचय दिया जाता है जिन्होंने अपनी छोटी अवस्था में ही अनेकों काम आश्चर्यजनक किए थे।

(५) महाराष्ट्रवीर नाना जी के (१) पांच वर्ष के पुत्र ने शस्त्र धारण कर लिए थे (२) बूँदी के राजकुमार अजीतसिंहजी ने ९ वर्ष की अवस्था में जाटराज के युद्ध में शामिल होने का साहस किया था (३) आमेर के कुँवर जगतसिंह जी ने ११ वर्ष की अवस्था में अकबर के परम शत्रुओं को परास्त किए थे। (४) अपने नाम के देश और वंश को विख्यात करने वाले शेखाजी ने १३ वर्ष की अवस्था में आमेर की फौजों से ६ बार युद्ध किया था। (५) राठोड़ कुल भूषण जयमल ने १५ वर्ष की अवस्था में दो दो देशों के शत्रुओं से सामना किया था। (६) सामोद के रावल रामसिंहजी ने १६ वर्ष की अवस्था में अपनी वीरता का ककोड़ में चूड़ांत परिचय दिया था। (७) महाराष्ट्र देश के विशेष विधाता महाराज शिवाजी ने १७ वर्ष की अवस्था में अपने बाहुबल को विख्यात करके बड़े बड़े २३ किले कब्जे में करलिये थे। और (८) सिक्ख रणजीतसिंहजी ने १९ वर्ष की अवस्था में लाहोर पर अधिकार किया था। इतिहासों में ऐसी कथा बहुत भरी हुई हैं। इनका असली कारण यह था कि उन बालकों को वीर और साहसी बनाने में उनकी माताएं अधिक ध्यान देती थीं। 'टाड़राजस्थान' (पृ. ७९६) में लिखा है कि 'वीर प्रसवा माताएँ अपने छोटे छोटे बालकों को पालने या पलंग आदि पर पोढ़ाने या लिटाने के बदले बड़ी बड़ी ढालों" में शयन कराती थीं। खेलने के लिए कोमल और मनोरंजक खिलौनों के बदले छोटे आकार के कटारे तलवारें या धनुष बाण आदि देती थीं और रोते हुए बालकों को राजी करने के लिए सिंह-सर्प या भूतादि के भय बतला कर चुप करने के बदले उनको वीर साहसी शूरमा या रणजीत बनाने की क्रिया करती थीं और उनके कान में यह कहती रहती थीं कि 'तू पिता के शत्रुओं को मारने वाला, देश की सेवा करने वाला और प्रजाको पुत्रादि के समान पालने वाला हो।' यही कारण था कि उन दिनों के वीर कुमार छोटी अवस्था में ही शासक या सेनापति होकर भी पूरी सफलता प्राप्त करते थे

और हर काम में अपनी योग्यता दिखलाते थे। अस्तु

(६) रणजीतसिंहजी उपरोक्त प्रकार के घालकों में एक थे। उन्होंने तूँगा आदि के युद्धों में ऐसी ही वीरता दिखलाई थी। सिर्फ १५ वर्ष की अवस्था में वह कछवाही सेना के सहगामी हुए थे और देश के अधिकांश भागों से पिण्डारियों आदि को भगाया था। उन दिनों लुटेरे मराठे अनेक तरह के उत्पात करते थे उनसे राजपूताना के छोटे बड़े सभी राजा नाराज थे और दिनरात के उत्पातों से अकुला गए थे। मराठे उस जमाने के न तो बादशाह थे और न शासक। वह केवल धाड़े डकेती लूटखोस या धाड़े के बाद शाह बन जाने वाले "पिण्डारियों"* जैसे थे। उनको रिशवत नजराने या खर्चा देकर कोई भी अपने हिमायती बना सकते थे और उनकी डकैत सेना से कोई भी किसी पर चढ़ाई कर सकते थे। यदि उनके उत्पातों से कोई बचना चाहते तो अपनी आय का चतुर्थांश उनको देते थे। ऐसे लोगों को मारकूट कर निकाल देने के लिए रजवाड़ों की इच्छा तो थी मगर 'बिल्ली के गले में घंटी कौन बाँधे' की कहावत उनके सिर पर भी सवार हो रही थी। जयपुर नरेश महाराज प्रतापसिंहजी ने इस बात का विचार किया और अपनी सम्पूर्ण सेनाओं को सजाई जिसमें राजावत, धीरावत, खंगारोत, बलभद्रोत, शेखावत और नाथावत आदि सब

* "पिंडारी" (हिं. वि. को. ५०८) में लिखा है कि पिण्डारी कर्णाटक देश की एक ओछी जाति है। मदिरा बहुत पीती है। उसमें सर्वप्रथम 'पुनाथा' पिण्डारी प्रकट हुआ था। "भारत वर्ष का इतिहास" (पृ. ४३४) के लेखानुसार पिण्डारियों की कोई जाति ही नहीं। पिण्ड नाम की शराब पीने से पिण्डारी कहलाए हैं। ये लोग पहले शिवाजी की सेना में रह कर लूट खोस से अपना निर्वाह करते थे। इनमें कुछ पठान भी थे। पीछे कई जातियों के बदमाश शामिल होगए। उन दिनों अँग्रेजी सरकार की उदासीनता रहने से ये लोग ज्यादा बढ़ गए। पिण्डारी बड़े निर्दयी थे। वे दो दो तीन तीन हजार के झुण्डों में टट्टुओं पर चढ़े हुए ४०-५० मील तक चले जाते और मनुष्यों को मार कर माल लूट लेजाते थे। पूर्वोक्त मराठे-तथा टोंक के मीरखां अथवा रजाबहादुर या इस देश के लुटेरे (धाड़ैती) आदि भी एक प्रकार के पिण्डारी ही थे।

श्रेणियों के शूरवीर शामिल थे। इस प्रयोग में सहयोग देने के लिए रणजीतसिंहजी के पास राज्य की ओर से जो आज्ञापत्र गया उसका आशय "पुराने कागज़"(नं० ४०२) के अनुसार यह था कि "सिद्धि श्री सर्वोपमा जोग राज्य श्री रणजीतसिंहजी जोग्य (महाराज के मुख्य आज्ञावर्ती) दौलतराम* केनि मुजरो बंच्या अठा का समाचार भला छै राज्य का सदा भला चाहिजे। अप्रंचि (महाराज को) खास रुक्को राज्य ने इनायत (प्राप्त) हुयो भेज्यो सो सिताब (बहुतजल्दी) चढि आवोला ढील न करोला। मिती फागण वुदी १४ सं०१८४५"इस आज्ञापत्र के पहुँचते ही रणजीतसिंहजी ने अपने सहगामी शूरवीर सरदारों को बुलवाए और अपनी निज की सेना को एकत्र की। एतन्निमित्त उनकी ओर से जो रुक्के गए थे उनका आशय यह था कि "......थे सिताब चढि आज्यो ढील मत कीज्यो मुहूर्त दुघड्या को कढा लीज्यो और अपणा सम्पर्क का नै साथ ले आज्यो मिती चैत वुदी २ संवत् १८४५।" युद्ध संवत् १८४६ में हुआ था।

(७) मरहठों को परास्त करने के लिए महाराज प्रतापसिंहजी ने जोधपुर की सेना भी मँगाई थी इस काम के लिए दौलतराम जी हलदिया गये थे। जोधपुर के महाराज विजयसिंह जी मरहटों से स्वयं हैरान थे उनकी दबाई हुई अजमेर को वह वापिस लेना चाहते थे अतः महाराज प्रतापसिंह जी को इस काम में प्रवृत्त देख कर उन्होंने अपनी फौजें भेजने में संकोच नहीं किया बल्कि अधिकाधिक सहानुभूति दिखलाई। उसी अवसर में महादु (माधव) जी सेंधिया राजपूताने से धन दौलत लेकर स्वदेश जा रहे थे। जयपुर महाराज प्रतापसिंह जी की फौजों ने उनको "तूँगा" *

* "दौलतराम" हलदिया वंश के वीर वैश्य थे। नन्दरामजी हलदिया इन्हीं के भाई थे। इन लोगों का उन दिनों जयपुर राज्य में भारी प्रभाव था। मन्त्री- मुसाहिब- मुनसरिम और राज दूत आदि सभी प्रकार के पदों पर प्रतिष्ठित रह कर राज्य का काम किया था। टाडराजस्थान तथा खण्डेला का इतिहास आदि ग्रन्थों में इनका अच्छा बुरा सब तरह का परिचय प्राप्त होता है और जयपुर में इस समय भी इनकी प्रसिद्धि है।

* 'तूँगा' जयपुर से अग्निकोण में लालसोट के पास लगभग ३० मील है।

स्थान में जा कर घेर लिया। टाड साहब के लेखानुसार 'संधिया की फौजों के संचालक फरांसीसी अंग्रेज़ डिवाइन जोधपुर की सेना के ठाकुर सुजानसिंहजी रीयां (और जयपुर की फौजों के चमूँपति रणजीतसिंह जी) थे। और "भारतीय चरितांबुधि" (पृ० २५०) के अनुसार जोधपुर की सेना के संचालक जवानदासजी और जयपुर की सेना के रणजीतसिंहजी थे। कोई भी हों अपने संचालकों के संकेत पा कर सभी सैनिकों ने शेल, बर्छे, बंदूकें और ढाल तलवार आदि से सुसज्जित होकर प्रत्येक ने 'तूँगाकी रणभूमि' में रण भेरी बजवादी और प्रस्तुत युद्ध का पर्वत्लान प्रारंभ कर दिया। "राजपूताने का इतिहास" (पृ. ९८६) में लिखा है कि 'उदयपुर के तत्कालीनप्रधान सोमचन्दजी ने घरेलू झगड़े मिटाकर जयपुर और जोधपुर के राज्यों के स्वामियों को मरहटों के विरुद्ध ऐसे भड़काए कि महाराणा (भीम) के मत में वे भी शामिल होगये।' "टाड राजस्थान" खं० दू० (पृ० ६१४) में लिखा है कि 'आमेर के महाराज प्रतापसिंहजी ने फीरोज़खाँ आदि के प्रभुत्व को लुप्त कर राज्य की संपूर्ण विपत्तियां छिन्न भिन्न कीं और मरहठों को परास्त करने में परायण हुए थे। मरहटों के नेता माधवराव संधिया और उनके शिक्षित सेनापति डिवाइन ने तूँगा में मारवाड़ और ढूँढाड़ की सेना पर प्रबल बेग से आक्रमण किया जिससे प्रचण्ड समरानल प्रज्वलित होगया। "कछवाहा इतिहास" (पृ० ४२) के अनुसार माधवराव संधिया की २० हज़ार फौजों पर जयपुर की कछवाही सेना के घोर आक्रमण होने से मरहटे घबड़ा गए अपनी सहायता में नव्वाब हमदानी की फौजें भी जुट रहीं थीं। अतः राठोड़ों और कछवाहों ने खूब लोहा बजाया। उसी अवसर में हाथी पर बैठकर आया हुआ हमदानी तोप के गोले से मारा गया "इतिहास राजस्थान" (पृ० १८५) में लिखा है कि 'राठोड़ों और कछवाहों ने डिवाइन का तोपखाना लूट लिया और मरहटों को भगा दिया। "हिन्दी विश्व कोश" (पृ० ४९९) के लेखानुसार तूँगा में भीषण युद्ध हुआ था। मरहटे भाग गए थे। उनका सामान लूट लिया था। (जयपुर के रणजीत जैसे साहसी शूरवीरों ने अपने बलवीर्य

की पराकाष्ठा प्रकट की थी।) और महाराज प्रतापसिंहजी ने २० या २४ लाख रुपए लगाकर अपने विजय का "विजयोत्सव" सम्पन्न किया था। जिससे उनका सब जगह नाम होगया था। (रामनाथजी रत्नू ने इस लड़ाई का संवत् १८४३ और पं० श्रीओझा जी ने १८४४ लिखा है किन्तु उपरोक्त हस्त लिखित दोनों आज्ञा पत्रों में संवत १८४५ होने से ४६ हो जाता है।) अस्तु। "नाथवंश प्रकाश" (पद्य २५२ से २५८) के अनुसार यह युद्ध तीन दिन तक हुआ था। रणजीतसिंहजी ने अपने खड्ग प्रहार से अगणित मरहटों का संहार किया था। ऐसे ही साहसी शूर सामन्तों के प्रहार को न सहकर मरहटे भागगए थे। लगभग दो हज़ार योद्धा हताहत हुए थे। अंत में आमेर के महाराज की विजय करके अपने सुस्वेत विजयध्वज को फहराने वाले रणजीत—रणजीत कर जयपुर आ गए और रण में जीती हुई २० तोपें तथा अन्यान्य प्रकार की बहुत भारी युद्ध सामग्री महाराज के भेंट की। उससे महाराज बहुत प्रसन्न हुए और रणजीतसिंहजी के निवेदन के अनुसार धनार्थियों को धन अनाश्रितों को आश्रय और विजयी मनुष्यों को पुरस्कार प्रदान किया जिसमें २० लाख व्यय हुए। लूट के संबंध में टाडसाहब ने अपने इतिहास में प्रगट किया है कि सेंधिया के पास जो कुछ धन दौलत था वह सब लूट लिया गया था और उसे जयपुर और जोधपुर ने हर्ष के साथ बाँट लिया थां।' तूँगा युद्ध के सम्बध में "अधिकार लाभ" (पृ. २०) में यह विशेष सूचित किया है कि 'ग्वालियर के तत्कालीन पटैल महादजी सेंधिया अपने यहाँ के राज कुमार को जयपुर दिलाने की मंशाह से साथ लाया था इस काम में प्रताप-रावजी का भी सहयोग था परंतु ठाकुर रणजीतसिंह जी वा रावल सुलतानसिंहजी ने उसे हराकर भगा दिया और उसकासामान लुटवा दिया यह सब ठीक हुआ; किन्तु मारवाड़ के अनाड़ी कवि की " ऊपर करबा आविया, घूमर सज घोड़ाँह। ऊभ-लती आमेर नै, राखी राठोडाँह॥ १" की कविता अच्छी नहीं हुई। उससे कछवाहों के मन मारे गये और पाटण के भावी युद्ध में उसी कविता के याद आ जाने से वे हतोत्साह होगए। अस्तु

(८) पुराने काग़ज़ों से मालूम होता है कि आज से लग भग ५७ वर्ष पहिले तक चौमूँ के वर्तमान 'कोटवाली चबूतरा' के सिवा चौमूँ के बाहर (१) व्रजराज की तीवारी में (२) टाँकरड़ा के रास्ते में (३) शाहजी की धर्मशाला में और (४) देवीजी की डूँगरी में भी कोटवाली चबूतरे या मापा के मकान अथवा राहधारी के स्थान थे जिनमें चौमूँ ठाकुर साहिबों के बटवाल (या मापा के आदमी) रहते थे और कइयों में भूखे प्यासे राहगीरों को चना चबीना या भोजनादि देते थे। उनके सिवा (१) जयपुर चाँदपोल झोटवाड़ा के रास्ते में और घाटदरवाजा बाहर भी "मार्गरक्षा" (राहगीरों के जान माल की चौकसी) के बहतान के दाम लेनेवाले रहते थे। उनमें देवीजी की डूँगरी के आदमी पर सामोद के तत्कालीन लेट (गत) रावल इन्द्रसिंह जी नाराज हो गए और जयपुर राज्य की मार्फत उसे उठवा देने का प्रयत्न किया किन्तु अनुसंधान से अनुभव हुआ कि चौमूँ वालों ने कोई नया बखेड़ा खड़ा नहीं किया है। इस सम्बन्ध में "पुराने कागज़" (नं० ४०४) में जैपुर के तत्कालीन प्रधान हलदिया बांधव तथा रोड़ारामजी खवास ने अपने माँगशिर बदी ९ सं० १८४६ के रुक्के में रावल इन्द्रसिंहजी को लिखा है कि "आँनरिदेवी-गांव भोपावास के कांकड़ चौमूँ ठिकाने के आदमी क़दीम से रहते हैं और आते जाते माल पर अपनी मुनासिब कौड़ी लेते हैं। कोई नया बखेड़ा खड़ा नहीं किया है। अतः तुम परभारे झगड़े मत करो।" इस आज्ञापत्र के आजाने से इन्द्रसिंहजी शांत होगए और कोई बखेड़ा नहीं किया।

(९) इसी प्रकार एकबार शाहपुरा के रावजी ने खोहरा हरपाल का बास की चौमूँ की ज़मीन में अनधिकार हस्तक्षेप कर लिया था उनके लिए सरकार की ओर से सालग्रामजी जोशी के संरक्षण में २५ सवार भेजे गए थे। कहा जाता है कि-सालग्रामजी ने वहाँ जाते ही ब्राह्मणोचित माला के बदले क्षत्रियोचित तलवार से काम लिया और वहाँ वालों से बड़ी वीरता के साथ युद्ध करके किले पर कब्जा कर लिया। इस काररवाई से रणजीतसिंह जी उन पर बहुत प्रसन्न हुए और उनको खोहरा हरपाल का बास का स्थायी

हाकिम नियत कर दिया। पुराने कागज़ों से प्रतीत होता है कि आरंभ में यह चार पैसे प्रतिदिन के पेटिए पर डीलों में भरती हुए थे और फिर चौमूँ, खोहरा, मामटोरी और हलदिया बाँधवों के समीप में यथाक्रम बढ़ते हुए ऊँचे पदों पर काम किया था। अन्त में किशनगढ़ के खारड़े में एक असमर्थ परिवार की रक्षा करने के लिए पिराडारियों से युद्ध किया और उसी में मारे गए।

(१०) पूर्वोक्त तूँगा युद्ध में यद्यपि महादजी सेंधिया भाग गए थे और उनके माल असबाब को लोगों ने लूट लिया था तथापि मारवाड़ का विध्वंश करने की वासना उनके मन में बसी हुई थी और वह उसके लिए अवसर देख रहे थे। तूँगा युद्ध के ४ वर्ष बाद उन्होंने मारवाड़ पर फिर चढ़ाई की तब उनके आने की खबर सुन कर जोधपुर नरेश ने जयपुर महाराज को सहायता के लिए कहलाया। वीर श्रेष्ठ प्रतापसिंहजी ने सेनादल भिजवा दिए और सब प्रकार का आश्वासन दिया उसबार मरहठों का आगमन तौंरावाटी की तरफ़ से हुआ था इस कारण रास्ते में (जीलो) पाटण के पास ही युद्ध छिड़ गया और भीषण लड़ाई शुरू होगई। मरहटों को हराने के लिए राठोड़ों और कछवाहों ने बहुत प्रयाश किया परन्तु वे पैंड भर पीछे नहीं हटे। अन्त में राठोड़ हार गए और मरहटे जीत गए। "टाडराजस्थान" (पृ.६१६) और "इतिहास राजस्थान" (पृ.१८६) में इस विषय में जो कुछ लिखा है उसका आशय यह है कि 'जिस अनाड़ी कवि की, कुरुचि पैदा करने वाली कविता से कछवाहे कुण्ठित हुए थे उसी कविता का अपमान जनक आशय याद आजाने से कछवाहों ने पाटण के युद्ध में मरहटों को हटाने का ज़्यादा हठ नहीं किया यदि करते तो मरहटे अवश्य मारे जाते। "टाडराजस्थान" खण्ड २ अध्याय ३० (पृ० ९५८) में यह ठीक लिखा है कि 'राठोड़ वीर स्वदेश में रहकर जैसी वीरता दिखाते हैं वैसी विदेश में नहीं दिखा सकते, यही कारण है कि पाटण में उनका बड़ा भारी अपमान हुआ वहाँ की औरतों ने उनका सामान छीन लिया और उनको अस्त्रशस्त्रादि से हीन बना दिया। उनकी बुरी हालत को देख कर किसी कवि ने कहा था कि "घोड़ा, जोड़ा, पागड़ा, मोटाबोल, मरोड़।

पाटण में पधरा गए; रकम्पाँच राठोड़। १॥ अस्तु। "पुराने कागज़" (नं. ४३१) से सूचित होता है कि 'पाटण युद्ध के अवसर में रणजीतसिंहजी की चौमूँ उपस्थिति न होने से वह काँघलोतजी ३ महीने तक जयपुर रहे थे और उनके वापिस आने पर चौमूँ आए थे।

(११) 'शार्टहिस्ट्री") पृ० १४) में लिखा है कि 'रणजीतसिंह जी ने संवत् १८५० में कालख की लड़ाई में फतह पाई थी।' लड़ाई क्यों ? और किसके साथ हुई?' इसका पता "कछवाहा इतिहास" (पृ. ४२) से लगता है। उसमें लिखा है कि 'संवत् १८५० में सीकर के रावराजा (देवीसिंहजी) ने जयपुर की सींव दबाने का लालच किया था किन्तु जयपुर की फौजों ने उसको सफल नहीं होने दिया। दोनों ओर की फौजों में कालख के समीप खूब लड़ाई हुई उसमें बोहरा कुशालीरामजी जैसे प्रधान भी मारे गए थे। अंत में रणजीतसिंह जी की फौजों ने सीकर की सेना का संहार किया और विजयी हुए। "टाडराजस्थान" (पृ० ७२३) में लिखा है कि 'सीकर देश के अधिपति देवीसिंहजी ने उस समय आशातीत बाहुबल प्रकट किया था और खोह लोहागर तथा रैवासा जैसे २५ नगरों को मय किलों के कब्जे में कर लिए थे।' अन्त में रणजीतसिंह जी की दुर्गरक्षक सेना ने सीकर वालों के साथ युद्ध किया और उनको वापस भिजवाए। "पुराने कागज" (नं. ५४) से सूचित होता है कि 'संवत् १८५० के आषाढ से काती तक कालख के किले में रणजीतसिंह जी के सैनिक रहे थे और सीकर वालों की लड़ाई में शामिल होने से मारे गए उनके नुक्ते आदि रणजीतसिंहजी ने ही किए थे।' उनकी इस प्रकार की उदारता-वीरता और गम्भीरता आदि गुणों से मोहित होकर तूँगा युद्ध वाले डिवाइन उनसे मिलने आए तब रणतजीसिंहजी ने उनका प्रेमपूर्व स्वागत सम्मान किया और खिलअत पहिनाकर विदा किए। संवत १८५१ के पौष सुदी ३ के "पुराने कागज' से मालूम हुआ है कि 'रणजीतसिंहजी ने डिवाइन साहब के खिलअत में सातसौ का घोड़ा, २७७) का शिरोपाव, ११०) का दुशाला, ९४) का पारचा और ५०) का करकशाही कुरता दिया था और यथोचित सत्कार करके उनको वापस भेजे थे।

(१२) "नाथावतों का संक्षिप्त-इतिहास" (पृ० ८) में लिखा है कि 'संवत् १८५४ में रणजीतसिंह जो ने "जार्जटामस"* के युद्ध में विजय पाया था।' उस युद्ध का विस्तृत वर्णन 'वीरविनोद' आदि अनेक इतिहासों में देखने में आता है। ऐसा भारी युद्ध क्यों हुआ था? इसका असली कारण अपमानजनक व्यवहार था। "टाडराजस्थान" (पृ०७१५) से ३० तक जो कुछ लिखा है उसका आशय यह है कि 'उन दिनों जयपुर के 'मन्त्रिमण्डल' का स्वरूप बदल गया था। हठ से अभिमान से या स्वार्थपरायणता आदि से प्रयोजन की पूर्ति करते थे। उनमें कभी नन्दरामजी हलदिया खंडेले जाते तो, रोडारामजी कासली पधारते थे और कभी खंडेला के बाघसिंहजी कारावास करते तो सिद्धानी मुखिया मन माने उत्पात मचाते थे। इस प्रकार की अव्यवस्थित अवस्था के दिनों में भी प्रधान लोगों ने उस देश का मामला उगाहने में उत्तेजना फैलाने का तरीका काम में लिया जिस का फल यह हुआ कि वह युद्ध के रूप में परिणत होगया। और वैर की आग को भड़का दिया। एक बार शेखावतों के तथा जयपुर राज्य के

* "जार्जटामस" का जन्म आयर्लेंड (विलायत) में संवत् १८१३ में हुआ था। वह संवत् १८३८ में एक अंग्रेजी जहाज से भारत (मद्रास) आया था। ५ वर्ष कर्णाटक में रहा। उसने कुछ दिन तक हैदराबाद के नव्वाब की नौकरी भी की। संवत् १८४४ में वह समरू बेगम की सेवा के लिए दिल्ली चला गया। वहाँ उसकी बहुत प्रसिद्धि हुई। संवत् १८५२ में पंजाब में उसने अपने नामका 'जार्जगढ़' बनवाया। बाद में हाँसी-हिसार-तथा सिरसा आदि में अधिकार किया। पीछे संवत् १८५६ (नहीं ५३-५४) में वामनराव से मिलकर फतहपुर में लड़ाई की। अंत में डिवाइन के नायब पेरिन से परास्त होकर वह कलकत्ते जाता हुआ रास्ते में संवत् १८५९ में मर गया।' यह अंश "राजपूताने का इतिहास" (पृ० ९९९) तथा "खेतड़ी का इतिहास" (पृ. ५०) से लिया है उनमें फतहपुर की लड़ाई का संवत १८५६-५८ ठीक नहीं है। उस अवसर के लिखित कागजों में 'माज की लड़ाई' का संवत् १८५४ दिया है।
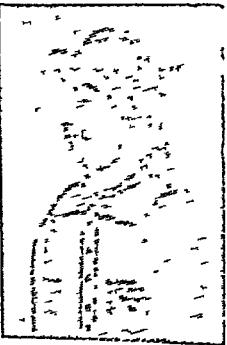
बीच में यह निश्चय हुआ था कि शेखावत सामन्त अपना मामला स्वतः देते रहैं तब तक उनके यहां सेना (सवार) न भेजे जांय, किंतु सम्बत १८५२-५३ का मामला उगाहने में खवास रोड़ारामजी, व्यास आशाराम जी और बोहरा दीनारामजी ने उपरोक्त निश्चय को मिटा दिया और कई सामन्तों के १०-१०;२०-२० ही नहीं सौ सौ सवार भेज दिये और प्रत्येक सवार की ॥) से २) प्रतिदिन तक की तलब करवादी इस प्रकार से कर वसूल करने का एक नाम तो "दस्तग" है और दूसरा है "धौंस"। ऐसी धौंस का उपयोग शांति में उद्वेग करने वाला या सदा के सद्भाव में बैर बढ़ाने वाला होता है और परिणाम में युद्ध होने से उसकी समाप्ति होती है।

(१३) दीनाराम की उपरोक्त धौंस से शेखावाटी के सामन्त नाराज होगये और उनको सूचित किया कि 'वह दस्तग सहित झूँझणू चले जांय' किंतु प्रधानों ने उस सूचना को सुनी अनसुनी बनादी और परस्पर का विरोध बढ़ा लिया। उन दिनों युद्धादि के सम्बन्ध में मिस्टर जार्ज टामस की इस देश में अधिक प्रसिद्धि होरही थी। इस लिए शेखावतों ने उसको अपने पक्ष में मिलाया और लड़ाई शुरू की। दूसरे इतिहासों में यह लिखा है कि 'धनार्थी जार्ज खुद उनमें मिल गया था' कुछ भी हो उसकी प्रयोजन सिद्धि के लिए सिद्धानियों के मत को मानने वाले बाघसिंहजी ने भी सीकर सिंघाणा और फतहपुर में दण्डस्वरूप अर्थ संग्रह किया था और जार्ज की सहायता पाकर जयपुर की सेनाओं से लड़ने में प्रवृत हुए थे। लड़ाई का मैदान फतहपुर के समीप था और जयपुर की फौजों के संचालक खवासजी तथा शेखावतों के जार्ज टामस थे। "वीर विनोद" (पृ० ८१) में लिखा है कि 'जार्ज के पास १२ सौ सिपाहियों की ३ पैदल पल्टन, नोसौ सिपाहियों की अश्वारोही सेना, ३ सौ रुहेले, दोसौ हरियाना के और १४ तोप थीं। इनके सिवा बाघसिंहादि के आदमी और जयपुर राज्य की ४० हज़ार फौजें अलग थीं। इस प्रकार के आयोजन सामने आजाने पर खवास रोड़ारामजी के आदेश से लड़ाई शुरू हुई। "टाडराजस्थान (पृ० ७३३) में लिखा है कि ज़ार्ज-टामस की शिक्षित सेना के सामने

जयपुर की अनभ्यस्त सेना ने आरंभ ही में अपनी कमजोरी दिखलादी और थोड़ी ही देर में खेत छोड़ कर अलग चली गई। यह देख कर "खण्डेला का इतिहास" (पृ० १४०) के अनुसार जार्ज टामस ने जयपुर के तोपखाने अपने अधिकार में कर लिए और अनायास ही विजयी होगया। इस विषय में संवत् १८६२ के छपे हुए "जार्ज टामस के सफरनामे" में (पृ० १५१ से १७७) तक जो कुछ लिखा है उसका सारांश यहां इसलिए प्राकशित किया गया है कि उससे "झाज की लड़ाई" के एक दो रहस्य और मालूम हो सकते हैं।

(१४) सफरनामे में लिखा है कि जार्ज टामस को वामनराव ने जयपुर से सामना न करने की सलाह दी थी किन्तु साहसी टामस ठहरा नहीं। उसने अपनी फौजें फतहपुर के पास भिजवादीं। परन्तु वहां के बाशिंदों ने फौजों के जाते ही कुए बन्द कर दिए इस कारण जार्ज नाराज हुआ और जयपुर के साथ युद्ध किया। आरम्भ में टामस ने फतहपुर से १० लाख लेकर उसे छोड़ देने का वचन दिया था किन्तु ठहराव तै नहीं हुआ तब उसे लूट लिया। उसी अवसर में उसने जयपुर से विशेष फौजें आने की अवाई सुनी तब अपने कैंप के चारों ओर झाड़ के काटों की गुथी हुई बाँड़ खड़ी करवादी और खाई भी खुदवाई परन्तु उसके पूरी करने में पहाड़ जैसे टीबे काबू में नहीं आए। इस प्रकार की मजबूती हो जाने पर भी जयपुर की फौजें झिजकी नहीं उन्होंने जार्जटामस पर हमला किया और चारों ओर से घेर लिया अन्त में जयपुर की फौजें हार गईं। दूसरे दिन उन लोगों ने ७ हज़ार सैनिकों का एक बड़ा गिरोह (संघ) बनाया और जार्ज की फौजों पर आक्रमण किया। यह देख कर जार्ज की ८ सौ सैनिकों की दो पल्टन तथा दोसौ रुहेले और १० तोप खड़ी करके उनका सामना किया। उस समय जैपुर की फौजें एक टीबे के ढलाव में चली गई थीं इस कारण उनकी फिर हार होगई। इसी प्रकार तीसरी बार जयपुर के एक बड़े संघ ने खड्ग युद्ध किया जिसके असह्य आक्रमण से जार्ज टामस और उसकी फौजें छक गए और अगल बगल हो कर अलग हो गए। इस प्रकार "झाज की लड़ाई" का पहला दृश्य समाप्त हुआ

और दूसरे के लिए रणोत्साही रणजीत सिंहजी का आदर पूर्वक आवाहन किया।

(१५) "मुक्तक संग्रह" से मालूम होता है कि 'रोड़ाराम के हिचक जाने, जंगी सामान के परहस्त होजाने और जयपुर राज्य के अपवाद की संभावना बन जाने से चौमूँ के अधीश्वर ठाकुराँ रणजीतसिंहजी को बड़ा क्षोभ हुआ। उन्होंने बलवान सिंह के समान भारी क्रोध करके जार्ज के सेना रूप झाज को डुबो देने के आयोजन उपस्थित किए। उनमें सर्व प्रथम अपने भरोसे के आत्मीय नाथावतों या सजातीय कछवाहों का बहुत दूर में फैला हुआ एक ऐसा "वृत्तव्यूह" (गोला या घेरा) बनाया। जिसके अन्दर आए हुए शत्रुओं के सैनिक आदि अनायास वापिस न जासकें और अपने सैनिक शत्रुओं पर इच्छानुसार आक्रमण करते रहें। इसके सिवा शेष सैनिकों को यथोचित स्थानों में नियोजित कर दिया और उनको प्रत्येक अवसर में सचेत रहने के लिए भली भाँति समझा दिया'। इस प्रकार सब तरह से सावधान होजाने के बाद स्वयं रणजीतसिंहजी ने 'झाज की लड़ाई' का दूसरा दृश्य आरंभ किया। जार्ज ने अपने सफरनामे में खुदने ज़ाहिर किया है कि उसके पास ३ सेर से ज़्यादा के गोले छोड़ने वाली तोपें नहीं थीं और रणजीतसिंहजी ने १२ सेर तक के गोले छोड़ने वाली तोपें मंगवा ली थीं। इसलिए उन तोपों को जंजीरों से जकड़ कर उक्त घेरे के चारों ओर जहाँ तहाँ खड़ी करवादी और एक से एक अड़े हुए हाथी उपस्थित करादिए। उसके बाद उन्होंने अपने रणोत्साही सैनिकों को युद्धारंभ की आज्ञा दी। फिर क्या था 'वृत्तव्यूह' (पूर्वोक्त गोले) का एक अंश खुल गया और जार्ज (या झाज) के सेना समुद्र के चारों ओर अकस्मात् फिर गया। बात की बात में बाण-बर्छे-बंदूकें और तलवारों की बौछार तथा तोप के गोलों की मार से जार्ज के सैनिक हक्का बक्का भूल गए और सैनिक शक्ति रूपी झाज के पेंदे में छेद होगए। रणजीतसिंहजी के साहसी वीरों की सामर्थ्य के सामने जहाज के शिक्षित सैनिकों ने सहसा शिर झुका लिया और जयपुर राज्य का संपूर्ण जंगी सामान सुरक्षित रूप में वापिस सौंप दिया। जार्जटामस,

रणजीतसिंहजी की इस जीत से अवश्य ही दुखी हुआ और 'किंकर्तव्य विमूढ' की दशा में आगे चला गया।

(१६) "खण्डेला का इतिहास" (पृ० १४०) में लिखा है कि 'प्रधान सेनापति की भीरुता (डरपोकपना) से जयपुर राज्य के अपवाद का कारण उपस्थित हुआ था उसको मिटाने में चौमूँ के अधीश्वर ठाकुराँ रणजीत सिंहजी ने अपने पुरुषार्थ की पराकाष्ठा दिखलाई और जार्ज टामसपर असहनीय आक्रमण कर के उसे परास्त किया।' इसी प्रकार "टाडराजस्थान" (पृ० ७३३) "वीरविनोद" (पृ० ८२) "सीकर का इतिहास" (पृ० १०६) "खेतड़ी का इतिहास" (पृ० ५१) और "नाथवंश प्रकाश" (पद्य २६०) आदि में लिखा है कि 'जयपुर दरबार के प्रधान सामंत रणजीतसिंहजी ने जार्ज टामस को हराने में अपने पुरुषार्थ की पराकाष्ठा दिखलायी थी और उसके अगणित सैनिक भयभीत होकर स्वयं भाग गए थे।' यद्यपि उस समय रणजीतसिंहजी बहुत घायल हुए थे और उनके साथ के दो सरदार (१) बहादुरसिंहजी खंगारोत तथा (२) पहाड़ सिंहजी खंगारोत मारे भी गए थे तथापि विजय श्री रणजीतसिंहजी को ही प्राप्त हुई थी। चंद कवि ने लिखा है कि "शहर फतेहपुर में फते-करी नंद रतनेश। भाज गयो आपाण तजि, लखि रणजीत नरेश ॥ १ ॥" "छंद सुधाधर" (काव्य) में यह लिखा है कि "फैल्यो फ़ैलं भूमी पर, फिरंगी जंगी भाज को- मीर उमराव, राव राणा रतना जरे। केते देश देशनते, पेसले अशंक मन- सुनत चढ़ाए नाथ कुल मणि साणरे ॥ काटि डारे बैरिन के, झुण्ड किरबाननते, नाच्यो मुंडमाली रुंड डोलत किते रुरे। भूप रणजीत, रणजीत कर- बढ़ाई कीर्ति, विजय के थंभ घनराज सें घने धुरे ॥२॥" इसी भाँति वारैठ बालावक्तजी ने भी लिखा है कि "फौजें जो फतेपुर में, मन में फ़तेह धरि लायो अंग्रेज ले तैयारी तोपखाना की। सुन के अराबी शोर, शंके उमराव और- नाथावत वीर लाज राखी वीर बाना की ॥ कीन्हों घमसान साज, भाग्यो खेत प्राण छोड़ि- ऐसे बलवान ते छारन घरांनाकी। समर सम, सागर में फेट रणजीत की से फूटगी जहाज की जहाज मसतानां की ॥३॥" इस प्रकार अनेकों कवियों

और विद्वानों ने रणजीतसिंहजी की गुणगरिमा का गहरा बखान किया था और उनको नाथावत कुल का कमल दिवाकर बतलाया था। अस्तु। उपरोक्त ग्रन्थों में "झाज की लड़ाई" का सं० किसी में १८५५ किसी में ५६ और किसी में ५८ दिया है परंतु "पुराने कागज" (नं० ४३४-३५) से प्रमाणित होता है कि उस का उपक्रम संवत १८५३ में आरंभ होगया था। और तन्निमित्त संवत १८५३ के फागण में रणजीतसिंहजी के सैनिक फतहपुर चले गए थे। अतः संवत १८५४ के आरंभ में "झाज की लड़ाई" हुई थी। उस अवसर के खर्च के वही खातों से सूचित होता है कि 'जहाज की लड़ाई में जीत कर आए हुए आदमियों को रणजीतसिंहजी ने बखसीस, इनाम, कड़े, शिरोपाव, मुहरें और जागीर दी थीं और जो लोग युद्ध में मर गए उनके नुकते करवाए थे।'

(१८) लड़ाई से आए पीछे रणजीतसिंहजी का चौमूँ निवास रहा, वह बहुत घायल होकर आए थे इस लिए कई दिनों तक उनकी मलहमपट्टी होती रही। चौमूँ में जो "कोथल्या बैद" वर्तमान् में विद्यमान हैं इनके पूर्वज प्राचीन काल में युद्धाभिलाषी योद्धाओं के साथ रहते थे और बहते हुए खून के बड़े बड़े घावों में टाँके लगाना खून के वेग को रोकना असह्य पीड़ा को घटाना और सम्पूर्ण घायलों को अच्छे करना आदि सभी काम करते थे। ऐसे वैद्य या हकीम उन दिनों भारत में सर्वत्र थे। और अस्त्र चिकित्सा के चमत्कार पूर्ण कामों में अपनी योग्यता दिखलाते थे। ऐसे ही वैद्य फतहपुर की लड़ाई में मौजूद रहे थे और घायल वीरों का इलाज किया था। अस्तु रणजीतसिंह जी अवश्य ही रणजीत थे। उन्होंने तूँगा, कालख और फतहपुर आदि के युद्धों में अपना पुरुषार्थ प्रकट करके केवल जयपुर राज्य की ही सेवा नहीं की थी किंतु उत्पाती मरहटों के अहोरात्र के सन्ताप मिटा कर उन्होंने राजपूताने भर को सुख की नींद सोने का बहुत कुछ अवसर दिया था और अपना तथा अपने मालिकों का यश फैलाया था।

(१९) "पुराने कागज" (नं० ३९१ और ९३) से सूचित होता है कि 'रणजीतसिंहजी का विवाह चोरू

में काँधलोतों के यहाँ संवत् १८४२ के माघ शुक्ल बसन्त पञ्चमी को हुआ था। उन दिनों अपने खून के पसीने से पैदा किए हुए धन को अमीर गरीब सब लोग विवाहादि के अवसर में बड़े विचार के साथ नियमित मात्रा में वर्तते थे। प्रतीति के लिए यहाँ रणजीतसिंहजी के विवाह का व्यय विदित किया है। पहिले उनकी सगाई हुई थी। उसमें गणेश १) नवग्रह ॥~)॥ मंदिर ~) माता २) दिक्पाल ~)॥ दिहाड़ी १) राजकलश १) आरता १) बिदागी ४४) और त्याग में १४) दिए थे। और विवाह में बरी ४०६॥) पड़ला २) बींद की पोशाक २०३) आतिशबाजी २३) बान २७।~) गायन वादन ४) फेरे १३२) और भोजन तथा त्याग आदि में १६६४।) खर्च हुए थे।

(२०) रणजीतसिंहजी का एक ही विवाह हुआ था। उनकी (१) स्त्री आनन्दकुँवरि (काँधलोत जी) चोरू के ठाकुर हरीसिंहजी की पुत्री थे। उनके उदर से दो पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें (१) कृष्णसिंह जी को पिता का उत्तराधिकार प्राप्त हुआ और (२) चतुरशाल जी अपुत्र मरे। रणजीतसिंह जी के "स्मृति चिन्हों में" उनकी धर्म पत्नी काँधलोत जी ने चौमूँ चौपड़ के पास संवत् १८५४ में रघुनाथजी का मंदिर बनवाया था और जार्ज युद्ध का विजय फल प्राप्त किया था। वह मंदिर उन दिनों चौमूँ जानरायजी के महन्तों को दिया गया था। उस समय महन्त चरणदासजी थे वह हरीदासजी के शिष्य और कृष्णदासजी के प्रशिष्य थे। चौमूँ के सरदार उनके दैवी चमत्कारों अथवा देवोपासनाओं से संतुष्ट थे और उन का आदर करते थे।

तेरहवां अध्याय

शुभम्

॥ श्री ॥

नाथावतों का इतिहास ।

कृष्णसिंहजी

(१४)

(१) जहाज की लड़ाई में जीतकर आए पीछे रणजीतसिंजी ज्यादा दिन जीवित नहीं रहे। दूसरे वर्ष में ही देहान्त हो गया तब उनके ज्येष्ठ पुत्र कृष्णसिंहजी चौमूँ के मालिक हुए। कृष्णसिंहजी का जन्म संवत १८५०

जन्म लग्न

रा बु ६ · गुरु २ · स मं ४ · चं ७ · श १ · बृ ८ · १० · १२ · ९ · ११ के
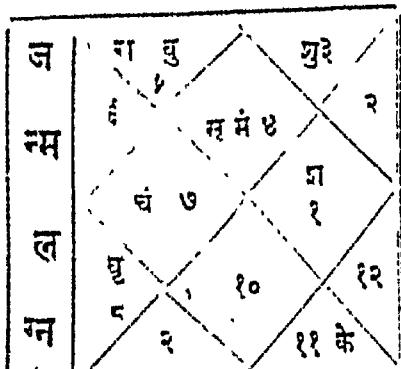
के श्रावण शुक्ल पंचमी चन्द्रवार को इष्ट ५६।५५ सूर्य ३।२६।२७।२० और लग्न ३।२६।६।२४ में हुआ था। जन्म से ५ ही वर्ष पीछे संवत १८५५ की शरदपूर्न्यू को उनके मस्तक पर धवल मुकुट धारण हो गया। कृष्णसिंहजी अब तक कुमार थे अब ठाकुर हो गए। ईश्वर की लीला है, छब्बीस वर्ष के रणजीतसिंहजी भरी जवानी में परलोक पधारे और खेल कूद से राजी होने वाले नन्हे से कृष्णसिंहजी ने ठिकाने का कार्य-भार ग्रहण किया। उस समय भी राजाओं का दक्षिणी मराठों या पिण्डारियों से पिण्ड नहीं छूटा था, जहाँ तहाँ लूटखोस या धींगा धींगी हो ही रही थी, ऐसे अवसर में चौमूँ की प्रजा ने बालक मालिक को राजी रखने और सुयोग्य बनाने का पूरा ध्यान रखा और सब काम बड़ी दक्षता से करवाए।

(२) उन दिनों चौमूँ के चारों वर्ण बुद्धिमान मनुष्यों से खाली नहीं थे। (१) ब्राह्मणों में पु० चैनरामजी, जगन्नाथजी, व्यास बलदेवजी, जोसी सालग्रामजी और मिश्र भागीरथजी थे (२) क्षत्रियों में दूलहसिंहजी, हिन्दूसिंहजी और दलेलसिंह जी थे (३) वैश्यों में महता सवाईरामजी, शाह कासीरामजी और अमरचन्दजी थे (४)

शूद्रों में रणजीता और जैसा थे और वर्णेतर पठानों में दाऊदखाँ, बहादुरखाँ और साहिबखाँ आदि थे। अतः चारों ओर लूट खोस होती रहने पर भी भद्र पुरुषों का निरीक्षण रहने से कृष्णसिंहजी को किसी प्रकार की बाधा चिन्ता या कष्टकर कामों का अनुभव नहीं हुआ। उस अवस्था के एक चित्र से आभासित होता है कि 'सुकुमार कृष्णसिंहजी जिस समय घोड़े पर बैठ कर बाहर जाते उस समय सैकड़ों नर नारी उनको देखने के लिये उद्ग्रीव रहते थे और अनेकों शूरसामन्त शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर उनके आगे पीछे या बाएँ दाहिने दल बाँध कर कायदे से चलते थे। कृष्णसिंहजी के बाल्य-काल (९ वर्ष की अवस्था) में ही संवत् १८६० के श्रावण में जयपुर नरेश महाराजा प्रतापसिंहजी का स्वर्ग वास हो गया था। उनके १० रानियां थीं। (१) राठोड़ जी रतलाम के निर्भयसिंहजी की (२) जादूणजी राजा माणकपालजी की (३) राणावत जी भीमसिंहजी की (४) तँवरजी पाटण के संपतसिंहजी की (५) भटियाणीजी अखैसिंहजी की (६) झालीजी हलवद के जसवंतसिंहकी (इन के जगतसिंहजी हुए थे।) (७) गौड़ जी स्योपुर के किशोरदास जी की (८) हाड़ीजी बूँदी के दीपसिंहजी की (९) खींचणजी राजा बलवंतसिंह की और (१०) महाराणी राठौड़ जी जोधपुर के थे। "वंशावली" (ग) में लिखा है कि इनके साथ महाराज प्रतापसिंहजी का विवाह सम्वत् १८५७ में पुष्कर में हुआ था। वहां से जयपुर आते समय रास्ते में चौमूँ के समीप टाँट्यावास आए तब इनका बांडी नदी के किनारे पर आकैड़ा में डेरा हुआ था। ४ दिन ठहरे थे चौमूँ की ओर से स्वागत हुआ था। "जयपुर हिस्ट्री" (अ० ४) में लिखा है कि 'वर्तमान गोविंददेवजी के पीछे के फँवारे प्रतापसिंह जी ने बनवाए थे और उनकी माता ने संवत १८६० में एक दासी को बड़ारण की पदवी दी थी।

(३) महाराज प्रतापसिंहजी के स्वर्गवासी होने पर जगतसिंहजी ने जयपुर का राज्य ग्रहण किया। परंपरागत कायदा के अनुसार कृष्णसिंहजी ने उनके राजतिलक का दस्तूर सम्पन्न किया और सब प्रकार के सलाह मशवरे या नजर आदि में शामिल रहे। उस समय उनकी सवारी बड़े ठाट बाट की लगी थी। जगतसिंह जी के राजा होने के बाद जयपुर राज्य

में 'कृष्णाकुमारी' का एक नया बखेड़ा खड़ा हुआ था। मेवाड़ के महाराणा भीमसिंहजी की बेटी 'कृष्णाकुँवरि' रूपवान थी। उसकी पहली सगाई जोधपुर के भीमसिंहजी से हुई थी। दैवात् वह मर गए, तब सगाई बदल गई उनके मरने पर मानसिंहजी जोधपुर के राजा हुए। पोहकरण के ठाकुर सवाईसिंहजी को यह अभीष्ट नहीं था। उन्होंने बखेड़ा खड़ा करने के लिए कृष्णा के निमित्त जगतसिंहजी को उत्साहित किया तब उन्होंने उस के लिए सिंजारा भिजवा दिया। उसी अवसर में सवाईसिंहजी ने मानसिंह जी को भी भड़का दिया, तब उन्होंने सिंजारे की रोक के लिए फौजें भेज दीं यह सुनकर जगतसिंह जी बड़े क्रोधित हुए। उन्होंने जोधपुर पर सत्वर चढ़ाई की। उसमें सभी शूर-सामन्त शामिल हुए और अपना अपना पुरुषार्थ प्रकट किया।

(४) इतिहासों में लिखा है कि 'उस समय जयपुर की सेनाओं के अमिट आरोपणों से मारवाड़ियों के जमघटे इतने हलके होगए थे कि स्वयं जोधपुर महाराज अपने अभेद्य दुर्ग के आश्रय में अलक्षित होगए और जयपुर की सेनाओं ने जोधपुर के चारों ओर घेरा लगा दिया। "चंद" ने लिखा है कि "गढ़ी कोट की ओट को; मान प्रभा बलमन्द। लूटि जोधपुर को लियो कृष्णा सुभाग बलन्द ॥१॥" उधर महाराणा भीमसिंहजी ने इस प्रकार के अनेकों हत्यांकाण्ड न होने देने के विचार से 'कृष्णाकुँवरि को ज़हर दिलवा दिया और अनेकों के बदले एक की हत्या करवादी।' श्री ओझाजी ने अपने इतिहास के (पृ० १००८) में लिखा है कि 'उसे तीन बार ज़हर दिया गया था मगर मृत्यु न हुई (वह उलटी में निकल गया) तब अमल खिलाकर प्राणांत किया गया।' उसी अवसर में टोंक के नव्वाब मीरखाँ पठाण (जो मीरू के नामसे विख्यात था) ने जयपुर पर चढ़ाई की। महाराज जगतसिंहजी जोधपुर विजय में व्यग्र थे और उनके सभी सहगामी युद्ध में लिप्त थे ऐसे ही मौके में मीरखाँ ने धन संग्रह करने की कामना से जयपुर में जाकर युद्ध छेड़ दिया। "टाडराजस्थान" (पृ०६२६) में लिखा है कि 'लुटेरे मीरखाँ की दुर्नीति देख कर माजीसाहिबा राठौड़जी ने चतुर मनुष्यों

के मार्फत जगतसिंहजी के समीप सूचना भिजवाई'। "नाथवंशप्रकाश" (पद्य २७५) में लिखा है कि 'मीरखाँ के युद्ध के समय कृष्णसिंहजी का चेहरा चमकता था और शत्रुगण उस से क्षोभित होते थे।' उस युद्ध में धन जन की बहुत अधिक हानि हुई थी। "इतिहास राजस्थान" (पृ. १२२) में लिखा है कि 'उपरोक्त युद्धों में महाराज जगतसिंहजी के अगणित मनुष्यों का निरर्थक नाश हुआ था और व्यर्थ धन खोया गया था। "टाड़राजस्थान" (पृ. २६०-२) की टिप्पणी में लिखा है कि- 'संवत् १८६४ में मैं जयपुर के समीप होकर निकला था उस समय मैंने स्वयं देखा था कि जयपुर के और मीरखाँ के युद्ध में मरे हुए मनुष्यों और घोड़ों के अगणित अस्थिपंजर पड़े सड़ रहे थे और युद्ध की गत-भीषणता बतला रहे थे।

(५) उस युद्ध के ५ वर्ष पीछे कृष्णसिंहजी को एक दुस्साहसी शत्रु से युद्ध करने का मौका मिला। शत्रु का नाम था रजाबहादुर; उन दिनों मीरखाँ, मुहम्मदशाहखाँ और रजा बहादुर जैसे धूर्त बहादुर भारत में अनेक जगह उदय होरहे थे और इस देश के राजाओं के लिए मरहटों को देने के चतुर्थांश कर की पाँव में कोढ़ बन रहे थे। "पुराने कागज" (नं. ४८५) सम्वत् १८६७ के पौष माघ के पत्रों से सूचित होता है कि 'रजाबहादुर के सम्बंध में कृष्णसिंहजी के बड़े भाई रावलबैरीसालजी ने सामोद से जो कुछ सूचित किया था वह अक्षरसह सत्य था।' उन्होंने लिखा था कि 'चिरंजीव भाई कृष्णसिंहजी, रजाबहादुर का कोई विश्वास नहीं वह कहता कुछ और है और करता कुछ और है अतः सावधान रहना और होशियार आदमी इकट्ठे करना।' ऐसी अवाई (जनश्रुति) भी सुनी जाती है कि 'वह कालख से कूँच करके डहरै डेरा करेगा और फिर इधर आवेगा।' इस प्रकार एक साहसी शत्रु के सहसा आने का समाचार चारों ओर से आते रहने पर भी सोलह वर्ष के कृष्णसिंहजी सकुचाये नहीं बल्कि उसे पूर्णतया परास्त करने के लिए सिंह के समान उदग्रीव होगए और अपने सहगामी शूरवीरों को समयोचित प्रबोध कर के निःशंक बना दिये। इस प्रकार करने के थोड़े ही दिन पीछे रजाबहादुर की

फौजें चौमूँ के समीप बाँडी नदी के दक्षिणी तट पर आपहुँची और वहीं से जंगी तोपों के घनगर्जन जैसे शब्द करने लगी। पहले लिखा गया है कि 'चौमूँ का धराधार किला ढालू भूभाग में है और उसके चारों ओर सघन वृक्ष होने से वह दूर से दीखता नहीं है।' उसी को लेने के लिए रजा बहादुर ने अन्दाज लगाया था कि 'गोलावृष्टि से घबड़ाकर कृष्णसिंहजी बाहर आजायँगे और मैं अन्दर जाकर गढ़ ले लूँगा और बस्ती को बरबाद कर दूँगा।' परंतु मन के लड्डू मीठे नहीं होसके। उसने १५ दिन तक गढ़ के चारों ओर की वनी में तोपें चलाईं किंतु कोई फल नहीं हुआ। अन्त में "शार्टहिस्ट्री" (पृ. १४) के लेखानुसार गृहागत शत्रु को परास्त करने के लिए कृष्णसिंहजी ने अपनी फौजें सजवाईं और रजाबहादुर को हराकर विजयी हुए। "पुराने कागज" (नं. ४६८) से सूचित होता है कि यह युद्ध संवत १८६६ के अन्त में हुआ था और एतन्निमित्त ४०९०) विशेष कामों में खर्च हुए थे।

(६) "पुराने कागज" (नं. ४४७) के एक खाता वही से आभासित हुआ है कि 'संवत् १८६६ में पूर्वोक्त समरूफिरंगी की पत्नी 'समरूबेगम' चौमूँ आई थी। सीतानाथ की डूँगरी में डेरे किए थे। उन दिनों पीहाला दरवाजा बाहर वर्त्तमान परकोटा की जगह काँटों की बाड़ का 'झाटा' (फाटक) था जिस पर पठानों के पहरे तईनात रहते थे। बेगम के एक असहँदे कर्नेल ने उस मार्ग से शहर में घुसने का प्रयत्न किया किन्तु प्रांत रक्षक पठानों के तैयार होजाने से वह वापस चला गया। "नाथवंश प्रकाश" (पद्य २७०) में लिखा है कि समरू बेगम ने चौमूँ पर चढ़ाई की उस समय उसका कर्नेल आगे आया था उसको कृष्णसिंहजी ने ससैन्य परास्त किया और उसके साथ वालों के रुण्ड मुण्ड उड़ाकर पीछा हटा दिया।' इस घटना के थोड़े ही दिन पीछे जयपुर राज्य के प्रसिद्ध स्थान 'टोरड़ी' के भूभाग में मरहटों ने अपना अधिकार जमाना चाहा था उसको हटाने के लिए जयपुर राज्य ने कृष्णसिंह जी के संरक्षण में ३० तोप और आवश्यक फौजें भिजवाईं। उनको लेकर कृष्णसिंह जी वहाँ गए और मरहटों को सर्वथा हटा देने में अपने बढ़े हुए बल के वेग का अच्छा परिचय दिया। संवत् १८६९

के पौष बुदी १३ के एक पत्र से प्रकट हुआ है कि 'एक बार कोटा के दीवान् जालिमसिंह जी झालाने रणथम्भोर पर अधिकार करने का विचार किया था उसको कार्य रूप में परिणत करने के लिए फौजें भी भेजदी थीं। परन्तु किले वालों को कृष्णसिंह जी की पूर्ण सहायता प्राप्त रहने से उन्होंने झाला जी को हिला दिया और अन्दर नहीं आने दिया। उन दिनों इस प्रकार की छीना झपटी या उत्पात हर जगह होते रहते थे और उनको हरतरह से हटाते रहने में उन दिनों के राजा, रंक, रईश सब जाग्रत थे। ऐसे उत्पातों से अपनी प्रजा को बचाते रहने के लिये चौमूँ सामोद के सरदार अपने गाँवों में हर जगह वीर साहसी और बुद्धिमान् मनुष्यों को रखते थे और वे लोग अपने यहां की प्रतिक्षण की परिस्थिति कृष्णसिंहादि को प्रतिदिन (या आवश्यक होता तो प्रति प्रहर) सूचित करते रहते थे। इस काम के लिए स्थान स्थान में घुड़सवार सुतरसवार या डांक के आदमी भी तईनात थे। उस जमाने के पत्रों के पढ़ने से प्रकट होता है कि वास्तव में उन दिनों ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्र सब लोग निःशंक, साहसी, स्वाधीन और विश्वाश पात्र होते थे। संवत् १८६९ में चौमूँ के उपसमीपी 'पचकोढ्या' से चौमूँ के मिश्र भागीरथसिंहजी ने लिखा था कि (१) शत्रूलोग अभी सो रहे हैं (शांत हैं) अगर जागेंगे (उत्पात करेंगे) तो विश्वास रखिये हम उनको तत्काल ही नत मस्तक बनादेंगे।' (२) घोराला से पुरोहित जगन्नाथजी ने लिखा था कि 'नवाब जी की फौजें शेखावाटी में जाँयगी उनको चौमूँ के गांवों से इधर उधर टालकर निकाल देना, यहाँ की कोई चिंता मत करना, हम सब कुछ करलेंगे।' और (३) शाह दीपचन्द जी ने लिखा था कि 'ठगों की ठोकरों से आदमी हैरान हो गए हैं। इसलिए हमारा विचार है कि उन के मूँड़ कूट दिये जाँय।' अस्तु।

(७) उपरोक्त प्रकार के कारणों को हृदय में रखकर कृष्णसिंहजी ने चौमूँ की वसापत को भी बदला था। उसमें रक्षाविधान बने रहने की सुविधा को मुख्य मान कर "चौमुहाँगढ़" के 'ध्रुवपोल' (प्राचीन प्रवेशद्वार) को बदल कर पश्चिमाभिमुखी बनाया। उसके सामने और शहर के अन्दर बर्षाती नले थे

उनको भरवाए। पीहाला दरवाजा की ओर के एकमात्र बाजार को संकुचित मान कर शहर के प्रधान भागों में कई बाजार नियत किए। पीहाला दरवाजा से बावड़ी दरवाजा होते हुए शेखावाटी आदि देशों के राहगीरों की रक्षा के लिए शहर के पूर्वोत्तर प्रान्त में मीणे पठान और राजघर के क्षत्रियों को बसाए। होली दरवाजा होकर पश्चिम दिशा के गाँवों के व्यवसायी वर्ग का आवागमन अधिक मान कर उस प्रांत में नाई, धोबी, भड़भूँजे, मणियार, माली, कोली, चमार, तेली, नायक और महतरों आदि को आबाद किया। रावण दरवाजा होकर दक्षिण देश के सज्जन दुर्जन सभी लोग आते थे अतः उस जिले में न्यारे, नागोरी, सोरगर, रैबारी और लुहार आदि को स्थानापन्न किये और शहर के प्रधान खण्डों में पुरोहितों के बास, मुखमारियों के बास, खाती, सुनार और नाइयों के बास कायम करके धर्मानुष्ठादि में सुविधा मिलती रहने के विचार से सब के मध्य में 'ब्रह्मपुरी' नाम के प्रांत में तामड़ायतों को स्थान दिया। इस प्रकार वर्तमान सद्व्यवस्थ चौमूँ का स्वतः सुचारू स्वरूप होता रहने का श्रीगणेश कृष्णसिंहजी ने ही किया था और हाथियों के ठान के ध्रुवाभिमुख दरवाजे को बदल कर गणेशजी के नीचे का दरवाजा उन्होंने ही बनवाया था। इस प्रकार की सुविधा जनक अदला बदली करने के अनंतर संवत् १८६६-७४ में कृष्णसिंहजी ने चौमूँ से पश्चिम में १२ कोस पर रैणवाल के समीप के खारड़े में "कृष्णगढ़" बसाया। यह छोटा किन्तु व्यवसाय प्रसिद्ध सुन्दर शहर सिर्फ ६० बीघा के विस्तार में है इसमें बीच का बाजार चौपड़ का है उसमें धनीमानी तथा नेमीधर्मी व्यापारी व्यापार करते हैं और शहर के चारों ओर परकोटा भी है। आरंभ की अवस्था में (संवत् १८६६-७६) में वहाँ नमक के व्यापार का बाहुल्य होने से उसकी चुंगी से चौमूँ को अधिक लाभ था। अब वह व्यापार उठ गया। चौमूँ से इतनी दूर पर ऐसे शहर के आबाद करने का मुख्य कारण व्यवसाय था। इसके सिवा एक गौण कारण यह भी था कि 'संवत १८६७ में चौमूँ के समीप से काँजर जाति की एक नवयुवती वहाँ चली गई थी उसको उधर के अधिवासियों ने जबर्दस्ती रख ली और वापिस लाने

पर झगड़ा किया। अतः इस प्रकार के झगड़ा होने के खोटे अड्डों को जड़ मूल से उड़ा देने के लिए कृष्णसिंहजी ने वहाँ शहर बसा दिया और स्थायी शांति स्थपित रहने का सदा के लिए संचार कर दिया। थोड़े दिन पीछे कृष्णसिंहजी ने कृष्णगढ़ में कृष्णविहारीजी का मंदिर बनवाया। उसकी नींव संवत् १८७३ में लगाई गई और प्रतिष्ठा संवत् १८७७ के दूसरे जेठ सुदी १३ शनीवार को की गई। उसके लिए काशी-जयपुर और चौमूँ के पंडित बुलाए गए थे। प्रतिष्ठा १५ दिन में पूर्ण हुई थी। समाप्ति के अवसर में कृष्णसिंहजी स्वयं पधारे थे। साथ में कई ठिकानों के सरदार भी थे। उत्सव का समारोह अभूत पूर्व हुआ था। यथोचित सेवा पूजा होती रहने के विचार से वह मंदिर वर्तमान महन्तों के उत्तराधिकारियों को दिया गया था। वह सलेमाबाद से आकर हस्तेड़ा रहे थे पीछे उनके शिष्य प्रशिष्यादि रैणवाल में रहे और फिर कृष्णगढ़ आकर स्थायी हो गए। उसी अवसर में कृष्णसिंहजी ने अपने परंपरा के अभिवादन में भी परिवर्तन किया था और साथ ही राजमुद्रा (मुहर) के नाम को भी बदला था। पहले परस्पर मिलते समय 'जैसीताराम जी की' कहते थे उसके बदले 'जैश्रीकृष्णविहारीजी की' कहना शुरू किया और मुहर में पहले 'श्रीविष्णु' या 'श्रीसीतारामोजयति:' आदि था उसकी जगह 'श्रीकृष्णबिहारीजी सदा सहाय' बनवा दिया।

(८) संवत् १८७० में कृष्णसिंह जी का दूसरा विवाह हुआ उस समय नवागत परिणीता के साथ में एक "द्विजदम्पती" (ब्राह्मण ब्राह्मणी) भी आये थे, उनके जीवन निर्वाह के लिए कृष्णसिंहजी ने चौमूँ के तामड़े में हिस्सा दिलाने का विचार किया किन्तु ऐसा करना उनकी आत्मा ने स्वीकार नहीं किया तब उसे कृष्णगढ़ भेज दिया और वहाँ का तामड़ायत बना दिया।

(९) "पुराने कागज़" (नं. ५०५) से मालूम हुआ है कि संवत् १८७० में किला रणथंभोर से कृष्णसिंहजी के किलादार तथा उनके दुर्गरक्षक ७२ डील चौमूँ आएथे वह संवत १८७१ में वापिस गए उस समय जयपुर के तत्कालीन महाराज जगतसिंहजी ने अपने प्रधान मन्त्री मिश्र शिवनारायण जी

की मार्फत १ खास रुक्का भिजवायाथा। उसका आशय यह था कि-'दुर्गाध्यक्ष की हैसियत से चौमूँ के सरदारों की ओर के किलेदार तथा दुर्गरक्षक ७२ सैनिक सदा से रहते आ रहे हैं अतः महाराजा साहिब की आज्ञा है कि उनके सैनिकों (डीलों) को यथोचित शिष्टाचार के साथ किले में प्रवेश कराना और उनका जो कदीमी कायदा सधता आया है उसको उसी माफिक सधवा कर रसीद भेजना। मिती पोष सुदी ११ संवत १८७१।' इस आशय के खास रुक्के पर महाराज के हस्ताक्षर मन्त्री की मुहर और दफ्तर के अन्य संकेत हुए थे।

(१०) "पुराने कागज़" (नं. ५००) से सूचित हुआ है कि संवत १८७२ में कृष्णसिंहजी ने अपने कारीगरों से तोप ढलवाई थी। उनके लिए विशेष प्रकार का आयोजन किया गया था। भारत की प्राचीन परिपाटी के अनुसार धातुओं को गलाने के लिए भट्टियां बनवाई गई और उन पर नालीदार कड़ाहों में धातू गलवाए गए। तोप ढालने के लिए मोम, मिट्टी, मुलतानी, रेजी, रजकण और तार आदि के सहयोग से साँचे बनवाए गए थे। साँचे से लेकर कड़ाही तक काली मिट्टी की नाली बनवाई गई थी और उसी के द्वारा गले हुए धातू तोपों के साँचे में ढाले गए थे। चौमूँ के तोपखाने में प्राचीन काल की अनेक प्रकार की तोपहैं जिनमें एक मुँह की लम्बी नाल की, सौ मुँह की या लोह पीतल आदि की सब हैं परन्तु उनमें नवनिर्मित "कृष्णबाण" विशेष उपयोगी माने गए थे। उनके बनाने में २४ मन पीतल, १२ मन मिश्रधातु, १॥। मन जस्त, ३७ सेर सोहागा, २८ सेर मोम, १५) रुपयों का लोहा, ५) रु० की राल, २॥) का सफेदा, २।) के तार, १) की पूजा सामग्री और २ थान रेज़ी लगे थे। इस सामान में संभवतः दोनों तोपें ढाली गई थी और चौमूँ के प्रत्येक ग्रहस्थी ने प्रति घर ऽ१ पीतल और ऽ१॥ तांबा अथवा २४-२४ मोटे पैसे दिए थे।

(११) "पुराने कागज़" (नं० ४४७) में लिखा है कि संवत १८७२ में चौमूँ में फिरंगी की फौज़ आई थी, फिरंगी कौन कहां से क्यों आया था? इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता।

किन्तु उसके स्वागत आदि में सरकार के सिवा बस्ती का भी सहयोग रहा था। उसमें प्रत्येक जाति के प्रत्येक घर से गेहाधीश की हैसियत के अनुसार ३) से ५) रु. तक दिया था और असमर्थ मनुष्यों से सिर्फ १०-१० सेर अन्न लिया गया था। तोप तथा फिरंगी की बाढ़ के कागज़ों से आभासित होता है कि उन दिनों चौमूँ में ब्राह्मणों के १२२, क्षत्रियों के ३३, वैश्यों के १६०, सन्त महन्त या पुजारियों के १३, मालियों के ५२, जाटों के ३४, बागड़ों के २१, अहीरों के ४३, पठानों के ६३, खातियों के २४, कुम्हारों के ३३, चारणों के ६, भड़भूजियों के ४, छीपों के ७, नीलगरों के ४, मणियारों के ५, सुनारों के ७, तेलियों के १८, कलालों के ४, खवास या धाभाइयों के २३, दर्जियों के ८, नाइयों के २४, जोगियों के १४, मीणों के ३, लुहारों के ७, गुवारियों के ४०, स्वामियों के १२, मोचियों के १०, खटीकों के ८, रैगरों के १५, रेजी बनाने वाले जुलाहों के २३ और अहेड़ी अर्थात् शिकारियों के १३ वर्ग या थाँभे थे। इस सूची से सूचित हो सकता है कि उन दिनों चौमूँ में कितने प्रकार के पेशा करने वाले थे और कितनी जातियों का किस प्रकार जीवन निर्वाह या पालन पोषण होरहा था। उन दिनों हर एक वर्ग या थांभे में कम से कम २ स्त्री पुरुष और ज्यादा से ज़्यादा ४० मनुष्यों तक एकत्र रहते थे और इस प्रकार रहने में ही सब प्रकार की सुविधा अनुकूलता और सुख था।

(१२) "पुराने कागज़" (नं. ५२६) में लिखा है कि 'संवत १८७४ के आसोज में जयपुर राज्य की ओर से अलवर के अंतर्गत 'गढ़ी' पर चढ़ाई की गई थी। तन्निमित्त फौजें इकट्ठी करने के लिए कृष्णसिंहजी ने अनेक जगह अपने नाम के रुक्के भेजे थे। गढ़ीवालों का क्या कसूर था इसका कोई पता नहीं मिला परंतु बहीखाते आदि से यह अवश्य जाना गया है कि चढ़ाई के समय कृष्णसिंहजी के साथ में ६ पल्टन और ४ तोप गई थीं और उन्होंने गढ़ी का घड़ी भर में विध्वंश किया था।

(१३) "अधिकार लाभ (पृ. २१) से आभासित होता है कि संवत् १८७४ में इस देश में अँग्रेजी फौजों

का प्रथम पदार्पण हुआ था। उस अवसर में अँग्रेज अफसरों ने महाराज जगतसिंह जी के साथ में मैत्री भाव स्थापन होने का प्रयत्न किया। इस काम के लिए महाराजने अपने प्रधान सामंत रावल बैरीसालजी तथा ठाकुर कृष्णसिंहजी आदि की सलाह ली तब दोनों सरदारों ने अँग्रेजों के साथ संधिस्थापन कर लेने का सहर्ष समर्थन किया और इस प्रकार मैत्री भाव स्थापन होने में अनेक प्रकार के समयोचित गुण निवेदन किए। यद्यपि संवत १८६० में अँग्रेज सरकार और जयपुर दरबार के आपस में सर्व प्रथम संधि हुई थी किंतु उसके टूट जाने से शासन व्यवस्था में अनेक प्रकार की बाधायें उपस्थित हुईं इस कारण महाराज ने मंत्री मण्डल की सम्मति मानकर मिती जेठ वदी १३ संवत १८७५ ता.१५-४-१८१८ को दूसरी बार की स्थिर संधि स्थापन की और उस पर महाराज की ओर से रावल बैरीसालजी ने हस्ताक्षर किए इस विषय का विशेष उल्लेख 'सामोद का इतिहास' अध्याय आठ में दिया गया है। परन्तु प्रसंगवश यहाँ यह सूचित कर देना अवश्य आवश्यक है कि 'गवर्नमेंट के और जयपुर राज्य के परस्पर जो संधि हुई उसके सफल कराने में रावल बैरीसाल जी सामोद तथा ठाकुर कृष्णसिंहजी चौमूँ प्रधान थे, अतः अंग्रेज सरकार के तत्कालीन प्रतिनिधि मटकाफ साहब ने "पुराने कागज़" (नं० ५०७) के अनुसार जो कुछ कृतज्ञता और मित्रता का भाव प्रकट किया उसका सारांश यह था कि 'आप दोनों ठिकानों के सरदार बड़े योग्य अनुभवी और राजभक्त हैं। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आपकी जमी-जीविका-जागीर और इज्जत आबरू आदि पर जयपुर राज्य अथवा अंग्रेज सरकार कभी कोई अनुचित हस्तक्षेप नहीं करेंगे।' अस्तु।

(३७) "जगतसिंहजी"

(१४) प्रतापसिंहजी के पुत्र थे। संवत १८४५ में भटियानीजी के उदर से उनका उदय हुआ था। उनके २१ रानी और २४ परदायत थीं। उनके सिवा 'रसकपूर' पर भी मिहरवानी थी। उसको हाथी, घोड़े, वस्त्र, शस्त्र, आभूषण, जयमन्दिर, धनागार, पुस्तक भण्डार और पदाधिकार आदि यथा क्रम दिये थे। मिश्र शिवनारायणजी (जो उसकी शिफारिश से मन्त्री हो

(१०) "इतिहास राजस्थान" (पृ० १२२) में जोधपुर की लड़ाई के धनजन का दुरुपयोग निरर्थक बतलाया है। (११) "राजपूताने का इतिहास" (पृ० १००६) में उक्त युद्ध संवत १८६३ के फागण में पर्वतसर के पास होने का पता प्रकट किया है। (१२) "वंशावली" 'क' (पृ० ८८) में यह लिखा है कि 'जगतसिंहजी की १ लाख फौज में ५ हज़ार अश्वारोही ज्यादा अच्छे थे। उनके ज़री की पोशाक थी, हैदरावादी दुशालों के ज़ेरबन्द थे, बढ़िया दुमच्या बनवाए थे और वहां से लाखों का माल लूटकर लाए उसमें ४० तोप और 'दलबादल' के शामियाने अधिक अद्भुत एवं देखने योग्य थे। लड़ाई के अन्त में मान की बेटी जगत ने और जगत की बहिन मान ने व्याही थी।' (१३) "खेतड़ी का इतिहास" (पृ० ५५) में लिखा है कि 'जोधपुर जाने के लिए जगत के पास फौजें नहीं थी? इस कारण १० हज़ार शेखावत उनके साथ गए थे। अस्तु। अपने २ उद्गार हैं, जिसको जैसे जान पड़े वैसा ही लिख दिया है। वास्तव में जयपुर में सर्वोच्चश्रेणी की १ लाख फौज जगतसिंह जी ने ही इकट्ठी की थी। घर बैठे हुए रणवँके राठोड़ों को जगतसिंह जी ने ही हराए थे और जयपुर राज्य को सदा सर्वदा के लिए शान्त सुखी और निरापद रखने की कामना से अंग्रेज़ों के साथ में सर्व प्रथम जगतसिंहजी ने ही संधि की थी। खेद है कि जगद्विख्यात जगतसिंहजी का संवत १८७५ के पौष में परलोक वास होगया।

(१७) पूर्वोक्त संधि सम्पन्न होने के थोड़े ही दिन पीछे महाराज जगतसिंहजी का अपुत्र अवस्था में बैकुण्ठवास होजाने से कई एक कुजीवों को मनमानी करने का मौक़ा मिल गया था। महाराज के मरते ही मोहन नाजिर ने नरवल के नवयुवक मानसिंह जी को बुला लिया और मनोनीत राजा बना लिया। उन दिनों अंग्रेज़ लोग इस देश में आए ही थे और यहां के वर्ताव व्यवहारादि की बहुत सी बातों से असहँदे थे अतः उक्त नियुक्ति में भ्रमवश वह भी फँस गए। "अधिकार लाभ" (पृ० २३) में लिखा है कि 'नाथबांधवों' (वैरीसालजी और कृष्ण

सिंहजी) ने तथा बहादुरसिंहजी राजावत ने मोहन के मनमाने मानको मंजूर नहीं किया क्योंकि प्रच्छन्न रूपसे अंतःपुर में अनुसंधान करवाया तो मालूम हुआ कि विधवा महाराणी भटियानी जी गर्भवती हैं।' इस पर स्वार्थी नाजिर ने अंग्रेज़ों को यह सुझाया कि 'गर्भ की बात ग़लत है।' तब अंग्रेज़ अफसरों के अनुरोध से सामन्तों की एक महती सभा हुई उसमें जयपुर राज्य के सभी शूरसामन्त शामिल थे। उन सब की सम्मति के अनुसार अंतःपुर (रणवास) की अठारह महाराणियों और बाहर से गई हुई प्रधान सामंतों की ठकुराणियों ने बुद्धि और विवेक के अनुसार अच्छी तरह अनुसन्धान किया तो मालूम हुआ कि भटियानी जी अवश्य ही गर्भवती हैं। इस संबंध में "रावल चरित्र" (पद्य २१६ से ३०) में लिखा है कि 'महाराणियों ने मोहन नाजिर जैसे कुजीवों के खतरे के खयाल से गर्भगत बालक की बात को महाराज के मरते ही प्रकट नहीं की थी। किन्तु जब उनको विश्वास होगया कि राज्य के सच्चेहितचिंतक रावल बैरीसालजी तथा ठाकुर कृष्णसिंह जी आदि यहां आगए हैं और सम्पूर्ण प्रकार की बाधा विपत्ति दूर करने में तनमन से लग गए हैं तब उन्होंने उस रहस्य को प्रकट करदिया। ईश्वर की कृपा से संवत् १८७६ के वैशाख सुदी २ शनिवार को जयसिंह जी (तृतीय) उत्पन्न हुए। उस समय नाथावतसरदार शहर से बाहर थे अतः उनके जन्म का समाचार सुनते ही वे अन्दर आ गए और महाराज के नाम की दुहाई फिरवादी। उसी समय उनका जयसिंह नाम विख्यात किया और मोहन के पूर्वागत मान को विसर्जन करा दिया। यह सब कुछ होजाने पर भी मोहन ने अंग्रेज़ अफसरों को यह सलाह दी कि नवजात महाराज जब तक बालक रहें तब तक नरवल के मान को ही रहने दिया जाय किन्तु सामन्तों की सम्मति के अनुसार अंग्रेज़ अफसरों ने इस बात को स्वीकार नहीं किया।

(१६) गत महाराज के मरने और आगत महाराज के प्रकट होने से जयपुर राज्य रथकी लगाम को महारानी भटियानीजी ने सम्हाल ली थी। "जयपुर हिस्ट्री" (अ. ३) आदि से सूचित होता है कि उस अवसर में

"संघी झूँथारामजी"* उनके कृपा पात्र या कार्य-वाहक थे। भटियानीजी ने उनको भरोसे का आदमी जान कर अर्थ सचिव (धनाधिप) या रेवेन्यू मेम्बर बना दिया था और अन्तः पुर के अन्दर रहने वाली महाविलक्षण रूपाँ बड़ारण को मुखिया या मुसाहब मान लिया था। इस प्रकार के असंगत पँचमेले में कुचक्रियों का चक्र चलना शुरू होगया और प्राचीनकाल की कुल मर्यादा तथा शासन व्यवस्था बदलने लग गई। माजी साहिबा बड़े राठौर जी को यह सब बातें बुरी मालूम हुईं। इन्होंने चौमूँ सामोद के नाथावत बांधवों को नई व्यवस्था में हस्तक्षेप करने का सानुरोध आदेश किया किंतु नीतिज्ञ बांधवों ने अनुकूल समय आने की प्रतीक्षा की और सहसा हस्तक्षेप करने में सहमत नहीं हुए। तब माजी साहिबा जोधपुर चले गए और उनके कामदार फौजूराम को कुजीवों ने हनुमन्त चेला से मरवा दिया। इस घटना से शहर में सर्वत्र शोर मच गया। नाथ बांधव कुढ़ गए, रणवास की मनमानी हुकूमत से शासन व्यवस्थां बदलगई। आमदनी के सब रास्ते बन्द हो गए. मौजूदा द्रव्य को संघी जैसे धनार्थी धनाधिपों ने हड़प लिया और राज्य की आमदनी बहुत ज्यादा से कम होकर २० लाख पर आ पहुँची। सब प्रकार से दुर्व्यवस्था हो गई। गहरी गड़बड़ से ४ ही वर्ष में गवर्नमेंट को भली-भांति मालूम होगया कि 'नाथबांधव जयपुर के सचमुच सच्चे हितैषी हैं और भटियानीजी इसको बिगाड़ रहे हैं।' अतः गवर्नमेन्ट ने जयपुर में अपनी

* "संघी झूँथारामजी" जाति के सरावगी थे। आगरा से जयपुर आए भगवान् ने इनको धन यौवन और बुद्धि दी थी परन्तु उसका उन्होंने सदुपयोग नहीं किया जैपुर राज्य की शासन व्यवस्था और व्यवहार को बरबाद करने में यह सदैव तत्पर और अग्रसर रहे। भटियानीजी को बहका कर इन्होंने अनर्थकारी कारण उपस्थित कराए और धन जन सम्मान एवं शक्ति आदि से अपने आप को युक्त और जयपुर राज्य को रिक्त किया था। इनका विशेष परिचय १४-१५ अध्याय में अनेक जगह दिया गया है उससे मालूम होगा कि यह किस प्रकृति के पुरुष थे।

ओर से पोलीटिकल (राजनैतिक) एजेंट रखने का निश्चय करके माजी का बाग (जो जयसिंहजी द्वितीय के उदयपुर वाले महाराणी जी के लिए बनवाया गया था और उनके विधवा हुए पीछे भी उन्हीं के अधिकार में रहने से "माजीका बाग" कहलाया था) को अजन्टी के लिए उपयोगी स्थिर किया और तारीख १ मार्च सन् १८२१ मुताबिक संवत १८७८ को रेजीडन्सी (या अजन्टी) की स्थापना करके सर्व प्रथम कप्तान जे. स्टिवर्ट को एजेन्ट बनाया। इस नियुक्ति से भटियानीजी बहुत नाराज हुए किंतु अंग्रेजों के अनुशासन में किसी प्रकार की कमी बेशी नहीं कर सके। उनकी की हुई शिकायतें और प्रयत्न प्राय: सब निष्फल गए।

(१७) एजेन्ट साहिब रावलजी से राजी थे और उन्होंने गवर्नर जनरल से सिफारिश करके उनको हर काम में दृष्टि देते रहने का अधिकार दिलाया था। ऐसा होने से संघीजी की स्वार्थ सिद्धि रुकगई तब उन्होंने नाथावतों को भी अपना शत्रु मान लिया और उनकी दिन रात शिकायत करके भटियानी जी को बहका दिया। इस कारण वह भी उनसे नाराज रहने लगे। यह देखकर रावलजी ने भटियानीजी को समझाया कि मैं राज के हर काम की अच्छी व्यवस्था बनादूँगा और उससे सब को आराम मिलेगा किन्तु स्त्री स्वभाव होने से उन्होंने उनका उपदेश ग्रहण नहीं किया। फल यह हुआ कि गवर्नमेन्ट से ता० २२-९-१८२१ संवत १८७८ में रावल ी को राज का सब काम सोंप दिया और उनको हर तरह से स्वाधीन बना दिया। उसी अवसर में भटियानीजी को सर्वथा अलग रखने का तजवीज भी हुआ था किन्तु रावलजी ने वैसा नहीं होने दिया और उनको यथा पूर्व मालिक मानते रहे। इतने पर भी संघी जी और उनके साथियों ने छेड़ छाड़ करना नहीं छोड़ा तब "पुराने कागज" (नं. ५५४) के अनुसार संवत् १८९० के आषाढ बुदी १३ शुक्रवार को गवर्नमेंट ने ३ पेज के लम्बे चौड़े कागज में उनकी सब बातों का हवाला देकर भटियानीजी को दबा दिया और राज की फौज पलटन कृष्णसिंहजी के अधिकार में करादी। ऐसा करने से सब काम शांति से होते रहे।

(१८) "पुराने कागज" (नं. ५२७) से सूचित होता है कि संवत् १८०० के शीत काल में तोंरावाटी के तस्करों ने नीमच की छावनी में गवर्नमेंट का खजाना लूट लिया था। उसकी तहकीकात के लिए राज्य की ओर से ठाकुर कृष्णसिंहजी गए थे। साथ में सात पल्टन तथा सर्वाधिकारी के क़ायदे का हाथी शिरोपाव देकर उनको बिदा किया था। कृष्णसिंह जी ने तोंरावाटी देश के सुप्रसिद्ध भूदोली गाँव में अपने डेरे तम्बू खड़े करवा के सर्वप्रथम नीम का थाना में अनुसंधान का आरम्भ किया तब मालूम हुआ कि लूट का सारा माल भूदोली आया है। यद्यपि दोषी दश पांच ही थे परन्तु खोटे कामों में सहयोग रखने से कई आदमी कृष्णसिंह जी की कोपाग्नि में तपाए गएथे। फल यह हुआ कि लूट के माल का पूरा पता लग गया। "पुराने कागज" (नं० ५३५) से प्रमाणित होता है कि 'उक्त डाके में गवर्नमेंट के हज़ारों रुपयों का नुकसान हुआ था। उसमें वस्त्र-शस्त्र-जेवर-पोशाक और नक़द रुपए सब थे।' उनके सिवा रास्ते में कई गाँवों से गाय भैंस, ऊँट और ज़ेवर आदि भी ले गए थे। किन्तु कृष्णसिंहजी ने सब माल ज्यों का त्यों प्रत्यक्ष तथा कुछ रोकड़ के रूप में वापिस लिया और जो लोग तत्काल देने में सर्वथा असमर्थ प्रतीत हुए उनसे प्रतिज्ञा पत्र लिखवा लिया, इस संबन्ध के पत्रों में एक पत्र गवर्नमेंट के लिए एक पत्र राज के नज़राने के लिए तीन पत्र हरजाने के लिए और ३४ पत्र रास्ते में लूट कर लाए हुए माल के वापिस देने के लिए थे। उन पत्रों का आशय इस तरह का था कि 'सिद्धि राजश्री ठाकुरां कृष्णसिंह जी योग्य तोंरावाटी के समस्त जागीरदारों का निवेदन है कि नीमच के धाड़े में जो माल भूदोली आया उसको अपने लेखानुसार भूदोली वाले देंगे और उसको राज स्वयं वसूल करेगा और धाड़े की कमी के जो ७० हज़ार रुपये बाकी रहे वह हम सब अपने यहाँ की उगाही से इकट्ठे करके जमा करावेंगे।' मिती भादवा सुदी २-३ संवत् १८७६ (८०) (हस्ताक्षर सब के) इसी प्रकार अन्य पत्र भी लिखे गए थे और जिनको जो वस्तु वापिस दी गई उसकी रसीद भी लिखवाई गई थी। इस प्रकार का प्रबन्ध करके कृष्णसिंह जी वापिस आगए थे और शेष काम कामदारों

के द्वारा होते रहने को छोड़ आए थे। उसी वर्ष (संवत १८८०) के अँगसिर में किसी कारण विशेष से कृष्णसिंहजी बीकानेर गए थे। साथ में सँघी कूँथाराम जी तथा ठाकुर साहब झिलाय भी थे। महाराजा साहिब बीकानेर ने ठाकुर कृष्णसिंह जी का बड़ी ही प्रीति के साथ सत्कार किया और उनको अपने अतिनिकट अव्वल दर्जे के महल में ठहराया साथ ही स्वागत सम्बन्धी कामों में उच्च श्रेणी का सामग्री तथा आदर सूचक शब्दों का उपयोग किया। "पुराने कागज" (नं० ५३१) से सूचित होता है कि वहाँ के अतिथि सत्कार में अव्वल दर्जे में कृष्णसिंहजी दूसरे में झिलाय के ठाकुर और तीसरे में संघी कूथाराम जी थे। अस्तु।

(१९) उपरोक्त यात्रा से वापस आने के दो वर्ष पीछे संवत १८८२ में कृष्णसिंहजी ने तोरावाटी प्रांत की पाटन पर चढ़ाई की थी। कारण यह था कि पाटण के रावजी ने अपने भाई को निर्दोष दशा में मार डाला था और मदमत्त होकर मनमानी करते थे। "पुराने कागज" (नं० ५३५) से प्रकट हुआ है कि उस समय कृष्णसिंहजी की साथ में राज की ओर से ७ पलटन गई थी। उन्होंने रास्ते में जितने उद्धत-कुबुद्धी-या शत्रु मिले थे उनको भी यथा योग्य दण्ड देकर नत मस्तक या राजभक्त बनाए थे। कृष्णसिंहजी के पाटण पहुँचने पर युद्ध आरंभ हुआ और उसकी भीषण परिस्थिति मालूम हुई तब पाटन के रावजी; कृष्णसिंहजी के शरण में आगए और राज को एक लाख रुपया हर्जाना देकर वापस गए। चंद कवि ने अपने "नाथवंश प्रकाश" (पद्य २७१) में १० हज़ार फौजों का जाना और रावजी के द्वारा उनके पिता का मारा जाना लिखा है किंतु उस अवसर के बही खाते आदि देखने से यह बात असत्य सिद्ध होती है। कहा जाता है कि रावजी में हर्जाना के कुछ रुपए बाकी रह गए थे उनको वसूल करने के लिए चौमूं के. जोधराजजी घांया आदि कई एक आदमी राज के डेरों में पाटण रहे थे और छः महीने पीछे वापस आए थे। अस्तु।

(२०) इस प्रकार नाथ बांधवों को हर काम में सफलता मिलने और

उनका हर हालत में प्रभुत्व बढ़ने से संघी झूँथारामजी मनहीमन दिनरात कुढ़ते थे और उनकी शासन व्यवस्था बिगड़ने के विचार से झूँठी सांची छेड़ छाड़ करते रहते थे। यद्यपि उन दिनों अंग्रेजों का महत्व इस देश में सर्वत्र मान्य था और परस्पर की बात चीत में बहुत लोग 'समय देख कर चलने' की सीख देते थे। तथापि छोटी मोटी बातों के लिए बड़ा बखेड़ा खड़ा करने में अंग्रेज लोग अपने मानापमान का खूब ध्यान रखते थे। यही कारण है कि संघी आदि का हर बात में ओछापन देखते रह कर भी उनके निवारण का कोई कड़ा उपाय नहीं किया इस प्रकार की परिस्थिति में "जयपुर हिस्ट्री" (अ० ४) के अनुसार ता० २० अप्रेल सन् १८२१ मिती बैशाख बदी १२ संवत् १८७२ को नाथबांधवों ने काम का इस्तीफा दे दिया और कृष्णसिंहजी चौमूँ तथा बैरीसालजी सामोद चले गए। इतने पर भी संघीजी ने सब्र नहीं किया उन्होंने माजी साहिबा को अपने मत में मिलाकर दोनों ठिकानों की जागीरें जप्त कराने की मंसाह से भटियानीजी की मंजूरी लेकर चौमूँ का अनिष्ट करने की कामना से फौजें भिजवाई उस समय चौमूँ से २॥ कोस दक्षिण में बांडी नदी के किनारे पर फौजों के डेरे खड़े हुए थे। यह देख कर नाथबांधवों ने एक तरफ तो अपने घर के बंदोबस्त का विधान किया और दूसरी तरफ अपने विश्वास के मनुष्यों को जैपुर भेजकर एजेंट साहब को सब हाल कहलाया। तब साहब बहादुर ने संघीजी का षड़यंत्र तत्काल तुड़वा दिया और भटयानीजी के बेकायदा किए हुए तमाम हुक्म रद्दी कर दिये। इस सम्बंध में "मोरीजा का इतिहास" (पृ० ५) में लिखा है कि 'बाँडी नदी के किनारे से चौमूँ पर गोला चलाने में संघीजी को सफलता नहीं मिली तब उन्होंने चौमूँ के अति समीपी मोरीजा के पहाड़ी किले से गोले चलाने का विचार किया इसके लिए वह स्वयं मोरीजे गए और वहां के तत्कालीन ठाकुर बुधसिंहजी से किला के लिए याचना की। उन दिनों चौमूँ और मोरीजा के आपस में कुछ नाराजी थी और संघी जी ने उसी में अपनी इष्ट सिद्धि सोची थी किंतु नाराजी की हालत में भी चौमूँ और मोरीजा दोनों एक थे और चौमूँ

की हानि को मोरीजा अपनी ही हानि मानता था अतः ठाकुर बुधसिंहजी ने आपस की नाराजी को दूर फेंक कर संघीजी को जवाब दिया कि 'आपत्ति के अवसरों में जिन घरों का हम आश्रय लेते हैं उन्हीं घरों को अपने ही भाई के घर नष्ट कराने के लिये कैसे दे सकते हैं। माफ कीजिये मैं यह किला नहीं देसकता।' यह सुन कर संघीजी शून्ने हो गए और चुप चाप वापिस चले गए।

(२१) अपने आत्मीय वर्ग के अच्छे अच्छे आदमियों के साथ में भी अपनी ही ओर से आये दिन अनेक प्रकार के अनुचित वर्ताव होते देखकर मांजी साहिबा राठोड़जी कुछ दिन के लिए अपने पीहर जोधपुर चले गये थे। किंतु उनकी अनुपस्थिति में यहाँ और भी अधिक गड़बड़ होती रहने से राज्य के हितैषियों ने उनको वापिस बुला लिया। उन दिनों महाराज तीसरे जयसिंहजी दिन रात जनाने में रहते थे। मांजी साहिबा भटियाणीजी उनको बाहर भेजने में राजी नहीं थे। बाहर वालों ने उनको बाहर बुलाने का बार बार तक़ाजा किया तो एक लुब्धक ज्योतिषी से यह कहला दिया कि 'नौ वर्ष के होने से पहिले उनके बाहर आने में अनिष्ट होने की सम्भावना है।' किंतु जयपुर की संपूर्ण प्रजा और राज्य के संपूर्ण भाई बेटे तथा शूर शामन्त और सरदार लोग उनके दर्शनों के भूखे थे। वह उन के बाहर आजानें की बहुत ही ज़्यादा ज़रूरत मान रहे थे। अतः इस प्रकार के अत्यधिक आग्रह को देख कर गवर्नमेंण्टकी ओर से अंग्रेज अफ़सरों नें उनके बाहर आनें का विधान बनाया और सर्वप्रथम जमुवाय माता के जडूला उतरवानें को जमुआ रामगढ़ जाते समय जयपुर की जनता को जयसिंहजी का दर्शन करवा दिया। उन को देख कर प्रजा उसी प्रकार प्रसन्न हुई जिस प्रकार भाद्वा बुदी चौथ के वर्षाती बादलों से घिरे हुए और बहुत प्रतीक्षा करनें के बाद दीखनें वाले चन्द्रमा को देखकर व्रत की हुई दिन भर की भूँखी स्त्रियाँ प्रसन्न होती हैं। ऐसे अवसरों में चौमूँ सामोद के सरदार लोग जिस प्रकार जयपुर महाराजाओं के राज्याभिषेक का दस्तूर आप खुद करते हैं उसी प्रकार जडूला, जँनेऊ और विवाह

के दस्तूर भी वे स्वयं सम्पन्न करते हैं अतः जयसिंहजी तीसरों का जडूला उतराने को जमुआ रामगढ़ जाने के पहिले माजी साहिबा बड़े राठोड़जी ने अपनी ओर से खास रुक्का भेजकर ठाकुर कृष्णसिंहजी को चौमूँ से जयपुर बुलवाए थे। उस रुक्के में लिखा था कि 'महाराज सवाई जयसिंहजी तीसरों का जडूला उतरवाने के लिए जमवाय माता के आषाढ़ सुदी ५ शुक्रवार को जाँयगे और आठैं सोमवार को मुहूर्त होगा सो मय जमीयत ज़रूर आवें। मिती आषाढ़ बुदी १२ सं० १८८२ इस आज्ञापत्र के प्राप्त होते ही कृष्णसिंह जी जयपुर आए और जमुवाय माता के जाकर जयसिंहजी के जडूले का दस्तूर सम्पन्न किया।

(२२) कहा जाता है कि कृष्णसिंहजी जोशीले स्वभाव के मनुष्य थे। परन्तु ऐसी प्रकृति प्रभावशाली पुरुषों की होती है। कई दिनों के रुके हुए काम क्षणिक कोप से तुरन्त हो जाते हैं। गवर्नमेंट के पूर्वोक्त धाड़े को तँवरों ने प्रकट नहीं किया था किंतु कृष्णसिंहजी के कुपित होते ही कई दिनों का छुपाया हुआ सब माल बतला दिया। मण्डन कवि ने "कृष्ण सुयश प्रकाश" काव्य में लिखा है कि 'कृष्णसिंहजी नीतिनिपुण, न्याय परायण, बुद्धिमान्, प्रजाप्रिय, साहसी और कलाविद् थे। उनको हाथी, घोड़े या गाय बैल आदि की अच्छी पहचान थी और शत्रु संहार में वह सदा निडर रहे थे। साथ ही धर्म में अनुरक्त और विषयों से विरक्त थे। देश रक्षा के कामों में उन्होंने कभी मन नहीं छुपाया था। दान पुण्यादि में भी उनका मन था। उनके जमाने में चौमूँ के चारों ओर की मापा (राहधारी) की तिबारियों में भूखे राहगीरों को नाज, चून, भूँगड़े या भोजन आदि यथा योग्य मिलते थे। उन्होंने अस्त्र शस्त्र, महल मकान और बाग़ बगीचे आदि भी बनवाए थे। उनका 'कृष्ण निवास' महल मजबूती और मनोहरता में आज भी आज का सा मालूम होता है और कृष्ण बाग़ के आम, अमरूद, खिरनी, जामून और लंबी-मोटी तथा मीठी कमरख लोगों को आज भी याद आती हैं। कृष्णसिंहजी और बैरीसालजी आपस में काका ताऊ के बेटे भाई थे। बैरीसालजी के प्राधान्य में कृष्णसिंहजी का महत्व

विशेष मान्य था। वह जयपुर राज की फौजों के प्रधान सेनापति रहे थे और मंत्रिमण्डल का काम भी किया था। कृष्णसिंहजी के पुत्र नहीं था और न किसी को गोद ही लिया था। उनके बैकुँठवास के बाद बैरीसालजी के दूसरे बेटे (लक्ष्मणसिंहजी) उत्तराधिकारी हुए थे। बीमारी की अवस्था में बैरीसालजी उनको साथ लेकर समाचार पूछने के लिए चौमूँ आए थे। किंतु उस समय कृष्णसिंहजी के परलोक पधारने की तय्यारी हो चुकी थी अतः बैरीसालजी से वह विशेष बातचीत नहीं कर सके। उसी अवस्था में संवत १८८६ के फागण सुदी १३ दीतवार को कृष्ण भक्त कृष्णसिंहजी का देहान्त होगया। उनके २ विवाह हुए थे। उनमें (१) भक्तावर (चाँपावतजी) मारवाड़ के उदैसिंहजी की और (२) सेरकुँवरि (बीदावतजी) बीदासर के मोहबत सिंहजी की पुत्री थे। 'स्मृति चिन्हों' में (१) चौमूँ का सुचारु रूप बनाना, (२) संवत १८६५ में 'कृष्ण बाग लगवाना (३) संवत् १८६६ में 'कृष्ण निवास' बनवाना (४) सं० १८६८ ७४ में 'कृष्णगढ़' तथा (५-६) सं० १८७० में बिलांदरपुर और अमरसर आदि में 'धूलकोट' बनवाना (७) संवत् १८७२ में 'कृष्णतालाब' खुदवाना और (८) संवत् १८८० में जयपुर में अपने पिता रणजीतसिंहजी की सुन्दर छत्री तैयार करवाना आदि मुख्य थे।

चौदहवां अध्याय

॥ श्री ॥

नाथावतों का इतिहास।

लक्ष्मणसिंहजी

(१५)

(१) संवत् १८८६ के फागण सुदी १३ दीतवार को कृष्णसिंहजी का देहान्त होजाने से सामोद के रावल बैरीसालजी के दूसरे पुत्र लक्ष्मणसिंह जी उनके उत्तराधिकारी हुए। औरस पुत्र न होने से दूसरे को अधिकारी करते समय जो नियम* माने जाते हैं उन्हीं के अनुसार लक्ष्मणसिंहजी की नियुक्ति हुई थी। उनका जन्म

जन्म लग्न

बृ ६ | ४
सू चं मं शु ७ | ५ | ३ रा
बु ८ | २
के ९ | ११ | १
श १० | १२
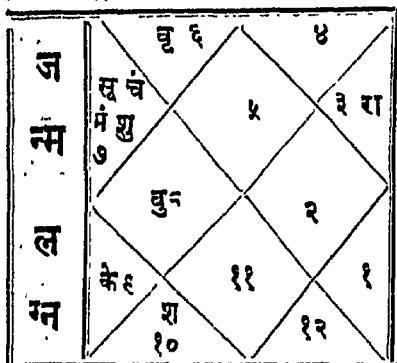
संवत् १८७१ की काती वुदी ३० (अमावस) शुक्रवार को इष्ट ४५।१५ सूर्य ६।२७ और लग्न ४।९ में सामोद में हुआ था। जन्म के समय सारे भारत में धर्मप्राण हिंदुओं के जातीय त्योंहार की "दीपावली" जगमगा रही थी और लक्ष्मणसिंहजी के जन्मोत्सव के दैवदत्त सुयोग को स्वतः प्रकट कर रही थी। लक्ष्मणसिंहजी बचपन में सामोद रहे थे वहीं उनका चोटी, जडूला, जनेउ, और पहिला विवाह हुआ था। उन दिनों क्षत्रिय कुमारों को विद्याभ्यास के बदले शस्त्राभ्यास की ज़्यादा ज़रुरत थी इस कारण लक्ष्मणसिंहजी को भी ढाल, तलवार, सेल, बंदूक, लाठी, कटारा और धनुष आदि रखने और उनका यथा योग्य उपयोग करने का अच्छा अभ्यास होगया था। विशेष कर वह भाला फेंकने लाठी चलाने और खड्ग प्रहार

* "उत्तराधिकारी" बनाने में जो नियम माने जाते हैं उनका आशय यह है कि (१) मृत मनुष्य के बड़े बेटे को उत्तराधिकारी बनाया जाय (२) वह पहले ही मर गया हो या अज्ञात देश में चला गया हो तो उसके बेटे को बनाया जाय (३) बड़ा बेटा दूसरे के गोद चला गया हो और उसका सगा भाई न हो तो नजदीकी को बनाया जाय

करने में अधिक निपुण थे। यद्यपि उन्होंने विद्या का अभ्यास बहुत दिनों तक नहीं किया था किंतु सब शास्त्रों के पारंगत पण्डितों और विविध प्रकार की विद्याओं के विद्वानों का सदैव समागम होता रहने से वह सब बातों में योग्य और गुणज्ञ होगए थे। यही कारण है कि- चौमूँ जैसे लब्ध प्रतिष्ठ बड़े ठिकाने का सर्वाधिकार ग्रहण करते समय इस देश की तत्कालीन राजनैतिक अंधकार के स्वार्थ और विद्वेष पूर्ण अवसर में भी आपने अपने ठिकाने की सब अवस्था, व्यवस्था, व्यवहार और प्रबंधादि को यथावत् बनाए रखने में भ्रमवश भी कोई भूल या असावधानी नहीं होने दी और अपने को हर काम में योग्य; निपुण या विशेषज्ञ विदित किया।

(२) शासन भार ग्रहण किये पीछे लक्ष्मणसिंहजी ने अपने यहाँ के आश्रितजनों को यथायोग्य कामों पर लगा दिया और आप खुद भी सब कामों को करते या देखते रहे इस कारण थोड़े ही दिनों में अपने ठिकाने के प्रत्येक विभाग का अच्छा अनुभव होगया। पिछले अध्याय में प्रकट हो चुका है कि चौमूँ सामोद के दोनों सरदार संवत् १८८२ में अपने ठिकानों में चले गए थे और उनके न रहने से संघीजी को मनमानी करने का अधिक मौका मिल गया था किंतु अंग्रेज़ों के

(४) पहले पुत्र हुआ ही न हो किंतु मरने के समय उसकी विधवा गर्भवती हो तो बालक के जन्म तक किसी को भी मालिक न किया जाय किंतु उस गर्भ से पुत्र पैदा हो तो उसे और पुत्री हो तो दूसरे अधिकारी को बनाया जाय (५) औरस पुत्र न हो तो सगे भाई को (६) वह भी मर गया हो तो उसके बेटे को और (७) दोनों न हों और मरने वाले का बड़ा भाई दूसरी जगह का मालिक हो तो उसके बड़े पुत्र से छोटे को बनाया जाय (८) पुत्रों में भी सबसे बड़ा अन्यत्र बैठा हो तो उसके छोटे से छोटे को और (९) दोनों तरफ हीनता हो तो अति समीपी सपिण्ड वाले को अधिकारी किया जाय और (१०) यदि मरने वाला खुद ही किसी को मुकर्रिर करगया हो और वह जाति कुल या परिवार से स्वीकृत होचुका हो तो उसे उत्तराधिकारी बनाया जाय। ऐसी अवस्था में भी (१) मेवाड़ में "राणावत" (२) मारवाड़ में "जोधावत" (३) बीकानेर में "महाजन" (५) बूँदी में "दुर्गावत" (५) कोटा में "आपजी" और (६) ज़यपुर में "राजावत" अधिकारी होते हैं।

आतंक और अपने कामों में गड़बड़ होने से वह यात्रा के वहाने वाहर चले गए और कुछ दिन की ढील देकर वापिस आगये। इस सम्बंध में ब्रुक साहब की "पोलीटिकल हिस्ट्री" (अथवा राजनैतिक इतिहास) (अ. ३) में लिखा है कि 'संघी झूँथाराम ने यात्रा से वापिस आए पीछे क्रूरता के बदले स्नेह के संचार का कृत्रिम या स्वाभाविक सूत्रपात किया था।' (किंतु नाथावतों को वह उस अवस्था में भी निसर्ग शत्रु मानता था,) जनश्रुति में विख्यात है और "नाथवंश प्रकाश" (पद्य २८०) आदि में दर्शाया भी है कि 'एकबार लक्ष्मणसिंहजी किसी विशेष कारण से महाराज के समीप महलों में गए थे। उस समय संघी जी ने उनसे पूछा कि 'आप विना मातमी हुए ही अन्दर कैसे आगए।' इसके उत्तर में लक्ष्मणसिंह जी ने निस्संकोच सूचित किया कि- 'राज हमारी पैत्रिक सम्पत्ति (वापोती धरोहर) है, हम इसके सेवक या निरीक्षक हैं। महाराज हमारे मा बाप हैं और महल हमारे घर हैं। अतएव अपने घर के विगाड़ सुधार की व्यवस्था देखने या तन्निमित्त अपने मालिक को कुछ निवेदन करने के लिए हम अपने मा बाप के पास मातमी हुए या बिना हुए भी हर हालत में आ जा सकते हैं और इस प्रकार आने जाने में न तो कोई हरज है और न कोई मनाई है अतः आप हमारे इस आने जाने को अनुचित रूप में परिणत न करें।' यह सुनकर संघी जी ने उनके साथ शिष्टता का व्यवहार किया और थोड़े ही दिनों में "मातमी" * करवादी। "पुराने काग़ज़" (नं. ४-६) से सूचित होता है कि 'चौमूँ सामोद दोनों एक अंग हैं। लोक व्यवहार के कई काम दोनों ठिकानों में समान रूप से होते हैं और अधिकांश कामों को दोनों सरदार शामिल होकर * करते हैं। मातमी जैसे मौके में दोनों का

* "मातमी" उस दस्तूर का नाम है जिसमें किसी भी स्वर्गीय सरदार के उत्तराधिकारी को महाराज की स्वीकृति मिलती है। उसके लिए पूर्व निश्चित दिन में महाराज की जो सवारी लगती है उसके वाजे, गाजे, जुलूस, सहगामी और सवार आदि सब वेग से भागते हुए जाते हैं और उत्तराधिकारी को सहानुभति दिखला कर उसी प्रकार वापस आजाते हैं। जिनके यहाँ महाराज के जाने का क़ायदा नहीं है उन लोगों को उसी दिन

क़ायदा इक़सार सधता है। ब्रुक साहब ने अपनी हिस्ट्री में लिखा है कि ठाकुर लक्ष्मणसिंहजी की जिस समय मातमी हुई और उनको मातमी का खिलअत (शिरोपाव) पहनाया उस समय सामोद के रावल वैरीसाल जी वहीं थे संघी झूँथाराम जी ने रावल जी को भी अपने हाथों से खिलअत पहनाया और उसके धारण कराने में अपना अनुराग जाहिर किया।

(३) पुराने कागजों में राज की ओर से जप्ती होने के अधूरे लेख देखने में आए हैं जिनसे असहृदे मनुष्यों को भ्रम होता है कि चौमूँ में यह जप्ती कब और क्यों हुई थी? किन्तु असल में वह संघी जी के बर्त्ताव का ही प्रकाश था। "पुराने कागज" (नं. ५७०-७१) आदि से आभासित हुआ है कि 'संवत् १८८०-८१ में ठाकुर कृष्णसिंह जी ने सीकर के महन्त गोविन्ददासजी से ८००००) (अस्सी हज़ार) रुपए लिए थे उन को नियत अवधि के अन्दर लक्ष्मणसिंहजी ने ५ भले आदमियों

विश्वेश्वर जी के मंदिर में बुलवा कर वहीं मातमी कर आते हैं। इस प्रकार करके महाराज महलों में जा पहुँचते हैं तब पीछे जिनकी मातमी की गई हो वे खुद भी अपनी हैसियत के अनुसार सवारी लगा कर महाराज की सेवा में हाजिर होते हैं और मातमी का शिरोपाव प्राप्त करके वापस आजाते हैं। *"पुराने कागज" (नं.४-६) से सूचित होता है कि चौमूँ सामोद के ठिकानों में मातमी होती है तब महाराजा साहब अपने सहगामियों सहित इनके यहाँ पधारते हैं और इनके वापस गए पीछे राज से ड्योढी के अफ़सर या मीरमुन्शी इनके लिए घोड़ा और शिरोपाव लाते हैं और इनको धारण करवा के ड्योढी ले जाते हैं। किसी अवसर में ये चौमूँ या सामोद रहते हैं और उसी मौके में मातमी का काम आजाता है तो उस समय इनको बुलाने के लिए प्राचीन काल में महाराज के मुसाहब या दीवान् गए थे और इनको आदर पूर्वक साथ लाए थे। इसी प्रकार इन ठिकानों में कुँवर जन्म के कड़े खंगाली और बाईयों के विवाह में १०५५०) नौते के दिए गए हैं। सरदारों की सालग्रह पर महाराज की ओर से पाग तथा डुपटे प्राप्त होते रहे हैं। ये सब काम दोनों ठिकानों के समान रूप से होते हैं और नजर नछरावल बैठक दरबार या खिलगाणी आदि के पूजन समारोह और कई एक उत्सव भी शामिल हो कर ही करते हैं। विशेष के लिए "पुराने रीति रिवाज" देखना आवश्यक है।

के मार्फत महन्तजी के पास भिजवाए किन्तु संघीजी ने उनको यह सिखा दिया था कि 'तुम सब रुपए मय व्याज के एकबार में लो और जबतक न आवैं तब तक उनके गाँवों में जप्ती भिजवादो' तब भोले बाबाजी ने वैसा ही किया किन्तु दूरदर्शी लक्ष्मणसिंहजी ने सब रुपए मय व्याज के महन्तजी के पास थोड़े ही दिनों में भिजवा दिए और कौड़ी कौड़ी भर पाया' की रसीद मँगवाली। इस प्रकार संघीजी अनेक बातों में अपने बुरे वर्त्ताव को विदित करते रहते थे और उनको हर तरह से तकलीफ देते थे। किन्तु अँग्रेज अफसरों में ए. जी. जी. और एजेन्ट साहिब तथा स्थानीय मालिकों में माजी साहिबा बड़े राठौड़जी आदि की सच्ची सहानुभूति रहने से नाथावतों का संघी जी से कोई खास बिगाड़ नहीं होसका। वह अपना ओछापन प्रकट करते रहे और यह उसे अपने गंभीर भाव से सहते रहे। नाथावतों के प्रति भेजे हुए अँग्रेज अफसरों के तथा माजी साहिबा आदि के अनेक पत्रों से साफ ज़ाहिर होता है कि वह इनको जयपुर राज्य के सच्चे शुभचिन्तक मानते थे और इनकी आपदाओं को दूर करते रहने का ध्यान रखते थे। "पुरानें कागज" (नं.६४५-४७) में ता० १० अक्टूबर सन् १८३१ को अजमेर के सरकारी सुपुरिंटेंडेंट साहिब ने जुदे जुदे पत्रों में लक्ष्मणसिंह जी को तथा बैरीसालजी को लिखा है कि 'आपने मेरी बदली के लिए खेद, योग्यता के लिए संतोष और अच्छी सेवाओं के लिए हर्ष प्रकट किया तदर्थ धन्यवाद! मैं ग्वालियर जाता हूँ वहां से पत्र दूँगा। मेरी जगह मिस्टर लाकट आरहे हैं वह आपके साथ अधिक मैत्रीभाव स्थापन करेंगे यह मुझे भरोसा है।' अस्तु उनके जाने के २० दिन बाद ही लाकट साहब अजमेर आगए और संवत १८८९ में राजपूताना के पहले ऐ. जी. जी. हुए। इस नवीन नियुक्ति के हर्ष में लाकट साहब ने दरबार किया था जिसमें इस देश के अनेक राजा शामिल हुए थे और "जयपुर हिस्ट्री" (अ. ५) के अनुसार महाराज जयसिंहजी भी गए थे। "वंशावली" (क) में लिखा है कि अजमेर से वापिस आते समय जयसिंहजी ने पुष्कर स्नान किया और वहाँ के तुलादान में सुवर्ण दिया।

(४) "पुराने कागज" (नं. ६५२) आदि से सूचित हुआ है कि 'संवत

१८८९ में चौमूँ में चाँपावत जी, सामोद में बड़गूजर जी और जयपुर में भटियानी जी थोड़े थोड़े दिनों के अन्तर से एक ही साल में स्वर्ग पधारे थे। चाँपावत जी कृष्णसिंह जी की ठकुराणी थे। उनके नुकते में ६५०) मण जौ, २००) अन्य अन्न, ११७) गेहूँ, ३०) चीणी, १३) चांवल १६) गुड़; और ३) मण तेल आया था। दान पुन्य के ६५०) अन्न में से २६५) गौड़ों को, ४१) मण पुरोहितों को, ३०) दाहिमों को, १३) खंडेलवालों को, १३) भिक्षुकों को और २५७) मण लाग बाग वालों को दिया गया था। उसी वर्ष में महाराज जयसिंह जी का विवाह हुआ, नवागत वधू (महाराणी चन्द्रावत जी) का संवत् १८९० के भादवा सुदी २ को सीमंत संस्कार हुआ, तन्निमित्त साध के दस्तूर के ४००) रुपये लक्ष्मणसिंहजी के यहाँ से भी गए थे। "जयपुर हिस्ट्री" (अ. ५) में लिखा है कि 'उसी गर्भ से संवत् १८९० के भादवा सुदी १४ को सूर्योदय के समय रामसिंह जी (द्वितीय) उत्पन्न हुए। उनके जन्म से जयपुर की जनता को अद्वितीय हर्ष हुआ किन्तु संघी झूथाराम जी उस उदय से राजी नहीं हुए। इस विषय में ब्रुकसाहब की "पोलीटिकल हिस्ट्री" तथा फतहसिंहजी की "जयपुर हिस्ट्री" और उस जमाने के "पुराने कागज" आदि में जो कुछ लिखा है उसका सारांश यह है कि-

(५) संघीजी का एक संघ था उसमें (१) संघी झूथारामजी (२) अमरचन्दजी (३) मन्नालालजी (४) स्योलालजी (५) हुकमचन्दजी (६) हिदायतुल्लाखाँजी (७) डिग्गी के मेघसिंहजी (८) मनोहरपुर के हनुमन्तसिंहजी (९) साहीबाड़ के (दासी पुत्र) चिमनसिंहजी (१०) बिसाहू के श्यामसिंह जी (११) जयपुर के 'श्रीजी' महंत और (१२) अंतःपुर की रूपाँ बड़ारण मुख्य थे। इनमें आधे आदमी अकेले संघीजी के भाई बेटे भानजे या जँवाई थे जो कोई मुसाहब, कोई दीवान, कोई फौजबख्शी और कोई खजांची होरहे थे। ये सब षड्यंत्र रचना में होशियार थे। ऐसे कामों में एक ही बुरा होता है जिसमें ये १२ थे और सब एक थे। इन में कभी कोई पकड़ा जाता तो दूसरा उसे तुरंत छुड़ा लेता था। अपने

अधिकार के दिनों में इन लोगों ने यहाँ की व्यवस्था को अस्त व्यस्त बना दिया था। अतः इस प्रकार से स्वाधीन होने के समय में घंसीजी ने महाराज जयसिंह जी को ज्यादा दबाया। वह हवाखाने में भी अकेले नहीं जा सकते थे संघीजी के सिखाए हुए-सवार साथ रहते थे। सवारी आदि में सामन्तों से बात करना भी उनके लिए अनिष्टकारी हो गया था और नाथावतों का नाम तो उनके कानों में भी नहीं पड़ता था। जयपुर से चौमूँ नौ कोस है किंतु उनके लिए सौ कोस हो गया था। उन दिनों संघी जी ने नाथावतों को अलग रखने में ही अपना अहोभाग्य समझा था किंतु आगे जाकर वही उनके दुर्भाग्य का कारण हुआ। धनाधिप (या रेवेन्यू मेम्बर) होने की हैसियत से उन्होंने बाहर के खजानों का धन खेंच लिया था और अंदर का असबाब घर भेज दिया था। भाग्यवश पहले उन पर भटियानीजी का विश्वास था। पीछे चंद्रावत जी ने वैसा ही किया। इस प्रकार का सुयोग मिलता रहने से उन्होंने कई काम ऐसे किए जिनके लिखने से अब भी रोमाञ्च होते हैं। निकट भविष्य में और कुछ अनिष्ट करने के विचार से संघीजी ने नगर रक्षा के नाम पर शहर के चारों ओर तोप और फौजे खड़ी करवादी थीं ताकि अवसर आए नाथावत सरदार किसी प्रकार अन्दर न आ सकें। इतना ही नहीं "पुराने कागज" (नं. ६४०-४१, ६५०-५५ और ६७१-७३) के अनुसार उन्होंने विवाह शादी या तुकते आरे आदि के अवसर में चौमूँ सामोद के सरदारों की सेवा में जाने वालों को मना किया था और उनके मन माने दोष लगाकर गाँव जप्त कर लेते थे किंतु इन सब कुबुद्धियों को निर्मूल बनाने में रावल वैरीसालजी या ठाकुर लक्ष्मणसिंह जी भी सचेष्ट थे और आत्म रक्षा के एक एक करके अनेक विधान बना लिए थे। इस सम्बंध में "पुराने कागज़" (नं. ६५५) में वैरीसालजी ने लिखा था कि 'जरूरी काम़ के लिए तीज तक मैं आऊँगा। अतः जैवासा की टाप बँधवा लेंगे और पानी के हौद को खाली करवा के भरवा देंगे तो निहायत मिहरबानी होगी' पुत्र को ऐसे शब्द चौमूँ ठिकाने के मालिक होने के लिहाज़ से लिखे थे। दूसरे पत्र (नं. ६५६) में लिखा

था कि-'अपनी तरफ़ से मज़बूती रहते हुए किसी का मजाल नहीं जो कुछ बेजा बात कर सके'। इसी प्रकार लक्ष्मणसिंहजी ने भी अपने सहगामी सरदारों को प्रोत्साहन देने के लिए कई ठिकानों में पत्र भेजे थे और अवसर आए अति शीघ्र आजाने की उनको ताकीद की थी।

(६) संवत् १८९० में लक्ष्मणसिंह जी ने अपनी माता के बनवाए हुए भक्तबिहारी जी के मंदिर की प्रतिष्ठा की और उसे तत्कालीन स्वामी चरणदासजी के अधिकार में दिया। उस अवसर में स्वामी जी को छत्र चामर पालखी और रजत दण्डादि प्राप्त हुए थे और राजपूजित महंतों के समान सम्मान बढ़ाया था। उन दिनों आपस के पत्र व्यवहार में अँग्रेज अफ़सर भी हिन्दी में पत्र लिखवाते थे और अंग्रेजी में अपने हस्ताक्षर कर देते थे। इसके सिवा कागद स्याही और लेखन शैली आदि में भारत की प्राचीन परिपाटी का अनुकरण किया जाता था और हिन्दी के शुद्ध सुडौल एवं सुवाच्य अक्षरों में पत्र लिखते थे। संवत् १८९० में अजमेर से ए. जी. जी. ने लक्ष्मणसिंह जी को लिखा था कि 'सिद्धि श्री राज श्री ठाकुराँ लक्ष्मणसिंह जी योग्य हमारा मुजरा मालूम होय। यहाँ के समाचार भले हैं आपके सदैव भले चाहिये। अपरंच० इत्यादि' इससे सूचित होसकता है कि सौ वर्ष पहले के हिन्दी हिन्दू और हिन्दुस्थान का कैसा आदर था। अस्तु।

(७) संवत् १८९१ के मध्य भाग में ठाकुराँ लक्ष्मणसिंहजी ने चौमूँ के व्यापार व्यवसाय को बढाने के विचार से कई एक नवीन विधान बनाए थे। उनको कार्य रूप में परिणत करने के लिए संवत् १८९१ के आसोज सुदी ९ को उन्होंने अपने प्रधान मन्त्री दीपसिंहजी के द्वारा चौमूँ के समस्त व्यापारियों को सूचित करवाया कि 'जो लोग यहाँ के बाशिन्दा हों या बाहर से आए हों वे यहाँ अपने कारोबार को बढावेंगे तो उनको ठिकाने की ओर से हर तरह की सहायता दी जायगी और हर हालत में उनकी सम्हाल की जायगी। इसके सिवा जो लोग अपने खर्च से यहाँ दूकान या मकान बनवावेंगे उनको कायम की

हुई मियाद तक मुफ्त में ज़मीन दी जायगी और इमारत का फुटकर सामान थूँणी, बलींडे, फड़ और मूँगधणा आदि भी यथा योग्य मिलेगा।' इस घोषणा के प्रकाशित होते ही "पुराने कागज़" (नं. ७१२) के अनुसार अजमेर, माधोपुर, तिघरया, निवाणा, खेजड़ोली, चला, चौकड़ी, गुढा, जालसू, डहरा, डूँगरी, अचरोल, अटावा, पाटण, चीतल, चीतवाड़ी, चन्दवाजी, सामोद, ढोढसर, टाँकरड़ा, साखूँण, हरदास का बास, घिणोही, राजगढ़, धानोता, मऊ, मूँड़रो, भोरीजा और बाघावास आदि के ६५ अग्रवाल ४६ खंडेलवाल ४७ बीजावरगी, ४३ सरावगी, १८ महसरी और ५ ब्राह्मण बाहर से आए थे। उनको नियमित करकी (मामूली) कोड़ियों में ११६ को सबकर, ४३ को चौथकर और २१ को अधकर माफ किया था। और शेष को यथा पूर्व रक्खा था। इस व्यवस्था को स्थाई करने के लिए कइयों को पट्टे भी कर दिए थे। और बरेली, धामपुर, रिवाड़ी, भिवानी या नारनौल आदि के बड़े व्यापारियों को यह विश्वास भी दिला दिया था कि चौमूँ के व्यापारी मँगवाए हुए माल का मूल्य मन से भेजते रहेंगे। कदाचित किसी की देर होगी या कुछ कारण दीखेगा तो उसकी तामील तगाजा या दुग्रनी करादी जायगी।' इस व्यवस्था से चौमूँ का व्यापार थोड़े ही दिनों में इतना अधिक बढ़गया कि उसके क्रय विक्रय की सुविधा के लिए शहर के दक्षिणी जिले में "नया बाजार" औरबनवाया गया और कई एक दूकानें कोणे-खंदे चौराहे-या गलियों आदि में और बढ़ाई गईं। कहा जाता है कि ऐसी बढोतरी के अवसर में एक दिन लक्ष्मणसिंहजी की सवारी रावण दरवाज़ा से शहर के अन्दर आरही थी उस समय प्रत्येक बाजारों में गुड़, सक्कर, चीनी, जौ, गीहूँ, चांवल, मेवे, मिठाई, तिल, तेल, घी और नमक, मिरच, या मसाले आदि के क्रय विक्रय की इतनी भीड़ होरही थी कि राज मार्ग से सवारी का निकलना मुशकिल हो गया। यह देख कर लक्ष्मणसिंहजी बहुत हर्षित हुए और दूसरे मार्ग से महलों में चले गए। इसके सिवा उन्होंने जमी जीविका जायदाद मुलाजमत या अधिकार आदि देकर भी लोगों की परिस्थिति का सुधार किया था

और उनको श्री सम्पन्न बनाया था। उस समय पुरोहितों में रामचन्द्रजी शिवबक्सजी, व्यासों में बलदेवजी, ब्राह्मणों में भगतरामजी बिरधीचन्द जी, रावतों में रामनारायणजी और रामकुमारजी, दुसाधों में गंगाविशन जी और दूदारामजी, सुखमारियों में चतुर्भुज जी डायला, धाभाइयों में बक्षीरामजी, कायस्थों में सेदूरामजी और चाँदूलालजी, क्षत्रियों में दूलहसिंहजी, दीपसिंहजी और शूद्रों में रणजीता आदि सम्पन्न थे। उन दिनों माल आदि के लाने लेजाने के लिए चौमूँ में ४००० बैल, ३०० ऊँट, ६० गाडे गाड़ी या ताँगे ३० रथ भलौ और कई एक घोड़ा घोड़ी या रासबी आदि थे और उन्हीं से लाखों मण माल तथा हज़ारों आदमी आते जाते थे। ऐसे ही अवसर में लक्ष्मणसिंहजी ने शीशमहल, मोतीमहल, मंगलपोल, परकोटा और रणी आदि का निर्माण करवाया था और कई एक दर्शनीय स्थान बनवाऐं थे।

(८) पिछले अंश में प्रकाशित होचुका है कि संघीभूँथाराम जी कुछ और भी अधिक बुरा काम करना चाहते थे और उनके दुर्लक्ष्य को देख कर रावल बैरीसाल जी तथा ठाकुर लक्ष्मणसिंह जी उसके निवारण के लिए अहोरात्र सचिंत और सचेष्ट भी थे। साथ ही उन्होंने संघीजी के दुर्लक्ष्य का संकेत ३-४ महीने पहिले गवर्नमेंट को सूचित भी कर दिया था। परन्तु परमात्मा की अमिट इच्छा को वह तो क्या कोई भी मिटा नहीं सकता था। जयपुर की जनता के लिए और विशेष कर राजवंश की प्रतिभा के लिए संवत १८९१ का अंतिम अंशदुर्भविष्य का शाक्षात्स्वरूप था। उसमें ज़हरीला गैस भरा हुआ था, या विष के बादल उमड़े हुए थे। अधिकांश आदमी इस बात को जानते हैं कि 'महाराज जयसिंहजी (तृतीय) की अकस्मात् मृत्यु हुईथी। सो भी सिंह सावक का मूषक ने संहार किया था। एक बड़ी रियासत के रईश जिनके इशारे से हज़ारों फौजें चढ़सकती और बात की बात में अजेय शत्रुओं का विनाश कर सकती थीं उन्हीं का एक अदने आदमी ने क्षणभर में नाश कर दिया जिसकी दुष्कृति से क्रुद्ध कर इतिहास कारोंने उसे नारकी, नरपिशाच नराधम नमक हराम, नालायक या दुष्ट मनुष्य

बतलाया है। इस प्रकार की निर्दय प्रकृति के पुरुष वही संघीभूँथारामजी थे जो आगरे से आकर फोजूराम के दिलाये हुए आश्रय में छोटी नोकरी से निर्वाह किया और फिर उसी को अकारण मरवा दिया। महाराज के जवान होने पर संघी जी को खयाल हुआ 'कि सर्वाधिकारी होने पर शायद यह सर्वप्रथम मेरा ही अमंगल करेंगे इसलिए इनको न रहने दूं तो अच्छा है। यह सोचकर उसने दुर्नीति के पूर्वोक्त आयोजन उपस्थित किए और अवसर आते ही अंतःपुर के अंदर उनका प्राणांत कर दिया। इस विषय में फतहसिंहजी राठोड़ ने अपनी "जयपुर हिस्ट्री" (अध्याय ५) में लिखा है कि 'जयपुर की अंग्रेजी फौजें खर्ची के लिए साँभर गई थीं। नागे स्वामी इधर उधर डुल रहे थे। संवत् १८९१ की वसंत पंचमी की सवारी लगी थी। एक हाथी पर महाराज जयसिंहजी और दूसरे पर दूणी के राव जीवणसिंहजी थे। आपस में निगह मिलने पर महाराज ने उनसे कुछ कहा उसी पर संघी जी मन ही मन जल गए और उसी रात जनाने महलों में गए हुए महाराज को एकान्त में बुलाकर प्राणांत कर दिया।' प्राण नाश किस क्रिया से किया गया था इसके जुदे जुदे परिलेख हैं। "टाड़राजस्थान" (पृ. ६४६) के अनुसार 'युवक महाराज की हत्या की गई' "आचिसन" साहब के लेखानुसार 'महाराज को जहर दिया गया'। "वीरविनोद" (पृ. ८८) के अनुसार 'किसी लौंड़ी ने जहर पिलाया' और "जनश्रुति" के अनुसार 'संघीजी ने शस्त्र प्रहार से उनका प्राणांत किया और बहते हुए खून के लथपथ शरीर को कनात में लपेट कर अदृश्य कोने में खड़ा कर दिया।' "जयपुर हिस्ट्री" के निर्माता ने लिखा है कि संघीजी ने महाराज को उपरोक्त किसी भी प्रकार से मारा हो इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता।' परन्तु इसके उत्तर में बुद्धि कह सकती है कि 'इसका भी कोई प्रमाण नहीं मिलता कि 'महाराज के अमुक बीमारी हुई अंतःपुर में अमुक प्रकार से सेवा की गई संघीजी ने वैद्य और हकीम बुलवाए और मृत महाराज को बैकुण्ठी या नाव में बिराजमान कर धीरे धीरे श्मसान में लेजाके दाह किया।' जब यह नहीं हुआ तो वही हुआ जो जयपुर की जनता जानती है और वह आबालवृद्ध

तक विख्यात है।' इसमें कोई संदेह नहीं कि 'बसंत पंचमी को सवारी लगी, छट और सातैं को महाराज को किसी ने देखा नहीं, आठैं को अकस्मात् अफवाह उड़ी कि 'महाराज मारे गए' दाह के समय श्मसान के चारों ओर फौजें खड़ी थीं, फिर भी दर्शक लोग श्मसान के अहाते की दीवार को लाँघ कर अंदर घुस गए। उपद्रव आरंभ किया। सरावगियों पर पत्थर बर्षाए, संघीजी ने उनको पहले नर्माई से समझाया, किंतु शांत न हुए तब फौजों को आज्ञा दी, बलवाई भाग गए, शहर में हल्ला मच गया, तत्क्षण जैन मंदिर टूटने लगे, उनकी मूर्तियां लुटने लगीं और महाराज के मारने में संघी जी को ही मुख्य बतलाया। संघीजी ४ दिन तक सपरिवार महलों में छुपे रहे, पाँचवें दिन फिर जमाव जमाया, महाराज का मुकता किया, और ब्राह्मणों को जिमा दिया। इस प्रकार दुःख मय लीला सम्पूर्ण हुई।

(३८) "जयसिंह जी" (तीसरे)

जिस समय माता के गर्भ में आए उसके थोड़े ही दिन पीछे पिता का परलोक वास हो गया। गर्भ में आपकी उपस्थिति कैसी है इसका राजराणियों ने निर्णय किया। उस समय जयपुर राज्य में युद्ध की आग भड़कती परन्तु आपके जन्म से वह शांत हो गई। आपके बचपन में संघीजी का दुःशासन चल रहा था उस से आप को अथवा आपकी प्रजा को कोई आराम नहीं मिला। आपको सामान्य मनुष्य से भी ज़्यादा कष्ट उठाना पड़ा। आपके ४ विवाह हुए थे उनमें चन्द्रावत जी मुख्य थे। उन्हीं के उदर से रामसिंह जी का जन्म हुआ था खेद है कि नराधम ने जयसिंहजी की निर्दोष दशा में हत्या करडाली। "पुराने कागज़" (वर्ग ३ नं. १ आदि) से आभासित होता है कि 'हत्याकाण्ड के अवसर में अजमेर से ए. जी. जी. जयपुर आए थे। उनके बुलाने से रावलबैरीसालजी तथा ठाकुर लक्ष्मणसिंह जी संवत् १८९१ के चैत बुदी ६ को जैपुर आए और फतहटीबे डेरा किया सातैं को दोनों सरदार बड़े साहब से मिलने गए। चैत बुदी ९ को नखेग (या शोक मनाने अथवा सहानुभूति प्रकट करने का) दरबार हुआ। चैत बुदी १३ को रावलजी और ठाकुर साहब जयपुर जनानी ड्योढी गए।

बुदि अमावस तक ४ दिन वहीं रहें। उसी अवसर में रूपाँ के छुपाए हुए बहुमूल्य रत्नों को और संघीजी के जमीन में गाड़े हुए आठ लाख रुपयों को हस्तगत कर के राज के खजाने में जमा करवाए और यथा समय उन्हीं से कर्जा उतरवाया। अन्त में कागजी कार्रवाई तथा तहकीकात होने के बाद संघीजी को थोड़े दिन नाहरगढ़ में कैद रख कर पीछे दौसा के किले में भेज दिया और अन्त में "वीर विनोद" (पृ. ६३) के लेखानुसार चुनारगढ़ में जन्म कैद कर दिया जिस से वह संवत् १८९५ में वहीं मर गए। इसी प्रकार रूपां बड़ारण को कैद कर के पुराने घाट में विद्याधरजी के बाग में रखदी थी।

(६) "पुराने कागज" (वर्ग ३ नं० ४) आदि में लिखा है कि 'चैत सुदी १ संवत १८९२ (या राज संवत १८९१) को (ए. जी. जी.) के चपड़ासी ने मेघसिंहजी खंगारोत को हटा कर डिग्गी भेज दिया। और बैशाख सुदी १५ संवत १८९२ को केबीनेट (सूक्ष्म कौंसिल) या पञ्च मुसाहिब मुकर्रिर हुए। उनमें (१) रावल बैरीसालजी सामोद (२) बहादुरसिंहजी झिलाय (३) राव जीवणसिंहजी दूणी (४) ठाकुर······सिंहजी शाली और (५) राव फतहसिंह जी मनोहरपुर थे। "जयपुर हिस्ट्री" (अ० ५) में लिखा है कि रावलजी व ठाकुरसाहिब चैत में जयपुर आए थे। संघी झूथाराम जी सचेत थे वह अपहरण के सामान को छकड़ों में भरवाकर बाहर भेज रहे थे। उनको चौमूं सामोद के सेवकों ने रास्ते ही में रोक लिया और धन वस्त्र तथा रत्नादि वापस लाकर राज में जमा कर दिया। ए. जी. जी. की सम्मति के अनुसार रूपाँ बड़ारण को माधोराजपुरे भिजवादी और अन्य कार्रवाई ऊपर लिखे अनुसार की गई "पुराने कागज" (व. ३ नं. ५) में लिखा है कि 'जेठ सुदी ८ संवत १८९२ को बड़े साहब ए. जी. जी. आलविस और उनके सहकारी ब्लेक साहब अन्य दो साहबों सहित जनानी डयोढी का खरकसा (आपस की नाराजी) मिटाने के लिए जयपुर आए थे, रावल जी व ठाकुर साहब वहीं थे। कार्य से निबट कर साहब लोग वापिस जाने लगे उस समय किसी कुजीव ने बड़े साहब पर

तलवार का वार किया, ३ घाव आगए, घातक को तुरन्त पकड़ लिया और ए. जी. जी. पालखी में बैठ कर माजी के बाग (अजन्टी) में चले गए। उसी वक्त ब्लेक साहब पर भी तलवार चलाई गई उसे भी पकड़ लिया और ब्लेक साहब उस घातक की तलवार को लेकर बाग चले गए। मगर कुजीवों ने यह अफवा फैलादी कि यह महाराज (रामसिंहजी) का घात करके भागे जारहे हैं । वास्तव में हाथ में नंगी तलवार और दौड़ते हुए हाथी पर सवार होने से भ्रमवश लोगों ने वैसा ही मान लिया और उनको पकड़ने के इरादे से उन पर रास्ते भर पत्थर वर्षाए साहब घबड़ा गए और वर्त्तमान 'आर्टस्कूल' (अजबघर) के सामने आकर वर्त्तमान 'बालचन्द्र प्रेस' के मन्दिर में घुस गए परंतु दुर्भाग्यवश वहां के भी चौकीदारों ने उनको वही घातक समझ कर मन्दिर के सामने ही अजमेरी दरवाजे की सड़क पर मारड़ाला। मारने वालों में चीमा की चौकी के २ चौकीदार, २ मुसलमान और १ रणजीतसिंह स्योब्रह्मपोता थे। उन सब को उसी वक्त फाँसी पर लटका के प्राणांत कर दिया । पीछे पता लगा कि संघी भूथारामजी के सहकारी अमरचन्दजी सरावगी के कहने से साहब पर सर्व प्रथम परता डूमने वार किया था अतः बाजाप्ता कार्रवाई होने पर आषाढ सुदी १३ संवत् १८९२ को अमरचंद, उसका गुमास्ता और परता डूम इन तीनों को यथा योग्य सजा दी गई और मकानों में कड़ी लगवादी । स्मरण रहे कि यह हत्या कारड कैद में बैठे हुए सँघी भूथारामजी के इशारे से हुआ था। जयपुर की प्रजा के लिए इसका बहुत ही बुरा परिणाम होता परन्तु रावल बैरीसालजी के समयोचित प्रयत्न और दयालु गवर्नमैंट की विचार शक्ति के प्रभाव से सारी (आपदा टल गई। कहा जाता है कि उस दिन आधी रात के समय रावल बैरीसालजी अपने चारों बेटों (शिवसिंहजी, लक्ष्मणसिंहजी, बहादुरसिंह जी और विजयसिंहजी) को साथ लेकर बड़े साहब के पास गए और निस्संकोच निवेदन किया कि 'ब्लेक साहब के बदले में हम पांचों आदमी आपकी सेवा में उपस्थिति हुए हैं आप चाहैं तो हमारा इसी समय प्राणांत करवा सकते हैं'। यह सुनकर

साहब अवाक् हो गए और उनकी अद्वितीय राज भक्ति से संतुष्ट होकर राज्य की सम्पूर्ण आपत्तियां दूर करवा दीं। ब्लेक साहब की हत्या के सम्बंध में ब्रुक साहब ने अपनी "पोलीटिकल हिस्ट्री" (अथवा जयपुर इतिहास) (अ. ३) में लिखा है कि 'बदमाशों ने यह सोचा था कि एजंट गवर्नर जनरल के द्वारा रावल जी को मौकूफ करवाने का निश्चित तरीका शहर में विद्रोह होने से ही सम्भव है और वैसा होने से ही राजमाता (चंद्रावत जी) की इच्छानुसार मन्त्री मण्डल चुनने की इजाज़त मिल सकती है। ऐसी तरकीब पहिले सर डेविड डाक्टर ग्राफ्टरलोनी के जमाने में भी सफल हुई थी। रावल बैरीसाल जी इस समय मरचुके थे और उनके बेटे शिवसिंह जी को अधिकार देने के लिए ए. जी. जी. और ब्लेक आए थे। ता. ४। ६। १८३५ को उसी के प्रकट करने के समय मिस्टर ब्लेक (उपरोक्त रूप से) मारे गए।' ब्रुक साहब के लेख में यह अंश सर्वथा असंगत है कि 'रावलबैरीसाल जी मर गए थे और साहब शिवसिंह जी को अधिकार देने के लिए आए थे।' वास्तव में रावल बैरीसाल जी वहीं मौजूद थे और उन्हीं को दुबारा अधिकार देने के लिए ए. जी. जी. और ब्लेक आए थे। इसके प्रमाण में (१) "पुराने कागज" (नं. ६९१) (२) ए. जी. जी. आल्विज का चैत बदी १३ संवत् १८९४ का खुद का पत्र (३) "खाता बही" (नं. ३४-६९८) और (४) जयपुर पब्लिक लायब्रेरी (पुस्तकालय) की लगभग सौ वर्ष पहिले की " जयपुर ट्रायल्स" "जयपुर अभियोग निर्णय" आदि हैं जिनके देखने से स्पष्ट प्रकट हो जाता है कि 'रावल बैरीसालजी को संवत् १८९२ के चैतमें दुबारा मुसाहिबी मिली थी जिस के सम्मान में राज से हाथी शिरोपाव तथा राजमाता चन्द्रावतजी, भटियानीजी, दूसरे भटियानीजी, सातवें भटियानीजी, मेडतणीजी, चांपावत जी, तँवरजी, उदयभाणोतजी, खुजा-णोतजी और राणावत जी आदि के सौ सौ रुपए और एक एक दुशाला और राजभक्त रैयत के, नजरों के लग-भग अठारह सौ रुपए आए थे और वह संवत् १८९४ के जेठ सुदी ४ दीतवार को पहर दिन चढ़े परलोक पधारे थे।'

(१०) रावल जी को दुबारा अधिकार मिल जाने से संघी जी की

कुजीव पार्टी फिर नाराज होगई और उसने रावलजी के शासन विधान में विघ्न डालने का षड़यन्त्र फिर जारी कर दिया जिसमें नाम दूसरों का, काम कुजीवों का और बदनाम रावल जी को करना था। किन्तु रावल जी महा बुद्धिमान दूरदर्शी मनुष्य थे अतः उनपर कुजीवों की कुचाल का कोई असर नहीं होसका। इधर रावल जी प्रधान मन्त्री और उधर ठाकुर लक्ष्मणसिंह जी प्रधान सेनापति थे इस कारण जहां कहीं कोई उत्पात करता तो तत्काल उसको यथा योग्य दण्ड दे दिया जाता था। संवत १८९३ में मनोहरपुर राव जी के (दासी पुत्र) चिमनसिंह ने जयपुर राज्य के अन्तर्गत साहीबाड़ को दबा लिया था। उस को वापिस लेने के लिए राजकी अनुमति मिलते ही लक्ष्मणसिंहजी मौके पर गए और चिमनसिंह को परास्त कर साहीबाड़ को जयपुर राज्य के अधिकार में किया। "पुराने कागज" (नं० ३५) से सूचित होता है कि इस अवसर से "नौबतखाना" * शुरू हो गया था संवत् १८९४ में बैरीसाल जी का वैकुण्ठ बास होगया पीछे शिवसिंहजी को उनका पद प्राप्त हुआ उस समय भी कुजीवों के कुचक्र चल ही रहे थे इस कारण मिस्टर रास ने शिवसिंहजी तथा लक्ष्मणसिंह जी के सामने यह मंतव्य पेश किया कि (१) या तो हम यहाँ से अलग होजावें या (२) हमारा एजेंट यहाँ रहा करे अथवा (३) रिजेंसी कौंसिल स्थापन की जाय, इनमें एजेंट का रहना सर्वमान्य समझा गया। उन दिनों इस देश में (१) जयपुर का (२) जोधपुर का (३) माधोपुर का (४) अजमेर का (५) भोजपुरी (६) घटसून्या (७) कालूँड़ी (८) बड़ीकल का (९) नया बट्टा का (१०) चीतोड़ी (११) चाँदोड़ी और (१२) करौली का रुपया चलता था। इनमें कोई चौथाई कोई आधा और कोई पौंण मूल्य का था। ऐसे रुपए यथा योग्य बट्टा से चलते थे। संवत १८९६ के माघ में राजमाता चन्द्रावत जी अपने पुत्र

* "नौबतखाना" दुंदुभीगृह अथवा नक्कारखाने का ही नाम है विशेषता यह है कि इसमें नक्कारों की अपेक्षा नौबत बहुत ही बड़ी होती है और उसका उच्चघोष बहुत दूर तक सुनाई देता है कई एक स्थानों में प्रातः ५ बजे, सायं संध्या समय, रात के १२ बजे और रवि या किसी भी नियमित वार के दिन प्रति पहर में बजाया जाता है।

रामसिंहजी को लेकर सामोद मावल्यों * के गए थे। वहाँ चौमूँ सामोद की ओर से सवारी आदि का प्रबन्ध किया गया था। इसी वर्ष (संवत् १८९६-चैत बुदी १) को उदयपुर के महाराणा सरदारसिंहजी चौमूँ पधारे थे और लक्ष्मणसिंहजी के आतिथ्य सत्कार को आदर सहित ग्रहण किया था। "बही खाता" (नं. ७०६) के लेखानुसार उनके साथ में शूर, सामन्त, सहगामी सेवकगण हाथी, घोड़े, पालखी और सेना समूह आदि सैंकड़ों आदमी आए थे और उनके आगत स्वागत में अनेक प्रकार के फल-फूल, साक-पात, मेवा-मिठाई और बहुमूल्य वस्त्राभूषण वर्ते गए थे। उन दिनों बाजार भाव से आटा १) का ४५ सेर, गीहूँ १।) मण चीनी ऽ७ मिश्री ऽ६॥ बूरा ऽ६॥ पतासा ऽ६॥। लाडू ऽ८ पेड़ा ऽ५ पेठो ऽ६, तेल २२ सेर तमाखू २१ सेर, चावल २१ सेर, रुई २२ सेर, भैंस का चमड़ा लम्बा पूरा नग १ साढ़े दस आने का पैसे १) के ३० और तोल ८४ तोला भर का १ सेर था। पहिले लिखा गया है कि 'कई कामों में गड़बड़ होती रहने से गवर्नमेंट ने रिजेंसी कौंसिल स्थापन की थी जिस में सामोद के रावलजी तथा धूला के रावजी आदि थे। इन लोगों के संमान के लिए यह शिष्टाचार किया जाता था कि काम करते समय इनके पास महाराज के अङ्ग का अँगोछा, कमर का कटारा, हाथ की तलवार और नामकी मुहर रहती थी। इस विषय में ब्रुक साहब ने अपनी "पोलीटिकल हिस्ट्री" (अ० ३) में लिखा है कि 'रानी चन्द्रावतजी ने रिजेंसी को कमजोर सूचित करने की इच्छा से मेघसिंहजी को इशारा करके नागों को बहका दिया और खङ्गारोतों को भड़का कर बागी बना दिया। तब ठाकुर लक्ष्मणसिंह जी ने उन पर चढ़ाई की और दूधू के समीप जाकर उनको पूर्णतया परास्त किया।' इस अवसर में एक नागास्वामी ने लक्ष्मणसिंहजी को लिखा था कि 'आप

* "मावली" सामोद के समीप खोला के जलाशय पर एक मकान में ७ बहिनें चित्ररूप में पुजती हैं। माघ और भादवा के शुक्लपक्ष में इनके यहां हजारों स्त्रियां अपने गोद के बच्चों को लेकर जाति दिवाने के लिए प्रतिदिन जाती हैं। जो वहाँ नहीं जासकतीं वे स्थानीय मावली के जाकर संतोष करती हैं।

नागों की रक्षा कीजिए और उनकी परगह बढ़ाइए। ईश्वर आपका प्रताप बढ़ावेंगे।'

(११) संवत् १८६६ ता० १४ अगस्त सन् १८३१ को पूर्वाधिकारी की बदली होजाने पर मिस्टर थर्सबी जयपुर के रेजीडेंट नियुक्त हुए। इनके संबंध में "जयपुर हिस्ट्री" (अ. ५) तथा "पोलीटिकल हिस्ट्री" (अ. ४) में जो कुछ लिखा है उसका सारांश यह है कि 'थर्सबी साहब उदार, अनुभवी, नीतिज्ञ और दूरदर्शी अंग्रेज थे उन्होंने रावल शिवसिंहजी तथा ठाकुर लक्ष्मणसिंहजी की सम्मति एवं सहयोग से जयपुर के हित निमित्त अच्छे अच्छे कई काम किए थे। इधर नाथबांधवों का प्राधान्य और उधर साहब बहादुर का सौजन्य, दोनों सोना और सुगन्ध थे। इस दैवदत्त सुयोग से जयपुर की पूर्व संतापित प्रजा को परम संतोष मिला इन लोगों ने फौजों का फिजूल खर्च कम किया, निरर्थक अस्त्र शस्त्र बेच दिए, अधिक तनख्वावालों को अलग किया सेटिलमेंट (प्रबन्ध) का) महकमा कायम किया निरर्थक जीविका खालसे की, हाथ खर्च की मात्रा घटाई, आय या व्यवसाय वृद्धि के काम शुरू किए, देय करके ३९ लाख और कर्ज के ४६२८९९९ गवर्नमेंट से माफ करवाये, देय करके नियमित ८ लाख को आधा करवाया, उस समय राज्य की आमदनी २३०२०६१ थी और खर्च ३२४०००० था उसको २५-२८ लाख आय और २०-२२ लाख खर्च ठहराया। ४१९५६ सिलह पोशी सिपाहियों को घटाया और शेखावाटी की फौजों के खर्च को देय कर में भरवा दिया। कितना भारी दुस्साध्य या असम्भव काम था। उस को नाथबांधवादि के सानुरोध आग्रह करने पर उदार थर्सबी ने दो ही वर्ष में सफल कर दिया। इस विषय में स्वयं थर्सबी ने सूचित किया था कि "बमूजिब हिदायत साहब बहादुर कलां राजपूताना के बड़ी खुशी के साथ वाकिफ करता हूँ कि यह परम लाभ और असंभव सफलता ठिकाने चौमूँ और सामोद की कोशिशों से हुई है।" "पुराने कागज" (वर्ग ५ नं० ३३) में उपरोक्त कामों की सफलता के संबन्ध में लिखा है कि संवत् १८९८ के भादवा वुदी १ को जयपुर राजप्रसाद के 'सुखनिवास' में एक

भारी दरबार हुआ था, उसमें ताजीमी सरदार, खाश चौकी सरदार और दीवान मुसद्दी आदि सब इकट्ठे हुए थे और सरकार गवर्नमेंट की ओरसे सदर लैंडनें थर्सबी साहब के मार्फत माफी आदि का जो खरीता (अर्थात् प्रमाण पत्र) भेजा था वह पढ़ा गया था। उसमें लिखा था कि 'हमने यहाँ (जयपुर) का जमा खर्च देखा तो राज में बहुत टोटा नज़र आया, यह अदा नहीं हो सकता। इसलिए सरकार कंपनी की व महाराज की दोस्ती के और राज की सरसब्जी के विचार से हुक्म हुआ है कि जो ४० लाख का मामला अबतक का था सब माफ हुआ। इसके अतिरिक्त आगे जो ८ लाख लगते थे उसमें अब ४ लाख लिए जायँगे साँभर से भी सरकार कम्पनी का दखल उठा लिया जायगा और शेखावाटी में जो ज्यादा खर्च है उसको भी कम किया जायगा।' इस अभूतपूर्व खुशी के हर्ष में उपस्थित सभी सरदारों ने महाराज की नज़र की और ठाकुर लक्ष्मणसिंहजी वा रावल शिवसिंहजी ने कहा 'कि- यह काम बहुत कठिन था परन्तु हजूर के प्रताप से पार पड़ गया।' इसके उत्तर में अन्दर से राजमाता महाराणी चन्द्रावतजी ने फरमाया कि 'आज के काम का बीज तो रावल बैरीसालजी और ठाकुर कृष्णसिंहजी ने बोया था और सफल थे दोनों सरदार (शिवसिंहजी और लक्ष्मणसिंह जी) कियों थे? जिस भाँति ज्यादा भरोसे के हो उसी भाँति राज की सेवा में भी सदैव ध्यान रखते हो।' अस्तु। दरबार बरखास्त हुआ और सब लोग यथास्थान पधार गए। इसके सिवा थर्सबी साहब ने न्याय और शासन विभाग जो अब तक एक थे उनको अदालत और फौजदारी के रूप में जुदे जुदे कायम करवाए। इसके बाद—

(१२) जयपुर राज्य की उत्तरी सीमा के प्रदेश में शासन विधान के नए कायदे कायम कराने के लिए सं० १८९८ में 'नीमकाथाणा की छावणी' स्थापन की गई। उसको सुस्थिर करने के लिए ठाकुर लक्ष्मणसिंहजी अपने दल बल सहित उस देश में गए थे। वहाँ के मुखियाओं से मालूम हुआ है कि 'पहले चोप लाटा के समीप में छावनी डालने का सूत्रपात किया गया था। वहाँ जोरावरसिंह की ढाणी के पास धूलकोट का काम भी जारी हो

गया था। किंतु पीछे उस देश के भोमिया लोगों की सम्मति के अनुसार नीमकाथाना के पास उसकी स्थापना हुई और वहीं 'सवाईरामगढ़' नामका कसबा बसाया गया।' कहा जाता है कि किसी जमाने में वहाँ एक नीम के नीचे थाना था वहीं एक चबूतरे (नीम के गट्टे) पर बैठ कर हाकिम या वहाँ का तालुकदार न्याय इन्साफ करता था। कालांतर में उस जगह बस्ती बढ़ गई और 'नीमकाथाना' उसका नाम होगया। उस छावनी की स्थापना कर के ठाकुर साहब लक्ष्मणसिंहजी ने वहाँ की जनता को जिमाया और चतुर्भुजजी डायला के मार्फ़त भोजन सामग्री आदि तैयार कराने का विधान किया।

(१३) जयपुर राज्य में "कालख का किला" विख्यात है। वह एक सीधे पर्वत की चोटी पर बनाया गया है। उसमें शत्रु का प्रवेश सहज ही नहीं होता है। उसकी चाँद बुर्ज अपना महत्व अलग रखती है। किले के समीप में पहाड़ जैसा एक टीबा है जो 'नान्हीडूँगरी' या बागड़ों के बास के नाम से विख्यात है। "शार्टहिस्टी" (पृ.१५) में लिखा है कि 'ठाकुर किशनसिंह खंगारोत, खंडेला वाले ने कालख के क़िले पर कब्जा कर लिया था उसको संवत १८९७-९८ में लक्ष्मणसिंहजी ने कैद किया और किला खाली करवा लिया। इतिहासों से आभासित हुआ है कि थर्सबी ने जो क़िलेजात का खर्च कम किया था उसको कुजीवों ने उचित नहीं माना और मेघसिंहजी के मार्फत खंडेला के उपरोक्त कृष्णसिंह तथा विष्णुसिंह को संकेत करा दिया। वह दोनों चुप चाप कालख गए और "पुराने कागज" (वर्ग ४ नं. १७) के अनुसार तत्कालीन दुर्गरक्षक भैरूंसिंह नाथावत को अलग कर के संवत् १८९७ के माँगशिर बुदी ५ शनिवार को किला में अधिकार कर लिया।' ब्रुकसाहब ने "पोलीटिकल हिस्ट्री" (अ. ४) में लिखा है कि जयपुर के तत्कालीन एजेंट थर्सबी साहब ने जयपुर की फौजों शेखावाटी सेनाओं और नाथबाँधवों के सहयोग से कालख पर चढ़ाई की और १५ नवंबर सन् १८४० को किला ले लिया।' "पुराने कागज" (वर्ग ४ नं· १७) से सूचित हुआ है कि 'उस लड़ाई में जयपुर की फौजों का डेरा

नान्हीं डूँगरी के पास था। माँगशिर बुदी १३ सोमवार को युद्ध आरंभ हुआ। जंगी तोपों से किले की दीवारों में छेद किए गए। ऊपर से दुर्गरक्षक बंदूकों की बोछाड़ कर रहे थे और नीचे जैपुर के सैनिक किले की दीवारें ढहा रहे थे। किंतु मजबूत दीवारें टूटी नहीं। तब फास्टर की सम्मति के अनुसार थर्सवी साहब ने नसीराबाद से बड़ी तोपें मँगवाने का विचार किया यह सुन कर लक्ष्मणसिंहजी के साहसी साथियों ने नान्ही डूँगरी के रास्ते से रस्से के सहारे किले में प्रवेश किया और पौष के अमावश की रात्रि में किले वालों पर धावा करके चाँद बुर्ज में कब्जा कर लिया यह देख कर थर्सवी साहब बड़े हर्षित हुए और उसी चाँद बुर्ज में बैठकर लक्ष्मणसिंह जी के प्रति संतोष प्रकट किया। उस अवसर में २ खंगारोतों सहित कृष्णसिंह और मेघसिंह को कैद किया किंतु कृष्णसिंह जयपुर पहुँच के छुरी से अपघात कर माघबुदी २ दीतवार को मर गया। उस युद्ध में जयपुर के ३०० आदमी मरे थे। मेजरफास्टर जो अंग्रेजी फौज के अफसर थे अपने दो पुत्रों सहित घायल हुए थे और बक्षी चांदूलाल जी जो लक्ष्मणसिंहजी के प्रधान थे वह भी ज़ख्मी हुए थे। "जनश्रुति" में विख्यात है कि 'युद्ध के अवसर में जंगी तोपों के लिए ज्यादा बारूद की जरूरत हुई तब आमेर के समीप अमरा की गढ़ी के खजाने से दारू मँगवाई गई। लाने के लिए चौमूँ के चतुर्भुज जी डायला गए और जंगी सामान ले आये।' संघी रूपचन्द रामलालजी ने जो उस युद्ध में मौजूद थे "आत्म परिचय"(पृ०९) में लिखा है कि 'उस युद्ध में चौहान भी शामिल हुए थे उनकी सेवा से साहब तथा सरदार बहुत संतुष्ट हुए। पीछे सरदार स्वदेश चले गए तब रामलाल ने किले का जखीरा वा सरंजाम जयपुर भिजवाया और वहाँ के लोग जो भाग गए थे उनको बुलवाकर बसापत करवाई'। 'कालख विजय' के बाद ठाकुर साहिब लक्ष्मणसिंहजी ने संवत १८९७ चैत बुदी ७ को थर्सवी साहब को चौमूँ ले जाकर बड़ी धूम धाम से उनका स्वागत किया और "पुराने कागज़" (नं० ७०७) के अनुसार उनको २ दिन तक चौमूँ रख कर मैत्री भाव बढ़ाया और उदारता पूर्ण वर्ताव के साथ उनको बिदा किया लोक प्रसिद्धि में उनका

नाम 'तसर्वीर साहब' था। और उन्होंने जयपुर राज्य का अपूर्व हित साधन किया था। अस्तु।

(१४) महाराज जयसिंह जी (तृतीय) के जमाने में जयपुर के अन्दर अफगानी पठानों का एक समूह रहता था। वह महाराज बड़े मान-सिंह जी की कावुल विजय के बाद संवत १६४५ में यहाँ आया था। पराजित होने, गरीबी धारण करलेने और सर्वथा राजभक्त हो जाने से राज ने उनको यहां आश्रय दे दिया था। सैंकड़ों वर्ष से बड़ी शांति और सानुकूलता से रह कर कई पीडियां विता देने से वे यहां के से ही होगए थे। उनके सीधे-सादे वर्त्ताव से कभी यह स्वप्न भी नहीं आया था कि किसी दिन ये 'पूणी के सांप' बन जायेंगे अथवा 'ठंडी राख के अँगारे' हो जायेंगे। किंतु कुजीवों के फंदे में फँस कर थोड़ी देर के लिए वे वैसे होगए थे "जयपुर हिस्ट्री" आदि के लेखानु-सार संवत १९०० में रावल जी को साथ लेकर धर्सवी साहब खेतड़ी गए थे। लक्ष्मणसिंहजी उनका काम करते थे। ऐसे ही अवसर में पठानों ने अपना उग्ररूप धारण किया। रात का समय था, मोरी दरवाजे बंद हो गए थे। जयपुर की जनता आधी से अधिक सोगई थी, राजपरिवार अपने महलों में थे, ठाकुर साहब लक्ष्मण-सिंहजी अपनी हवेली चले गए थे। और रावल शिवसिंह जी दौरे से वा-पिस आए ही थे। ऐसे मौके में जलेबी चौक के अन्दर अकस्मात् ही बन्दूकों के फायर होने लगे और गोलियों का भड़ भड़ाहट सुनाई देने लगा उसको सुनते ही शहर के आदमी भय भीत दशा में भगे और रावलजी को हाथों हाथ सूचना दी तब उन्होंने प्रधान सेना पति ठाकुर लक्ष्मणसिंह जी को कह-लाया कि 'वह घटना स्थल में पहुँच कर दुष्टों का अति शीघ्र दमन करें।' यह सुनते ही ठाकुर साहब ने समीपी सवारों को साथ लेकर महाराज के महलों में जाने को प्रस्थान किया। किंतु वहां प्रत्येक खिड़की दरवाजे बन्द थे और अन्दर हाहाकार होरहा था इस कारण गोविंद देव जी की ड्योढी के रास्ते से चन्द्रमहल में होते हुए अ-कस्मात ही अफगानियों के समूह में जाकर उनको घेर लिया और अपने सुतीक्ष्ण खड्ग से उनको गाजर मूली

की तरह काटना शुरू कर दिया। बात की बात में वे सब मारे गए। अंत में अनुसंधान से मालूम हुआ कि यह भीषण हत्याकाण्ड कुजीवों की कुमंत्रणा मानने से ही हुआ है अतः प्रभात होते ही उत्पातों के मुख्य प्रवर्तकों को देश निकाला दिया, रायचन्द हलकारा को फाँसी पर चढ़ाया और मानसिंह चन्द्रावत को आठ वर्ष जेल की सख्त सजा दी। इस घटना को "ब्रुक साहब" ने 'बलवा' बतलाया है। "वीर विनोद" (पृ० ९३) में इसको 'काबुलियों का युद्ध' सूचित किया है "जयपुर हिस्ट्री" में इसे 'अफगानी युद्ध' माना है और "जयपुर की जनता" में यह "ठोवरयों की लड़ाई" के नाम से विख्यात हुआ है। इस संबन्ध में 'चंद कवि' (जो उस जमाने में मौजूद थे) ने लिखा है कि 'आए दूरदेश ते-पठाए काल किंकर के, छाये छोड़ि काबुल लजाये निज खेत को; धाये कूदि अन्दर-सिखाये भूप मंदिर में, बंदर लों मूढ़ ततकाल तोरि सेत को। चाह के सुनत चढ़े-चौमूँ नरनाह 'चन्द', श्रोणित के रंग में रँगी है भूमि रेत को; मेवा खाय माते-मारे मुगल पठानन को, मेरे जान दिया था कलेवा धूम्रकेतु को ॥ १॥' इससे स्वतः आभासित होता है कि उन्होंने दूसरों के भड़काने से राज प्रासादों में यह उत्पात किया था। अस्तु।

(१५) संवत् १९०१ में थर्सवी साहब चले गए थे और उनकी जगह जोधपुर के एजेंट लेडलो साहब आ गए थे। यहाँ आकर उन्होंने सर्व प्रथम "पोलीटिकल हिस्ट्री" (पृ. ४५) के अनुसार सती होना बन्द किया, सद्जायी बच्चियों का अपघात रुकवाया, चारण भाटों का बेहद त्याग वर्जित किया, राज्य में अनेक जगह बंधे, कूए और तालाब बनवाए, अनेक स्थानों में स्कूल कालेज अस्पताल और सड़कें खुलवाईं और अमानीशाह के नले पर विलायत के कारीगरों से ३॥ लाख की लागत का पक्का बंधा बँधवाया, (जो १० वर्ष बाद बरबाद हो गया) इन कामों से उनका यश बढ़ा और अंशतः सुधार हुआ। किंतु भूल भलाई में भी हो ही जाती है और वह लेडलो से भी हुई। उन्होंने यहाँ आकर कई एक नए विधान ऐसे बनाए जिनमें यहाँ के सामन्तगण पूर्णतया सहमत नहीं हुए। अतः इस प्रकार

के वैमत्य को देखकर लक्ष्मणसिंहजी चौमूँ चले गए। कहा जाता है कि उनके साथ में कई एक बुद्धिमान व्यक्ति भी गये थे और उनके जाने से राज के बहुत से काम रुक गये थे। इस कारण "पुराने कागज" (नं. ७२५) के अनुसार विवश होकर लेडलो साहब ने चौमूँ से शिवबख्श जी पुरोहित जैसे प्रवीणतम. न्यायाधीशों को बुलवाया और अदालत के अटके हुए कामों को सुधरवाया इस संबंध में ब्रुक साहब ने अपनी "पोलीटिकल हिस्ट्री" (पृ. ४७) में यह सूचित किया है कि ठाकुर लक्ष्मणसिंह जी में अनेक प्रकार के अद्वितीय गुण होने से लेडलो साहब ने कहा था कि 'ठाकुर साहब आत्माभिमानी प्रतिभा सम्पन्न, प्रभावशाली पुरुष हैं। जयपुर राज्य की सेना के सर्वोच्च अध्यक्ष होने की हैसियत से आप अपने अभिमत निःशंक सिद्ध करते हैं कार्य साधन में निर्भीक और प्रवीण हैं। इनके आतंक से अकुलाकर मेघसिंह डिग्गी चला गया और यहाँ गवर्नमेंट की ओर से जो एजेंट आते हैं वे भी सशंक रहते हैं।' अस्तु ऐसे गुण होने से उनका आदर सहित फिर आवाहन हुआ। "पुराने कागज" (वर्ग ४ नं. ६) से विदित होता है कि 'सं. १९०३ में लक्ष्मणसिंहजी हरद्वार गए थे। साथ में मुरतब, लवाजमा, सरदार लोग, सेना, सेवक और सवारी आदि सैकड़ों का समुदाय था। रास्ते में किसी प्रकार की रोक टोक या असुविधा न होने के लिए जयपुर के सर्वोच्च अधिकारी अंग्रेजों ने एक व्यापक परवाना दे दिया था और साथ में अपने यहाँ का चपड़ासी भेज दिया था। यात्रा के निमित्त यहाँ से बैसाख सुदी ४ को रवाना हुए। पूर्न्यू के स्नान किये। गो, भू, हिरण्य और रजतमुद्रा आदि का दान दिया और जेठ सुदी में वापस आ गए। यहाँ आए पीछे लक्ष्मणसिंहजी ने पूर्वोक्त परवाना आदि के लिए लेडलो साहब वगैरह को धन्यवाद दिया और रास्ते में गवर्नमेंट के द्वारा उपस्थित किए हुए संपूर्ण प्रकार के सुख साधनों की सराहना की "जयपुर हिस्ट्री" (अ. ५) आदि से आभासित होता है कि 'संवत् १९०३ में ११ वर्ष के सुकुमार महाराज रामसिंह जी को सैनिक शिक्षा शुरू होगई थी। कसरत करना, शस्त्र चलाना, भाला मारना, लाठी फेंकाना और देशी खेल

खेलना आदि भी उनको सिखाया गया था और विद्याभ्यास के लिए आगरा से पंडित शिवदीन जी भी आगए थे।

(१६) संवत् १९०४ में लक्ष्मणसिंह जी की बड़ी बाई जड़ावकुँवरि का विवाह हुआ था फेरे फागण बुदी ७ शनिवार के थे और काम-काज पौष सुदी १२ मङ्गल से शुरू हुए थे। विवाह के आयोजन उच्च श्रेणी के थे। इस काम के निमन्त्रण पत्र १ महाराजा साहिब जयपुर को, १ राजमाता जैपुर को, ९ माजी साहिबाओं को, १५ जोधपुर- उदैपुर- बीकानेर और कोटा बूँदी आदि के राजा महाराजा या महाराणाओं को, ७ स्थानीय अँग्रेज अफसरों को, ६ यवन सरदारों को, ६४ भाई बेटों को, ४९ सन्त महन्त राजगुरु या पूजनीय पंडितों को, १८ ख्वाहीसगों को, १७ घनिष्ठ व्यवहारियों को, २२ सेठ साहूकारों को, ८ कमानों को, ९ रिसालदारों को, ५ किलादारों को, २१ चारण भाट बड़वा या बारहटों को और कई एक अपने यहां के मित्र मुलाकाती या मुलाजिमों को दिए थे। निमन्त्रण पत्रों के कागज-स्याही कोथली-लिफाफे-खाम-मुहर और लेख सैली पद मर्यादा या सम्मान रक्षा के अनुसार जुदे जुदे रूप रङ्ग आकार प्रकार या ढँग के थे। विवाह चौमूँ हुआ था। व्याहने के लिए झालावाड़ (झालरा पाटण) के राजराणा मदन सिंहजी आए थे। साथ में सब श्रेणी के सरदार थे। बांन के दिन ४६ मण घूघरी बांटी गई थी। मेल (मित्र भोज) में सब जातियों के सम्पूर्ण नर नारी जिमाए गए थे। बरात के लिए विविध प्रकार की भोजन सामग्री बनी थी। उसके लिए ७ सौ मण चीणी, २ सौ मण मैदा, ४० मण छुहारे, ८ मण खोपरे, ४ सेर केसर, १० सेर इलायची, यथेच्छ घी मीठा और २ मण मसाले लगाये थे। चारा, दांणा, घास, फूँस अमल, तमाखु और लकड़ी आदि के ढेर लगवा दिए थे। १०० रुपए की ३ लाख पत्तल आई थीं। कोठयार (१ किले में, १ रावला चौक में, १ बाजार में और एक बरात के डेरे) में कुल ४ थे। इनके सिवा पेट्या सीधा या फुटकर सामान के लिए एकाधिक अलग कोठयार थे। नित्य प्रति हजारों आदमी भोजन करते थे। विवाह के बाद ५०० मण मिठाई बची थी वह जहाँ तहाँ देने

आदि में बर्ती गई थी। विवाह के आगत स्वागत सम्मान बिदागी दहेज त्याग इनाम या भेंट आदि में लगभग २ लाख लगे थे। "पुराने कागज" (वर्ग ५ नम्बर ११७) के लेखानुसार महाराजा साहिब जयपुर की ओर से १०५००) दश हज़ार पांच सौ आए थे और इसी प्रकार अन्य राजा महाराजा राज रानियां रईस या सेठ साहूकार आदि ने भी भेजे थे। इस विषय की विशेष बातें "बही खाता" (वर्ग ५० नम्बर ८५०) आदि में दी गई हैं। अस्तु। इसी वर्ष में पूर्वोक्त पक्के बंधे से शहर में नल का जल या टूँटी का पानी आया था। इसकी व्यवस्था इंजीनियर लेफ्टिनेंट माइनर ने बनाई थी और इसी वर्ष में लेडलो साहब की बदली होगई थी। विवाह में आप भी आए थे और देहात में आपकी विख्याती लड्डू नाम से हुई थी। अस्तु।

(१७) संवत् १९०५ में इस देश में अनावृष्टि के कारण अकाल पड़ा था। प्रजा के संरक्षण के लिए जयपुर राज्य ने समयोचित सूद पर दो लाख रुपए उधार मँगवाए थे। चौमूँ के ठिकाने में भी ५००१) गंगाविशन जी दुसाद से और १२५०००) वन्नी चाँदूलालजी के मार्फ़त आए थे। "पुराने कागज" (नं. ७१८) के अनुसार उनका उपयोग अकाल पीड़ितों की सहायता और विवाहादि के देय ऋण में किया गया था और प्रमाण में हाड़ौता आदि की आय तन्निमित्त करदी गई थी। संवत १९०५ में दिल्ली से लो साहब जयपुर आए तब उन्होंने "बुक" के लेखानुसार कहा था कि 'नाथबांधवों की अनुपस्थिति से विशेष कर हमारी हानि हुई है।' (अतःशाशन व्यवस्था में शिवसिंहादि का सहयोग ही समुचित है।) ऐसा ही किया गया और शिवसिंह जी को बुला लिया। संवत् १९०६ में लक्ष्मणसिंह जी ने "पुराने कागज" (नं. ७२१) के अनुसार चौमूँ ठिकाना की जागीर के गाँवों में खेतीबारी आदि का सुधार किया था। उसके लिए सब जगह के कृषकों को खाद-बीज बैल और जमीन आदि के लेने लाने में सहायता दी थी और इस विषय में अनुकूल सुधार होने के तरीके बतलाये थे। इस प्रकार के कामों की व्यवस्था आषाढ सुदी १५ को पूर्ण हुई थी। संवत् १९०७ में बीदावत जी (मा साहिबा) का बैकुंठ बास हुआ

था। भाद्वा वुदी ७ मंगलवार को उनका नुकता हुवा। उसमें कुल ५३८६) खर्च हुए थे। ऐसे अवसरों में चौमूँ सामोद के ठिकानों में शोक निवृति के दस्तूर की रंगीन पाग दी जाती हैं। अतः बीदावत जी के अवसर में वैसी पाग १५ ब्राह्मणों को, ४८ भायप वालों को, ६६ ठाकुर लोगों को, ४१ ओहदे-दारों को, ३१ खवास धाभाइयों को' २६ सागिर्द पेशे वालों को १८ सामोद ठिकाने के मुलाजिमों को, और २३ सिवाय सीगा वालों को दी गई थीं। कुल पगड़ी २७१ थीं और ७३८) के मूल्य में यथायोग्य मँगवाई गई थीं। नाम-धामादि के विशेष विवरण "बही खाता" (नं. ७२६) से विदित होसकते हैं। इन दिनों विशेष कर शाह वंश के रावतों का प्राधान्य था। संवत् १९०८ में शाह रामनारायण जी रावत काम करते थे। छोटे बड़े सब काम इनके अ-धिकार में आरहे थे। संवत् १९०९ में लक्ष्मणसिंहजी की दूसरी माता ऊदा-वतजी का बैकुण्ठ बास हुआ था। उस समय भी यथापूर्व दान पुण्य नुकता आरा और शोक निवृति के काम यथो-चित रूप में कि गए थे। संवत् १९१० में जयपुर के विख्यात मन्त्रशास्त्री महर्षि मनवाजी के पुत्र चौमूँ आए थे। उनदिनों लक्ष्मणसिंहजी चौमूँ ही थे। मन्त्र शास्त्र के सदनुष्ठानों में उनका बहुत ज़्यादा विश्वास था। उनके जमाने में नैतिक और नैमित्तिक किसी भी देवी देवता का जप जाप पूजा पाठ या होम यज्ञादि होते ही रहते थे और वह अपने अभीष्ट कार्यों के आरम्भ (और दैवात् उस समय न बन सके तो समाप्ति में भी) सांगोपांग सदनुष्ठान अवश्य कराते थे। अतएव मनवाजी के पुत्र को अपने यहां रख लिया और आँतरिदेवी के मन्दिर में सहस्र चण्डी का प्रयोग करवाया। समाप्ति के दिन स्वयं लक्ष्मण सिंहजी उपस्थित हुए थे। पूर्णाहूति के पीछे मनवाजी को तथा उनके पुत्र को सौ सौ रुपए के दुशाले तथा एक एक हज़ार रुपए भेंट देने के सिवा चौमूँ के ब्राह्मणों का हेड़ा (महाभोज) भी किया था। .... "जयपुर हिस्ट्री" (अ. ५) में लिखा है कि संवत् १९११ में अमानीशाह के नले का पूर्वोक्त बन्धा टूटा था। पहले उसके पेंदे में पानी निकलना शुरू हुआ जब यहाँ के कारीगरों ने कह दिया कि 'यह टूटेगा' उस समय रामसिंहजी उसी पर खड़े

हुए थे। अतः देखते देखते उसकी दीवार हिली और रामसिंहजी के अलग होते ही धड़ाम से गिर गई। "पुराने कागज" (नं. ७११) में इस विषय का एक असंबद्ध पद्य है उस में लिखा है कि 'बंधे की दीवार पर खड़े होकर महाराज रामसिंहजी ने कहा कि बहुत भारी वर्षा होने की घटा चढ़ी है बंधे में पानी भरा हुआ है आश्चर्य नहीं ज्यादा जल होने से बंधा टूट जाय। अतः इसकी दोनों मोरी खोल देना चाहिए। किंतु दूल्हा नाम के इञ्जीनियर ने वैसा नहीं किया तब कार्ती सुदी १३ को पक्का बंधा टूट गया। उसके प्रबल वेग का फटकार से ३ कोस परे का शिवपुर गाँव बह जाने से वहाँ वालों का सर्वनाश हो गया अगणित जीव जन्तु बह गए सैंकड़ों मनुष्य मर गए और सब मिला कर तीन लाख की हानि हुई जिसमें छीपा विशेष बर्बाद हुए। संवत् १९११-१२ में ठाकुर लक्ष्मणसिंह जी को पूर्वानीत प्रधान सेनापति की अपेक्षा अधिक प्रतिष्ठा का मन्त्री पद प्राप्त हुआ। उसके सम्मान में राज्य से यथोचित खिलअत मिला।

(१८) संवत् १९१४ में भारत विख्यात "चौदह का गदर" अथवा "सन् सत्तावन का बलवा" हुआ। उसका प्रारम्भ फ्रांसीसी 'मेकेयर' के बीजारोपण से हुआ था। उसने भारत के हिन्दू राजाओं को बहका कर नाना धुंधु को पेशवा कायम करना चाहा था। संन्यासी के भेष में भ्रमण करने वाला 'ताँतिया टोपी' (टंट्याभील) उस काम के चलाने में फनर बन रहा था। संवत् १९१४ वैशाख सुदी १५ सन् १८५७ के मई मास की १० तारीख को सर्व प्रथम मेरठ के सिपाहियों में आग सुलगी थी। वहाँ से दिल्ली आगरा और कानपुर आदि में पूर्व निश्चित मिती को विद्रोह वन्हि के भभकाने का विचार था किन्तु लुधियाना के एक सच्चे सरदार रामपालसिंहजी की सहायता से "भारत में सर्वत्र गदर" नहीं हुआ होते होते रुक गया। इस उत्पात में नाना ताँतिया अबुल और मेकेयर मुख्य थे। परन्तु परमात्मा के विलक्षण विधानों के बंधन से विद्रोह वन्हि भड़कने के बदले बुझ गई और कुजीवों को यथा योग्य सजा मिली। गदर की आग का असर दूर तक पहुँचा था। अफवाहें उड़ती थीं कि 'भारत में गदर हो रहा है। कालों की फौजें आरही हैं। वे अनेक तरह

के अत्याचार करती हैं और शहरों को लूटकर उनकी परिस्थिति को बिगाड़ती हैं। ऐसे अवसर में अपने राज्य में शांति रखने और शहर को विद्रोह वन्हि से बचाने के लिए महाराज रामसिंहजी ने सब प्रकार के समयोचित विधान-व्यवस्था- और प्रबंध प्रस्तुत किए थे। "पुराने कागज" (नं० ७६५) आदि से प्रकट हुआ है कि 'उसी अवसर में नसीराबाद की छावणी की पलटनों में विद्रोह वन्हि भड़क जाने से वहाँ कई अंग्रेज मारे गए और कईयों को सवारों के साथ उड़ीसा भेज दिए। जयपुर में यह समाचार सर्व प्रथम एजेंट साहब की मेम के पास आए थे। उस समय एजट साहब बाहर थे और जयपुर अंजटी में जो कंपनी थी वह नसीराबाद की पलटनों की ही थी अतः उनमें विद्रोह वन्हि बढ जाने से मेम साहिबा घबड़ा गई। तब लक्ष्मणसिंहजी उनके पास गए और नागा स्वामियों की जमात के संरक्षण में मेमसाहिबा को उनके बालबच्चों को और अन्य अंग्रेजों को आधीरात के समय शहर के अंदर अपनी हवेली के पास 'माधवविलास' नाम के विशाल भवन में ले गये और उनके पास खाने पीने और आराम से रहने के सब साधन रखवा देने सिवा अपने परम विश्वाश के पहरे पूली या आदमी रखकर उनको सुरक्षित कर दिए। इसके सिवा महाराजा साहब रामसिंहजी ने अपने मंत्रियों की सम्मति के अनुसार नवाब साहिब की नई पल्टन शहर के बंदोबस्त के लिए तईनात कर दी। दो २ तीन २ सौ नागे दरवाजों पर रख दिए। चाँदपोल से घाट दरवाजे तक शहर के बाहर फौजें खड़ी करवादीं और जहाँ तहाँ तोपें रखवादीं। सब श्रेणी के सरदारों को मय जमियत के इकट्ठे कर के लक्ष्मणसिंहजी के पास हाजिर रहने का हुक्म दे दिया और स्वयं महाराजा साहब तथा लक्ष्मणसिंहजी घोड़ों पर सवार होकर यत्र तत्र (जहाँ तहाँ) दौरा करते रहे। "पोलीटिकल हिस्ट्री" (पृ.७१) में लिखा है कि उस समय जयपुर के तत्कालीन एजेंट साहब ने विद्रोह वन्हि शान्ति करने के लिए सात सौ सिपाही और १८ सौ नागे राज्यरक्षा के लिये नियत किए थे और सात हज़ार फौज साथ लेकर आप खुद बाहर गए थे।' उसी अवसर में जोधपुर के वकील ने यहाँ आकर सहायता का संदेसा सुनाया

तब उसको उत्तर दिया गया कि यहाँ की फौजें विशेष कर बाहर गई हैं अतः यहाँ आजाने से यथोचित सहायता दी जा सकती है। उसी अवसर में दूधू के वकील ने भी सूचित किया कि 'दूधू में विद्रोही दल ने उत्पात मचाया था किंतु कच्ची सरबराह कर देने से आगे चले गए।' इस संबन्ध में ठाकुर साहिब के छोटे भाई विजयसिंहजी ने लिखा था कि 'संभव है विद्रोही दल सामोद के समीप होकर आगे बढ़ेगा पीछे सूचित हुआ कि बागी फौजें परभारी चली गई और अजन्टी की फौजों ने जो उपद्रव किया था उसको लक्ष्मणसिंहजी ने दबा दिया। इस प्रकार विद्रोह की भावी भयंकरता पान फूल में टल गई और भारत में फिर व्यापक शान्ति स्थायी हो गई। एजेंट पत्नी की पूर्वोक्त सहायता से उपकृत होकर जेठ सुदी ८ रविवार संवत् १९१४ ता०२ जून सन् १८५७ को जयपुर के तत्कालीन एजेंट मेजर एडिन साहिबने लक्ष्मणसिंहजी को जो कुछ लिखा था उसका सारांश यह है कि 'मेरे पास मेम साहिबा का पत्र आया है। इस विनाशकारी संकट के समय में आपने उनकी रक्षा रखने में सच्चे आत्मीय से भी कुछ ज्यादा प्रबंध प्रयत्न या सहायता की उसके लिए मैं और मेरी धर्मपत्नी (मेम साहिबा) आपके चिरऋणी और परम कृतज्ञ रहेंगे। ऐसे भयंकर अवसर में आपने मेरे परिवार की रक्षा करने में अपनी बुद्धि विवेक दूरदर्शिता एवं भाई से भी ज्यादा स्नेह भाव या अनुराग का परिचय देकर अपने परंपरागत मान मर्यादा, महत्व या राजभक्ति आदि अद्वितीय गुणों को प्रत्यक्ष दिखला दिया है आपके धैर्य वीर्य उदारता और दूरदर्शीपने को मैं कहाँतक प्रकट करूँ। महाराज रामसिंहजी ने वर्तमान गदर जैसी प्राणांत कारिणी आँधी से सहसा उखड़ जाने या उड़ जानेवाले अगणित मनुष्यों को यथावत स्थिर रखने के लिए आप जैसे महा बुद्धिमान् मनुष्य को नियुक्त कर के बड़ी भारी बुद्धिमानी का काम किया है एतदर्थ मैं महाराज की विचार शक्ति की सराहना करता हूँ और शुद्ध हृदय से धन्यवाद देता हूँ।' इस के सिवा दो तीन पत्र इनके और २-३ पत्र गवर्नर जनरल आदि के आए थे उनमें भी लक्ष्मणसिंहजी के लोकोत्तर

गुणों का पूर्ण रूप से वर्णन किया था। जिनको स्थानाभाव से यहाँ प्रगट नहीं किए हैं।

(१६) "जयपुर हिस्ट्री" (अध्याय ५) में लिखा है कि 'संवत १९१६ में आगरा में गवर्नमेंट की ओर से शाही दरबार हुआ था। उन दिनों सड़क नहीं थी इसलिए साहब लोग हाथियों पर चढ़कर गए थे। महाराज रामसिंह जी १५ दिन पहिले चले गए थे। साथ में चौमूँ के ठाकुराँ लक्ष्मणसिंहजी और २२ ताजीमी सरदार थे। लक्ष्मणदास जी की कोठी पर डेरा हुआ था। दरबार के समय वाइसराय के बाँये बाजू पहली बैठक पर महाराज रामसिंह जी जयपुर तथा दहिने बाजू महाराज ग्वालियर बैठे थे। सन् ५७ के बलवे में महाराज रामसिंहजी की तरफ के सुप्रबंध से संतुष्ट होकर वाइसराय ने महाराज के प्रति कृतज्ञता प्रकट की और कोटकासिम का परगना दिया। इसी अवसर में ता० २१-५-१८६० ईसवी के एजेंट साहब के पत्र के लेखानुसार ठाकुरां लक्ष्मणसिंहजी को गवर्नमेंट की ओर से पुरस्कार स्वरूप ३०००) दिए गए। इसके सिवा महाराज रामसिंहजी को ३१ जोड़े बढ़िया पोशाक, १ उत्कृष्ट ढाल, १ तलवार, कई एक जड़ाऊ जेवर, चांदी की साखत के २ घोड़े और एक हाथी दिया और लक्ष्मणसिंहजी आदि सरदारों को यथा योग्य ख़िलअत पहनाया। जैपुर से अचरोल के रणजीतसिंहजी, दूधू के इन्द्रसिंह जी, घोराज के शिवसिंह जी और लावा के भक्तावरसिंहजी आदि नहीं जा सके थे अतः उनके लिए शिरोपाव भेजे गए थे। इसी प्रकार महाराज रामसिंहजी ने ३९ जोड़ा जरी की पोशाक बहुमूल्य मोतियों का कंठा, १ हाथी और दो घोड़े वाइसराय को दिये थे और ५१) मुहर ठाकुरां लक्ष्मणसिंह जी ने, ४१) पं. शिवदीनजी ने, ३१) फैजअलीखाँजी ने और २१-२१ अन्य सरदारों ने नजर कीं। इस शिष्टाचार से वाइसराय बड़े संतुष्ट हुए। अस्तु आगरा से आए पीछे लक्ष्मणसिंहजी ने राज के कामों में कई सुधार किए और जो लोग एक जगह काम कर के कई जगह की तनखा लेते थे उनको एकपर संतोष करने का सदुपदेश दिया। यद्यपि प्रधान सेनापति होने की हैसियत से लक्ष्मणसिंहजी सदा से ही सब विभागों का काम करते

आ रहे थे और संवत् १९११-१२-१३ आदि में मंत्री के काम भी किए थे तथापि महाराज रामसिंहजी ने संवत् १९१६ के मंगशिर सुदी २ को उनको जयपुर राज्य का प्रधान मंत्री नियत किया। उस समय महाराज ने उनको मुसाहब के सम्मान का सुसज्जित हाथी, उच्च श्रेणी का फर्रुखशाही शिरोपाव, एक जोड़ा बहुमूल्य दुशाला, साल का १ रूमाल, सच्ची जरी का बढ़िया ड्रेश का चुग़ा, बहूमूल्य हीरे जड़ा हुआ शिरपेच, घड़ी रखने की की डाबी और मय जंजीर के एक घड़ी दी। यह सब सामान महाराज ने अपने हाथों से लक्ष्मणसिंहजी को पहिनाया था और हाथी पर बिठा कर उनको उच्चाधिकारी बनाया था।

(२०) लक्ष्मणसिंह जी उच्चश्रेणी के सरदार थे। धर्म कर्म उपासना और कुल मर्यादा पालने में मजबूत थे। विशेषज्ञ होने से देश के राजा महाराजा महाराणा और अंग्रेज अफसर उनका आदर करते थे। धर्माचरण में वह बड़े दृढ और अपरस आचार में पक्के थे। पूजा के समय ईश्वर स्मरण में तल्लीन हुए पीछे यदि कोई अनिष्ट भी होता तो उनका मन डिगता नहीं था किन्तु अस्पर्श्य से करस्पर्श होजाने पर सचैल स्नान किये बिना उनका मन मानता नहीं था। उनकी सेवा पूजा में "पञ्च देव" (शिव-दुर्गा *- गणेश-विष्णु और

* "दुर्गाजी" आमेर की शिलादेवी की प्रतिमूर्ति हैं। ठाकुर मोहनसिंह जी ने सुदक्ष सिल्पियों से इनका तत्तुल्य नकशा बनवाया था। किसी कारण वश उस समय वह उनकी स्थापना नहीं कर सके तब पांच पीढ़ी पीछे लक्ष्मणसिंह जी ने उस कार्य को पूर्ण किया। जिस प्रकार जयपुर से उत्तर आमेर के पर्वत में शिलादेवी विराजमान हैं उसी प्रकार चौमूँ से उत्तर भोपावास की डूँगरी में यह सुप्रतिष्टित हैं। पूजा, पुजारी और पोशाक दोनों के समान होते हैं। शिलादेवी के पुजारी ही (छः महीने उनकी और छः महीने इनकी) पूजा करते हैं। राज्य से उनके और ठिकानों से इनके पर्याप्त जीविका है। नवरात्रों में यहां और वहां अगणित दर्शक जाते हैं और महाष्टमी जैसे अवसर में मेला और बलिदानादि होते हैं। दुर्गाजी की विशाल

सूर्य) प्रधान थे। वह इनका नित्य पूजन करते थे। अपने पीछे भी वह यथावत होता रहे इस अभिप्राय से उन्होंने उक्त देवों के ५ मन्दिर बनवाए थे और उनकी यथोचित जीविका नियत की थी। वह चौमूँ भक्त बिहारी जी के विशेष भक्त थे। जब कभी जयपुर से चौमूँ आते या चौमूँ से जयपुर जाते तो प्रस्थान या प्रवेश के पहले भक्त बिहारीजी के दर्शन करते थे। विशेष कर जन्माष्टमी के उत्सव में शामिल होना उनका अमिट अभीष्ट था। कारण वश कभी कुछ देर होजाती तौभी समय पर पहुँचे बिना नहीं रहते थे। एक बार उनको किसी कारण विशेष से जयपुर में ही ज़्यादा रात होगई (लोग कहते हैं कि उनकी दृढता देखने के लिए महाराज रामसिंह जी ने चाहकर देर करवा दी) तौभी वह अपने शीघ्रगामी घोड़े पर सवार होकर अपनी हवेली से चल दिए। उन दिनों जयपुर के प्रधान बाजारों में पक्की सड़क नहीं थी। टूट फूट के नले पड़ रहे थे इस कारण हवामहलों के सामने उनका घोड़ा ठोकर खागया जिससे उनके पाँव में ऐसी चोट आई कि खून वह निकला, किंतु उन्होंने कोई पर्वाह नहीं की और अर्धरात्रि में चौमूँ पहुँच कर उत्सव में शामिल हो गए। सब श्रेणी के मनुष्यों से मिलते रहने के लिए वह दिन में ३ बार दरबार करते थे। (१) प्रातः पूजा के दरबार में पण्डित, पुरोहित, पुजारी, कथाभट और भगवद्भक्त आते थे। (२) दुपहरी के राजनैतिक दरबार में मुद्दई, मुद्दायले, अभियोगी आशार्थी इन्साफ कराने वाले, सलाहगीर या नीतिज्ञ आते थे। और (३) संध्या के दरबार में अपने पराए, भाई बेटे, आश्रित अन्वेषक और अच्छी बातें जानने

मूर्ति काले पाषाण में बनी हुई है चरण चौकी में ब्रह्मा-विष्णु, महेश हैं और मस्तक पर चतुर्भुज गणेश, चतुर्मुख ब्रह्मा, त्रिनेत्र शिव, गरुडारूढ विष्णु और षडानन स्वामकार्तिक पुष्प वर्षा रहे हैं। अगल बगल में जया विजया छत्र चामर लिए खड़ी हैं। स्वयं दुर्गाजी अष्टभुजा हैं। दहिने हाथों में खड्ग-शूल-चक्र-बाण और बांयें हाथों में ढाल -धनुष- महिष शिखा और पानपात्र यथाक्रम हैं। चरणगत महिषासुर के शरीर में त्रिशूल आरोपित हो रहा है और समीप में सिंह उपस्थित है। यशोहर से महाराज मानसिंहजी जिस शिलादेवी को लाए थे यह उसकी प्रतिमूर्ति हैं।

वाले वृद्ध पुरुष आते थे। उन सब के साथ में लक्ष्मणसिंहजी यथा योग्य बर्ताव करते और अपने उत्तम व्यवहार से सब को संतुष्ट रखते थे। यह उनमें अधिक विशेषता थी कि वह प्रत्येक प्रकार के विषय विवेचन परिलेख या चिट्ठी पत्री आदि की हूबहू नकल लिखवा लेते और अपने निबंध; प्रबन्ध या मनोगत भावों को लेखबद्ध करवाते थे। इसके सिवा महाराज सवाई जयसिंहजी द्वितीय ने जिस प्रकार जयपुरी जनता की भलाई के लिए प्रत्येक प्रकार के व्रत उत्सव और सम्मेलन या मेले आदि नियत किए थे उसी प्रकार लक्ष्मणसिंहजी ने भी चौमूँ में व्रतोत्सव और आवश्यक मेलों का प्रचार किया था। पहले लिखा गया है कि 'लक्ष्मणसिंह जी प्रयोगादि पर पूरा विश्वास रखते थे।' और दैवात् उनका विपरीत फल होता तो उसे ईश्वर का संकेत मानते थे। संवत १९१७ के आषाढ़ में उन्होंने 'संतान गोपाल' का पुरश्चरण करवाया था। चौमूँ के शिवसुखजी, चतुर्भुजजी और लक्ष्मीनारायणजी आदि ११ ब्राह्मण वरणी के और ३ रसोइया, टहलवा या धावक थे। ब्राह्मणों ने पुरश्चरण का काम प्रीति से किया था और लक्ष्मणसिंहजी ने उसमें मन खोलकर धन लगाया था किंतु उसका विपरीत फल बड़ा अनिष्टकारी हुआ। पूर्णाहूति के पहले ही उनके नेत्र पीड़ा शुरू हुई जिसके असह्य कष्ट से वह अकुला गए, किंतु वरणी वालों को कहला दिया कि आप लोग कोई खयाल न करें यह ईश्वर की अज्ञात इच्छा का अमिट फल है अतः आप लोग कुंठित न हों। कैसे दृढ़ धर्मी और गंभीर मनुष्य थे। अस्तु। लक्ष्मणसिंह जी गुणज्ञ और गुणग्राहक थे। इस कारण उनके जमाने में चौमूँ में विद्या कला और व्यवसाय को विशेष उन्नति हुई थी। (१) उन्होंने स्थानीय और बाहर के विद्वानों को आश्रय देकर विद्या प्रचार किया (२) कलाविद् कारीगरों को बुलाकर प्रत्येक प्रकार की शिल्पकला को बढ़ाया और (३) व्यवसाय मार्ग को प्रशस्त कर के व्यापारियों को उत्साहित किया। उस जमाने के गणेश कवि ने "चौमूँ विलास" काव्य में उन दिनों का अपनी आँखों देखा हाल लिखा है, उससे उन्हीं के शब्दों में विदित हुआ है कि उन दिनों चौमूँ के विद्यानिरत ब्राह्मण, शौर्यप्रयुक्त क्षत्रिय, व्यवसायदक्ष

वैश्य, सेवापरायण शूद्र और सम्पत्त्युक्त पेशाकार थे। शहर में गढ़-किले, महल मकान, बाजार दूकान, गोशाला, धर्मशाला, पाठशाला, यज्ञ-शाला, बाग-बगीचे बावड़ी और देव-मंदिर आदि सद्व्यवस्थ थे और सब प्रकार के पेशावाले अपने अपने कामों में मस्त या मुस्तैद थे। उन दिनों उनके लिए कामकी कमी नहीं थी ब्योढा काम अगाऊ रहता था जिससे वे अहोरात्र उसी में लगे रहते थे। "चौमूँ-विलास" से सूचित होता है कि उन दिनों चौमूँ मेंपण्डित, पुरोहित, वैद्य, हकीम, व्याकरणी, ज्योतिषी, तामड़ायत, कथाभट, सेठ, सराफ, साहूकार, जौंहरी, कयाल, नाजवाले, घीवाले, पड़चूनी, बजाज, माली, बनजारे, कुँजड़े, भड़भूजे, तेली, तमोली, छींपी, लीलगर, नाई, दाई, कसाई, धोबी, नट, नर्तक, सपेरे, बाजीगर, भाँड, भडुवे, वेश्या, बाजेवाले, नगारची, सहनाइची, विसायती, पटवे सुनार, लुहार, खाती, कुम्हार, रैगर, बलाई, चाकर, चमार, मोची, दाई, वैद्याणी, सांलोत्तरी, महावत, सिकलीगर, कमणीगर, बंदूकिए, गोलंदाज, नालबंधे, ठटेरे, लखारे, मणिहार, हेड़ी, शिकारी, बावरया, तीरंदाज, मुनीम, दलाल, पलदार, सिलावट, चितेरे, कारीगर, सोरगर, न्यारे, और महत्तर आदि सभी पेशावाले अपने अपने कामों में चतुर परायण और सुखी थे। अब भी हैं परंतु स्थिति संख्या और ईमान में कम हो गए हैं। अस्तु लक्ष्मणसिंहजी के विषय की अधिकांश बातें "चौमूँ-विलास" "लक्ष्मणयशप्रकाश" और छंदसुधाधर" आदि के आधार से लिखी हैं।

(२१) लक्ष्मणसिंहजी के दो विवाह हुए थे। उनमें (१) शृंगार कुँवरि (बीकावतजी) महाजन के वैरीसालजी की और (२) आस कुँवरि (भटियाणीजी) आबावास-जैसलमेर के सुमेरसिंहजी की पुत्री थे। इनके १ पुत्र हुआ किंतु छोटी अवस्था में देहांत हो जाने से अँजै-राजपुरा से गोविंदसिंहजी गोद आए और उत्तराधिकारी हुए। बाई दो थीं जिनमें एक झालरापाटण और एक रायपुर ब्याही थी। लक्ष्मणसिंहजी ने अपने हाथ से कई स्मारक स्थापन किए थे। उनमें सर्व प्रथम संवत्

१८६० में अपनी माता के बनवाए हुए चौमूँ के बड़े मंदिर में भगवान् 'भक्त बिहारीजी' की प्रतिष्ठा की उस काम में चौमूँ के कर्मठनिष्ठ (ताम-ज़ायत) पण्डितों का प्राधान्य था अतः उन्होंने उसी अवसर में (सं० १८६० के ज्येष्ठ शुक्ल १३ को ब्रह्मपुरी के आराध्यदेव 'ललितबिहारीजी' की भी प्रतिष्ठा की थी। (२) सं. १८६५ में जैपुर 'कामपूर्णेश्वर' और (२) चौमूँ भोपावासकी डूँगरी में 'दुर्गाजी' की स्थापना हुई थी (३) संवत् १६०२ में चौमुँहाँ गढ के मंगलपोल पर 'गणेश-जी' का मंदिर बनवाया था और (४) संवत् १६१२ में 'शिरहबिहारीजी' तथा (५) 'काशीविश्वेरजी' स्थापन किए थे। शिरहबिहारीजी की प्रतिष्ठा के मौके में जयपुर नरेश महाराज रामसिंहजी चौमूँ पधारे थे। मोती महल में डेरा हुआ था। दो दिन रहे थे और भगवान् के भोग के लिए एक गाँव (पिरागपुरा) भेंट किया था। (६) संवत् १६१३ में जयपुर लक्ष्मण निवास महल बनवाया (७) १४-१५ में आमेर हवेली की तथा चौमूँ कृष्णनिवास की मरंमत करवाई। इसी अवसर में चौमूँ की अति विशाल बावड़ी की भी मरम्मत हुई थी और (८) कृष्णसिंहजी की छत्री बनवाई गई थी। इनके सिवा शहर का परकोटा, मंगलपोल का सुधार- रणी की पूर्ति और महाराज कुमार का मंदिर बनवाया था। ऐसे लोक हितैषी लक्ष्मणसिंहजी का संवत् १६१६ के वैशाख सुदी ५ को बैकु-ण्ठ वास हुआ। उनके विषय में किसी कवि ने यह ठीक कहा था कि "स्वामिधर्म, साँचोमतो, न्याय, नीति, निरधार, । लक्ष्मण स्वर्ग पधार के, पाँचों ले गए लार॥ १॥"

पन्द्रहवाँ अध्याय

॥ श्री ॥

नाथावतों का इतिहास ।

गोविन्दसिंहजी

(१६)

(१) संवत १९१९ के वैशाख में लक्ष्मणसिंहजी का स्वर्गवास होने पर अजयराजपुरा के ठाकुर शिवदानसिंह जी के दूसरे पुत्र गोविन्दसिंहजी उनके उत्तराधिकारी हुए। इस काम के लिए उनके दो सगे भाई (कानसिंह जी और आनन्दसिंहजी) तथा दो कुँवर रैणवाल के भी आए थे और उनके वारिसों ने महाराज के पास उनके लिए भी कोशिश की थी, किन्तु एक से अधिक उत्तराधिकारी हो नहीं सकते थे। और दोनों ठिकानों के ५ लड़कों में किसी एक को मालिक बनाने से पक्षपात की पख लगती थी। इस लिए सुविज्ञ महाराज ने न्याय सङ्गत निर्णय करने की कामना से पूर्वोक्त पाँचों लड़कों को चंद्रमहल के सामने गोविंद जी के मंदिर में बुलवाए और पुजारी जी से कहलाया कि वह भगवान् के गले की माला मौजूदा लड़कों में किसी एक को पहिना दें। यह सुन कर उन्होंने उक्त माला गोविन्दसिंहजी के गलेमें डालदी। तब महाराज ने सूचित किया कि 'भगवान् गोविन्ददेव जी की आज्ञा गोविन्दसिंह जी के लिए हुई है अतः इन्हीं को चौमूँ के मालिक माने जाँय।' ऐसा ही हुआ।

(२) गोविंदसिंहजी का जन्म संवत् १९०५ के श्रावण कृष्णा ३ बुधवार इष्ट ५३।३२ सूर्य ३।८ और लग्न २।० में हुआ था

जन्म लग्न

सू बृ शु ४
मं ५
बु ३
२
१
६ रा
श १२ के
७
९
चं ११
८
१०
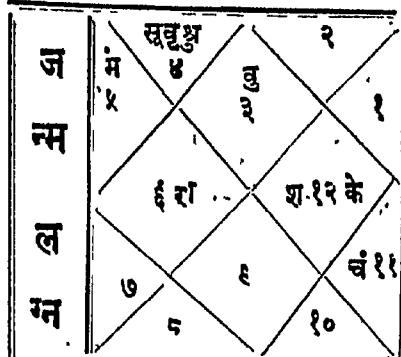
उत्तराधिकार प्राप्त हुए पीछे गोविन्दसिंहजी ने सर्व प्रथम हरिद्वार तथा गयाजी की यात्रा की और उनमें यथा-विधान तीर्थ श्राद्ध करवा के पितृऋण

से उऋण हुए। वहाँ से आए पीछे संवत् १९२० के आसोज में लक्ष्मणसिंह जी का कनागत किया। उन दिनों ऐसे कामों में खीर मालपुआ मुख्य थे इस कारण कनागत के ५ हज़ार मनुष्यों को उसी तैयारी का भोजन करवा के तृप्त किए और अपनी धार्मिक धारणा का परिचय दिया उसी वर्ष (संवत् १९२०) में उनका बिवाह हुआ था उसके लिए जोधपुर राज्य के अन्तर्गत खींवसर जाना था किन्तु उसी अवसर में महाराज रामसिंहजी द्वितीय का द्वितीय विवाह हुआ इस कारण गोविन्दसिंहजी पहिले तो महाराज की सेवा में जोधपुर गए और पीछे वहाँ से वापस आते हुए रास्ते में से ही परभारे खींवसर चले गए। वहां जाने पर उनका बड़ी धूम धाम से विवाह हुआ और उस में करीब ४० हज़ार खर्च हुए।

(३) उन दिनों चौमूँ में पढाई का समयोचित प्रबन्ध नहीं था। रघुनाथ जी, रामकुमार जी और गणेश जी लुंहाड़ा वाले जैसे जोशियों की चटशाला (या पाठशालायें) थीं और उन्हीं में आवश्यक शिक्षा दी जाती थी। अतः गोविन्दसिंह जी ने संवत् १९२४ में "चौमूँ स्कूल" कायम करके विद्या प्रचार का समयोचित विधान प्रस्तुत किया और ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, तथा वर्णेतरों के लिए हिंदी अंग्रेजी और फारसी आदि पढ़ते रहने का रास्ता खोल दिया। फल यह हुआ कि उस सामान्य श्रेणी के स्कूल में पढ़े हुए विद्यार्थी यथाक्रम और यथा समय ऊँचे पदों पर प्रतिष्ठित हुए और इस समय उनमें बी. ए., एम. ए., एल. एल. बी., शास्त्री, आचार्य, मुंशी फाजिल, डाक्टर, मास्टर, वकील बारिस्टर अहलकार- ओहदेदार और हाकिम आदि सब हैं। यदि "जन गणना" *

* "जनगणना" (या मर्दुमशुमारी) की व्यवस्था भारत में नई नहीं है। बहुत प्राचीन काल से इसका प्रचार चला आरहा है। कौटल्य जैसे नीतिज्ञ मंत्रियों के जमाने में सिर्फ मनुष्यों की ही गणना नहीं होती थी किंतु पशु पक्षी और वृक्षादि भी गिने जाते थे और उनके प्रमाण से प्रबंध सम्बंध में अनेक प्रकार की अदला बदली की जाती थी। मुगल बादशाह भी इस प्रथा के प्रेमी थे। अकबर ने अपने राजत्वकाल में संपूर्ण भारत की जनगणना करवाई थी। अंग्रेजों के आधिपत्य में संवत् १९३७ सन् १८८१ से अब जो मर्दुमशुमारी होती है इस में कई विधान ऐसे जुड़े हुए हैं जिन में संपूर्ण राष्ट्र की पूरी परिस्थिति का परिचय प्राप्त होजाता है और बहुतसी ज्ञातव्य बातें मालूम होजाती हैं।

(मर्दुमशुमारी) के हिसाब से देखा जाय तो एक लाख से अधिक आबादी के बड़े शहर के पढ़े लिखे लोगों की अपेक्षा "चौमूँ स्कूल" से निकले हुए विद्यार्थी अधिक उच्चाधिकारी हुए हैं और हो रहे हैं। अस्तु।

(४) गोविन्दसिंह जी के शुरू शासन में चौमूँ की आर्थिक अवस्था कुछ कमजोर थी। उसका कारण यह था कि एक मालिक के जाने और दूसरे के आने के अवसर में कई एक कारण ऐसे होगए थे जिनसे किसी प्रकार का नया सुधार हो नहीं सका था। अथवा अर्थाभाव के कारण कई एक ज़रूरी काम भी रुके रह जाते थे और अधिकांश कामों में कामदारों का प्राधान्य भी था अतः हर एक विषय का यथाक्रम सुधार कराने के लिए गोविंदसिंह जी ने अधिकांश काम अपने हाथ में लिए और जिन कारणों से उनको अर्थाभाव का अनुभव हुआ था उनको मिटाया। सर्व प्रथम देय ऋण से उऋण होने के लिए उन्होंने बख्शी चाँदूलाल जी के मार्फत जयपुर के सेठ मथुरादास जी दुसाद से इकट्ठे रुपए मँगवाए और उनसे कामदारों का किया हुआ कर्ज़ उतरवा के आय वृद्धि के आयोजन उपस्थित किए। कामदारों का पहिले यह अनुमान था कि धन, यौवन और प्रभुता की त्रिवेणी में खड़े होने से गोविन्दसिंह जी राज काज में ध्यान नहीं देंगे किन्तु ऐसा नहीं हुआ। उनके आरंभ किए हुए कामों को देख कर कामदार लोग दंग रह गए और विश्वास किया कि यह किसी प्रकार के हानिकारक मार्ग में नहीं जाँयगे।

(५) "पुराने कागज" (नं० ८६१) से सूचित हुआ है कि सं. १९-२३ के मँगशिर बुदी ८ शुक्रवार को जोधपुर के महाराज तख्तसिंहजी 'सितारेहिंद' होकर आगरा से जयपुर आए उस समय ठाकुरां गोविंदसिंहजी तथा रावल विजैसिंहजी से मिले थे। उस वक्त आपस का शिष्टाचार पुरानी परिपाटी का हुआ था। महाराज रामबाग के बड़े महल में ठाट-बाट का दरबार करके बिराजे थे। दोनों सरदार अपने ५०-५० सहगामियों सहित सवारी लगाकर गए थे। अति समीप पहुँचने पर महाराज ने खड़े होकर उनका अभिवादन

ग्रहण किया। दोनों सरदारों ने महाराज की 'बगलगीरी' की अर्थात् उनके अंग को दोनों हाथों के बीच में लेकर मिले और महाराज ने उनकी 'कुरब' की अर्थात् उनके कंधों पर दोनों हाथ रख दिए। बाद में नजर नछरावल होने के अनन्तर दरबारी कायदा के अनुसार महाराज के अति समीप बाँये बाजू ठाकुर साहब और उनके सामने रावल साहब बैठ गए। उसके पीछे आपस की राजी खुशी पूछने के बाद महाराज ने इन दोनों ठिकानों के महत्व तथा गौरव को प्रकट किया और सरदारों की बहुत कुछ बड़ाई की अन्त में उन्होंने अपने शब्दों में सूचित किया कि 'आज का मिलबा सूँ म्हांकी तबियत निहायत खुश हुई छै। चौमूँ सामोद का ठिकाणा कै और जोधपुर कै ठेटसूँ पीढ्यांवार व्योहार छै। काम काज तथा खुशी का समाचार लिखबो करो। बर वक्त वठ्यांसूँ भी खास रुक्का आता रहैगा।' इसके सिवा उन्होंने अपने खास आदमी महता विजैसिंहजी की जवानी रावत बालमुकन्दजी की मार्फत यह भी कहलाया कि 'इन ठिकानों से हमारा इतना बड़ा व्योहार है कि हम अपनी ओर के खास रुक्के में किसी को जुहार नहीं लिखते हैं किन्तु इनके लिए जुहार शब्द का उपयोग अवश्य किया जाता है।' अस्तु।

(६) "पुराने कागज" (नं० ८६५) से सूचित हुआ है कि 'सं० १९२५ के पौष में गोविंदसिंहजी ने चौमूँ के व्यापारियों की असली हालत का अनुसंधान किया था। उससे मालूम हुआ कि 'उन दिनों चौमूँ में ध्रुवपोल दरवाजे का 'पुराना बाजार' लक्ष्मीनाथ के दक्षिणी प्रांत का 'त्रिपोलिया बाजार' राजपंथ का 'चौपड़का बाजार' मध्य भाग का 'ब्रह्मपुरीबाजार' चौपड़ के उत्तरी प्रांत का 'कटले का बाजार' होलीदरवाजे का 'मणिहारी (या पड़चूनी) बाजार' और विजयपोल का 'नया बाजार' विख्यात थे जिनमें (कोणे, खंदे और चौराहे आदि की सब मिलाकर) ४९९ दूकानें थीं और उनमें सब प्रकार के सामान का लेन देन या क्रय विक्रय हो रहा था।' उनमें गोविंदसिंहजी को जो कुछ त्रुटि, न्यूनता या असुविधा नजर आई उसे

दूर की और व्यापारियों को यथोचित सम्मति सहायता या आश्वासन दिया इसी प्रकार शासन संबधी कामों में भी उन्होंने समयोचित सुधार करवाए थे। प्रजा की प्रत्येक प्रकार की पुकार सुनते रहने के लिए उन्होंने अदालत फौज़दारी और तहसील आदि के काम जानने वाले पढ़े लिखे अनुभवी हाकिम रखकर प्रजा को हर तरह से शांत सुखी और प्रसन्न करने का प्रयत्न किया और सत्पात्रों को आश्रय तथा कुपात्रों को दण्ड दिलवाया। इसी प्रकार कृषकों की दशा सुधारने के कामों में भी ध्यान दिया था। उसके लिए "पुराने कागज़" (नं० ४१५) के अनुसार पहले निश्चय किया कि जागीर की कोठियों में बख्शीस इनाम या धर्मादि की कोठियां कितनी हैं और (नं० ४४१) के अनुसार ठिकानें की कोठियों में कोठी, बेरे, रामेड़ी और पड़त कितनी हैं। यह सब मालूम करके उनकी माली हालत सुधारने का विधान किया। इस प्रकार के साधन सुविधा या हाकिम नियत करके ही वह निश्चित नहीं हुए किंतु सब प्रकार की भलाई बुराई मालूम होती रहने के लिए उन्होंने एक सच्चे आदमी को खबरनवीस भी बनाया जिसके मार्फत सब तरह की खबरें आती रहती थीं और उनसे हर बात का बिगाड़ सुधार मालूम होता रहता था।

(७) "मुक्तक संग्रह" से मालूम होता है कि संवत् १६१६-३१ के युग में जयपुर राज्य में कई एक काम-विधान या आयोजन बड़े महत्व के हुए थे और जयपुर वालों के लिए उनकी योजना अभूतपूर्व या सर्वथा नवीन थी। (१) सं. १६१६ में लक्ष्मणसिंह जी के स्वर्गवासी होजाने पर पं. शिवदीनजी मुसाहब हुए किन्तु १६२१ में वह मरगए तब नवाब फैजअलीखां जी तथा मुन्शी किशनसरूप जी ने मुसाहबी का मन किया किन्तु मिली नहीं और १ पं० विश्वम्भर जी २ बख्शी फैजअलीजी, ३ पुरोहित रामप्रसाद जी, ४ मुन्शी किशनसरूपजी, ५ ठाकुर समदरकरणजी, ६ शिवदीन जी के पिता कामताप्रसाद्जी ७ अचरोल के ठा० रणजीतसिंहजी और ८ हरीमोहनसेन जी की "अष्टकौंसिल" कायम हुई। उनमें सेन बाबू सेक्रेटरी

भी रहे थे। (२) कौंसिल में आने से बख्शीजी को सम्मति देने का साहस हुआ और उन्होंने महाराज को अंग्रेजों से मिलते रहने की सलाह दी तब गर्मियों के दिनों में महाराज शिमला जाने लगे। (३) उन्होंने जयपुर रियासत को १० निज़ामतों (१ हिण्डौन, २ सवाई माधोपुर, ३ गंगापुर, ४ दौसा, ५ कोटकासिम; ६ नीमकाथाना, ७ झूँझणू, ८ साँभर, ९ मालपुरा और (१०) बाँदीकुई।) में विभाजित की। (४) संवत १९१९-२० में 'मेडिकल स्कूल' खोला गया। १९२० में स्टाम्प की बिक्री १ लाख से ज़्यादा हुई। (५) सं. १९२१ में रामसिंह जी को 'सितारेहिन्द' की पदवी मिली उसके धन्यवाद का आपने उर्दू में व्याख्यान दिया (६) १९२१ में 'तारघर' खोला गया (७) १९२२ में ठगों और धाड़ैतियों को दबाने के लिए अंग्रेजी ढंग का जनरल सुपुरिंटेंडेंट नियत किया (८) १९२२ में 'पैमायश' शुरू हुई। अब तक रणथम्भोर में कोई विदेशी नहीं गए थे किंतु पैमायश के प्रयोजन से उनको जाना पड़ा। (९) १९२३ में लखधीर सिंह ने अलवर वापस लेने के लिए 'बारोठी' (लुटेरों) को मिलाकर उपद्रव उठाया था उस को गवर्नमेंट ने शांत किया (१०) १९२३ में 'शैव वैष्णव' के झगड़े रहे (११) १९२४ में 'सदर जेल' स्थापित हुआ उसके तमाम कायदे गवर्नमेंट जैसे रक्खे गए थे। उसमें ६ चौक थे कैदी आराम से रह सकते थे उसका पहला जेलर दूवलिन् डायर हुआ था। (१२) संवत् १९२४ में 'कालेज' खोला गया परन्तु सरदार लोग पढ़ने नहीं गए तब महाराज ने उनको समझा कर भर्ती करवाया (और संस्कृत कालेज संवत् १९०२ में खुलगया था) (१३) १९२४ में 'गर्ल स्कूल' खोला गया। मिस .... मास्टरानी हुई। इसी वर्ष में अन्यान्य १७० स्कूल और भी जारी हुए। (१४) इसी वर्ष (१९२४) में ही 'आर्टस्कूल' (कला शिक्षाभवन) खोला गया। यह जिस मकान में है वह मकान पं० शिवदीन जी के लिए बनवाया गया था। उसी अवसर में महक्मा जंगलात शुरू हुआ। (१५) अब तक महाराणियों की जागीर के गाँवों में महाराज के मुलाजिमों का हस्तक्षेप नहीं था किन्तु सं० १९२४

से वह भी शुरू हुआ (१६) १९२५ में 'सर्वे' और 'सेटलमेंट' (महक्मा-बन्दोबस्त) खुला (१७) सं० १९२५-२६ में 'शेखावतों की मातमी' शुरू हुई। इसी वर्ष में भारी अकाल पड़ा जिसमें ४५ सेर के बदले ८ अन्न बिका तब ता० २०-९-१८६८ को 'अन्न कर' माफ किया और घास फूँस का बाहर जाना बन्द हुआ। (१८) 'अकाल पीड़ितों की सहायता' के लिए मरम्मत आदि के कई काम जारी हुए थे उनमें रणथम्भोर में ७१२३५), महुआ में ५३२१), निवाई में ११२०), माधोराजपुरा में २५००) सुदर्शनगढ़ (नाहरगढ़) आंवागढ़ और गणेशगढ़ में ९१५३१) अथवा कुल १३२००००) व्यय हुए थे। (१९) बड़े आदमियों की औरतें पढ़ने के लिए बाहर नहीं जाती थीं। उनके लिए घर पर पढ़ाने का प्रबन्ध किया। (२०) सं. १९२६ में शहर में गैस की 'लालटेन' लगाई गईं। कुछ दिन 'सोसिल कान्फ्रेंस' भी हुई और सिल्प-शिक्षा के लिए मदरास से लुहार कुम्हार और काठ के कामों के लिए सहारनपुर से खाती और अन्य कामों के लिए अन्यत्र के कारीगर बुलाए थे। (२१) संवत १९२५-२६ में ही 'पब्लिक लायब्रेरी' (पुस्तकालय) की स्थापना हुई। इसके लिए ६००० ग्रंथ विलायत से आए और कई हज़ार महाराज ने अपने पास से दिए थे।

(८) संवत् १९२६ के जाड़े में 'जयपुर में रेल' खुली थी। गत आगरा दरबार के दिनों से ही उसकी आवश्यकता हो रही थी। उस समय जयपुर की जनता के लिए 'रेल' एक नया दृश्य था। अतएव उसके देखने के लिए दूर के देहाती भी दौड़े चले आए थे और अगणित दर्शकों की भारी भीड़ हुई थी। जो लोग ऊँट, बैल और हाथियों पर चलने में कुढ़ते थे उनके लिए रेल मनोरंजक और आराम की सवारी थी। (२३) संवत १९२७ ता १५ $\frac{१०}{१८७०}$ में 'मेयो हास्पिटल' की नींव लगी। वह १६२०००) की लागत से ७ वर्ष में तयार हुआ। राज्य में इसकी ५० शाखा (छोटे अस्पताल) अन्य शहरों में भी खोले गए। (२४) सं० १९२८ में गाँवों के ठेके वापस लिए। (२५) संवत् १९२९ में शहर के बीच महलों के अन्दर से वह 'इमरती' गायब हुई थी

जिस की बनावट ठीक इमरती (छोटा लोटा) जैसी ही थी किंतु तोल में कई मणकी, मूल्य में कई सौ रुपयों की और आकार में बड़े मकान जितनो लम्बी चौड़ो और ऊँची थी। विशेष आश्चर्य इस बात का था कि लेजाने वालों का किसी प्रकार भी पता नहीं लगा। (२६) संवत् १९२५-३० में 'रामनिवास बाग' हुआ। उसकी लम्बाई २२०० फुट और चौड़ाई १५०० रक्खी गई। उसमें ६ लाख लगाए गए। (२७) उन दिनों जैपुर राज्य में १ जयपुर २ सीकर ३ खेतड़ी, ४ चिड़ावा, ५ मंड़ावा, ६ बिसाऊ, ७ हिंडौन, ८ राणोली, ९ रामगढ़, १० नवलगढ़, ११ लक्ष्मण गढ़, १२ फतहपुर, १३ झूँझणू, १४ सवाई माधोपुर, १५ साँभर, १६ कोट-पूतली, १७ सिंघाणा और १८ महुआ में 'अंग्रेजी डाकखाने' थे (२८) संवत् १९३१ में शहर में नल का जल जारी होगया था। और (२९) संवत १९२४ से १९३७ तक सड़कों में २५ लाख, बंधों में ११ लाख, अन्य कामों में २६ लाख और तालाब आदि में २८ लाख लगाए गए थे। इस विषय के विशेष विवरण "वीर विनोद" (पृ० ९३) और "जयपुर हिस्ट्री" (अ० ५) में देखने चाहिये।

(९) ठाकुर फतहसिंहजी राठौड़ ने अपनी "जैपुर हिस्ट्री" (अ० ५) में लिखा है कि 'संवत १९२६ माघ सुदी ९ ता १ फरवरी सन् १८७० में "साँभर की झील"* का संपूर्ण प्रबंध गवर्नमेंट के हस्तगत किया गया था

*"साँभरझील" साँभर नमक का एक अत्यत प्राचीन और प्रसिद्ध स्थान है। इस के विषय में 'भारत भ्रमणादि' में जो कुछ लिखा है उसका सारांश यह है कि संवत १७३४ में दोलाराव के पुत्र माणिकराव ने साँभर झील तैयार करवा के उसमें पड़ौस के पर्वतों की नमकीन चट्टानों का पानी गिराकर नमक बनाना शुरू किया था उस झील की यह अद्भुत तासीर है कि उस में काठ, पत्थर, धातु या जीवजंतु जो भी गिर जाय वह सब नमक होजाता है। इसी लिए 'साँभर पड़े सब नमक' की कहावत कही जाती है। पहले यह झील अजमेर के कब्जे में थीं पीछे संवत १४०० में चित्तोर (मेवाड़) के कब्जे में हुई। संवत १६१३ में इसपर अकबर ने कब्जा किया। १७७०-८० में जोधपुर के अजीत ने जीती और कुछ दिन बाद जयपुर और जोधपुर दोनों के अधिकार में रही। इस

और "वीर विनोद" (पृ० ९७) के अनुसार इस विषय का दोनों ओर के अनुकूल 'अहदनामा' लिखा गया था। अब तक साँभर झील से नमक पैदा करने का विधान भारत की प्राचीन विधि के अनुसार था। उसमें इसी देश के हज़ारों आदमी काम करते थे और लाखों मण नमक निकाल कर देश देशांतर में भेजते थे। उसमें 'टाडसाहब' के लेखानुसार बनजारों* का विस्तार पश्चिमोत्तर में ११ कोस लम्बा और पूर्वोत्तर में २॥-३ कोस चौड़ा है। गहराई किनारों से आध कोस आगे तक २॥ फुट है किंतु चौमासे में यह सब नाप बढ़ जाती है गवर्नमेंट के अधिकार में होने से अब साँभर झील का नमक का व्यवसाय बहुत बढ़ गया है लाखों मण नमक निकलता और बिकता है उस के लिए कई कोसों तक रेल्वे लाइन बिछी हुई हैं और उन पर दिन रात रेल दौड़ती हैं। परन्तु इस बात का कड़ा बन्दोबस्त है कि 'उस व्यवसाय का कोई अनुकरण न करे और न उस कार्य में किसी प्रकार का बाधक बने।' अस्तु।

* "बनजारा" (या बिणजारे) वाणिज्य करने से विख्यात हुए हैं। रेल के पहिले बिणजारों की बालद से ही लाखों मण माल भारत के हर प्रांत में भेजा जाता था। "हिन्दी विश्वकोश" (पृ. ५६३) में लिखा है कि 'बनजारा का नाम दशकुमार में भी है। इन के कई देश और कई खांप हैं। मथुरा के बनजारे 'मथुरिया' कहलाते हैं। लवण बेचने वाले 'लूणियां' कहलाते हैं और इधर उधर आने जाने वाले 'चारण' कहलाते हैं। मुसलमान बादशाहों के जमाने में इस देश के राजाओं का माल असबाब येही लाते लेजाते थे। यह संवत १५६५ में पहले पहल यहां आए थे। १५८७ में आसुफजई के आधीन रहे थे। उसने इनको तांबे के पत्र में सोना के अक्षर लिखवा के पट्टा कर दिया था जिसको देख कर सभी देशों के इन पर विश्वाश करते थे और हैदराबाद के नव्वाब ने इनको सम्मान का खिलअत दिया था। इनमें 'लक्खी बिणजारा' विशेष विख्यात हुआ। उसके पास एक लाख बैल थे और वह परम विश्वाशी था। उसने भारत में अनेक जगह अतिविशाल कुए और बावड़ी बनवाई थीं। उसके वंशजों का कहना है कि चौमूं की बावड़ी उसी की बनवाई हुई है। वह बड़ा पक्का हिसाबी था। अपने दौरे में हज़ारों बैलों पर माल लाद कर हर जगह यथा स्थान पहुँचाता और प्रत्येक व्यापारी का पूरा माल तथा हिसाब

के ४० हज़ार बैल बहते थे। नमक निकालने वाले खारवाल, खारीवाल, या लूणियां कहलाते थे किंतु प्रबन्ध का परिवर्तन होजाने और वैज्ञानिक रीति से नमक निकालने से वे सब अस्त व्यस्त होगए।

(१०) संवत् १९२७ की काती में लार्ड मेयो जयपुर आए थे। "जैपुर हिस्ट्री" (अ-५) के लेखानुसार 'घाट की गूँणी' से उनकी सवारी का जुलूस शुरू हुआ था। एक हाथी पर महाराज रामसिंहजी और दहने बाजू मेयो बैठे थे। दो हाथी उनके आगे और कई हाथी उनके पीछे थे। घाट से 'सांगानेरी दरवाजा' तक फौजी कतार तथा 'अजमेरी दरवाजा' से अजंटी तक नागे स्वामी थे। माजी के बाग डेरा हुआ था। महाराज कायदे की मुलाकात करने के लिए मेयो के पास गए तब मेयो महाशय ने महाराज को २१ खूंम (टोकरा) पोशाकें, १ हाथी, दो घोड़े, १ ढाल, १ तलवार, और मोतियों का कंठा दिया। और ठाकुरां गोविंदसिंहजी चौमूँ, रावल विजैसिंहजी सामोद, रावराजा संग्राम सिंहजी उनियारा, रावजी दूणी, ठा. सांवतसिंहजी बगरू, पुरोहित रामप्रसादजी जयपुर और बख्शी फैजअली जी पहासू को यथा योग्य खिलअत पहनाया। इसी प्रकार मेयो महाशय महलों में आए तब महाराज ने उन को ४१ खूंम पोशाकें और अन्यान्य प्रकार की बहुमूल्य वस्तुएं दीं। ता० १५-१०-१८७० को उनके हाथों से 'मेयो अस्पताल' की नींव लगवाई। सातवें दिन बिदा किए। उसके थोड़े दिन

संभलाता था; उसके सब हिसाब जबानी रहते थे परतु किसी में कौड़ी की भी गलती नहीं होती थी। उसके बैल और आदमी हर जिले में मौजूद रहते थे। उन दिनों चौमूँ में भी ४ हज़ार बैल थे जिनको जोगी-लादते थे। हर्दोई जिला में मुसलमान बनजारे हैं। मद्रास में रामभक्त सुग्रीव के वंश के बनजारे हैं। पश्चिम के बनजारे ३६ गोत्र के हैं। भटनेर के बनजारे वैद कहलाते हैं। ये जादू भी जानते हैं। मुकेरी के बनजारे मक्का से आए हुए हैं। बहुरूपिया बनजारे हिन्दू हैं। इनकी विवाह विधि में ४-४ घोड़ों को ऊंपर ऊपर कर के सात जगह सजाते हैं। उनके बीच में २ मूसल रखते हैं और जल से भरा हुवा १ कलश रखते हैं ब्राह्मण होम कराते हैं। गठबंधन भी होता है। ७ फेरे लेते हैं और कन्यादान में बर को ४) देते हैं।

पीछे अंडमन (कालापानी) टापू के जेलखाने में शेरअली के हाथ से मेयो मारे गए। तब महाराज ने उनका बड़ा शोक किया और उसकी धातुमय मूर्ति मँगवाकर सब के देखने के लिए रामनिवास बाग में लगवादी मूर्ति विलायत से बनकर आई थी और वज़न ७७) मण है।

(११) "पुराने कागज" (नं० ८८६) से मालूम होता है कि संवत् १९३१ में जयपुर राज्य के अंतर्गत मुहरे पैसे जारी किए गए थे। उन से पहले मोटे पैसे थे जिनका वज़न १८ मासा, चौड़ाई कल्दार चौअन्नी जितनी और मुटाई ३ सूत थी। उन में एक तरफ झाड़ और दूसरी तरफ अस्पष्ट अक्षर थे चौमूँ आदि में उनको बंद करने के लिए सं० १९३१ के मँगशिर सुदि १२ को गोविंदसिंहजी ने १ मुहरी आज्ञापत्र प्रकाशित किया था जिसका आशय यह था कि 'महाराज रामसिंहजी ने जो नया सिक्का प्रचलित किया है उसका प्रत्येक कार्य में उपयोग किया जाय और पुराने पैसे १५ दिन के भीतर फरोख्त कर दिए जाँय। जो आदमी ऐसा नहीं करेगा वह दोषी होने से दण्ड का भागी बनेगा।' इसी प्रकार लोहे के पक्के बाँट भी जारी हुए थे जो वज़न में जयपुर के ८८ तोला भर सेर के तौल से तै हुए थे। उनमें आनाभर, आधपाव, पाव, आधसेर, सेर, दोसेरी, पंसेरी, दशसेरा, अधूणा, मणा और अढाई मणे थे और जैपुर राज की 'चाँदी की टकसाल' के मारफत बनवाए जाते थे। अब भी उन्हीं का चलन है। किंतु इनसे पहले चौमूँ आदि में मोटे २४ पैसेभर के सेर के तौल से उपरोक्त सब बाँट पत्थर आदि के बनते थे और तुलाई के सब काम उन्हीं से होते थे।

(१२) संवत १९३२ में महारानी विक्टोरिया के बड़े पुत्र (प्रिंस आफ वेल्स) (जो पीछे सम्राट हुए थे) भारत में आए थे। उनका स्वागत करने के लिए कलकत्ता के तत्कालीन बड़े लाट 'लार्ड नार्थब्रुक' ने जयपुर के महाराज रामसिंहजी को बुलाया था। उस समय महाराज के सहगामी ७ सरदारों में ठाकुराँ गोविंदसिंहजी भी गए थे। गवर्नमेंट की ओर से महाराज का तथा साथ के सरदारों का अच्छा सम्मान किया गया था। (इस सम्बन्ध की विशेष बातें "टाड-

राजस्थान" (पृ. ६६०) में देखनी चाहियें।) वहाँ से वापस आते समय ठा० गोविंदसिंहजी प्रयाग में ठहरे और स्नान दानादि कर के जयपुर आए। उसके सवा महीने पीछे संवत् १९३२ माघ सुदी १२ ता.४ फरवरी सन् १८७६ को युवराज (प्रिंस आफ वेल्स) जयपुर पधारे। उनके स्वागत के लिए महाराज रामसिंहजी ने अभूत पूर्व आयोजन उपस्थित किए थे। स्वागत की बहुत सी वस्तुऐं विलायत से बनकर आई थीं। जयपुर में जगह जगह शोभा-स्वच्छता और सजावट की गई थी। रेलवे स्टेशन का प्लेट फार्म भी बहुत सजाया गया था। हाथी घोड़ों के सामान तथा ६० होदे नए बनवाए थे। हाकिमों के वस्त्र बिलकुल नवीन और सभासदों के एक ढंग के थे। उनमें सफेद जामा, नीचे पजामा, ऊपर सीनाबंद, कमर में कामदार पेटी, उसके अन्दर कटारा और तलवार, पीठ पर ढाल और शिर पर खूँटेदार पगड़ी थी। दरबार करने के लिए दीवानखाना और भोजन के लिए शरबता सजाया गया था। जयपुर की पूर्वी सीमा के धौसा स्थान में पचरंग झंडा तथा तोपें रखी गई थीं और प्रत्येक गढ़ से सलामी की तोपें चलाने का इंतजाम भी किया गया था जयपुर राज्य के अंतर्गत हरेक मील पर सिपाही खड़े हुए थे। फौजी कौतुक दिखाने के लिए सेना तथा नागे स्वामी भी आए थे। यह सब व्यवस्था होजाने पर पूर्वोक्त मिती को बड़े ठाट बाट की सवारी से युवराज जयपुर पधारे उस समय उनको देखने के लिए लाखों नर नारी इकट्ठे हुए थे। 'टाड' के लेखानुसार सवारी का क्रम नीचे लिखे मुताबिक रक्खा गया था।

(१३) सवारी में सबसे आगे घोड़े पर चढ़ा हुआ जमादार था। उसके पीछे यथाक्रम एक २ दल पैदल सवार, कोतल घुड़ सवार, पंचरंग के हाथी, महल रक्षक सेना, शुतर सवार, जंबूरों के ऊँट, झराडी वाले सवार, इकडंके वाले घोड़े, अश्वारोही सेना, ताजीमी सरदार, राजकुमार, खास चौकी, प्रतिष्ठित कर्मचारी, माहीमुरातिब के हाथी, विविध भांति के बाजे, अश्वारोही नगारची, राज पताका वाले, बर्छों वाले, खबर वाले, हलकारे, आसा सोटा वाले, राजचिन्ह वाले और उनके पीछे नंगी तलवारों से क्रीड़ा करने वाले नागेस्वामी तथा उनके पीछे

खवास थे। उनके पीछे ४ घोड़ों की परम मनोहर और बहुमूल्य बग्घी में प्रिंस-आफ़ वेल्स तथा महाराज दोनों बराबर बैठे हुए थे। उनके पीछे दो दो ढाल वाले दो सरदार (दूणी और अचरोल दो हाथियों पर बैठे हुए थे) उनके पीछे अश्वारोही कर्मचारी और ४-४ की लैन लगाकर चलने वाले ८० हाथी थे जिनमें सब से आगे के एक हाथी पर ठाकुरां गोविन्दसिंहजी चौमूँ और एक पर प्रधान मन्त्री फतहसिंह जी राठोड़ थे। टाडसाहब ने हाथियों की संख्या ८०० भ्रम से लिखदी है। उनके पीछे युवराज के सहगामी अंग्रेज, जयपुर राज्य के सामन्तगण सरदार लोग, अंग्रेजी सेना, हाथियों पर बजने वाले बाजे, अश्वारोही नायब और कोतवाल थे। शहर में कई जगह युवराज की आरती उतारी गई थी। और महलों में पहुँचे पीछे यथा विधि स्वागत सम्मान नजर भेट और दरबार आदि किए गए थे। इनके सिवा रोशनी, आतिशबाजी, खेल कूद तमाशे, लड़ाई, भोज, क्रीड़ाकौशल, शिकार और दर्शनीय स्थानों का दिखावा आदि बड़े आकर्षक और अद्वितीय थे (युवराज के स्वागत के अपूर्व समारोह से स्वयं युवराज इतने अधिक प्रसन्न हुए कि विलायत जाकर महाराणी विक्टोरिया को उस अपूर्व स्वागत का व्योरेवार विवरण विदित किया। युवराज कितने सादा मिजाज के मनुष्य थे इसका पता "जैपुर हिस्ट्री" (अ. ५) के अनुसार इस बर्ताव से लगता है कि शिकार करने गए उस दिन समय पर टिफन खाने के लिए वह एक किसान की खटिया पर बैठे थे और उस गरीब कृषक को हुक्का पिलाया था। विदा के समय महाराज रामसिंहजी ने युवराज को अनेक प्रकार के बहुमूल्य पदार्थ देने के सिवा १ इतरदान; १ बग्गी और उत्कृष्ट रत्नों की जड़ी हुई १ तलवार दी और युवराज ने महाराज के लिए (बम्बई जाकर) एक बग्गी भिजवाई। 'एलबर्टहाल' की नींव उन्हीं के हाथ से लगी थी अस्तु।

(१४) संवत् १९३३ माघ वुदी २ सोमवार तारीख १ जनवरी सन्-१८७७ को 'पुष्येंदुयोग' में महाराणी विक्टोरिया ने "राजराजेश्वरी" की पदवी धारण की थी। उसके उपलक्ष्य का दिल्ली में दरबार हुआ। उसमें महाराज रामसिंह जी तथा

उनके सहगामी ठाकुरां गोविंदसिंह जी आदि सरदार लोग भी गए थे। जयसिंहपुरा में महाराज का डेरा हुआ था। कहा जाता है कि उस अवसर में महाराज के नौकर चाकर भी इतने अधिक सज धज कर गए थे कि देखने में वे सामान्य मनुष्य मालूम नहीं होते थे। ठाकुरां गोविंदसिंहजी के साथ में ५७ मनुष्य गए थे और वे सब भी उत्कृष्ट भेष से विभूषित रहे थे। दिल्ली दरबार किसी अंश में पुराने जमाने के राजसूय का प्रतिबिंब था। उसमें देश देशांतर के प्रायः सब राजा इकट्ठे हुए थे और उन सबकी मान मर्यादा का यथा योग्य पालन किया गया था। कहा जाता है कि दरबार से वापस आते समय उदयपुर नरेश हिन्दूवाना सूर्य महाराणा सज्जनसिंहजी को जयपुर नरेश महाराजा सवाई रामसिंहजी अपने साथ लाए थे और उनका प्रेम पूर्वक स्वागत सम्मान कर के परस्पर में पूर्वापेक्षा अधिक स्नेह बंधन स्थापित किया था। संवत १९३५ आसोज सुदी ५ ता० १ अक्टूबर सन् १८७८ को जयपुर कौंसिल से साँभरझील तथा 'मीठे का महसूल' के संबन्ध में आठ धाराओं का एक सर्वव्यापी इश्तहार जारी हुआ था। उसमें "पुराने कागज़" (नं. ८७४) के अनुसार साँभर, कुछोर और रैवासा के सिवा सर्वत्र नमक बनाने की मनाही की गई थी और ५ हजार से कम की आबादी के शहरों में मीठे पर महसूल लगाना बंद किया गया था।

(३९) "रामसिंहजी" (द्वितीय)

जन्म लग्न

४	५ शु
३ रा	२
१ बृ	१२ चं
११	१०
९ के	८
७	६ सू बु श

(१५) संवत १८९० के द्वितीय भाद्रपद शुक्ला १४ भृगुवार को इष्ट ४८।१७ सूर्य ५।१२।४४।२२ और लग्न ३।५ में प्रकट हुए थे। जन्म से डेढ वर्ष बाद ही पिताजी के परलोक पधार जाने से संवत १८९१ के माघ में आपका राज्याभिषेक हुआ। बचपन में माता चंद्रावतजी ने आपको अन्तःपुर में अलक्षित रखकर सावधानी से पालन किया था। सघीभूथाराम

के किए हुए हृदय विदारक उत्पातों का उन्होंने आपको आभास तक नहीं होने दिया हवा खोरी के मिस से आप कभी बाहर भी आते तो परदे के अन्दर सुरंगों में होकर चंद्रावतजी साथ आते थे। छात्रावस्था में पं० शिवदीन जी आपके शिक्षक और रावल विजयसिंहजी चरित्र रक्षक (गार्डियन) रहे थे। आपने अंग्रेजी, फारसी और कुछ संस्कृत भी सीखी थी परन्तु बोल चाल में 'काँई छै' आदि का ही उपयोग किया था। ११ वें वर्ष में घोड़े आदि की सवारी और अस्त्र शस्त्र तथा व्यायाम आदि का अनुभव या अभ्यास होगया था। उन दिनों आपका जेब खर्च २०८) और आपके सहगामी भादरी के ठाकुरों का २००) दैनिक थे। उस अवस्था में आप बाहर जाते तो कई एक सरदारों के सिवा बलदेव नादर, बलदेव दरोगा, रामप्रसादजी पुरोहित और साधूराम आदि साथ रहते थे। "जयपुर हिस्ट्री" (अध्याय ५) के लेखानुसार संवत् १६०३-०६-१२-२० और २८ में आपके विवाह हुए। संवत् १६०६ में दूसरे विवाह के लिए रीवां और जोधपुर दोनों का आग्रह होने से लश्कर सहित लक्ष्मणसिंहजी जोधपुर गए और पहला विवाह जोधपुर तथा दूसरा रीवां का ठहरा आए थे। तदनुसार संवत् १६०६ के जेठ सुदी १३ को जोधपुर और आषाढ़ सुदी ६ को रीवां ब्याहने गए। बरात के १५ हज़ार आदमी थे। सं० १६०६ से काम करना शुरू किया। १६०८ में अधिकार लिया। १६१४ में गदर के उपद्रव से जयपुर को बचाया, १६१६ में आगरा दरबार में गए। १६२२ में अजमेर जाकर उच्च श्रेणी की उपाधि प्राप्त की यथाक्रम और यथा समय राज्य का कर्जा उतराया, आय वृद्धि के उपाय उपयोग में लिए, अनेक जगह बाँध बंधे कूए आदि बनवाए, स्कूल, कालेज मदर्से, विद्यालय और अस्पताल आदि स्थापन किए; रामबाग और एलबर्टहाल जैसे महल और रामनिवास जैसे बाग, बगीचे, सड़कें रोशनी, जलकल, नाटक घर, रेल, तार, डाक, प्रेस और खबर या अखबार आदि स्थापन करने से प्रजा को लाभ पहुँचाया। राज्य के अन्दर जितने प्रकार के पाखण्डी, उस्टन्डी, धूर्त, दुश्चरित्र और विशेष कर इस कक्षा के संत, महंत, पुजारी या स्थानाधीश थे और वे अपनी

दुर्नीति से प्रजा को दुख देते या राज की दी हुई जमीजीविका जायदाद या सम्मान आदि का दुरुपयोग करते थे उनको गुप्त भेष में आप स्वयं देखते ढूँढते अनुसन्धान करते और सप्रमाण पता पाकर उसका निःशेष निराकरण करते थे और इसी प्रकार दीन दुखिया अपाहिज, गरीब, निराश्रय या आपद्ग्रस्त आदि को अपना परिचय प्रकट किए बिना ही उनका दुःख निवारण या अतःपरउपकार करते थे। सादा मिजाज इतने थे कि जंगल की झोंपड़ी में घ्याऊ लगाने वाली गरीब बुढ़ियाओं की दी हुई दो पैसे की राबड़ी पी आते और उपकार निमित्त चुपके से दो मुहर दे आते थे। साथ ही अवसर आए बर्तन माँजने, धोती धोने, बुहारी देने या जल पिलाने जैसे नौकरों के काम स्वयं कर लेते थे। रामसिंहजी ने ऊँट की सवारी से प्रतिदिन पचासों कोस का सफर करके अपने राज्य के प्रत्येक प्रांत देश या बागों तक का स्वयं निरीक्षण किया था। उनके सम्बन्ध में शैव वैष्णव और शाक्त आदि की जो विवादात्मक बातें कही जाती हैं वे अधिकांश में भ्रांतिमूलक और तथ्य शून्य मानी जासकती हैं। उनका निर्दूषित और आदर्श चरित्र बड़ा ही हितकारी है। ऐसे अद्वितीय महाराज रामसिंहजी (द्वितीय) का संवत् १९३७ के भादवा बुदी १४ के अद्वितीय योग में वैकुण्ठवास होगया। उनके अति समीप में रहने वाले ठाकुर फतहसिंह जी ने अपनी "जयपुर हिस्ट्री" में लिखा है कि-'अन्त में महाराज के बदहज़मी हुई। डाक्टर श्रीनाथ ने इलाज किया। डाक्टर हेण्डली भी अहोरात्र पास रहे। फिर भी बीमारी बढ़गई। तब ईशरदा के कायमसिंहजी को उत्तराधिकारी कायम कर के ज़मीन पर बैठ कर महाराज ने पद्मासन लगाया और ईश्वर के ध्यान में मग्न होकर उसी अवस्था में स्वर्ग में चले गए। अंत्येष्टिक्रिया कायदा के अनुसार यथा विधि की गई और कर्नल ट्रीडी की सम्मति के अनुसार उनका शानदार नुकता हुआ। जैसे महाराज अद्वितीय थे वैसा ही उनका 'नभूतो नभविष्यति' नुकता था। महाराज के संबन्ध की बहुतसी श्रोतव्य बातें खाटू के ठाकुर (भूतपूर्व फोजबक्षी) हरीसिंहजी लाडखानी को खूब याद हैं। उन के सुनने से महाराज के देवोपम गुणों

का पतालग जाता है और शिथिलतम शरीर में भी सहसा स्फुरणा-उत्साह या लोक सेवा करने की भावना उदयहो आती है।

(१६) महाराज रामसिंहजी का वैकुण्ठवास हुए पीछे ठाकुरां गोविंद-सिंहजी; जयपुर राज्य की कौंसिल के मेम्बर नियत हुए। उस दिन कार्य का प्रथमारंभ करने के पहले गोविंदसिंह जी ने, गुरु, गोविंद और गोपाल जी का दर्शन किया और प्रत्येक के ५-५ सौ रुपया भेंट चढ़ाया। उस समय राज का प्रत्येक काम एजेंट साहब की सम्मति के अनुसार होता था। गोविंद-सिंह जी का उनमें सहयोग था। उनके सिवा बगरू और डिग्गी के ठाकुर भी मेंम्बर थे और महाराज के निज के कामों के लिए प्रबन्धक रावल विजयसिंह जी थे। उस समय महा-राज माधवसिंहजी द्वितीय का शासन शुरू हुआ ही था कि कुछ कुमार्गी मनुष्यों ने राज्य प्रबन्ध में मन माना हस्तक्षेप करके शासन व्यवस्था में गड़ बड़ मचादी जिससे लोगों में अशांति और असंतोष के अंश उदय होगए। यह देख कर गोविन्द-सिंहजी ने दुर्नीति वालों को निःशंक और निर्भयता के साथ तत्काल निकाल दिया और बढती हुई अशांति को अति शीघ्र दबाकर अपनी योग्यता तथा दूरदर्शिता का विशेष परिचय दिया। ऐसे अवसर में इस प्रकार की आवश्यक और अद्वितीय सेवामें गोविंदसिंहजी को प्रमुखरूप से प्रवृत्त देखकर जयपुर राज्य तथा बृटिश सरकार उनसे बहुत संतुष्ट हुए और महाराज ने उनकी दो घोड़ों की नोकरी माफ की ++ उसी वर्ष (संवत् १६३७) में महाराज माधवसिंह जी द्वितीय का द्वितीय विवाह हुआ था। उसके आवश्यक इन्तिजाम के लिए ठाकुरां गोविंदसिंह जी अपने सहचर वर्ग सहित जोधपुर गए थे। उस समय प्रस्थान के पहिले महाराज ने उनके पास खास रुक्का भेजा था और साथ के सैनिक लवा-जमा तथा सहगामी भिजवाए थे।

(१७) संवत १६३८ में महाराज कलकत्ते गए थे उस समय गोविंदसिंह जी उनकी सेवा में रहे थे। यात्रा के लिए माघ शुक्ला २ को प्रस्थान करके रास्ते में प्रयाग, काशी और गयाजी जाकर फागण बुदी पड़वा को कल-कत्ते पहुँचे थे। वहाँ के सेठ साहूकारों ने आपका बहुत सम्मान किया और

अपनी राजभक्ति दिखलायी। वहाँ ११ दिन रहकर जगदीश होते हुए जयपुर आए। ++ संवत १६३६ में आपकी बड़ी बाई उदयकुँवरिजी की सगाई का दस्तूर पोहकरण भेजा गया था। ठाकुर आनन्दसिंह जी ठाकुर केसरीसिंहजी और पुरोहित रामनिवासजी ऐम. ए. आदि ६५ आदमी वहाँ गए थे साथ में रिसाला के १० सवार पलटन के १० सिपाही और लग्गी नग्गारा आदि थे। टीके में ५) १ हजार रुपये १ हाथी और ६ घोड़े दिए थे। ++ संवत १६४१ में उन्हीं बाईजी का विवाह हुआ। उसके लिए पोहकरण (मारवाड़) के ठाकुर मंगलसिंहजी ब्याहने आए थे। विवाह 'चौमूँ की हवेली' जयपुर हुआ था। बरात का डेरा माधव विलास महल में लगाया गया था। विवाह के उपयोगी लेन देन स्वागत सम्मान तथा भोजनादिकी व्यवस्था भलीभांति की गई थी। रोशनी के लिए हवेली के अन्दर 'बैलों की चाकी' के मकान में गैस घर कायम हुआ था और पानी के लिए हर जगह नल लगवादिए थे। प्रत्येक प्रकार की सामग्री सुविधा के साथ मिलती रहें इसके लिए कई कोठयार क़ायम हुए थे। खर्च १ लाख हुए थे उस समय चारण भाटों को भी बहुत कुछ दिया था किंतु वह अंतिम त्याग था क्योंकि थोड़े दिन पीछे 'राजपुत्र हितकारिणी' ने कानून से उसे बंद कर दिया था।

(१८) संवत १६४३ भादवा सुदी २ को महाराणी विक्टोरिया के जुबिली महोत्सव के उपलक्ष्य में जैपुर दरबार ने गोविंदसिंह जी को "बहादुर" की पदवी दी थी। ++ संवत १६४५ में वह ओंकारनाथ को गये थे। शिवरात्रि के कारण यात्रियों की भारी भीड़ होने से वहाँ पूजन करना तो अलग रहा, दर्शन करना भी दुर्लभ हो रहा था फिर भी शिवभक्त गोविंदसिंह जी ने भीड़ को चीरकर मंदिर में प्रवेश किया और बड़ी तत्परता के साथ ओंकारनाथ का पूजन करके वापस आए। वहाँ से बंबई गये और बंबई से जयपुर पधारे। ++ संवत १६४७ में गवर्नमेंट ने आपको "राव बहादुर" की पदवी दी थी। उसके लिए जयपुर रेजीडेंसी के उत्तम आयतन में एक बड़ा दरबार हुआ जिसमें जयपुर नरेश महाराज माधवसिंह जी द्वितीय भी उपस्थित

थे और राज्य के गण्य मान्य सरदार गण तथा उच्चाधिकारी अफसर लोग भी मौजूद थे। उपाधि प्रदान के लिए राजपूताना के एजेंटगवर्नर जनरल श्रीमान् कर्नल वाल्टर साहब आए थे। उपाधि देने के पहले महाराजा साहब के समीप में खड़े होकर कर्नल वाल्टर ने कहा कि-

(१६) "ठाकुर साहब! आपके लिए वृटिश सरकार की ओर से भारत के बड़े लाट के द्वारा भेजी हुई "राव-बहादुर" की उपाधि को आपके अर्पण करने में मुझे अतीव हर्ष होता है। क्योंकि प्रथम तो आप जयपुर के सरदारों में स्वतः प्रथमाधिकारी हैं। दूसरे जयपुर राज्यकी कौंसिल के मुख्य मेम्बर हैं और तीसरे इस पद पर आरूढ़ हुए पीछे जिस भांति अब तक आपने अच्छे काम किए हैं उसी भांति आगे करते रहने की पूर्ण सम्भावना है। अतएव भारत की गवर्नमेंट सरकार आपको यह पदवी देकर आपकी की हुई सेवाओं की तथा आपकी राजभक्ति की प्रशंसा करती है।" "उपाधि का प्रमाण पत्र आपके अर्पण करने में मुझे इस कारण स्वतः हर्ष होता है कि मैं आपसे और आपके परिवार से बहुत पहले से परिचित हूँ। आज से ३२ वर्ष पहले आपने अपने महलों में चौमूँ बुलाकर मेरा जो सत्कार किया था वह मुझे भली भांति याद है। उसके सिवा गत मार्च मास में अजमेर की सभा * में भी आपने राजपूताना की सामाजिक स्थिति सुधारने के लिए कई प्रकार के सुकार्य उपस्थित किए थे। उनके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। वे सुधार उस सभा की एकता के कारण ही उपस्थित किए जासके थे और उस एकता

* "वाल्टर कृत राजपुत्र हितकारिणी सभा" कोही साहब ने अजमेर की सभा बतलाई थी। वह पहले पहल संवत १६४५ में अजमेर में स्थापित हुई थी पीछे आबू जाकर स्थायी होगई। उसके द्वारा राजपूताना की क्षत्रिय जाति का अपूर्व सुधार और बहुत कुछ उपकार हुआ। कई तरह के अनाप सनाप रीति रिवाज, दान त्याग तथा अपव्यय बंद हुए हैं। यह सभा आज तक यथापूर्व सबल और सजीव है और अपना काम भली भाँति कर रही हैं। यह उसके संचालकों की योग्यता का फल है। संवत् १६४८ में गोविंदसिंहजी ने अपनी छोटे बाईजी के विवाह में सब काम सभा के नियमों के अनुसार किए थे।

के कराने में आपने बहुत सहायता दी थी। वे कार्य अब सफलता के साथ हो रहे हैं अतः इस काम के लिए महाराज को तथा राजपूताना के उच्चविचार रखने वाले सज्जनों को भी धन्यवाद देता हूँ। मुझे विश्वाश है कि आप आगे भी यथापूर्व सहायता देते रहेंगे। अन्त में मैं यह इच्छा करता हूँ कि आप सदा सर्वदा स्वस्थ्य तथा सुखी रहें और महाराज की पूर्वदत्त (बहादुर की) उपाधि के साथ इस (रावबहादुर की) उपाधि को भोगते रहें।' इस के सिवा कर्नल वाल्टर जिस समय भारत से बिदा होकर विलायत जाने लगे उस समय उन्होंने ठाकुर साहब को लिखा था कि "राजपूतों के जन्म-मरण और विवाहादि में सामाजिक सुधार करने के लिए आप मेरे स्तम्भ स्वरूप रहे हैं और यह आपही के प्रभाव का फल है कि मुझे इस काम में इतनी सफलता मिली।" अस्तु।

(२०) जिस समय गोविंदसिंह जी कौंसिल के मेंबर हुए उस समय फतहसिंह जी राठौड़ मुसाहब (या प्रधान मंत्री) थे और मुरतब लवाजमा मेम्बर या मंत्री का कुछ कमती बढ़ती होता है। इसलिए यह निर्णय ज़रूरी हुआ कि 'गोविन्दसिंह जी का लवाजमा (मंत्री या मेम्बर) किस श्रेणी का हो।' अंत में माफिक हुक्म बड़े लाट गवर्नर जनरल के निश्चय हुआ कि 'गोविंदसिंहजी जैंपुर के पटैल हैं और इनके बड़के मुसाहब हुए हैं। इसलिए इनका लवाजमा वही रहे जो मंत्री का है।' तदनुसार गोविंदसिंहजी का लवाजमा मन्त्री के समान नियत हुआ और उन्होंने उसी हैसियत से काम किया। +++सं० १९३८ में लार्ड रिपन जयपुर आए उस समय शाही दरबार की स्थायी बैठकों में कुछ अदला बदली की गई थी किंतु जो लोग पीढ़ियों से उच्चासनासीन होते आरहे थे उनके हृदय में ऊँच नीच से क्षोभ होना संभव था अतः राज्य की ओर से आमतौर पर यह सूचित किया गया कि 'इस दरबार में सरदार लोगों आदि की परंपरा की बैठकों में प्रसंगवश कुछ अदला बदली की जायगी किंतु वह आगे के लिए स्थायी नहीं रहेगी। (आगे हर दरबार में वही बैठक रहेगी जिस पर वे सदा से बैठते आरहे हैं)।' ऐसा ही हुआ। प्रसंगवश यहाँ यह सूचित कर देना भी आवश्यक है कि इससे ठीक

सौ वर्ष पहले संवत् १८३८ के पौष वुदी २ को चौमूँ के ठाकुरां रतनसिंह जी की अव्वल दर्जे की दरबारी बैठक पर बैठने का रावल इन्द्रसिंहजी ने प्रयत्न किया था। उस समय महाराज प्रतापसिंहजी ने रतनसिंहजी को खास रुक्के में अपने शब्दों में लिखा था कि 'शुरू से ही पहली बैठक थां की छै। रावल इन्द्रसिंह की या भूल छै कि वो पहली बैठक वास्तै झगड़ो करयो। अब थांनै विश्वास रयां छां कि वो थां कै नीचै बैठसी।' इसी प्रकार संवत् १९४७ मँगशिर वुदी १३ ता. १०-१२-१८९० को कर्नेल प्रिडो अजंट जयपुर ने गोविंदसिंह जी को लिखा था कि 'आपको स्मरण रहै कि आपकी अव्वल दर्जे की बैठक अमिट है।' और संवत १९५० चैत वुदी ८ ता० २९ मार्च सन् १८९४ को कर्नल ऐच. पी. पिकाक ने लिखा था कि 'उस दिन मैंने जल्दी में आप को इतर पान नहीं दिया आगे आपके सम्मान में कोई न्यूनता नहीं होगी।' ता. २९।४।१८९५ को लिखा था कि 'आप जयपुर दरबार के और बृटिश सरकार के हानि लाभ को समान मानने वाले सरदार हैं।' अस्तु उपरोक्त उल्लेखों से मालूम हो सकता है कि गोविंदसिंहजी कैसे प्रभावशाली पुरुष थे और उन लोगों की सम्मान रक्षा का राजा महाराजा या उच्चाधिकारी अंग्रेज अफसर कितना ध्यान रखते थे।

(२१) ठा० गोविंदसिंहजी संवत् १९५० के आषाढ सुदी २ को अपने छोटे भाई ठाकुर आनन्दसिंह जी के द्वितीय पुत्र देवीसिंह जी को 'दत्तक विधान' के अनुसार गोद लिया। उस दिन लोक व्यवहार के आगत स्वागत उत्सव दरबार और गायन वादनादि सब काम यथोचित रूप में सम्पन्न हुए थे। देवीसिंहजी के युवराज होने पर नीमाज के ठाकुर छत्रसिंहजी ने अपनी पुत्री का उनके साथ विवाह किया। उस अवसर में राजनैतिक कारणों से ठाकुरां गोविंदसिंहजी को तथा आनन्दसिंह जी को इस बात का बहुत विचार रहा था कि इस ठिकाने की प्रतिष्ठा के अनुसार विवाह के सब काम शांति के साथ निर्विघ्न सम्पन्न हों। वैसाही हुआ किन्तु विवाह के दूसरे वर्ष संवत् १९५१ में ठा. आनन्दसिंह जी का शरीरांत हो जाने से गोविंदसिंह जी को भुजदण्ड के टूटजाने जैसा कष्ट हुआ। ++ "आनन्दसिंह

जी अजयराजपुरा के ठाकुर थे। सं० १९१० के फागण सुदी ११ को उनका जन्म हुआ था। संवत् १९२५ में मारवाड़-गुढास के ठाकुर कृष्णसिंहजी जोधाकी पुत्री को व्याहे थे। ठाकुरां गोविंदसिंह जी के मुख्य कार्यकर्त्ता होकर उन्होंने चौमूँ ठिकाने की बहुत उन्नति की थी और उसके महत्व को प्रत्येक विषय में बहुत बढ़ाया था। इस काम के अतिरिक्त जयपुर दरबार के नगदी के सवारों के अफसर हुए। शिकारखाने के हाकिम रहे और महाराजा साहिब माधवसिंहजी के दांगदड़ावाले विवाह में उनके एडी-सी. (एडीकाँग) हुए। इस प्रकार जिस जगह आपने काम किया उसी जगह योग्य और प्रवीण प्रतीत हुए। बीमारी के दिनों में ठाकुर साहब ने आपको अपने पास हवेली महलों में रक्खे थे और सब प्रकार के औषध उपचार तथा सेवा कार्य किया था किंतु वह बच नहीं सके, स्वर्ग पधार गए उनकी दाह क्रिया के समय अंजट साहब वगैरह ९ अंग्रेज भी गए थे।"

(२२) संवत् १९५१ में ठाकुरां गोविंदसिंहजी ने चौमूँ के प्रधान बाजार में टीन (लोह के साईवान) लगवाए थे। उनके लगवा देने से शहर की शोभा बढ़ गई और व्यापारियों को सुविधा हो गई। उनसे पहले पानी के छप्पर या कपड़े के पाल थे जिनमें धूप-वर्षा और आग आदि की चिंता रहती थी। + + संवत् १९५३ में महक्मा जंगलात खोला गया था उसके लिए सासनी जिला अलीगढ के पं० व्रजवल्लभजी मिश्र प्रबंध कर्ता नियत हुए थे। उन्होंने सब तरह के वृक्ष जंगल और काठ से संबन्ध रखने वाले कामों को नियमबद्ध बनाए थे। ऐसा होने से जनता को लाभ, ठिकाने को सुविधा और सजीव वृक्षों को निर्दयता से काट कर दुरुपयोग करने की पूरी मना ही हुई थी। पहले लिखा जा चुका है कि चौमूँ के चारों ओर कोसों तक आम, नीम, बड़, पीपल, खैर, खेजड़े और इमली आदि बहुत वर्षों तक बने रहने वाले हरे वृक्षों के झुंड के झुंड खड़े हैं और उनसे सुख, शोभा, सुस्वास्थ्य और फल प्राप्ति होने के सिवा सब प्रकार के काष्ठ सम्बन्धी गृह कार्यों के उपयोग में आते हैं।

(२३) संवत् १९५६ में भारत में भयंकर अकाल पड़ा था। उसके

भीषण प्रकोप से लाखों नर नारी भूँखे मरते तड़प तड़प कर मर गए थे। बहुतों ने अन्न के बदले हरे वृक्षों के फल फूल और पत्ते ही नहीं उनकी त्वचा (सूखे छोड़े) तक खा लिए थे और मारवाड़ आदि के अगणित नर नारी अन्न, धन और वस्त्र से विहीन होकर बहुत बुरी दशा में इधर उधर डुल गये थे। उस अवसर में दयालु गोविंदसिंहजी ने गरीब जनता को भर-पेट भोजन देने के मिस से चौमूँ में कई प्रकार के नए काम शुरु करवाए थे। उनमें (१) जैतपुरा की डूँगरी के नीचे का बन्धा, (२) जैपुर जाने के पुराने रास्ते की नई नहर (३) शहर के चारों ओर के पक्के परकोटे के अधूरे अंगों की पूर्ति और (४) जयपुर तथा देश विदेश के अकाल पिड़ितों की सहायता के कामों में सहयोग आदि मुख्य थे। + + चौमूँ में पहले ठिकाने की ओर से 'सदाव्रत' बँटता था। उसमें कई बार यथार्थ उपकार के बदले अनुपकार या दुरुपयोग भी हो जाता था। अतः गोविंदसिंह जी ने उसके बदले "चौमूँ में अस्पताल" खुलवा कर दीन दुखी, अपाहिज, धनी, निर्धन या समर्थ असमर्थ सब प्रकार के रोगियों का यथोचित इलाज होते रहने का प्रबन्ध किया। इसके सिवा असमर्थ रोगियों को भोजन, वस्त्र, खाट, बिछोने और उत्तम मकान मिलता रहने का प्रबन्ध स्थायी बना दिया।

(२४) गोविन्दसिंहजी के जमाने में पुराने जमाने के लड़ाई झगड़े किसी अंश में लुप्त होगए थे केवल सूरजगढ़ के झगड़े का अंकुर देखने में आया था। उसको मिटा देने के लिए महाराज माधवसिंहजी द्वितीय ने गोविन्दसिंह जी को भेजने का विचार किया था किंतु वह उदय में ही अस्त होगया। तब वहां जाने का प्रयोजन नहीं रहा अस्तु। + गोविन्दसिंह जी के व्यक्तित्व के विषय में यह स्वतः विख्यात है कि 'वह कुल मर्यादा की रक्षा का ध्यान रखते थे अपने पूर्वजों के व्यवहार, वर्ताव, शिष्टाचार, कानून, कायदे और धर्म, कर्मादि का पालन करते थे। शैव शाक्त या वैष्णव सभी धर्मों में उनकी श्रद्धा थी। रामनवमी-जन्माष्टमी-वामन द्वादशी-नवरात्र और शिवरात्री आदि के व्रत उत्सव या पूजा समारोह अथवा देव कार्य के इहलौकिक और पितृ कार्य के पारलौकिक या परमार्थ साधन के

कामों को प्रीति पूर्वक करते थे। इसके सिवा देव पूजा-सदनुष्ठान-होम यज्ञ बरणी पाठ-ब्राह्मण भोजन और शत चण्डी आदि के प्रयोग भी नैतिक और नैमत्तिक दोनों प्रकार के करवाते थे। एकबार उन्होंने छोटे छोटे बच्चों से कई दिनों तक राम नाम के जप भी करवाए थे। उस समय एक आना रोकड़ी और पाव पक्के लड्डू नित्य दिए जाते थे। गोविन्दसिंहजी की सच्चरित्रता के विषय में अंग्रेज विद्वानों तक ने यह विदित किया था कि 'गोविन्द सिंहजी सच्चरित्रता तथा सत्कुलीनता के सर्वोत्तम अंश की आदर्श मूर्ति हैं।' गूढ़मन्त्र (या सर्वथा छिपी रखने की सलाह) में आप अधिक दृढ थे कूँते हुए कामजब तक पूर्ण या सफल न हो जाते तब तक वह किसी प्रकार प्रकट नहीं होते थे। वैसे कामों के प्रच्छन्न रखने में ठा० आनन्दसिंह जी और लाला जँवाहरलाल जी पर विशेष विश्वास था। ठाकुर साहब की बुद्धि भी तीव्र थी। वह अच्छे बुरे आदमी को तुरंत जान लेते और फिर उसके साथ यथायोग्य वर्त्ताव करते थे। कार्य साधन में अधिक साहसी थे मनोगत कामको हर तरह करके छोड़ते थे और खोटे मनुष्यों को समीप तक नहीं आने देते थे। उनका रोबरुआब ही कुछ ऐसा तीव्र था कि समीप जाने में सहसा रुकावट आजाती थी। उन्होंने अपनी आयुष्य के अन्तिम दिनों में देवीसिंहजी को समीप बुलाकर जयपुर राज्य के चौमूँ ठिकाने के भाई व्यवहारी के आत्मीय वर्ग अथवा अपने परिवार के और अपनी अंत्येष्टि क्रिया तक के सम्पूर्ण विधि-विधान व्यवस्था-वर्ताव-व्यवहार शिष्टाचार-लेन-देन या स्मरणीय आयोजन प्रयोजन अच्छी तरह समझा दिए थे। अन्त में संवत् १९५७ के पौष में परलोक पधार गए। उनकी मृत्यु के समाचार पाकर बड़े बड़े राजा रईश- राजपूत या उच्चाधिकारी अँग्रेज लोगों को बड़ा खेद हुआ था। यहां तक कि इलाहाबाद के 'पायोनियर' जैसे सुप्रसिद्ध और प्रतिष्ठित अखबारों तक ने अपने काले बार्डर के कालमों में यह प्रकाशित किया था कि 'ठाकुर साहब सच्चरित्री, निर्भीक, लोक प्रिय और उच्चश्रेणी के आदर्श सरदार थे।' उनका देहान्त रेजीडेन्सी के समीप 'चौमूँ की कोठी' पर अपने निवास्थान में हुआ था। दाहादि कर्म परमण की तलाई में हुए थे। नुकते का महाभोज कोठी

के विस्तीर्ण अहाते में हुआ था और टीका के दस्तूर में स्थानीय के सिवा बूँदी-बीकानेर और जोधपुर जैसी राजधानियों से घोड़े, शिरोपाव या रोकड़ी रुपए आदि यथा योग्य आए थे।

(२५) गोविंदसिंहजी स्वावलंबी पुरुषार्थी पुरुष थे। अपनी प्रजा के प्रति किसी का अनुचित वर्ताव उनसे सहा नहीं जाता था। उसके देखने से ही नहीं उसके सुनने से भी उनके शरीर का खून उबल जाता था। एक बार चौमूँ के मालियों ने बहुत से कोहले बाहर भेजे थे। वहाँ के किसी नीच वृत्ति वाले ऊँचे हाकिम ने उनको मिथ्या दोषारोपण के द्वारा नीलाम कर दिए। यह सुनकर गोविंदसिंहजी ने उस पर बड़े हाकिमों से दबाव डलवाया और नीलाम के कोहलों की मुँहमांगी कीमत मालियों को दिलवाई। + एक बार हुँडा भाड़ा के ठेकेदार ने चौमूँ के माल लदे हुए ऊँटों को बेगार में पकड़ लिए यह खबर ठाकुर साहब ने सुनी तो उसको तुरंत अपने पास बुलवाकर यथोचित रीति से समझा दिया और ऊँटों के गले में टिकिट डलवा दिए कि उनको देखकर आगे किसी ने उनको गिरफ्तार नहीं किया। + + कई बार ऐसा होजाता है कि किसी दूसरे वर को वाग्दान दी हुई कन्या का दूसरे वर अपहरण कर लिया करते हैं और ऐसी स्थिति में मरने मारने की परिस्थिति उपस्थिति होजाती है किन्तु गोविंदसिंहजी के जमाने में उनके यहां ऐसी नीचता का होना सर्वथा मना था। + वह इस ज़माने के धनुर्धरों में भी एक अद्वितीय योद्धा थे। धनुष का धारण और संधान उनको कुछ ऐसा याद था कि वह उसके द्वारा अद्भुत कौशल कर जानते थे। विशेष कर एक या डेढ़ इंच मोटे पत्थर के गोल चकले को अपने हाथ से छोड़े हुए बाण से बेध देना अवश्य ही आश्चर्य का काम था। × × उन्होंने जयपुर रेजीडेंसी रोड़ पर जो "चौमूँ की कोठी" स्थापन की थी वह किसी ज़माने में सचमुच कोठी थी और उसमें सैकड़ों मण जौ गीहूँ अथवा खरबूजा, काकड़ी होते थे। कालांतर में गोविन्दसिंहजी ने जरात की जमीन को महलात के रूप में परिणत करना प्रारंभ किया और वह धीरे धीरे वर्त्तमान रूप की आदर्श कोठी बनगई। गोविंदसिंहजी का केवल

एक विवाह हुआ था (१) धर्म पत्नी महताब कुँवरि (कर्म सोतजी) खींवसर के शिवनाथसिंहजी की पुत्री थे। इनके दो पुत्री हुईं। पुत्र नहीं हुआ तब देवीसिंहजी उत्तराधिकारी हुए।

गोविंदसिंहजी के 'स्मृति चिन्हों में' चौमूँ का 'गोविंद निवास' महल, मदरसा, सफाखाना, गोविंददेवजी का मंदिर और जयपुर रेजीडेंसी रोड़ की चौमूँ की कोठी आदि मुख्य हैं।

सोलहवां अध्याय

॥ श्रीः ॥

नाथावतों का इतिहास ।

देवीसिंहजी

(१७)

[यद्यपि 'इतिहासः पुरावृत्तः' के नियमानुसार पुरानी बातों को इतिहास मानकर मौजूदा मनुष्य का कोई भी वृत्तान्त उसकी पुरानी पीढ़ियों के इतिहास में युक्त नहीं करते। (न करने का खास कारण यह कहा जा सकता है कि मौजूदा मनुष्य के सच्चे गुण दोष सच्चे इतिहास में लिख दिए जाएँ और कालान्तर में कुयोग या सुयोग वश उसी की मौजूदगी में उनका रूप बदल जाय तो निंदा होने से वह खुद और स्तुति होने से अन्य लोग लेखक को दोषी मान सकते हैं। इस विचार से मौजूदा मनुष्यों का हाल इतिहास में युक्त न करना ही अच्छा है।) तथापि आदर्श मनुष्यों की अधिकांश बातें ऐसी होती हैं जो १० वर्ष या १० दिन पहिले की होने पर भी आवश्यक अवसर में पुरानी मानी जाती हैं और वे उसकी या दुनियां की भलाई में उदाहरण रूप से काम आती हैं। यही सोच कर "नाथावतों के (आनुपूर्व्या) इतिहास" में मौजूदा ठाकुर साहब के जीवन की उदाहरण स्वरूप बातों का इस अध्याय में अंशतः संकलन किया है।]

(१) संवत १९५७ के पौष में गोविंदसिंह जी का परलोकवास हो जाने पर उनके दत्तग्रहीत (गोद लिये हुए पुत्र) देवीसिंह जी चौमूँ ठिकाने के मालिक हुए। आपका जन्म सं० १९३३ आसोज बुदी अमावस रविवार ५२।२० पूर्वाफाल्गुनी २५।० इष्ट ५८।३० सूर्य ५।२९।१।५५ और लग्न ४।२२ में हुआ था। उस समय देवी के नवरात्रों की आद्य तिथि (प्रतिपदा) आरंभ होजाने से प्रारंभ में आपका नाम देवीबक्स और पीछे देवीसिंह रक्खा गया।

जन्म लग्न

सू चं ६ | ४ शु | ७ | मे के ५ | ३ | बृ ८ | २ | ९ | श ११ रा | १ | १० | १२

(२) यह पहले लिखा गया है कि 'गोविन्दसिंह जी अजयराजपुरा से गोद आए थे और देवीसिंह जी उन्हीं के छोटे भाई आनन्दसिंहजी के द्वितीय पुत्र थे'। इस कारण "नाथावत सरदारों का संक्षिप्त इतिहास' (पृ. १५) के अनुसार गोविन्दसिंह जी ने आप को अपना उत्तराधिकारी बनाने का पहले ही विचार कर लिया था और इसलिए आपकी प्रारंभिक शिक्षा बहुत विचार कर आरंभ की थी। पाँचवें वर्ष में आपका अक्षरारंभ हुआ। सातवें में पढ़ाई शुरू की। और संवत १९४२ में अजमेर के मेयोकालेज में छटे दर्जे में भरती हुए। वहाँ के छात्र जीवन में आपका विद्यानुराग विशेष प्रकाशित हुआ।

(३) संवत् १९४४ में आपको अंग्रेजी की. बढ़ती हुई योग्यता के लिए चतुर्थ श्रेणी में "मेवाड़ का रजत पदक' मिला। उसी समय गणित तथा इतिहास में प्रथम श्रेणी का पारितोषिक प्राप्त हुआ। संवत १९४६ में हरेक विषय में दूसरी श्रेणी में अव्वल रहने से फिर मेवाड़ का "रजत-पदक" और गणित में सब से पहला पारितोषिक मिला। सं० १९४७ में आपको अंग्रेजी के लिए करौली राज्य का "सुवर्ण पदक" प्राप्त हुआ और सं० १९४९ में कालेज क्लास में तरक्की के रास्ते के अनुगामी होने तथा अनुकरणीय आचरण रखने से श्रीमान् बड़े लाट वाईसराय महोदय की ओर का फिर "सुवर्ण पदक" प्राप्त हुआ। साथ ही 'मेट्रीक्यूलेशन' (या ऐंट्रेंस) पास करने के कारण जोधपुर राज्य का "सुवर्ण पदक' हस्तगत हुआ और इसी वर्ष "प्रयाग विश्वविद्यालय' में ऐंट्रेंस की परिक्षा देकर आपने मेयोकालेज छोड़ दिया।

(४) अजमेर से आए पीछे देवीसिंहजी ने 'महाराजा कालेज' जयपुर में ऐफ़.ए. तक पढ़ाई की। इसके सिवा ज़रूरत जितना कानून और अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन घरू तोर पर किया और हिन्दी-उर्दू तथा संस्कृत का अभ्यास बढ़ाया। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि आप सुवाच्य अक्षरों में शुद्ध हिन्दी लिखने गद्य-पद्य दोनों का मतलब समझने व्यवहार की बात चीत में सुचारू शब्द बोलने और हिन्दी अंग्रेजी उर्दू फारसी या जैपुरी भाषा बोलने में अच्छे अभ्यासी हैं। ++

संवत् १९५१ के आषाढ सुदी २ को आपका "दत्तक संस्कार" हुआ और इसी वर्ष नीमाज में आपका पहला विवाह हुआ। जिस दिन कुल धर्म की रीति के अनुसार वर वधूने चौमूँ के पूजनीय देवी देवता और पूर्वजों के पाद पद्म का पूजन किया उस दिन आपकी वैवाहिक सवारी का जुलूस देखने के लिए दर्शकों की भारी भीड़ हुई थी।

(५) विवाह के दूसरे वर्ष नववधू के उदर से प्रथम सन्तति बाई उत्पन्न हुई किंतु थोड़े ही दिन पीछे उसका प्राणांत होगया। तब पीछे (१) संवत् १९५५ में "बुद्धिकुँवरिजी" (२) संवत १९५७ में "जयसिंहजी" (जो अब संग्रामसिंह जी हैं) (३) संवत् १९६० में "राजसिंहजी" (४) संवत् १९६२ में "राजकुँवरिजी" और (५) संवत् १९६४ में "दुर्गादास जी" उत्पन्न हुए उनका तथा उनसे आगे के अन्य कुमारों का परिचय इस अध्याय के अन्त में दिया गया है। ++

+ देवीसिंहजी की बढ़तीहुई बुद्धि विवेक और व्यवहार दक्षता को देखकर गोविंदसिंजी ने आपको अपना प्राईवेट सेक्रेटरी नियत किया और जब तक जीवित रहे तब तक गंभीर विषय के काम आपही से लेते रहे। संवत् १९५७ में गोविंदसिंहजी का स्वर्गवास हुआ उस अवसर में तीन बड़े आदमी और भी वैकुंठवासी हुए थे। उनमें (१) भारतेश्वरी महाराणी "विक्टोरिया" * संवत १९५७ के

* (१) "महाराणी विक्टोरिया" संवत् १८७६ ता. २४-५-१८१९ को पैदा हुई १८ वें वर्ष तक विविध विद्याऐं पढ़ीं। संवत १८९४ ता० २०-६-१८३७ को प्रातःकाल के समय संपूर्ण ग्रेट ब्रिटेन की मालिक हुई। संवत् १८९७ में अपने चचेरे भाई युवराज एलबर्ट से विवाह किया। संवत् १९१५ में ता० १-११-१८५८ को भारत को यह सूचना दी कि 'हमारी ओर से जाति और धर्म पर आक्षेप नहीं होगा। प्राचीन रीति नीति में छेड़ छाड़ न की जायगी वर्ताव समान रहेगा। ऐसा ही हुआ संवत् १९१८ में विधवा हुई। संवत् १९३३ ता. १-१-१८७७ को दिल्ली में दरबार हुआ। संवत् १९४४ में वह भारतेश्वरी हुई। उस दिन उसके राज्य को ५० वर्ष हुए थे। अतः सुवर्ण जुबिली मनाई गई और सम्वत् १९५४ में उनकी हीरक जुबिली का महोत्सव हुआ। (हिं० वि० कोष पृ० २७३) उनकी ५५७७०००) वार्षिक तनखा थी। उपरोक्त संवत १९५७ के माघ में उनका देहांत हुआ तब ५३२५००) उनकी अन्त्येष्टि क्रिया में लगाए गए।

माघ में ता. २२ जनवरी सन् १९०१ को परलोक पधारीं। (२) जयपुर के प्रधान मंत्री "बाबू कांतिचन्द्र जी" * राज काज के कारण नागपुर जाकर स्वर्गवासी हुए और (३) खेतड़ी के राजा "अजीतसिंह जी" * "खेतड़ी का इतिहास" (पृष्ठ १०१) के अनुसार सिकंदरे की अति उच्च मीनार से गिर कर स्वर्ग पधारे + + संवत १९५७ के पौष सुदी पड़वा को ठाकुरां देवीसिंह जी ने अपने धर्म पिता गोविंदसिंहजी का उत्तराधिकार ग्रहण किया और पूर्वजों के परंपरागत गौरव को प्रकाशमान करने के मार्ग में प्रविष्ट हुए।

(६) अधिकार लाभ के थोड़े ही दिन पीछे आपके कामों से प्रजा को विश्वास होगया कि 'देवीसिंह जी के शासन समय में हम सब लोग पिछले सरदारों के शासन समय से भी कुछ अधिक सुखी और संतुष्ट रहेंगे।' आपके प्रति प्रजा की यह धारणा देख कर तत्कालीन जयपुर नरेश महाराज माधवसिंहजी (द्वितीय) ने ठाकुरां देवीसिंहजी को संवत् १९५८ चैत्र शुक्ल १३ ता० १ अपरेल सन् १९०१ को 'जयपुर स्टेट कौंसिल' का मेंबर बनाया। उस परम महत्व के पद पर प्रतिष्ठित होकर आपने राजा और प्रजा दोनों को संतुष्ट रखने का जो कुछ निष्पक्ष न्याय या काम किया

* (२) "बाबू कांतिचन्द्रजी" जयपुर राज्य के प्रधान मंत्री एवं राजनीतिज्ञ और महाबुद्धिमान् थे। अपने जमाने के मुसहाबों में आप अधिक प्रभाव शाली थे। आपके जमाने में जैपुर की जनता को किसी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ। आप देवी के उपासक भी थे। नवरात्रों में आपके यहां एक महाभोज होता था जिसमें जयपुर के कई हज़ार आदमी जीमते थे।

* (३) "अजीतसिंहजी" संवत् १९१८ के आसोज सुदी १३ को जन्मे थे। संवत् १९२७ के पौष बुदी ८ को खेतड़ी के राज्यासन पर आरूढ़ हुए थे। साधु-संत सत्संगी या विद्वानों का वह बहुत सत्कार करते थे। आपने ६६८००) रुपए लगाकर कई एक पुराने कुओं की मरम्मत करवाई थी। ५६ के अकाल पीड़ितों को बचाने में आपने अपना जेब खर्च तक खर्च कर दिया था। विक्टोरिया की हीरक (डायमण्ड) जुबिली के अवसर में आप विलायत भी गए थे। आपका ज्योतिष विद्या में विशेष अनुराग था। आपने एक आदर्श पंचांग भी बनवाया था। विवेकानन्दजी आदि के भक्त थे। अंत में उपरोक्त प्रकार से आपकी मृत्यु होगई।

उसके विषय में विशेष लिखना आवश्यक नहीं सिर्फ यह सूचित किया जा सकता है कि उन दिनों के काम से आपकी प्रजा और जयपुर की जनता इतने अधिक संतुष्ट थे कि अधिकांश आदमी अब तक आपके कृतज्ञ हैं। अस्तु।*

(७) कौंसिल मेंबरी का काम करते रहने की अवस्था में ही १० महीने पीछे आपको महाराजा साहब जयपुर की सेवा में रहकर "विलायत यात्रा" करने का सौभाग्य मिला था। आपकी वह यात्रा इस समय के मनुष्यों के लिए अभूत पूर्व और स्मरणीय यात्रा थी। आगे जाकर आपके आत्म वर्ग के आदमियों को आवश्यक अवसरों में परिचय प्राप्त होता रहे इस अनुरोध से यहां उसका आंशिक दिग्दर्शन करा देना आवश्यक प्रतीत हुआ है। विलायत में महामान्य सम्राट सप्तम एडवर्ड के राज्याभिषेक का उत्सव था। उसके लिए जयपुर नरेश महाराज माधवसिंहजी (द्वितीय) को अपने सहगामी शूर सामंतों सहित पधारने का बुलावा आया था। इसी प्रयोजन से ठाकुरां देवीसिंह जी विलायत गए थे।

(८) लण्डन जाने के लिए महाराज ने "ओलिम्पिया" जहाज किराए किया था। उसमें यात्रियों के आराम की सब सुविधा मौजूद थी। गोमांस जैसी निषिद्ध वस्तुओं के न रखने की लिखावट लिखवाली गई थी। उसे धुलाया भी था। उसमें अलग अलग श्रेणी की छः रसोई, नहाने के ४ कमरे, मीठे जल का बड़ा हौद, मुसाफिरों के यथा योग्य कमरे और सब तरह के अन्य सुख साधन मौजूद थे। महाराज के साथ में २२ बड़े आदमी और १०३ सेवक (कुल सवासौ) गए थे। उनमें (१) 'पूज्य श्रेणी में भगवान् श्री गोपाल जी (२) 'सरदार श्रेणी में ठाकुरांसाहिब देवीसिंहजी चौमूँ और रावराजा माधवसिंह जी सीकर (३) 'पण्डित मण्डली' में विद्यावाचस्पति पं० मधुसूदनजी ओझा (४) 'रक्षकदल में ठाकुर हरीसिंहजी खादू धनपतिराय जी ट्रांसपोर्ट और हेमचन्द्र जी सेन

* उसी अवसर में--जोधपुर के तत्कालीन महामहोपाध्याय कवि राजा मुरारी दान जी ने आपके विषय में यह प्रकाशित किया था कि "देवो भूषण देश को नीको घणूँ निपाट। चामीकर चौमूँ धणी कलूत लाग्यो काट ॥१॥"

(५) 'स्वास्थ्य रक्षकों' में डाक्टर दूलजंगसिंह जी तथा...............
......(६) 'प्रबंधकों' में कर्नल जेकब तथा संसारचन्द्रसेन जी और (७) 'कृपापात्रों' में खवास बालाबक्श जी तथा राजा उदयसिंहजी थे। प्रत्येक बड़े आदमी के साथ में एक या एकाधिक आदमी यथा योग्य गए थे। देवीसिंहजी के साथ में अजैराजपुरा के ठाकुर कल्याणसिंहजी, बरके ठाकुर फतहसिंहजी चौमूँ के पुरोहित रामनिवास जी एम. ए. और अन्य ४ सेवक (१ फतहसिंह जी पचकोढया, २.बाला दरोगा और ३.रामसुख रसोईदार) आदि थे। सब लोगों को विलायत में कैसा भेष रखना पड़ेगा और क्या वर्ताव किया जायगा ये बातें पहले बतला दी गई थीं। 'धर्मप्राण' या 'आचारादर्श' महाराज ने अपने साथ के संपूर्ण आदमियों के लिए आटा, दाल, चावल, चीनी, घी, मसाले, सूखे साग, मेवा, मिठाई और गंगाजल आदि सभी सामग्री जयपुर से ली थी यहां तक कि हाथ धोने और बर्तन मांजने की मिट्टी भी यहाँ से ही गई थी। कुल सामान के छः सौ बंडल दो हज़ार मण के थे।

(६) विलायत जाने के लिए संवत् १९५९ के बैशाख बुदी १३ मंगलवार को प्रस्थान किया। १४ बुध को सामान भेजा गया। सुदी १ गुरु को सरदार लोग बम्बई गए और वैशाख सुदी २ शुक्रवार को महाराजा साहब रवाना हुए। बंबई पहुंचने पर 'कुलाबा' स्टेशन में वहां के धनीमानी सेठ साहूकारों ने महाराज का तथा उनके साथ के सरदारों का यथायोग्य स्वागत किया। बम्बई 'श्रीवेंकटेश्वर' प्रेस के मालिक सेठ खेमराज जी ने महाराजा साहिब का अधिक अनुराग से स्वागत किया था और साथही राव राजाजी सीकर तथा ठाकुराँ साहिब चौमूँ आदि को यथायोग्य नजर वा विविध प्रकार की सर्वोत्कृष्ट पुस्तकें भेंट की थी। वैशाख शुक्ल ५ सं. १९-५९ ता० १२ मई सन् १९०२ को महाराज ने तथा उनके सहगामी सरदारों ने शास्त्रोक्त विधि से समुद्र का पूजन किया। उसमें महाराज ने सुवर्ण के शाक्षात् कलश-सच्चे मोतियों की सुन्दर माला और रेशम आदि के बहुमूल्य वस्त्र भेट करके अपनी धार्मिक दृढ़ता तथा आदर्श सूर्य वंशी होने का परिचय दिया। इस प्रकार के

अनुष्ठान किए पीछे जहाज में बिराज कर विलायत के लिए रवाना हुए।

(१०) रास्ते में अरब समुद्र, अदन बंदर, लाल समुद्र, मेडीटेनियन्सी (भूमध्य सागर) और मार्सेल्स आदि के दृश्य देखते हुए और भँवर तूफान या ठंडी हवा आदि के सुख दुःख का अनुभव करते हुए जेठ बुदी १० रविवार संवत् १९५९ ता. १ जून सन् १९०२ को जहाज से उतरे और जेठ बुदी ११ सोमवार ता. २-६-०२ को स्पेशल ट्रेन से आगे गए। तारीख ३-६-०२ मिती जेठ बुदी १२ मंगलवार संवत् १९५९ को सायंकाल के समय ३ बज के ५७ मिनट पर लण्डन के 'विक्टोरिया स्टेशन' पर पहुँचे। रास्ते में कई जगह सम्राट् की ओर के अफशरों ने महाराजा साहब का स्वागत किया था और सलामी की तोपें दागी थीं। विलायत पहुँचने पर 'मोरे लाज' महल में महाराज का डेरा हुआ नीचे के मंजिल में प्रबंध विभाग तथा कर्नल जेकब ठहरे थे। बीच की मंजिल में भगवान् विराजमान हुए थे और तीसरे मंजिल में ठाकुरां साहिब चौमूँ आदि रहे थे। वहां के मार्निंग पोस्ट, ग्रेटथाट्, क्रानिकल, वेस्टमिन्सटर और ग्राफिक आदि अखबारों ने महाराजा साहब के रीतिरिवाज-वर्ताव व्यवहार मान सम्मान और रंग बिरंगी पोशाकें आदि के विषय में नित्य नए समाचार प्रकाशित किए थे और महाराज की धार्मिक दृढ़ता तथा स्वदेश प्रेम की प्रशंसा की थी।

(११) आरंभ में यह निश्चय हुआ था कि आषाढ बुदी ५ शुक्रवार ता. २६-६-०२ को सम्राट् सप्तम एडवर्ड का राजतिलक होगा किंतु उसी अवसर में सम्राट् के शरीर में अकस्मात ही एक महा व्याधि उदय हो आने से राजतिलक का दिन आगे बढ़गया सम्राट् की महाव्याधि उनके पेट में 'अपेंडीसाईटीज' होजाने की थी बड़े बड़े डाक्टरों ने उसके चीरा लगाया था और ईश्वर ने उस अमिट संकट से सम्राट् को बचाया था। सम्राट् की बीमारी के दिनों में भारत से गए हुए महमानों ने विलायत की सैर की और अनेक प्रकार के अदृष्ट पूर्व दृश्य देखे।

(१२) सब से पहिले जेठ बुदी १३ बुधवार संवत् १९५९ ता० ४।६।०२ को परम रमणीक और अत्यंत मनोहर "इण्डिया आफिस" देखने गए। इस

स्थान में महाराजा साहब जयपुर ने मिस्टर रिचमाण्डरिची, कर्नल बाइली और लार्ड जार्ज हेमिल्टन को ठाकुरां साहिब चौमूँ का परिचय कराया। जेठ सुदी ६ बुधवार ता० ११।६।०२ को "पोर्टलेंड पैलेस" नाम का महल देखा वहाँ महाराज ने लार्ड रावर्ट के साथ ठाकुरसाहब आदि का परिचय करा था।जेठसुदी८ ता. १३।६।०२ को श्रीमान् महामान्य सम्राट् एडवर्ड से राजाओं के मिलने का निश्चय हुआ था इसके लिए सम्राट् ने सब से पहिले महाराजा साहिब जयपुर से अकेले मिलने की सूचना भिजवाई थी और महाराज के साथ में ठाकुर साहिब चौमूँ तथा राव राजाजी सीकर के आने का प्रवेश पत्र (पास) भेज दिया था। उसके अनुसार महाराजा साहिब माधवसिंहजी जैपुर के साथ में ठाकुराँ साहिब देवीसिंहजी चौमूँ और राव राजा माधवसिंह जी सीकर "बकिंग हाम पैलेस" (राज प्रासाद) में उपस्थित होकर सम्राट् महोदय से मिले और सम्राट् की सेवा में महाराज ने ठाकुर साहिब आदि का परिचय प्रकट किया। महाराजा साहिब व उनके साथ के उक्त दोनों सरदारों से मिलने में सम्राट् महोदय ने हार्दिक प्रेम प्रकट किया और परिचय पाकर परम प्रसन्न हुए। इसके सिवा आप लोगों को सम्राट् के पुस्तकालय -- ड्राईंगरूम, चित्रशाला और स्टेटवाल रूम आदि देखने का भी सुअवसर मिला था।

(१३) जेठ सुदी ६ ता. १४।६।०२ को लण्डन से ४० मील दूर "ऐल्डर-साट" में फौजें देखने गए वहाँ जाते समय शहर देखने का मौका आप ही मिल गया था। राज्याभिषेक के कारण उन दिनों लण्डन की शोभा स्वर्गोपम हो रही थी। घास, रबड़ और काठ की साफ सुथरी सड़कों के किनारे आठ आठ मंजिल के मकान तथा दूकानें अपनी अपूर्व शोभा दिखा रहे थे। व्यापार व्यवसाय तथा धनाधिक्य के विषय में लक्ष्मी की पूर्ण कृपा थी और स्वास्थ्य शिक्षा तथा मनोरंजनादि के साधन पूर्ण रूप में प्रस्तुत थे। ता० १६।६।०२ को एसकाट में "रेसकोर्स" की घुड़दौड़ देखने गए। वह अपूर्व दृश्य था। उसके लिए एक लाख बड़े आदमी और कई लाख सामान्य मनुष्य इकट्ठे हुए थे। परन्तु वहाँ का नियम पालन और पुलिस का प्रभाव देखिये, किसी

प्रयोजन की पूर्ति के लिए एक पुलिस अफसर ने कहा कि 'कृपया इस मैदान को खाली करदीजिए' तब तत्काल ही सब लोग एक तरफ हट गए। ता. २०।६।०२ को "हाउसेज आफ पार्लियामेन्ट" देखने गए। वहाँ जाने पर मनुष्य का मन प्रफुल्लित होजाता है और बुद्धि खिल जाती है। साथ ही अद्भुत अलौकिक अथवा विचित्र मकान और सजीव सरीखी सैकड़ों मूर्तियां देखने में आती हैं।

(१४) आषाढ बुदी १ संवत १९५९ ता० २२।६।०२ को जयपुर वालों ने "वेस्टमिन्स्टर अैबी" नाम का गिर्जा देखा था। उसमें लाखों रुपयों की लागत के अनेक मकान हैं। वहाँ अँग्रेज जाति के विख्यात विद्वान या बड़े आदमी दफनाए जाते हैं और वहाँ के बादशाहों का राजतिलकउसी में होता है। "भू-प्रदक्षिणा" आदि में लिखा है कि 'उस मकान की नींव संवत १०४० में लगी थी। वह स्थान सौ गज ऊँचा है। उसके घंटे की छोटी सूई ३ गज और बड़ी ५ गज लम्बी हैं आवाज करने वाला मोगरा ३६४ मण का है' और उसका शब्द सारे शहर में सुनाई देता है। वहां वाले उस मकान को दुनियां में एक मानते हैं किन्तु जिन अंग्रेजों ने भारत में आकर अजंटाकीगुफा रामेश्वर आदि के मन्दिर चित्तौर एवं रणथम्भार आदि के किले जयपुर और उदयपुर के महल आबू के जैन मन्दिर और आगरे का ताजबीबी का रोजा (अथवा ताजमहल) आदि देखे हैं वे 'अैबी के गिर्जे' को एक उत्तम स्थान बतलाते हैं। अस्तु।

(१५) आषाढ बुदी ९ से १२ तारीख ३० जून से २ जुलाई तक जयपुर वालों ने अनेक प्रकार के फौजी दृश्य देखे थे और ता. ४ जुलाई को 'लेवी दरबार' देखने गए (" महाराज की लण्डन यात्रा" (पृ. ६८-६९) से मालूम हुआ है कि उस दरबार को स्वयंसम्राट सम्पन्न करने वाले थे परन्तु उनके बीमार हो जाने से युवराज (जो भविष्य में पंचम जार्ज हुए थे) ने किया वह 'इण्डिया आफिस) में हुआ था। उक्त आफिस परम मनोहर है। उसके बनावटी दृश्य भी असली जैसे मालूम होते हैं'। उस दरबार में महाराजा साहिब जयपुर, ठाकुर साहब चौमूं और रावराजाजी सीकर आदि उपस्थित महानुभाव पुराने जमाने के

वस्त्र शस्त्र पोशाकें आदि धारण करके उपस्थित हुए थे। उनके मस्तक पर जरी की खूँटेदार पगड़ी जिसमें बहुमूल्य रत्नों के सरपेच जग मगा रहे थे। शरीर पर गहरे बेर के जामे थे। पीठ पर ढाल कमर में तलवार और वक्षस्थल पर बहुमूल्य आभूषण थे वह दरबार बृटिश सरकार के सर्वोत्कृष्ट महत्व को प्रकट करने वाला था। उस में बड़े बड़े अँग्रेज अफसरों ने युवराज के सामने यथा नियम नम्रभाव दिखलाया था।

(१६) संवत् १९५९ आषाढ वुदी ३० ता० ५।७।०२ को श्रीमान् सम्राट महोदय के निरोग होने के निमित्त का महाभोज हुआ था उसमें ५ लाख गरीबों को ५ प्रकार का भोजन करवाया था। उनदिनों अखबारों में प्रकाशित हुआ था कि उस भोज में ५ लाख रुपए खर्च किए गए थे। ++ आषाढ सुदी १ ता० ६।७।०२ को लण्डन की 'जू' अर्थात "विचित्र पशुशाला" देखने गए थे। उसमें अनेक प्रकार के अनोखे जानवर थे। हिमालय के रीछ बर्फ के बने हुए मकानों में और गर्म देश के सिंह बिजली की गर्माई के मकानों में रहते थे। उनमें समुद्र के सिंह मछली खाकर पेट भरते और देखने योग्य अनोखे हाथी बड़े यत्न से रखे गए थे। जयपुर वालों ने उसी दिन "लण्डन हिपोड्राम" "लण्डन हास्पिटैल" और "क्रिस्टल पैलेस" (बिल्लौरी महल) आदि देखे थे। ++ संवत् १९५९ आषाढ सुदी ९ ता० २९।७।०२ को ठाकुरां देवीसिंहजी ठाकुर हरीसिंहजी राजा उदयसिंहजी बाबू संसारचन्द्रजी पं० मधुसूदनजी और डाक्टर दलजंगसिंहजी आदि ने "हाउस आफ कामन्स" और "हाउस आफ लार्डस" देखे थे। दूसरे दिन "कैम्बृज विद्यालय" में वहां के अंग्रेज विद्वानों ने पं० मधुसूदनजी का श्रद्धा के साथ सत्कार किया था।

(१७) उपरोक्त दृश्य देखने के सिवा कई एक अद्भुत स्थान और भी देखे थे जिन में "भूल भुलय्या" (अनोखा मकान) "चक्रव्यूह" चकित करने वाला कमरा) "चारिंग क्रास स्टेशन" "टेम्सनदी का पुल" "जमीन के अन्दर" तथा "भूपृष्ठ पर" चलने वाली रेलगाड़ियां तथा अनेक प्रकार के गायन वादन और नृत्य आदि देखे थे। और लार्ड हेमिल्टन, लार्ड किचनर, लार्ड लैंसडाउन, लार्ड रावर्ट,

लार्ड रिपन, लार्ड विशप, लार्ड बैनलाक, वाल्टर लारेंस, रिचमांडरिची, आनरेब्ल कैंडी, डावेजर कौंटेस मेयो, और कर्नल मीडू आदि महाशयों से यथायोग्य मिले थे। उनमें कई सज्जन राजपरिवार के पुरुष थे कई बडे अफसर भारत में आए हुए थे और कुछ ऐसे भी थे जिनका महत्प्रभाव विश्वभर में विख्यात था।

(१८) संवत १९५९ सावण सुदी ६ शनिवार ता. ९ अगस्त १९०२ की दुपहरी में श्रीमान् सम्राट महोदय का राज्याभिषेक हुआ था। उसके देखने के लिए उस दिन प्रातःकाल से ही 'वेस्टमिन्सटर" नाम का गिरजा घर अगणित दर्शकों से भर गया था। परंतु उसकी प्रधान वेदी (जिस पर राजतिलक होता है) के पास बड़े आदमी भी जा नहीं सकते थे और लब्ध प्रतिष्ठ पुरुष भी उसे दूर ही से देख सकते थे। किंतु महामान्य सम्राट के आदर भाजन भद्र पुरुष वहाँ गए थे। और श्रीमान् सम्राट महोदय ने महाराजा साहिब जयपुर को उसी स्थान में आसन दिया था जिनके साथ में ठाकुराँ साहब चौमूँ और रावराजा जी सीकर आदि ५ सहगामी सज्जन भी उपस्थित हुए थे। राज्याभिषेक भारत के विद्वानों के अभिजित मुहुर्त में मध्यान्ह के १२ बजे सम्पन्न हुआ। उस समय महामान्य सम्राट् के मस्तक पर राजमुकुट धारण कराया गया और राज घराने की रीति के प्रत्येक दस्तूर यथोचित रूप में संपन्न हुए। इस प्रकार विलायत की यात्रा से निवृत्त होकर जयपुर नरेश श्रीमान् महाराजा माधवसिंह जी अपने सहगामी शूर सन्तों सहित सं. १९५९ भादवा सुदी १२ रविवार ता० १४ सितम्बर सन् १९०२ को दिन के ११ बजे सकुशल जयपुर आए और अपनी प्रेम पुलकित प्रजा को दर्शन दिया। यात्रा से वापस जयपुर आने पर हर एक यात्री के यहां उनकी हैसियत के अनुसार उनके आगत स्वागत हुए थे और कई दिनों तक वहां के हालात कहे सुने गये थे। (विलायत यात्रा की विशेष बातें "महाराज की लण्डन यात्रा" "अब्धिनौयान मीमांसा" उनदिनों की चिट्ठी पत्री अखबार और यात्रियों की जबान से सुनी हुई बातों आदि से लिखी हैं। अस्तु।

(१९) संवत् १९५९ पौष सुदी २ तारीख १ जनवरी सन् १९०३ को

का अवलोकन इन दोनों प्रयोजनों से प्रेरित होकर ठाकुरां देवीसिंहजी भी अपने सहचर वर्ग तथा पुत्रादि सहित प्रयागगए थे। तन्निमित्त जयपुर से प्रस्थान करके आगरा और अलीगढ़ होकर सर्व प्रथम पहासू गए। वहाँ जाने के लिए जयपुर राज्य के मन्त्री पहासू के नव्वाब मुमताजुद्दौलाखां बहादुर के पुत्रों का अधिक आग्रह था। उन्होंने ठाकुर साहब को पहासू लेजा कर बड़े अनुराग के साथ उनका यथो चित स्वागत किया और कुछ समय ठहराने के पीछे यथाविधि बिदा किए। पहासू से विदा हुए पीछे प्रयाग गए। वहाँ की प्रदर्शनी अवश्य ही देखनेयोग्य थी उसमें देशदेशांतर की और विशेष कर भारत की बनी हुई अगणित वस्तुएँ दिखलाई गई थीं जो गुण-सौन्दर्य और महत्व में अद्वितीय थी। प्रदर्शिनी देखे पीछे प्रयाग से प्रस्थान करके आप तो आगे चले गए और कुमारगण वापस जयपुर आगए।

(२१) संवत् १९६७ के शीतकाल में आप गयाजी गए और वहाँ ४५ श्राद्ध करवा के पितृऋण से उऋण हुए। यद्यपि सम्पूर्ण श्राद्ध ४५ दिन में पूर्ण होते हैं किन्तु आपके साथ में सब तरह के साधन-सुविधा और सुअवसर रहने और ऐसे कामों में आपका निज का अनुभव-अभ्यास एवं अनुराग होने से थोड़े दिनों में ही संपूर्ण श्राद्ध पूर्ण होगए और शास्त्रीय विधानों में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं की गई। वहां से आप कलकत्ता गए और कलकत्ता से जगदीश जाकर जयपुर आगए। कलकत्ते में वहां के धनी मानी सेठों ने आपके स्वागत सम्मान में बड़ी श्रद्धा दिखलाई थी। और बहुत प्रेम के साथ रक्खे थे।

(२२) संवत १९६८ पोष वुदी ७ ता० १२।१२।११ को फिर "दिल्ली दरबार" हुआ। उसमें श्रीमान् सम्राट्

चित्ताकर्षक थीं। उदाहरण के लिए उनमें लंका से आई 'कपिल मुनि' की मूर्ति पैगंबर के दोहिते की लिखी हुई 'कुरान' अढाईसौ तरह की 'बाइबिल' 'अढाई हजार वर्ष पूर्व के चित्र' भारत की प्राचीन कला कौशल, हीरे जड़ी हुई लालका '२१ इंच का शिरपेच' बिलकुल 'न खुलने वाले ताले' और जहर रखने से 'स्वतः टूट जाने वाली' रकेबी आदि मुख्य थीं इस अवसर में यथा समय 'हवाई जहाज' में बैठकर आकाशी यात्रा करने के लिए वहां वायुयान भी उपस्थित हुआ था।

आपने अपने धार्मिक भाव सद्भाव और भारत के सच्चे यात्री होने का अच्छा परिचय दिया था। उस अवसर में टिहरी, गढ़वाल, गंगोत्तरी, और केदारनाथजी भी गए थे। उनके सिवा रामपुर, जोधपुर, बीकानेर, सवाई माधोपुर और रणथम्भोर आदि का अवलोकन भी किया था। आरंभ में आपने राज के कामों के कारण अथवा शिकार के प्रयोजन से अटावा उदैपुर्या, डूँगरी, मोरीजा, सामोद, मनोहरपुर, शाहपुरा, खोहरा, आमलोदा, अचरोल, जमुआरामगढ़, पदमपुरा, महुआ, टोडाभीम, बल्लमगढ़ डिग्गी, दूधू, दांता, थोसा, खाचर्यावास, खण्डेला, साँभर, निराणा, फागी, मोजमाबाद, अजैराज पुरा और रैणवाल आदि अपने तथा अपने इष्टमित्र और भायप के गांवों का दौरा किया था।

(२४) "शिकार" के सम्बंध में देवीसिंहजी की अभिरुचि अवस्था के आरंभ में अधिक बलवान थी। दौरे के मौके में अथवा अवकाश के अवसर में शिकार के निमित्त आपका बाहर जाना उन दिनों अनिवार्य था। इस प्रयोजन के खेमे डेरे तंबू या अन्य साधन जंगलों के समीप हर हफ्ते नहीं तो हर दूसरे चौथे छटे महीने तो अवश्य जाते थे। कला की दृष्टि से शिकार भी एक विद्या है। इसमें साहस, बुद्धि, विवेक और संयम आदि की बहुत ही ज़्यादा जरूरत है। यदि इनमें किसी एक की भी कमी हो तो 'अणी चूकी और धार मारी' की कहावत शिकारी के सामने आजाती है। जो लोग उदर पोषण के लिए अहिंस्य जानवरों या मूक पशुओं को (कई बार केवल मनोरंजन के लिए ही) एक गोली से अनेकों को या अनेक चोटों से एक दो को उड़ाते हैं उनके लिए शिकार चाहे मामूली तमाशा हो किंतु जो लोग क्षत्री नाम को सार्थक रखने का अभ्यास होता रहने के लिए ही नरघातक हिंसक जानवरों को मारते हैं उनके लिए शिकार एक अधिक महत्व की अथवा बड़े खतरे की कला कही जा सकती है। देवीसिंह जी ने इस विषय में भी अपने को अद्वितीय अनुभवी या प्रवीणतम प्रकट किया था। उन दिनों निशानेचोट मारना आपके लिए बहुत ही आसान था। यहां तक कि आकाश में अस्थिर रूप से उड़ने वाले हिंसक पक्षियों की पंख

" भारत में दिल्ली दरबार " हुआ था। उसमें शामिल होने के लिए प्रत्येक प्रान्त के राजा गए थे। जयपुर नरेश महाराज सवाई माधवसिंहजी (द्वितीय) भी सहचर वर्ग सहित पधारे थे। साथमें ठाकुरां देवीसिंहजी चौमूँ तथा रावराजाजी सीकर आदि गए थे। दरबार में राजाओं की बैठक तथा उनके डेरे तंबू आदि यथा योग्य रक्खे गए थे। उस दरबार में भारतेश्वर के प्रतिनिधि तत्कालीन बड़े लाट लार्ड-कर्जन ने प्रमुख रूप में अपना प्रभुत्व प्रदर्शित किया था। हिन्दवाना सूर्य महाराणा उदयपुर भी दरबार के अवसर में दिल्ली पधारे थे किन्तु वहाँ पहुँचते ही आप अकस्मात बीमार होगए और डाक्टरों की सम्मति के अनुसार वापस चले आए। + + उक्त दरबार के ५ वर्ष पीछे संवत १९६४ की काती बुदी ९ बुधवार को ठाकुरां साहब देवीसिंहजी की प्रथम पत्नी ऊदावतजी का बैकुंठवास हुआ उस समय उनकी असामयिक मृत्यु से चौमूँ की प्रजा में शोक छागया और वह बहुत कुंठित रही। वास्तव में वह बड़े धर्मशील और भाग्यशाली थे। उनकी पवित्र कूख से जो संतान हुई उनका परिचय पहले दे दिया है। प्रथम पत्नी का परलोकवास हो जाने पर आत्मीय वर्ग के लोगों का अधिकाधिक आग्रह रहने से संवत १९६५ के आषाढ सुदी ९ को आपका दूसरा विवाह हुआ। इनके गर्भ से जो संतान हुई उनका उल्लेख आगे किया गया है।

(२०) संवत १९६७ के जाड़े में (अथवा सन् १९१० के अन्त और ११ के आरंभ में प्रयाग में "अपूर्व प्रदर्शनी" * हुई थी। तीर्थ यात्रा और प्रदर्शनी

* "प्रयाग की प्रदर्शिनी" के लिए किला के समीप २५ बीघा भूमि में टीन के चद्दरों की दीवार बनाकर उसके अन्दर लाखों रुपयों का सामान सजाया गया था। उसी के अंदर डाक तार टेलीफोन और रेल आदि का प्रबंध था। वह दिन के ११ से रात के ११ तक ।।) के टिकट में प्रतिदिन देखी जा सकी थी। उसमें जलकल भोजन व्यवस्था और मनोरंजन के साधन भी थे। प्रदर्शिनी क्या थी संपूर्ण भारत को एक ही स्थान में दिखाने वाली थी। उसमें खेती बाड़ी, गौपालन, चित्र शाला, शिल्पकला, चिकित्सा, विज्ञान, विद्यामंदिर, रत्नसग्रह, कौतुकागार, औषध निर्माण और इन्जीनियरी आदि की सब सामग्री दिखलाई गई थी। उनमें बहुतसी वस्तुएँ तो बहुत ही अद्भुत विचित्र या

का अवलोकन इन दोनों प्रयोजनों से प्रेरित होकर ठाकुरां देवीसिंहजी भी अपने सहचर वर्ग तथा पुत्रादि सहित प्रयागगए थे। तन्निमित्त जयपुर से प्रस्थान करके आगरा और अलीगढ़ होकर सर्व प्रथम पहासू गए। वहाँ जाने के लिए जयपुर राज्य के मन्त्री पहासू के नव्वाब मुमताजुद्दौलाखां बहादुर के पुत्रों का अधिक आग्रह था। उन्होंने ठाकुर साहब को पहासू लेजा कर बड़े अनुराग के साथ उनका यथो चित स्वागत किया और कुछ समय ठहराने के पीछे यथाविधि विदा किए। पहासू से विदा हुए पीछे प्रयाग गए। वहाँ की प्रदर्शनी अवश्य ही देखनेयोग्य थी उसमें देशदेशांतर की और विशेष कर भारत की बनी हुई अगणित वस्तुएँ दिखलाई गई थीं जो गुण-सौन्दर्य और महत्व में अद्वितीय थी। प्रदर्शिनी देखे पीछे प्रयाग से प्रस्थान करके आप तो आगे चले गए और कुमारगण वापस जयपुर आगए।

(२१) संवत १९६७ के शीतकाल में आप गयाजी गए और वहाँ ४५ श्राद्ध करवा के पितृऋण से उऋण हुए। यद्यपि सम्पूर्ण श्राद्ध ४५ दिन में पूर्ण होते हैं किन्तु आपके साथ में सब तरह के साधन-सुविधा और सुअवसर रहने और ऐसे कामों में आपका निज का अनुभव-अभ्यास एवं अनुराग होने से थोड़े दिनों में ही संपूर्ण श्राद्ध पूर्ण होगए और शास्त्रीय विधानों में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं की गई। वहां से आप कलकत्ता गए और कलकत्ता से जगदीश जाकर जयपुर आगए। कलकत्ते में वहां के धनी मानी सेठों ने आपके स्वागत सम्मान में बड़ी श्रद्धा दिखलाई थी। और बहुत प्रेम के साथ रक्खे थे।

(२२) संवत १९६८ पोष बुदी ७ ता० १२।१२।११ को फिर "दिल्ली दरबार" हुआ। उसमें श्रीमान् सम्राट्

चित्ताकर्षक थीं। उदाहरण के लिए उनमें लंका से आई 'कपिल मुनि' की मूर्ति पैगंबर के दोहिते की लिखी हुई 'कुरान' अढाईसौ तरह की 'बाइबिल' 'अढाई हजार वर्ष पूर्व के चित्र' भारत की प्राचीन कला कौशल, हीरे जड़ी हुई लालका '२१ इंच का शिरपेच' बिलकुल 'न खुलने वाले ताले' और जहर रखने से 'स्वतः टूट जाने वाली' रकेबी आदि मुख्य थीं इस अवसर में यथा समय 'हवाई जहाज' में बैठकर आकाशी यात्रा करने के लिए वहां वायुयान भी उपस्थित हुआ था।

पंचमजार्ज सपत्नीक पधारे थे। बादशाह होकर भारत में पधारना यह आपके जीवन में पहिला अवसर था। उस दरबार के प्रधान प्रबंधकर्ता लार्ड हार्डिंज थे। उन्होंने दरबार में गए हुए संपूर्ण राजाओं की प्रतिष्ठा का यथोचित रूप में सिर्फ पालन ही नहीं किया था किन्तु अनेक अंशों में उसे अधिक बढ़ाया था। भारत के प्रायः संपूर्ण राजा उसमें शामिल हुए थे। नियमानुसार महाराणा उदयपुर भी गए थे। इस बार आपकी पूर्व प्रतिष्ठा में और भी बढोतरी की गई थी। आपको राजाओं की पंक्ति में प्रतिष्ठित रखने के बदले विशिष्ट श्रेणी में उपस्थित किए थे। उस अवसर में महाराजा साहब जयपुर भी पधारे थे और साथ में ठाकुराँ देवीसिंहजी आदि भी गए थे। दरबार का कार्य समाप्त हुए पीछे श्रीमान् सम्राट् पंचम जार्ज तो नैपाल की तरफ चले गए और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सम्राज्ञी (महारानी मेरी) ने जयपुर पधार कर इसका अवलोकन किया। उस समय ठाकुराँ देवीसिंहजी महारानी के 'शरीर रक्षक' नियत हुए थे और देखने योग्य स्थानों के दिखाने में सदैव उनके साथ रहे थे। इस सुयोग के अवसर में ठाकुर साहब के श्रेष्ठतम बर्ताव से महारानी बहुत सन्तुष्ट हुई और अपने हस्ताक्षरों से अंकित किया हुआ पत्र और अपना चित्र देगईं

(२३) संवत् १९६८ में ठाकुराँ देवीसिंहजी ने चित्तौर, इन्दौर, पूना, बंबई, बंगलोर, हैदराबाद, मथुरा, मद्रास, उटकमण्ड (नीलगिरी), रामेश्वर, लंका (सीलोन), द्वारका और दौलताबाद आदि की यात्रा की। इसके पहले स्वर्गीय ठाकुर साहब गोविंदसिंह जी के जमाने में उन्हीं के साथ आप अमृतसर और लाहौर आदि भी हो आए थे। संवत् १९६९ में दिल्ली, देहरादून, मंसूरी और हरिद्वार आदि में जाना हुआ था। इसके सिवा महाराज माधवसिंह जी जब कभी हरिद्वार जाते तो उनकी उपस्थिति में ठाकुर साहब का अन्य अवसरों में भी हरिद्वार में अनेक बार जाना हुआ था और ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम जैसी संस्थाओं का निरीक्षण किया था। संवत् १९६९ में आपने बद्रीनारायण जी की संपूर्ण यात्रा पैदल की थी। उस कठिन यात्रा में अनेक प्रकार के कष्ट सहते रहकर भी

आपने अपने धार्मिक भाव सद्भाव और भारत के सच्चे यात्री होने का अच्छा परिचय दिया था। उस अवसर में टिहरी, गढ़वाल, गंगोत्तरी, और केदारनाथजी भी गए थे। उनके सिवा रामपुर, जोधपुर, बीकानेर, सवाई माधोपुर और रणथम्भोर आदि का अवलोकन भी किया था। आरंभ में आपने राज के कामों के कारण अथवा शिकार के प्रयोजन से अटावा उदैपुरया, डूँगरी, मोरीजा, सामोद, मनोहरपुर, शाहपुरा, खोहरा, आमलोदा, अचरोल, जमुआरामगढ़, पद्मपुरा, महुआ, टोडाभीम, बल्लमगढ़ डिग्गी, दूधू, दांता, चोसा, खाचर्या-वास, खण्डेला, साँभर, निराणा, फागी, मोजमाबाद, अजैराजपुरा और रैणवाल आदि अपने तथा अपने इष्टमित्र और भायप के गांवों का दौरा किया था।

(२४) "शिकार" के सम्बंध में देवीसिंहजी की अभिरुचि अवस्था के आरंभ में अधिक बलवान थी। दौरे के मौके में अथवा अवकाश के अवसर में शिकार के निमित्त आपका बाहर जाना उन दिनों अनिवार्य था। इस प्रयोजन के खेमे डेरे तंबू या अन्य साधन जंगलों के समीप हर हफ्ते नहीं तो हर दूसरे चौथे छटे महीने तो अवश्य जाते थे। कला की दृष्टि से शिकार भी एक विद्या है। इसमें साहस, बुद्धि, विवेक और संयम आदि की बहुत ही ज़्यादा जरूरत है। यदि इनमें किसी एक की भी कमी हो तो 'अणी चूकी और धार मारी' की कहावत शिकारी के सामने आजाती है। जो लोग उदर पोषण के लिए अहिंस्य जानवरों या मूक पशुओं को (कई बार केवल मनोरंजन के लिए ही) एक गोली से अनेकों को या अनेक चोटों से एक दो को उड़ाते हैं उनके लिए शिकार चाहे मामूली तमाशा हो किंतु जो लोग क्षत्री नाम को सार्थक रखने का अभ्यास होता रहने के लिए ही नरघातक हिंसक जानवरों को मारते हैं उनके लिए शिकार एक अधिक महत्व की अथवा बड़े खतरे की कला कही जा सकती है। देवीसिंह जी ने इस विषय में भी अपने को अद्वितीय अनुभवी या प्रवीणतम प्रकट किया था। उन दिनों निशानेचोट मारना आपके लिए बहुत ही आसान था। यहां तक कि आकाश में अस्थिर रूप से उड़ने वाले हिंसक पक्षियों की पंख

अथवा आकाश में अति बेगसे उछाले हुए रुपए पैसे या चौअन्नी आदि को बंदूक की गोली से बेध देना आपके लिए बहुत ही मामूली काम हो रहा था ऐसे अवसरों में आपके एक सुदत्त सहगामी हरीसिंह जी पद्मपुरा वाले भी कई करतब किया करते थे। उन में गीली मिट्टी की गोली को गिलोल से उड़ाकर दूर की दीवार के चिपका देना तथा उसीपर यथाक्रम और गोली लगा देना और सिर्फ एक अँगुली से पकड़े हुए खड्ग के प्रहार से बड़े बकरे का झटका करना आदि मुख्य थे। अस्तु शिकार के प्रसंग में देवीसिंहजी को कई बार प्राणसंटक का अनुभव भी हुआ था (१) सं० १९६५ के पौष में कुहाड़ा के डूँगर की घाटी में एक व्याघ्र सोरहा था। शिकारी दर्शक उसे दूर से छेड़ रहे थे। ऐसे ही अवसर में एक मन चले मनुष्य ने सोते हुए बघेरे को खदेड़ कर जगा दिया। इससे कुपित होकर वह उसकी छाती पर चढ़ गया किंतु ठाकुर साहब ने तत्काल ही उसके गोली मारदी और काल के गाल में गए हुए व्यक्ति को सहसा बचा लिया (२) संवत १९६७ के आषाढ़ में आपने पद्मपुरा की तरफ दौरा किया था उसी अवसर में खेडली के समीप आपने एक हिरन का पीछा किया साथ ही आपके मनोजव घोड़े ने भी दौड़ने में कमी नहीं की किंतु कुयोगवश किसी वृक्षशाखा से आपकी ऐसी दशा हुई कि आप घोड़े से गिर गए और तत्काल मूर्छित होगए। बाद में जयपुर आए पीछे अंग्रेज डाक्टर पी. डी. पैंक के इलाज से आप अच्छे हुए। (३) इसी प्रकार एक बार आप घोड़े पर सवार होकर जंगल में जा रहे थे। रास्ते में अकस्मात एक शूर आपके सामने आया जिसको देखते ही आपके साहसी घोड़े ने उसका पीछा किया परंतु रास्ते में एक ऐसा खड्डा था जो दीखता नहीं था और शूर उसके अंदर होकर आगे चला गया था। कुयोगवश आप और आप का घोड़ा उसी गर्त में गिर गए किंतु घोड़ा जिस प्रकार सबल और चपल था उसी प्रकार चतुर और बुद्धिमान् भी था* अतः गिरते ही तत्काल अचल होगया जिससे आपके अंग

* "चौमूँ में सर्वोत्तम श्रेणी की सवारियाँ" सदा से रहती आरही हैं। लक्ष्मणसिंहजी के जमाने में "मंगल करण हाथी और "फौज रूप" घोड़ा बड़े बुद्धिमान् थे।

में कोई आघात नहीं आया और आप सकुशल आगए।

(२५) प्रसङ्ग वश यहां यह सूचित होजाना अनेक अंशों में उचित है कि 'देवीसिंहजी ने अपने जमाने में सिल्पकला का अधिक पोषण किया है'। लोग यह ठीक कहते हैं कि 'आपके जमाने में करणी, हतौड़ा, टाँकी, बसूला, सूई, धौंकनी और कलम के कारीगर कभी ठाले नहीं रहे'। वास्तव में आपने काठ मिट्टी धातु पत्थर और रत्नादि के योग से बनने वाले विविध प्रकार के वस्त्र शस्त्र आभूषण, महल मकान यानासन, बाग बगीचे और सजावट आदि के सुलभ या दुर्लभ बहुत से सामान ऐसे बनवाए हैं जो लब्धप्रतिष्ठ राजधानियों, उच्चश्रेणी के ठिकानों या सद्गृहस्थों के यहां यथा अवसर प्रति दिन या कभी कभी काम देते हैं और ज़रूरत के मौके में उनको जहां तहां से लाकर या बनवा कर प्रस्तुत करने पड़ते हैं। ठाकुर

संवत् १९०९ में जयपुर महाराज रामसिंहजी का जोधपुर विवाह हुआ उसमें वे दोनों गए थे और बरात के जुलूस की सवारियों में सबसे आगे थे। रात का समय था मेह वर्ष रहा था। पहाड़ी नले की फटकार से पथभ्रष्ट सवारियां इधर उधर हो रही थीं। ऐसे अवसर में घोड़े की पूँछ को सूँड में पकड़ कर हाथी घोड़ा दोनों एक दूसरे को सहारा देते हुए ठिकाने चले गए और खतरनाक रास्ते की बुराई से वर और बरातियों को बचा ले गए। वहां से वापस आते समय रास्ते में वही हाथी नदी के दलदल (रेली) में धँसगया। उस समय महावतों ने खूब कोशिश की किंतु नहीं निकला अन्त में उसने सूँड से जमीन को दबाकर पांव को फड़फड़ाया और ज़ोर की फटकार देकर स्वयं निकल आया। गोविंदसिंहजी के जमाने में संवत् १९५०-५५ में चौमूँ में बगदाद से एक ऊँट आया था उसके बाल बहुत ही ज्यादा और लम्बे थे और पीठ पर दो थूहे विशेष विलक्षण थे। वर्तमान ठाकुर साहब के सफर की सवारियों में "बहरी एक बहुत अच्छी घोड़ी थी उसके शरीर में स्वामी के हित कामना का अंश बहुत ज़्यादा था। संवत १९६६ में दौरे से वापस आते समय वह अचरोल के पास अकस्मात मर गई तब ठाकुर साहब ने वहाँ उसका स्थायी स्मृति चिन्ह (पक्का चबूतरा) बनवा दिया और उसमें उसकी संगमरमर की मूर्ति लगवादी। उसके एक विशेषांश में यह दोहा है कि "अति सुशील बहु बल चपल, स्वामिभक्त अभिराम। चौमूँ पति की अश्विनी, 'बहरी' गई स्वधाम ॥ १ ॥"

साहब ने उन के बनवाने रखवाने और काम में लेने के विधि, विधान या व्यवस्था आदि ऐसे घनवा दिए हैं जिनसे आप की दूरदर्शिता चतुराई और व्यवस्थापक पना स्वतः सूचित होता है। उनमें (१) ठिकाने के नाम का "मोनोग्राम" (राज चिन्ह) अग्रगण्य है जिसकी सुंदर मनोहर और बारीक घनावट में किला, रजपूती, रक्षाविधान और नाथावती निशान के साथ में 'श्रीकृष्णः शरणं ममः' प्रतिष्ठित हुआ है। इसका कई कामों और वस्तुओं में उपयोग किया गया है। इसके सिवा (२) "सुवर्णासन" (सोने चाँदी की कुर्सी) हैं जिनमें जयपुर की सिल्प कला का जगमगाता हुआ आकर्षक स्वरूप देखने में आता है। (३) ऐसी ही "सोने चाँदी की बग्घी" है जिसको विलायत की बनी हुई सर्वोत्कृष्ट बग्घी के समकक्ष बनाने में ठिकाने के अति वृद्ध 'गणेश खाती' ने कमाल किया है। इसी प्रकार हीरा पन्ना और मोती आदि के योग से बने हुए अस्त्र-शस्त्र और आभूषण आदि हैं जिनकी विलक्षण बनावट से अवश्य आश्चर्य होता है। उनमें तलवार की मूँठ पर चौवीसों अवतारों के सुन्दर चित्र अवश्य ही चित्ताकर्षक हैं। इमारतों में (४) "देवी भवन" रामनिवास के एल्वर्ट हाल का आभास कराने वाला सुन्दर मनोहर और अति विशाल महल है जिसमें जुदे जुदे कई रईस सहचर वर्ग सहित आराम से रह सकते हैं। इनके सिवा चौमूँ जयपुर कोठी और जागीर के गाँवों में बहुत मकान बने हैं जिनका खर्च लाखों पर पहुँचा है। इसी प्रकार बाग बगीचे रोशनी और मनोरंजनादि के स्थान मकान या साधन भी बहुत हैं जिनका विशेष वर्णन यहां हो नहीं सकता है।

(२६) यद्यपि ठाकुराँ गोविंदसिंह जी के समय में चौमूँ में शफाखाना खुल गया था और उसमें बीमारों का इलाज भी होने लग गया था तथापि वह छोटा था और मदर्से के मकान में होने से स्वतंत्र भी नहीं रहा था। इस कारण ठाकुराँ देवीसिंहजी ने संवत १९६७ के माघ बुदी ११ गुरुवार तारीख २६-१-१९११ को सर ई. जी. कालविन एजेंट गवर्नर जनरल के हाथ से नये मकान की नींव लगवाई। उस समय कालविन साहब ने ठाकुर साहब की लोकोपकारिता को सराहते हुए कहा था कि 'यह अस्पताल जयपुर के समीप

चिकित्सा विभाग में डाक्टरी विद्या का केंद्र बनेगा (और इसके द्वारा रोग पीड़ित प्रजा का उपकार होगा)।' कालांतर में उस मकान के तय्यार हो जाने पर संवत् १९७० काती बुदी ३ शनिवार ता० १८-१०-१९१३ को ठाकुर साहब ने कर्नल ऐस. एफ. बेली एजेंट जयपुर के हाथ से नवीन अस्पताल का उद्घाटन करवाया और उसे "कालविन डिस्पैंसरी" नाम से विख्यात किया। उस समय बेली साहब ने सभ्यता पूर्ण शब्दों में कहा था कि 'आज इस अस्पताल के खोलने में मुझे इसलिए हर्ष होता है कि इस से गरीबों को बहुत फायदा पहुँचेगा और यह अपने काम में क्रमोत्तर उन्नति करेगा।' ऐसा ही हुआ।

(२७) संवत् १९७० के मँगशिर में आपकी बड़ी पुत्री 'बुद्धि कुँवरिजी' का विवाह हुआ था। हिन्दवाना सूर्य महाराणा उदयपुर के सामंत बेदला नरेश राव बहादुर राव नाहरसिंह जी ब्याहने आए थे। बरात के जुलूस का विस्तार बहुत बड़ा था वह जयपुर जौहरी बाजार से ठाकुर साहब की चौमूँ हवेली' तक पहुँचा था। नगर के अगणित नरनारी उसे देख कर हर्षित हुए थे। महाराज माधवसिंहजी ने उस विवाह के प्रत्येक कार्य की सराहना सुनकर प्रसन्नता प्रकट की थी। ++ संवत् १९७९ के जेठ में ठाकुर साहब के द्वितीय पुत्र (युवराज) राजसिंह जी का प्रथम विवाह हुआ। बरात स्पेशल ट्रेन के द्वारा बनारस गई थी। वहीं विजयानगरम् की राजकुमारी अलकराजेश्वरीजी का राजसिंह जी ने पाणिग्रहण किया। विजयानगरम् वालों ने वर बराती और विवाह के प्रत्येक नेग या कार्य को मुक्त हस्त से यथेच्छ धन लगा कर सम्पन्न किया था। +++ संवत् १९७९ के मँगशिर में ठाकुर साहब की दूसरी पुत्री 'राजकुँवरिजी' का विवाह हुआ। ब्याहने के लिए उदयपुर राज्य के सम्माननीय सरदार बदनोर नरेश ठाकुर गोपालसिंह जी आए थे। बड़ी बाई बुद्धिकुँवरिजी के विवाह की भांति उस विवाह में भी आगत स्वागत खेल तमाशे भोज और दहेज आदि उत्तम रूप में सम्पन्न हुए थे। उक्त दोनों विवाहों को उच्च श्रेणी के बनाने में ठाकुर साहब ने मन खोल कर धन लगाया था और आगत स्वागत या अतिथि सत्कारादि की सर्वोत्तम सामग्री से सबको संतुष्ट

किया था। उसी अवसर में रैणवाल की बाईजी का विवाह हुआ। ब्याहने के लिए गभाना के राजा देवराजसिंह जी आए थे। उस विवाह को भी ठाकुर साहब ने ही सम्पन्न किया था इसलिए वह 'चौमूँ की हवेली' में ही हुआ और उसमें भी पूर्वोक्त विवाहों के समान सब प्रकार की शोभा सामग्री आगत स्वागत मित्र भोज या दहेज आदि उत्तम रूप में सम्पन्न किए।

(२८) ठाकुरां देवीसिंहजी की जीवन घटनाओं में एक घटना ऐसी है जिसमें भ्रांतिवश कुछ का कुछ हो गया था। वह संवत् १९७७ में संघटित हुई थी उस वर्ष के फागण सुदी ४ शनिवार को महाराज माधवसिंह जी (द्वितीय) ने अपनी बीमारी की हालत में जयपुर राज्य के लिए उत्तराधिकारी की योजना की थी। आपने जिनको नियत करना चाहा था उन का नाम एक लिफाफे में पहले ही बन्द था। वह किसका नाम था यह स्पष्ट प्रकट नहीं किया गया था। किंतु उसकी स्वीकृति के लिए जयपुर राज्य के संपूर्ण सरदारों को एकत्र किए थे। लिफाफे के अन्दर किसका नाम है, यह जानने की सब की इच्छा थी और इस विषय में लोग कई तरह की कल्पना कर रहे थे कहा जाता है कि 'संवत १९७२ के चैत सुदी १४ ता० १-४-१९१६ को श्रीमान बड़े लाट लार्ड हार्डिंग के विलायत जाते समय सवाई माधवपुर के "इन्द्रविमान भवन" * में महाराज ने एक बंद लिफाफा लाटसाहब को दिया था। यह नहीं कहा जा सकता कि उसमें किसका नाम था किंतु जयपुर की जनता में यह जाहिर हुआ था कि 'उत्तराधिकारी के विषय में लार्ड हार्डिंग से सलाह ली गई है।' जिस दिन (सं० १९७७ के फागण सुदी ४ शनिवार को) उपरोक्त स्वीकृति पत्र पर चौमूँ ठाकुरां साहब देवीसिंहजी के हस्ताक्षर होने को कहा गया उस

* "इन्द्र विमान भवन" नाम के रेल के डिब्बे हैं इनको बहुत खर्च करके महाराज माधवसिंहजी ने अपनी पसन्द के मुआफिक बनवाए थे। इनमें राजा महाराजाओं के आराम के सब साधन और सुभीते मौजूद हैं। ये छोटी बड़ी दोनों लाइनों के अलग अलग हैं और जयपुर तथा सवाई माधोपुर में इनके विशालकाय प्लेटफार्म या मकान हैं जिनमें ये सुस्थिर सुरक्षित रहते हैं। आजकल इनकी विशेष विख्याती सैलून के नाम से होती है।

समय ठाकुर साहब को कई प्रकार की संदिग्ध कल्पनाओं के फैली रहने से विचार आया कि 'लिफाफे के अंदर भावी उत्तराधिकारी का नाम बंद रहने से कदाचित् महाराज की मौजूदगी में वह न खुले और आगे जाकर किसी प्रकार का दुर्भाव पैदा हो तो उससे अनेक प्रकार के अनर्थ या आपत्ति होने की संभावना है।' अतः हस्ताक्षर करने के पहले ठाकुर साहब ने महाराज से निवेदन किया कि 'लिफाफे के अन्दर जिनका नाम बंद किया गया है उसे प्रकट कर देना चाहिए।' तब उन्होंने ठाकुर साहब के हितकारी कथन को राजा और प्रजा दोनों के लिए मंगलकारी मानकर ईसरदा के सवाईसिंहजी के कनिष्ठ पुत्र श्रीमान्'मोरमुकटसिंहजी' को यथा विधि उत्तराधिकारी नियत किया और उनको 'मानसिंहजी' नाम से विख्यात कर दिया। ऐसा होने से प्रजा बहुत ही प्रसन्न हुई और दुर्लभ प्रसन्नता को तत्काल प्राप्त कराने वाले ठाकुराँ देवी सिंहजी चौमूँ को मन ही मन धन्यवाद दिया। ठाकुरसाहब के प्रति महाराजा साहबका सदा से ही अमिट विश्वास और आत्मीय अनुराग रहा था। समय समय पर उन्होंने उसे प्रकट भी किया था। विलायत गए उस समय अधिक महत्व के मुख्य मुख्य अवसरों में महाराज ने आपको साथ रखा था। श्रीमान् सम्राट सप्तम एडवर्ड के समक्ष में उपस्थित होने पर आपने श्रीमुख से भी फरमाया था कि 'ये मेरे प्रथम श्रेणी के सरदार हैं।' उपरोक्त घटना के थोड़े दिन पहिले महाराज ने ठाकुर साहब को सानुराग "बहादुर" की उपाधि दी थी। 'केबीनेट' (कौंसिल) स्थापन करके आपको उसका मेम्बर बनाया था और अपनी मरणोन्मुखी अवस्था के अवसर में आपको कईबार याद फरमाया था।

(४०) "माधवसिंहजी" (द्वितीय)

(२९) का जन्म संवत् १९१८ के भाद्रपद कृष्ण नौमी को इष्ट ६।६

जन्म लग्न

७ | श सू मं रा. बु ५ वृ | ८ | ६ शु | ४ | ९ | ३ | १० | १२ | चं २ | ११ के | १
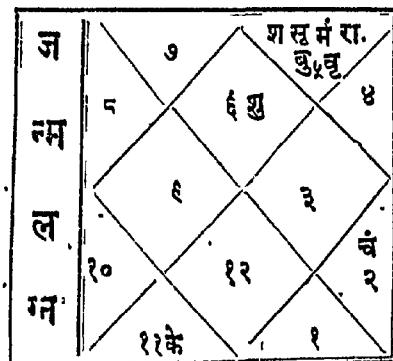
सूर्य ४।१३ और लग्न ५।१५ में हुआ

था। आपके पिता ईशरदा के ठाकुर रघुवीरसिंह जी थे। जन्म के समय आपका नाम कायमसिंह कायम किया गया था। वह नाम जयपुर के अधीश्वर होने पर बदला गया तब पीछे आप 'माधवसिंह जी' के नाम से विख्यात हुए। आपको बचपन में अनेकों कष्टों का अनुभव हुआ था। माता और सहधर्मिणी के साथ में आपने अनेकों स्थानों का अवलोकन किया था। संवत् १९३७ में जयपुर नरेश महाराज रामसिंहजी (द्वितीय) का प्राणान्त होने पर आपको जयपुर राज्य के अधीश्वर होने का सौभाग्य मिला। राज्यासन पर बैठते ही सर्वप्रथम आपने एक "अभूतपूर्व प्रदर्शिनी" की जिसमें अनेक जगह का और विशेष कर जयपुर तथा जयपुर राज्य का बना हुआ सामान संग्रहीत हुआ था। प्रदर्शिनी वर्त्तमान 'कौंसिल' के महाकाय मकान में की गई थी। उसको देखने के लिए अगणित नर नारी आये गये थे। पीछे उसका सामान बेच दिया गया था और बचे हुए को 'रामनिवास' बाग के महल में सजा दिया था जो अब तक देखने में आता है। आपके पांच विवाह हुए थे। प्रथम परिणीता जादूनजी थे जो विपत्ति के दिनों में भी आपके साथ रहे थे। आपका उन पर विशेष अनुराग रहाथा। धर्म पत्नियों के सिवा अठारह पर्दायत थीं जिनको यथा योग्य जीविका दी गई थी। महारानियों में जादूनजी के एक पुत्री हुई थीं। पुत्ररत्न की उत्पत्ति किसी के भी नहीं हुई। महाराज ने प्रजाका पालन; धर्म का रक्षण; कानून की पाबंदी; शासन की व्यवस्था; कुलाम्नाय की रक्षा; प्राचीन रीति नीति का आदर; शिष्टाचार का प्रचार और लोक व्यवहारों की सानुकूलता आदि में 'यथापूर्व' बड़े श्रीजी के निर्दिष्ट मार्ग को अंगीकार किया था। आपके जमाने में जयपुर की जनता ने कभी आपत्तियों का अनुभव नहीं किया। छप्पन के अकाल में आपने भूखों को भरपेट भोजन मिलता रहने के लिए लाखों रुपए लगाकर अनेकों सुविधा उपस्थित की थीं। किसी प्रकार के लोकोपयोगी या सार्वजनिक चंदे में आप से याचना की गई तो आपने हज़ारों नहीं मुक्तहस्त लाखों दिए थे। राजभक्ति की आप प्रत्यक्ष मूर्ति थे।

जिस समय सम्राट सप्तम एडवर्ड * बीमार हुए उस समय आप बड़े विव्हल रहे थे और उनके आरोग्य लाभ के लिए ईश्वर से अहोरात्र प्रार्थना की थी। धार्मिक दृढता के लिए आपकी विलायत यात्रा अद्वितीय उदाहरण है। परंपरा की मानमर्यादा या भेष भूषा के आप पूरे रक्षक थे। जो लोग अपने देश के भेष को बदल कर दूसरों की नकल करते उनसे आप नाराज होते थे। भारत के राजाओं में आप आदर भाजन रहे थे गंगा से जो नहर निकालने के अभूतपूर्व आयोजन किए गए थे उनको आप ही ने स्थगित करवाए थे। संवत १९७६ में आप बीमार हुए तब बड़े बड़े डाक्टरों और वैद्यों ने बहुत इलाज किया किंतु आराम नहीं आया। तब आपने राज काज की व्यवस्था "पंच-मुसाहबों" के अधिकार में की थी। उनमें ठाकुरां देवीसिंहजी भी शामिल रहे थे। संवत् १९७७ में आपने वर्तमान महाराज को गोद लिए उस समय कई दिनों तक नित्य नए अभूत पूर्व उत्सव हुए थे जिनमें गायन वादन, खेल, तमाशे, रोशनी और गोठ घूघरी मुख्य थे। अन्त में संवत् १९७९ के आसोज बुदी २ को आपका शरीरांत होगया।

(३०) सं० १९८१ में चौमूँ में "मीठे पर महसूल" लगा था। उससे वहाँ के व्यापार की बहुत बरबादी हुई थी। और वह अब तक भी अपनी असली हालत पर पूरेतोर से पहुँचा नहीं है। महसूल लगाने का कारण यह था कि 'मर्दुमशुमारी' में वहाँ की आबादी भ्रमवश ५ हज़ार से ज्यादा मानली थी और ऐसा मान कर ही महसूल लगाया था। इस विषय में संवत १९३५ के आसोज सुदी ५ के इश्तिहार में जयपुर स्टेट कौंसिल से यह नियम जारी हुआ था कि 'जो शहर ५ हजार या इससे ज्यादा आबादी के हों उनमें चीणी पर

* "सप्तम एडवर्ड" संवत १८९८ में पैदा हुए थे। २० लाख लगाकर आपका जन्मोत्सव मनाया था आपकी तनख्वाह ९ लाख वार्षिक थी संवत १९२० में विवाह हुआ तब आपकी स्त्री के १॥ लाख और बढ गए। संवत् १९२८ में आपके भयंकर ज्वर हुआ था। सम्वत् १९३२ में भारत में आए थे। आगरा में दरबार किया गया था उस समय आपको ७५ लाख प्राप्त हुए थे।

फी मण १) रुपया और गुड़ शक्कर पर आठ आने लिए जाँय।' परंतु चौमूँ की असली आबादी जो शहर के परकोटे के अन्दर और उसके सहारे की है वह ५ हजार के अन्तर्गत थी। उसके सिवा चारों ओर आध कोस से एक दो कोस तक की 'बीजली की ढाणी, रूपांमालण की ढाणी, सेरावतों की ढाणी और दूलहसिंह की ढाणी आदि कई एक ढाणियां ऐसी हैं जो छोटे गाँव की तरह सैकड़ों मनुष्यों की आबादी की हैं और कारबार व्यवहार में वे चौमूँ से सर्वथा पृथक् होने पर भी विख्याती में चौमूँ के नाम से ही प्रसिद्ध हैं। अतः उन सबको चौमूँ में मान लेने से ५ हजार से ज्यादा की आबादी हो जाती है। इसीलिए असली जनगणना (मर्दुमशुमारी) में भ्रांति वश भूल हो जाती है और वही उस अवसर में हुई थी। अन्त में अनुसंधान से मालूम हुआ कि चौमूँ की असली आबादी ५ हजार के अन्तर्गत है। इसलिए संवत १९८३ के माघ वुदी १२ को 'मीठे का महसूल' माफ हो गया। × व्यवसाय साधन के विचार से इस संबन्ध में यह सूचित होजाना नितांत आवश्यक है कि 'इस प्रांत में चौमूँ प्रत्येक प्रकार के व्यापार व्यवसाय का केन्द्र है यहाँ लोक व्यवहार की या सद्गृहस्थों के नित्य के काम में आने वाली देशी विदेशी वस्तुएं हर महीने हजारों रुपयों की आती जाती या बिकती रहती हैं। क्योंकि चौमूं के इर्द गिर्द दो दो चार चार कोस के मोरीजा, डावली, दौलतपुरा, बगवाड़ा, वासां, सामोद, या चीतवाड़ी ही नहीं दस दस और बीस बीस कोस तक के शाहपुरा, मनोहरपुर, चंदवाजी, बैराठ और प्रागपुरा पावटा तक के पचासों गाँवों में जो कुछ वस्तु पदार्थ या अनाज आदि पैदा होते हैं वे सब चौमूँ आकर (यहीं अथवा रेल द्वारा विदेशों में जाकर) बिकते हैं और उनके लाने वाले देहाती दलाल या व्यापारी लोग अपनी अपनी वस्तुओं के बदले में गुड़, शक्कर, चीणी, चावल, चांदी, पड़चूनी या लत्ते, कपड़े, जेवर, आदि जो कुछ जरूरी हों यथेच्छ ले जाते हैं। जिससे चौमूँ को या उससे संपर्क रखने वाले गाँवों को और रेलद्वारा आते जाते माल से जयपुर की राहधारी को सब तरह के सुख सुभीते और फायदे हैं अतः यहाँ मीठे पर

महसूल का माफ होना हर हालत में अच्छा है। एवमस्तु।

(३१) संवत् १९८३ में वर्त्तमान जयपुर नरेश महाराज मानसिंह जी (द्वितीय) का अद्वितीय समारोह के साथ चौमूँ पधारना हुआ था। यद्यपि जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, बीकानेर और सीकर खेतड़ी आदि के राजा महाराजा महाराणा या उनके प्रतिनिधि और ए. जी.जी. आदि उच्चाधिकारी अँग्रेज अफसर अनेक अवसरों में चौमूँ पधारे हैं * और चौमूँ ठाकुर साहबों के सत्कार को सादर स्वीकार किया है। तथापि महाराज मानसिंहजी के चौमूँ पधारने पर ठाकुर साहब ने विशेष आयोजन किए थे। महीना भर पहिले ही से चौमूँ के किले में और शहर में सफेदी स्वच्छता और सजावट के काम शुरू होगए थे। 'हमारे प्रजा प्रिय महाराज चौमूँ पधारेंगे' इस लालसा से स्थानीय और बाहर के दर्शक कई दिन से इकट्ठे होने लगे थे। पौष सुदी १२ मङ्गलवार को महाराज का चौमूँ पधारना हुआ उस समय आपकी स्पेसल ट्रेन में "माधवेन्द्र विमान भवन" नाम के पूर्वोक्त डिब्बे थे। आपके साथ में उन दिनों के गार्जियन् मेन साहब, उनकी मेम साहिबा, कुँवर बहादुरसिंहजी ईशरदा, ठाकुर बहादुर सिंहजी राणावत, ठाकुर धौंकलसिंह जी गोराऊँवाले, मेजर कुँवर अमरसिंह जी अजयराजपुरा के और पं० सूर्यनारायणजी ऐम. ए. आदि आए थे। + + महाराज के स्वागत के लिए ठाकुरां देवीसिंहजी चौमूँ और रावल संग्रामसिंहजी सामोद (दोनों सरदार) अपने सहगामियों और कुँवर साहिबों सहित चौमूँ स्टेशन पर उपस्थित होगए थे। उस अवसर में चौमूँ स्टेशन भली भाँति सजाया गया था। वहाँ के

* "विवाह आदि" के अवसरों में तथा हरेक मातमी के मौके में जयपुर महाराज का अनेक बार पधारना हुआ है। उनके सिवा अन्य कई अवसरों में अन्यत्र के राजा महाराजा पधारे हैं। संवत् १८४६ में फ्रांसीसी सेनापति डिबाइन, संवत् १८९६ में महाराना उदयपुर, १८९७ में मिस्टर थर्सबी, १९०४ में जोधपुर, बूँदी और बीकानेर के महाराजाओं के प्रतिनिधि, १९०५ में लेडलो, १९१५ में महाराज रामसिंहजी, १९२३ में जोधपुर के प्रतिनिधि, १९४५ में महाराजा साहिब माधवसिंहजी, १९६८ में ए. जी. जी. कालविन और १९८३ में महाराजा मानसिंहजी पधारे थे।

तत्कालीन स्टेशन मास्टर पंडित श्री-नारायण जी ने भी उसे सुदर्शनीय बनवाने में सहयोग दिया था। निश्चित समय पर श्रीमान् की स्पेशल ट्रेन ने स्टेशन के प्लेटफार्म में प्रवेश किया उस समय लाइन पर लगे हुए फोक्सी पटाखों की स्वतः ध्वनि हुई। महाराज के गाड़ी से उतर कर पृथ्वी पर पदार्पण करते ही पुष्प वर्षा और जयघोष के साथ २१ तोप चलाई गई। तब पीछे स्टेशन के बाहर खड़ी हुई सोने चाँदी की बग्घी में विराज कर महाराज शहर में जाने के लिए रवाना हुए। चौमूँ के "बजरङ्गपोल" दरवाजा बाहर महाराज का कलश आरता किया गया और वहीं सदा के नियमानुसार कसबा के पटैलों ने नजरें कीं। वहाँ से सवारी का क्रम-बद्ध जुलुस शुरू हुआ।

(३२) उसमें सब से आगे (१) "नाथावती निशान" या चौमूँ के सरदारों का जातीय झंडा अथवा विजयध्वज था। उसके पीछे यथा क्रम (२) नौबत का हाथी (३) चौमूँ के तोपखाने की "हीरा" और "पन्ना" नाम की तोपों के जोड़े (४) राजपताका वाले अश्वारोही (५) नक्कारों वाले अश्वारोही और (६) अश्वारूढ़ सहनाइची थे। उनके पीछे (७) जिरहवख्तर (लोह के वस्त्रों) वाले अश्वारोही (८) उच्चश्रेणी के ऊँटों की टोली (९) सर्वोत्तम शिवि-काएँ (पालखी) (१०) दर्शनीय पिंजस और (११) सजे हुए रथ थे। उनके पीछे (१२) बैंड-पूँगी और तिलंगान के बाजे (१३) अंग्रेजी साखत के घोड़े (१४) सोने चाँदी के जेवर के घोड़े (१५) उत्कृष्ट श्रेणी के खासा घोड़े और (१६) चौमूँ सामोद के प्रधान चिन्ह "सिखशाही भाले" तथा (१७) चाँदी के भाले थे। उनके पीछे (१८) अडाणीवाले (१९) छत्र वाले (२०) चपड़ास वाले और (२१) चोपदार थे। उनके पीछे (२२) महाराजा साहब की बग्घी (२३) उनके सहगामियों की मोटरें (२४) सोना चाँदी के सुन्दर और सुविशाल होदों वाले हाथी और उनके पीछे (२५) अश्वारोही सवार थे। + + महाराज के सामने उसी बग्गी में चौमूँ सामोद के सर-दार बैठे हुए थे। बग्गी के दोनों पायं-दाजों पर सोने के चवरों वाले दो सेवक खड़े चल रहे थे और जयपुर की सेना के तत्कालीन कप्तान या

महाराज के हाउस होल्ड वर्तमान कंट्रोलर मेजर कुँवर अमरसिंहजी और कुँवर उमरावसिंहजी-एडीकाँग (अथवा संरक्षक) के रूप में हाथों में नङ्गी तलवारें लिए हुए अश्वारूढ होकर बग्गी के दोनों ओर साथ चल रहे थे। उस समय "बजरङ्ग-पोल" (रावण दरवाजा) से किले के अन्दर तक तमाम बाजारों और रास्तों में अगणित नर नारी खड़े हुए थे और राजमार्ग के दोनों किनारों पर प्रत्येक मकान के छत छज्जे झरोखे या दूकानों के भीतर बाहर और सड़कों पर छः छः पंक्तियों में हजारों नर नारी अपने जगमगाते हुए सुन्दर वस्त्राभूषणों से सजधज के अड़े खड़े थे। उस समय महाराज के हर्ष सूचक मंद मुसकान से दर्शकगण मोहित थे और अपने को सौभाग्यशाली समझ रहे थे। इस क्रम से किले के अन्दर "देवी भवन" (महल) के सामने पहुँचने पर फिर २१ तोप चलाई गई और इस प्रकार चौमूँ ठाकुर साहिब ने राजराजेंद्र का यथाविधि स्वागत संपन्न किया। तदनन्तर कदीमी कायदा के अनुसार पगपाँवड़ा कलश आरता और नजरें हुई।

(३३) सर्व प्रथम चौमूँ सामोद के सरदारों ने एक एक मुहर और ५) ५) रुपए महाराज के नजर किए। उनके पीछे चौमूँ के युवराज कुँवर राजसिंह जी तथा अन्य कुँवर साहिबों ने १) १) मुहर तथा अजयराजपुरा के ठाकुर कल्याणसिंह जी और उनके पुत्रों ने ५-५ रुपए भेंट किए। इसी प्रकार मूँड़ोता, उदैपुरया और अटावा आदि के ठाकुर साहिबों ने ५-५ रुपए तथा चौमूँ ठिकाना के पुरोहित रामनिवास जी ऐम. ए. पं० अर्जुनलालजी ऐम. ए. ऐल. ऐल. बी. लाला इन्द्रलाल जी बक्षी गोपलबक्षजी शाह नरसिंहलाल जी और पुरोहित हरीनारायण जी आदि कामदार ओहदादार या उच्चाधिकारियों ने और उनके पीछे शहर के पंच चौधरी सेठ साहूकार सन्त महन्त और पुजारी आदि ने यथायोग्य नजर भेंट या दुपट्टे प्रसाद आदि अर्पण किए। उस अवसर में महाराज का दो दिन चौमूँ निवास रहा था। दोनों दिन में महाराज के आगत स्वागत, भोजन व्यवस्था, गाजा-बाजा खेल-तमाशा, नाच कूद, पोलो घुड़दौड़, रोशनी आतिशबाजी और प्रीति भोज आदि में लोक व्यवहार और

शिष्टाचार के जो कुछ काम किए उन सब से महाराज तथा उनके सहगामी (सब लोग) सन्तुष्ट हुए। बाद में बिदा के समय चौमूँ ठाकुर साहब की ओर से सजे हुए हाथी, घोड़े तथा मदील, डुपट्टा, पारचा, दुशाले, चिकन, मोतियों का कण्ठा और ज़री के गजरे आदि अर्पण किए गए और पीछे वह मोरीजा होते हुए सामोद पधार गए।

(३४) इसके अनन्तर संवत १९९१ चैत बुदी ४ दीतवार ता. २४।३।३५ को उन्हीं महाराज मानसिंहजी (द्वितीय) का कुँवर राजसिंहजी के द्वितीय विवाह के उपलक्ष्य में द्वितीय बार फिर पधारना हुआ था। उस अवसर में 'चौमूँ की हवेली' जयपुर पधारे थे। उत्सव के दिनों में हवेली की शोभा सांगोपांग सुन्दर होगई थी। स्वागत के समारोह की बहुमूल्य वस्तुऐं सर्वत्र सजा दी गई थी। उनमें बिजली की भव्य रोशनी का सुप्रकाश चन्द्रमा की चांदनी की भांति पृथ्वी पर फैल रहा था और ऊँचे वृक्षों पर लटकते हुए अगणित लट्टू आकाश के तारों की तरह जगमगा रहे थे। उस दिन महाराज का पधारना रात के ८ बजे पीछे हुआ था और करीब ५ घन्टे हवेली ठहरे थे किंतु उस स्वल्पतम समय में ही ठाकुरा देवीसिंहजी के सुयोग्य कामदारों, सुदक्ष प्रबन्धकों और कुशल कारीगरों ने स्वागत सम्बन्धी कलश आरते, पगपांवड़े, पुष्पवर्षा, नजर नछरावल, गायन, वादन खेलतमाशे, आतिशबाजी प्रीति भोज और बिदागी आदि के सब काम यथोचित सम्पन्न किए थे और महाराज अतीव हर्षित एवं संतुष्ट हुए थे। इस मौके में ठाकुर साहब ने महाराज को अपनी नियमित नजर (१)-५)) भेंट करने के सिवा १ हाथी २ घोड़े, बढिया शिरोपाव रत्नजटित शिरपेच तथा बहुमूल्य कण्ठी आदि अर्पण किए थे। उसी अवसर में पन्ना नरेश हिज-हाईनेश महाराज महेन्द्र सर यादवेन्द्र सिंहजी बहादुर K. C. S. I., K. C. I. E. भी पधारे थे। अतः ठाकुर साहब ने उनका भी यथोचित स्वागत सम्मान किया और उससे महाराज प्रसन्न हुए। अस्तु।

(३५) संवत् १९८६ में चौमूँ के हिन्दू मुसलमानों में कुयोगवश वैमनस्य होगया था। चौमूँ साढे तीन सौ वर्ष का पुराना कसबा है। इसमें

अशांति फैलाने वाले कारणों और आचरणों का आरंभ ही से अभाव रहा है शुरू से अब तक यहाँ हिन्दू मुसलमानों के आपस में कभी कोई तनाजा या नाराज़ी नहीं हुई थी। इस का यही कारण है कि चौमूँ के सरदार सदा से ही दोनों को बराबर रखते और समान आश्रय देते आए हैं। ऐसी दशा में यहाँ की शांत सुखी और सुजीव जनता को बरबाद करने के विचार से संवत् १९८६ में बाहर के एक नवागत कुजीव ने यहाँ आकर वैमनस्य बढ़ाने का प्रयत्न किया। इस काम के लिए उसने चौमूँ के मुसलमानों के बालकों को विद्या पढ़ाने के बहाने कुबुद्धि करना सिखलाया और उनकी मदद के लिए उसी जाति के अल्पज्ञ आदमियों को हरेक से बखेड़ा करते रहने की सलाह दी, नतीजा यह हुआ कि संवत् १९८६ के भादवा सुदी १५ बुधवार ता० १८ सितम्बर सन् १९२९ को दुर्भाव से भरे हुए मुसलमानों के एक समूह ने हिन्दुओं की ब्रह्मपुरी नाम के उस मुहल्ले में प्रवेश करना चाहा जिसमें वह उस प्रकार के दुर्भाव को लेकर पहले कभी नहीं गए थे। ब्रह्मपुरीवालों को उनका यह अभूत पूर्व दुर्व्यवहार बिलकुल बुरा मालूम हुआ अतः उन्होंने उनको मना किया किंतु वह माने नहीं तब दंगा होगया और उसी कारण दूसरे दिन बाजार बंद रहा। बात बहुत बड़ी नहीं थी किंतु कुजीवों के कर्म और कामना वैसी ही थी। अंत में आसोज बुदी पड़वा और दोयज को जयपुर से आर्म्ड पुलिस के सशस्त्र ७० जवान, दो पुलिस सुपुरिण्टेण्डेंट, दो थानेदार, एक डिपुटी और एक मजिस्ट्रेट (नाजिमजी साहिब) मय फौजी सामान के चौमूँ गए और यथोचित कार्यवाही शुरू की तब शांति हुई। किंतु वैमनस्य का बीज वैर की बालू में बोया गया था इस कारण उस समय शांति हो जाने पर भी उस के अंकुर डेढ वर्ष तक उगते रहे और सैंकड़ों वर्ष के सद्भाव और सद्वर्ताव को बिगाड़ते रहे। अन्त में ठाकुरां देवीसिंहजी के साम्यभाव से स्थायी शांति स्थापन हुई। उस अवसर में ठाकुर साहब की ओर से हिन्दू मुसलमानों के प्रति समान भाव का जो कुछ बर्ताव किया गया वह निस्संदेह उनकी शांतिप्रिय प्रकृति का परिचय देने वाला और उनके साम्य

भाव का प्रकट करने वाला था और उसी के प्रभाव से उन दिनों में शांति स्थापन हुई थी। यद्यपि चौमूँ में सब लोगों के बालकों के पढ़ने के लिए ठिकाने की ओर से यथोचित प्रबंध पहले से ही होरहा है और उसमें हिन्दू मुसलमान सब पढ़ते हैं तथापि उन दिनों मुसलमानों ने अपना अलग मदरसा खोलना चाहा और उसके लिए सरदारों की सेवा में प्रार्थना की तो आपने तत्काल ही उनको मुफ्त में जमीन बतलाई और १५००) सहायता स्वरूप नकद दिया। इसके सिवा मदरसा शुरू होजाने पर पढ़ाई के काम में यथोचित सहायता मिलती रहने की आज्ञा दी। ऐसे ही आदर्श गुणों से आपकी लोक प्रियता बढ़ी है और अपने पराए; क्या हिन्दू और क्या मुसलमान सब लोग आप को अंतःकरण से चाहते हैं।

(३६) संवत १९८८ आषाढ सुदी २ तारीख १७।७।१९३१ को (आषाढ़ी दशहरा*) के दिन ठाकुराँ देवीसिंह जी; हजूरसाहब की सेवा में सवारी में गए थे यथा स्थान पहुँच कर आप घोड़े से उतरने लगे उस समय आपका पाँव रावलजी साहब सामोद (जो वहीं खड़े थे) के घोड़े की बाग में उलझ गया जिससे आप गिर गए और हाथ में जो तलवार थी उससे दो अंगुली (इञ्च इञ्च भर) चिरगईं। इस कारण आप वहाँ नहीं ठहर सके और इस आकस्मिक घटना की सूचना महाराजा साहब की सेवा में सूचित करवा के अपनी कोठी चले गए। (रास्ते में डाक्टर भोलानाथजी ने चिरी हुई अंगुलियों के दवा लगाकर पट्टी बाँध दी) उस दिन सब तरह तन्दुरस्त रहे। दूसरे दिन एक मीटिंग में शामिल होने के लिए बुलावा आने पर महाराजा साहब की सेवा में उपस्थित हुए और तीसरे दिन आषाढ सुदी ४ रविवार ता० १७।७।३१ को शौच के समय चिरी हुई

* "आषाढी दशहरा" को जयपुर में महाराज की सवारी लगती है। उसमें सब सरदार लोग भी शामिल होते हैं। चांदी की टकसाल के सामने एक बड़ा डेरा खड़ा होता है। उसके अंदर भगवान् रामचन्द्र (या सीतारामजी) का पूजन किया जाता है। वाल्मीक के एक सर्ग का पाठ होता है और शारदीय कृषि (स्याल्लू साख) के शुरू करने का मुहूर्त सधाया जाता है (मुहूर्त के सिवा और सब काम चौमूँ में भी होते हैं।)

अंगुलियों में चौकी की अकस्मात् चोट लग गई जिसकी असहनीय पीड़ा से आप अकुला गए और अवाक् (बोली बंद जैसी) अवस्था हो गई जिसके असर को पक्षाघात (लकवा) जैसी बीमारी मान ली। उस अवसर में महाराजा साहब जयपुर ने अजमेर से अति शीघ्र डाक्टर बुलाने की अनुमति दी थी तब तत्काल डाक्टर बुलाया गया और वैद्यवर स्वामी लछीरामजी भी उपस्थित हुए। यथोचित निदान होने पर डाक्टर साहब ने मस्तिष्क (दिमाग) की नसका फटजाना बतलाया और स्वामी लछीरामजी ने पक्षाघात का आभास होना अनुमान किया। उस अवसर में आपके भाई व्योहारी इष्ट-मित्र-अपने पराए और प्रजाजन प्रायः सभी लोग चिंतामग्न हो गए और 'किंकर्तव्यविमूढ' बनगए। ईश्वर की कृपा से उपस्थित बीमारी यथाक्रम मिटी तब श्रावण बुदी ८ गुरुवार ता. ६।८।१९३१ को रोगमुक्त स्नान किया और नौमी शनिवार ता. ८।८।१९३१ को वायु सेवन के लिए बाहर गए। यद्यपि बीमारी दीखने में छोटी थी और तलवार की मामूली चोट आई थी किंतु उसका स्वरूपांतर हो जाने से आपके हितैषियों को बड़ी चिंता हुई। परमात्मा ने आपको प्रसन्न किया और प्रजा ने आनन्द लाभ का उत्सव मनाया। उस अवसर में चौमूँ में सभी हिन्दू मुसलमानों ने अपने अपने देव और धर्म के अनुसार ईश्वर बंदना-स्तोत्रपाठ-ब्राह्मण भोजन और उत्सव समारोहादि किए और आपकी सेवा में स्वयं उपस्थित होकर या पत्रादि के द्वारा सभी ने सच्चे अंतःकरण से सहानुभूति दिखलायी। उस समय अपने प्रति प्रजा का प्रगाढ़ प्रेम देख कर ठाकुर साहिब ने प्रेमपूर्ण शब्दों में गद्‌गद् वाणी से जिस रूप में कृतज्ञता प्रकाशित की थी उसका सारांश यह है कि 'प्रजा की सेवा के लिए मैं ऐसा तल्लीन नहीं हुआ हूँगा जैसे मेरी शुभ कामना के लिए लोग तल्लीन हुए हैं। मैं समझता हूं कि यह प्रजा का प्रेम है और साथ में सज्जनता का सुयोग मिला हुआ है जो मेरे निमित्त आप सब लोग बीमारी की हालत में असीम चिन्ता में निमग्न रहे और आरोग्य होने पर हर्षोत्साह का उत्सव मनाया।' अस्तु।

(३७) ठाकुरां देवीसिंह जी का व्यक्तित्व (अर्थात् मनुष्यपना) नीचे

लिखे ५ साधनों में व्यक्त (या जाहिर) किया जासकता है। यथा (१) विद्याभ्यास (२) धर्मानुराग (३) लोकव्यवहार (४) सत्कीर्ति संकलन और (५) ईश्वर चिंतन; इनमें "विद्याभ्यास" के बाबत पहिले बतलाया गया है कि 'आप ऐफ. ए. तक अंग्रेजी पढ़े हैं, हिन्दी, उर्दू, फारसी और संस्कृत भी जानते हैं और कानून भी सीखा है।' बुद्धि अच्छी और अभ्यास ज्यादा होने से हरेक विषय का आशय बहुत जल्दी जान लेते हैं। कईबार देखने में आया है कि बहुतसी बातें (चाहे वेद वेदान्त पुराणादि की हों और चाहें कला कौशल विज्ञान या राजनीति की हों) वक्ता के पूर्ण करने से पहले ही आप उसे साद्यन्त समझ लेते हैं। यही कारण है कि आपसे बात करने वाले कवि, कारीगर, कलावंत या कोई भी विद्वान यह अन्दाजा नहीं लगा सकते कि आप किस हद तक पढ़े हैं। बात चीत के बीच में मौके मौके पर जो आप हरेक विषय के श्लोक, दोहे, शेर, छंद, वाणी या पद आदि बोलते हैं उन से आपका संचित ज्ञान सूचित हुआ करता है। विशेषकर आपकी संकलन की हुई "सिलेक्टजेम्स" और "पत्र-पुष्प" आदि से आपकी योग्यता जाहिर होती है। "धर्मानुराग" के सम्बन्ध में पुराने कागजों से प्रकट हुआ है कि 'इस ठिकाने में धर्मानुराग का अंकुर परम्परा से उगता आरहा है और यहाँ के सरदार उसे सींचते आरहे हैं'। शास्त्रों में इहलौकिक और पारलौकिक धर्म साधन के जो कई प्रकार के व्रत उत्सव या पूजा पाठ आदि बतलाए हैं उनमें अधिकांश का यहाँ पालन होता है। राम, कृष्ण, वामन, नृसिंहादि जयन्तियों; निर्जला षट्तिला, संकष्टचतुर्थी या महाष्टमी आदि तिथियों और सूर्य, शनि या भोमादि वारों के 'व्रत' और होली, दिवाली, दशहरा, श्रावणी, आषाढी, दुर्गाष्टमी, खिलगाणी, तीज, गणगौर, सालग्रह और दोनों नवरात्रों के 'उत्सव' एवं गणेश, विष्णु; शिव, सूर्य, सावित्री, गंगा, लक्ष्मी, आंवला, शस्त्रपूजा, (हाथी, घोड़े, रथ, पालखी) और कलम दवात आदि के 'पूजन' यथा विधि सदा से ही करते कराते या होते आरहे हैं। सुपठित होने से ठाकुर साहब उनको स्वयं करते हैं। इसके सिवा होमयज्ञ, दान पुण्य, वरणी पाठ, ब्राह्मण भोजन, आगत, स्वागत या

लोक सेवा के अन्य साधन भी होते रहते हैं। प्रसंगवश यह सूचित करदेना भी अनुचित नहीं है कि ठिकाने की ओर से औषधालयों, पाठशालाओं, मठमंदिरों, तीर्थ गुरुओं, पंडों और छात्रों आदि को भी नियमित सहायता मिलती है। × "लोकव्यवहार" को यथोचित निभाने में ठाकुर साहब ने सदा से ही सत्पुरुषोचित परिचय दिया है और किसी काम में उलझन या मतभेद हुआ तो उसे ठीक करने का प्रयत्न किया है। प्रतिज्ञा और नियम पालन में आप सदा से ही सावधान रहे हैं। समय का सदुपयोग करने में आपकी दिनचर्या आदर्श है। जो काम जिस वक्त के लिए नियत हैं वे ठीक वक्त पर न हों तो आपको खेद होता है। बीमारों और बालकों के रक्षण-शिक्षण या निरीक्षण में आपका बहुत ध्यान रहा है। सब प्रकार की व्यवहार्य वस्तुएें आपके जमाने में ज्यादा एकत्र हुई हैं। किसी भी महल मकान, पाहुने या व्यक्ति विशेष के लिए खाने पीने पहरने या आगत स्वागत सजावट करने आदि के लिए जो वस्तु चाहियें वे सब यथा स्थान सुरक्षित हैं और अवसर आऐं उनसे उक्त काम सहज ही हो जाते हैं। जनता की सुविधा, शोभा और इच्छा के अनुरोध से आपने परम्परा के कई एक कामों में अदला बदली या सुधार किए हैं। उनमें तीज गणगौर आदि के मेले मुख्य हैं। पहिले ये शहर से ईशान कोण में बन्धे के बड़े चबूतरे पर होते थे और आगत स्वागत में फूल माला आदि के कई ढोकरे खर्च किए जाते थे अब ये उत्सव 'देवी निवास' में होते हैं। पहिले पीहाला दरवाजा के पास दशहरा के दिन महिष मर्दन का मेला होता था अब वह 'अहिंसा परमोधर्मः' मानने वालों के आग्रह से बंद होगया है और खिलगाणी आदि के अवसरों में जो छाग बलि होती थी वह कूष्मांड बलि के रूप में बदल गई है। इसी प्रकार कई एक अन्य कामों में भी समयोचित सुधार किए गए हैं। × "सत्कीर्ति संकलन" के सम्बन्ध में सिर्फ यह सूचित किया जासकता है कि 'सत्पुरुषों की - सत्कीर्ति - उनके सत्कर्मों से होती है और देवीसिंहजी के सत्कर्म प्रकाशमान हैं।' फिर भी इस देश के राजा महाराजा महाराणा या उच्चाधिकारी अंग्रेज अफसरों ने आपके तथा आपके पूर्वजों (पिछले

सरदारों) के सम्बन्ध में समय समय पर जो कुछ कहा या लिखा है उसका सारांश यहाँ प्रकाशित किया जाता है। (१) संवत १८८४ ता० २३ मई सन् १८२७ को कप्तान जानलो साहब ने ठाकुराँ कृष्णसिंहजी को सूचित किया था कि 'आपलोगों की सर्वोत्कृष्ट प्रतिष्ठा को यथावत रखने में मैं खुद और ईस्ट इंडिया कम्पनी सदैव सचेष्ट हैं।' (२) संवत १८८९ ता० २ दिसम्बर सन् १८३२ को मेजर अलक्ज़ेन्डर स्पायर्स सुपरिन्टेन्डेन्ट अजमेर ने ठाकुराँ लक्ष्मणसिंहजी को लिखा था कि 'बाबा जी आप खातिर जमा रखिए गवर्नमेन्ट हिन्द ने आपके सत्वसंरक्षण का वचन दिया है।' (३) संवत १९४५ ता० १८।४।१८८८ को सर हेनरी ने तथा ता० १।४।१८९० को कर्नल वाल्टर ने अपनी चिट्ठियों में ठाकुराँ गोविंदसिंह जी की सज्जनता, वीरता, विद्वता, राजभक्ति और लोक सेवा में सब से आगे रहने की सराहना की थी। (४) ऐसे ही कर्नल ऐच. पी. पिकाक. रेजीडेन्ट जयपुर ने संवत १९५१ ता० २४ ।३।९५ को यह प्रकट किया था कि 'दरबार में आप अव्वल दर्जे की बैठक पर बैठने वाले सरदार हैं। आपकी प्रतिष्ठा में कोई हानिं नहीं होसकती। (५) संवत १९५९ ता० १४।१।१९०२ को काब साहब रेजीडेन्ट जयपुर ने अपनी स्पीच में कहा था कि 'ठाकुराँ देवीसिंहजी उस घराने के (कुलदीपक) हैं जिसके स्वर्गीय सरदारों ने युद्धादि के मौके में बड़ी वीरता दिखलायी थी और राज सेवा में सदैव स्वामी भक्त रहे थे। गदर के मौके में महाराज रामसिंहजी ने गवर्नमेन्ट हिन्द की स्वामि भक्ति तथा रेजीडेंट परिवार की रक्षा का सम्पूर्ण भार उन्हीं को सौपा था और उनके बहुमूल्य समय का सदुपयोग लोक हित में ही होता था। अनेक अंशों में वे सब बातें आप में मौजूद हैं। (६) ठाकुर साहब के चतुर्थ पुत्र की असामयिक मृत्यु होजाने से संवत् १९९३ ता० २६।३।३७ को काब साहब का १पत्र विलायत से आया था। उसमें उन्होंने लिखा था कि ४० वर्ष होने को आए आपके सद्गुणों को मैं भूला नहीं हूँ। मुझे विश्वास है कि पिछले जमाने में सन् ५७ के गदर जैसे भीषण अवसरों में आपके पूर्वजों ने ब्रिटिश सरकार की सेवा तथा एजेंट परिवार की रक्षा आदि में जो अपूर्व

स्वामिभक्ति दिखलायी थी अब अवसर आए उसी प्रकार आप भी दिखला सकते हैं। (७) संवत १९६० तारीख ३०।११।०३ को कर्नल टी. सी. पीयर्स ने अपनी स्पीच में देवीसिंहजी को संबोधन करके कहा था कि ब्रिटिश सरकार और महाराजा साहब जयपुर के आप से ज्यादा स्वामी भक्त कोई नहीं है (८) संवत १९६३ ता० २४।११।०६ को कर्नल ऐच. ऐल. शावर्स ने चौमूँ में कहा था कि 'आप गवर्नमेन्ट के और जयपुर राज्य के सच्चे भक्त और हितैषी हैं। जिस प्रकार भारत के सरदारों में राजपूताना के सरदार सर्वोत्तम हैं उसी प्रकार जैपुर के सरदारों में आप प्रमुख सरदार हैं। (९) संवत १९६४ तारीख २३ सितम्बर सन् १९०७ को कप्तान ऐच. पी. सिंजन (जो वर्तमान में वायसप्रेसीडैन्ट हैं), चौमूँ आये तब कहा था कि 'चौमूँ जैसे बड़े ठिकाने में आप जैसे प्रख्यात राजभक्त के समीप आने से मैं अपने को सौभाग्यशाली मानता हूँ। (१०) संवत १९६६ ता० ३।४।१९ को कर्नल सी. हर्बर्ट ने अपने पत्र में लिखा था कि 'आपके कौंसिल के काम की मैंने सदैव प्रशंसा सुनी है। कर्तव्य पालन में मनसा वाचा कर्मणा से और परम्परागत कुलमर्यादा के निभाने में अंतःकरण के अनुराग से राजपूत सज्जन कैसे होने चाहियें इसके आप आदर्श हैं।' (११) संवत् १९६९ ता० १२। १२।१२ को कर्नल ऐस. ऐफ. बेली ने कहा था कि 'महमानों का संमान करने के आयोजनों में राजपूतों का आतिथ्य सत्कार सर्वत्र विख्यात है। परन्तु चौमूँ आने से मुझे यह विशेष अनुभव हुआ कि एक उदार राजपूत सरदार का किया हुआ आदर सत्कार कैसी अपूर्व प्रसन्नता पहुँचाने वाला होता है। यही नहीं नगर प्रवेश की सवारी में जो पुरानी वीरता और नवीन शान शौकत का संमिश्रण हुआ और निवास स्थान की रुचिपूर्ण सजावट तथा आराम के साधन किए उनसे मुझे अतद्भुत प्रकार का अनुभव हुआ है और अदृष्टपूर्व विशेषता देखने में आई हैं।' (१२) संवत् १९७३ तारीख २०।१२।१६ को कर्नल बेन ने अनेक देशों के आतिथ्यसत्कार को सूचित करने के साथ में कहा था कि अन्यत्र की अपेक्षा चौमूँ ठिकाने का आतिथ्यसत्कार सर्वोत्तम होता है।' इसी प्रकार (१३) संवत् १९८२ तारीख ५।११।२५ को जयपुर राज्य के

तत्कालीन प्रेसीडेन्ट ओगल्वी साहब, उनकी मेम साहिबा, व्लेंकिन् साहब उनकी मेम साहिबा, विग्लवी साहब, सर पुरोहित गोपीनाथजी, पण्डित अमरनाथजी अटल, खान-बहादुर मौलवी मुहम्मद अश्फाखहसनखाँ और ठाकुर साहिब जोबनेर आदि कई एक गण्य मान्य सज्जन आए तब उस अवसर में ता. ९।११।२५ को ओगल्वी ने कहा था कि 'आपके सहयोग से मुझे बहुत ही सुख मिला है।' (१४) संवत १९८२ के माघ शुक्ल ५ को श्री काशीधाम के 'भारतधर्म महामण्डल' की ओर से महाराजाधिराज श्री कामेश्वरसिंहजी K. C. I. E. ने ठाकुराँ देवीसिंहजी को "धर्मरत्न" की उपाधि दी उस समय आपके अनुकरणीय गुणों का प्रदर्शन किया था। और (१५) संवत १९८३ ता० १६।२।१९२६ को तत्कालीन प्रेसीडेंट रिनाल्ड साहब ने ठाकुरां देवीसिंहजी के शासन, शिक्षा, कौंसिल कार्य, आतिथ्य सत्कार और सदुव्यवस्था आदि की सराहना की थी अस्तु। + "ईश्वर चिंतन" के विषय में ठाकुरां देवीसिंह जी की धारणा और आचरण दोनों आदरणीय हैं। प्रत्येक कार्य की सिद्धि असिद्धि, हानिलाभ, शीघ्रता या विलंब आदि में आप ईश्वर का ही प्राधान्य मानते हैं और उसी रूप में उनका चिंतन करते हैं। विशेषकर "आपा मेटै-हरि भजै, तन-मन तजै विकार। निर्बैरी, सब जीव का, दादू यह मत धार ॥१॥" जैसी सन्त-वाणियों, ऋषिवाक्यों या निष्काम स्मरण करने के सिद्धांतों को हृदय में रख कर तद्रूप आचरण करने में मग्न रहते हैं। अस्तु।

(३८) पहले लिखा गया है कि 'ठाकुराँ देवीसिंहजी के दो विवाह हुए थे' उनमें प्रथम श्री जड़ावकुँवरि (जड़ावतजी) नीमाज के ठाकुर छत्रसिंहजी की पुत्री थे। देवीसिंहजी ने संवत् १९५१ में उनका पाणिग्रहण किया था। उनके देवोपम गुणों से चौमूँ के अधिवासी अधिक प्रसन्न थे। उनके उदर से सर्व प्रथम (१) सं० १९५२ में 'देवकुँवरि' (बाईजी) उत्पन्न हुए जिनका बचपन में ही वैकुण्ठवास हो गया था। (२) संवत १९५५ के चैत्र में द्वितीय पुत्री 'बुद्धि-कुँवरिजी' का जन्म हुआ। वह हिंद-वाना सूर्य के सामंत रावबहादुर नाहर-सिंहजी (बेदला) की बुद्धिमती धर्मपत्नी हैं। (३) संवत् १९५७ की काती

वुदी अमावस को ठाकुर साहब के प्रथम पुत्र 'जयसिंहजी' का जन्म हुआ आप वर्तमान में सामोद के रावलजी हैं और लोक प्रसिद्धि में 'संग्रामसिंह-जी' नाम से विख्यात हैं। आपके प्रारंभिक शिक्षक पुरोहित रामनिवास जी ऐम. ए. थे। आपने सातवें दर्जे तक प्राईवेट पढ़ाई की अनन्तर महाराजा हाईस्कूल जयपुर में एंट्रेंस पास किया और बी. ए. तक पढ़े। बाद में बैरिस्टरी सीखने के लिए दो बार विलायत गए। आपका प्रथम विवाह सलूँबर के रावत ओनाड़सिंह जी की पुत्री 'पद्मकुँवरि' (चूंडावत या कृष्णावतजी) के साथ और द्वितीय विवाह नैपाल के सीनियर कमांडिंग जनरल मोहन समसेर जंगबहादुर राणा की पुत्री ·········· (सीसो-दणीजी) के साथ हुआ। जयपुर नरेश महाराज माधवसिंहजी की मृत्यु होने पर मानसिंहजी झाला तथा पुरोहित गोपीनाथजी ने आपको जयपुर राज्य के शासनविभाग में नियुक्त किया। पहले आप रेवेन्यू (मालविभाग) में रहे थे अब जयपुर चीफकोर्ट के जज हैं और अपने ठिकाने के सब कामों को स्वयं करते हैं। आपका विशेष परिचय दूसरे खण्ड में दिया गया है। (४) संवत् १९६० के माघ शुक्ल २ चन्द्रवार इष्ट ५२।२५ सूर्य ९।४० और लग्न ७।२२ में ठाकुर साहब के द्वितीय पुत्र 'राजसिंहजी' का जन्म हुआ आप वर्तमान में चौमूँ के युवराज हैं। आपकी प्रारंभिक शिक्षा घर पर हुई थी पीछे महाराजा हाईस्कूल में सातवें दर्जे में भर्ती हुए। वहाँ एंट्रेंस तक पढाई की, संवत् १९७९ में मेयोकालेज अजमेर में १ वर्ष रह कर डिप्लोमा तक पढे परंतु पास होने के मौके में पेट में बड़े जोर का दर्द हो जाने से कलकत्ते चले गए फिर भी प्राइवेट पढाई अच्छी हुई थी इसलिए योग्यता बढ़ने में रोक नहीं लगी। पीछे 'रेवेन्यू' (माल विभाग) का अनुभव किया और फिर आगरे से दिल्ली जाकर 'सेटलमेंट' (प्रबंध के काम का) अभ्यास बढ़ाया। इसके बाद आपने ४ बार यूरोप की यात्रा की। उसमें सर्व प्रथम संवत १९८७ में लण्डन गए, उस समय फ्रांस, जर्मनी, इटली, स्विटजरलैंड और अंशतः अमेरिका आदि देशों का भ्रमण किया। दूसरी बार संवत १९८९ में विजयानगरम् महाराज कुमार के

साथ लंडन और अमेरिका गए। तीसरी बार संवत् १९९३ में और चौथी बार संवत् १९९४ के ज्येष्ठ में फिर यात्रा की। इसमें सन्देह नहीं कि विदेश भ्रमण से बुद्धि में विशेष प्रकार का विकाश होताहै और अनेक कामों को सफल करने का अनुभव बढ़ता है। परंतु विलायत यात्रा का बहुव्यय स्थानीय (चौमूँ आदि के) आरोग्य विधान और व्यवसाय आदि में लगाया जायतो और भी अच्छा है, अस्तु। आपका प्रथम विवाह विजयानगरम् महाराजकी राजकुमारी अलक राजेश्वरी के साथ हुआ। वह धर्म कर्म उपासना और पूजापाठ में तल्लीन रहती हैं और गोद्विजदेवादि की सेवा एवं गरीबों के उपकार में मन रखती हैं। आपका दूसरा विवाह संवत् १९९१ के फागण सुदी ६ दीतवार को भीकमकोर के ठाकुर गिरधारीसिंहजी की पुत्री आशकुँवरि (भटियाणीजी) के साथ हुआ। आप गम्भीर प्रकृति के बड़े मिलनसार हैं। भारत के कई एक राजा महाराजा और अंग्रेज अफसर आपके साथ मैत्री भाव रखते हैं विशेषकर जयपुर, धौलपुर, पन्ना, पटियाला, डूँगरपुर और चरखारी आदि के महाराज आप से अधिक प्रसन्न हैं। आप चौमूँ ठिकाने की 'कार्य कारिणी समिति' (अथवा) बोर्ड के कार्य कर्ताओं में प्रमुख हैं और आपके सहयोग से उनको समुचित सहायता मिलती है। आपके बुद्धि विवेक गंभीरता और सद्वर्ताव से सूचित होता है कि आप ठिकाने के काम में विशेष ध्यान देंगे और सानुराग अधिक समय लगावेंगे तब अवश्य ही आपका उज्वल भविष्य विशेष प्रकाशित होगा। (एवमस्तु) (आपका जन्म लग्न ८ शु ९ बु। १० सू चं श। ११ मं बृ। १२ केतु है) (५) संवत् १९६२ में तृतीय पुत्री 'राजकुँवरिजी' का जन्म हुआ। वह मेवाड़ के बदनोर नरेश की धर्म पत्नी हैं। उनकी सहनशीलता सद्वर्ताव, दयाभाव और उच्चविचार अधिक सराहनीय हैं। (६) संवत् १९६४ के आसोज वुदी १४ शनिवार को इष्ट २४।२८ सू ५।१८ और लग्न १०।१० में तृतीय पुत्र 'दुर्गादासजी' का जन्म हुआ। उन्होंने शुरू में छटे दर्जे तक प्राईवेट पढाई की फिर हाईस्कूल में भर्ती होकर मिड्लि तक पास करके मेयोकालेज में जाकर डिप्लोमा

पास किया और पोस्ट डिप्लोमा तक पढे। पीछे लायलपुर और नागपुर में कृषिशिक्षा (खेती बाड़ी) के काम का अनुभव किया। अब जयपुर की फौज में "सवाई मानगार्ड" ❀ के कप्तान हैं और महाराजा साहिब के स्टाफ में काम करते हैं। इन कामों में कई बार आपको विशेष सम्मानित होने का सुयोग भी मिला है। ऐसे ही सुयोग में महामान्यसम्राट के राज्याभिषेको-त्सव में उपस्थित होना भी शामिल है। एतन्निमित्त संवत् १९९४ में आप जयपुर की फौज के प्रतिनिधि होकर विलायत गए और श्रीमान् सम्राट छटे जार्ज के राज्याभिषेकोत्सव में शामिल हुए। आपका विवाह संवत १९९१ के जेठ में समान के लालसाहब मुजनसिंहजी की पुत्री सौभाग्य लक्ष्मी (चौहानजी) के साथ हुआ है। आप बड़े बुद्धिमान्-श्रमशील और उद्योगी युवक हैं। आपका जन्म लग्न ११ श। २ रा। ४ बृ। ५ चं। ६ सू शु। ७ बु। ९ के। १० मं है

(३९) संवत् १९६५ के आसाढ में आत्मवर्ग का अधिक आग्रह होने से ठाकुरां देवीसिंहजी का खींवसर के ठाकुर शिवनाथसिंहजी की पुत्री आश-कुँवरि (करमसोतजी) के साथ दूसरा विवाह हुआ। उनके उदर से सर्व प्रथम (७) १९६६ के माघ शुक्ला २ शुक्र को इष्ट ५९। २४ सू ९। २९ और लग्न ९। २६ में ठाकुर साहब के चतुर्थपुत्र 'भवानीसिंहजी' का जन्म हुआ। वह डिप्लोमा पास थे। बचपन में उनका राम स्मरण में अधिक अनुराग रहा था संवत १९७६ में वह रेणवाल के ठाकुर हुए। नीमराणा के राजा जनकसिंह जी की पुत्री से उनका विवाह हुआ, और संवत १९९३ की वसन्त पंचमी को उनका प्राण प्रयाण होगया। जो लोग ठाकुरां देवीसिंहजी को सर्वसुखी मानते थे उनको इस असामयिक मृत्यु से सन्देह हुआ कि इस संसार में सर्व सुखी शायद ही कोई हो। अब

❀ "सवाई मानगार्ड" वर्तमान जयपुर नरेश महाराज सवाई मानसिंहजी की निज की सेना है। उसमें महाराज के निश्चित किए हुए नियमित परिमाण के समकक्ष राजपूत योद्धा भर्ती किए जाते हैं। सैनिकों के अफसर सरदार लोगों के राजकुमार होते हैं। मानगार्ड की सेना के वस्त्र शस्त्र पोशाकें और घोड़े आदि सभी अद्वितीय हैं और उनके वर्ताव व्यव-हारादि में सर्वोत्कृष्टता दिखलाई देती है।

भवानीसिंहजी के पुत्र गिरिराजसिंहजी रैणवाल के ठाकुर हैं। (८) संवत १९६८ के मार्ग शुक्ल १३ चन्द्र को इष्ट ५७।४३ सूर्य ७।१८ लग्न ७।६ और चक्र ८ सूवृ। ६ बु। १ रा श। २ चंमं। ७ शुके में पंचम पुत्र 'उमराव सिंह जी' का जन्म हुआ। शुरू में संवत १९८१ तक आप मेयो कालेज में पढ़े फिर देहरादून के 'रायल इडियन मिलिटरी कालेज' में सैनिक शिक्षा ग्रहण की। संवत १९८७ अगस्त सन् १९३० में विलायत गए। सितम्बर से मिलटरी कालेज सेंडहर्स्ट में पढ़ाई शुरू की सं० १९८८ ता० ३० दिसम्बर सन १९३१ तक वहां रहे और उच्चश्रेणी में पास हुए। विलायत से आए बाद संवत १९८९ मार्च सन् १९३२ से कानपुर की अंग्रेजी फौज में काम सीख कर १ वर्ष बाद अंग्रेजी फौज के अफसर हुए। इस योजना में सर्व प्रथम ५।६ राजपूताना रायफल्स में रजमक रहे और फिर सिकन्दराबाद गए। आपका विवाह संवत १९९३ के जेठ में उड़ी के राजा गणपतिसिंहजी की पुत्री कमल कुमारी (सोलंखिणी जी) के साथ में हुआ है। आप अपने फौजी कामों में होशियार होने के सिवा गृह प्रबन्ध- लोक व्यवहार खेल कूद और मशीनरी आदि में भी सुदक्ष हैं। आपका जन्म लग्न ८ सूवृ। ९ बु। १ राश। २ चंमं। ७ शुके है। (९) संवत १९७० के चैत बुदी १२ रविवार को इष्ट ५०।३५ सूर्य ११।९ और लग्न ८।२९ में छटे पुत्र 'भगवतीसिंह जी' का जन्म हुआ। आरम्भ में आप जयपुर पढ़े। फिर 'प्रिंसआफ वेल्सज रायल मिलटरी कालेज' देहरादून में रहे। वहाँ संवत १९८७ अप्रेल सन् १९३० में डिप्लोमा पास किया। संवत १९८९ जून सन् १९३२ तक वहां रहे। वहां इण्डियन मिल्टरी एकेडेमी में फौजी शिक्षा ग्रहण की संवत १९८९ अक्टूबर सन् १९३२ मे एकेडेमी में भरती हुए वहां संवत १९९१ दिसम्बर १९३४ तक रहे और कमीशन प्राप्त किया फिर संवत १९९२ ता० २-२-३५ में आगरे जाकर 'किंग्स ओनयो लाइट इन्फेंटरी' में काम किया १ साल रहे। सं. १९९२ ता० ३।३।३६ में क्वेटा में १६ नं० रिसाला में आपकी--नियुक्ति हुई वहाँ आपने बड़ी योग्यता से काम किया इस कारण आप शीघ्र ही 'फुललेफ्टिनेंट' (सेना के अंशपति) बनाए गए और

संवत १९९३ ता० १।८।३६ को आपने अपनी बदली पलटन में करवा ली। पल्टल नं०४।१९ हैदराबाद में है (१०) संवत १९७२ में चतुर्थपुत्री 'नवनिधि कुँवरिजी' का जन्म हुआ। आप कोटा राज्य के अंतर्गत पलायथा ठिकाने के युवराज अजीतसिंह जी की अर्धाङ्गिनी हैं। शुद्ध शीघ्र और सुन्दर हिन्दी लिखने में आप अधिक प्रवीण हैं। (११) संवत् १९७३ के जेठ सुदी १० गुरुवार इष्ट २५। ११ सूर्य १।१६ और लग्न ६। १ में सातवें पुत्र 'भागीरथसिंह जी' का जन्म हुआ। आरंभ में आप घर पर पढ़े। मिशिन स्कूलसे एंट्रेंस पास किया। फिर बनारस के हिन्दू विश्वविद्यालय में ऐफ. ए. में उत्तीर्ण हुए। उसके बाद बंबई के एलफिन्स्टिन कालेज में रहकर बी.ए, हुए। अब विलायत या बंबई जाकर विशेष विद्या ग्रहण करने का विचार है। आप का विवाह संवत १९९३ के पौष सुदी ६ सोमवार ता. १८-१-३७ को कुनाड़ी के राजा साहब चन्द्रसेनजी के छोटे भाई दलपतिसेन जी की पुत्री कमल कुँवरि (झालीजी) के साथ हुआ है। आप का जन्म लग्न ७।९ रा। १ बु मं। २ सू. बृ शु। ३ के।४ श।६ चं है (१२) संवत १९७६ के चैत्र शुक्ल १३ शनी को इष्ट ५४। १४ सू. ११। २९ और लग्न १०। ११ में आठवें पुत्र 'भरतसिंहजी' उत्पन्न हुए। आप अभी पढ़ रहे हैं। (१३) संवत १९७७ माघ सुदी ९ बुध को इष्ट ५३। ०० सूर्य १०।५ और लग्न ८। १८ में नौवें पुत्र 'जनकसिंहजी' का जन्म हुआ। आप मेयो कालेज में पढ़ते हैं आपके वर्धमान विद्यानुराग से विद्वान् संतुष्ट हैं। गत वर्ष आपने तैरने में कप्तान का पद प्राप्त किया था वर्तमान में अच्छी हिन्दी लिखने से आपको वाल्मीकि रामायण आदि उपलब्ध हुए हैं। (१४) संवत् १९८० के जेठ में पाँचवीं पुत्री 'रिधि सिधि कुमारी' जी का जन्म हुआ। आपको हिन्दी के सिवा संस्कृत तथा गुजराती का अभ्यास भी कराया गया है। (१५) संवत ११८७ के चैत बुदी १२ रविवार को इष्ट ५९।५६ सूर्य ११।१ और लग्न ७।१४ में ठाकुर साहब के दशवें पुत्र 'मांधाता सिंहजी' का जन्म हुआ। आपका अक्षरारंभ होगया है। और (१६) संवत् १९९० में छठी पुत्री 'लक्ष्मीकुँवरिजी' का जन्म हुआ। वह अभी बालक हैं। अस्तु। उपरोक्त

परिचय से प्रतीत होता है कि ठाकुर साहब के प्रायः सभी पुत्र योग्य, साहसी, सच्चरित्र और विद्वान् हैं और उनमें कई एक ने जयपुर महाराज की तथा बृटिश सरकार की फ़ौजों के अंशपति होने का सौभाग्य प्राप्त किया है।

(४०) "ठिकाने का सुप्रबन्ध":—रखने में ठाकुर देवीसिंहजी का कैसा ध्यान रहा है और उसके लिए आपने किस योजना से काम लिया है; इसको प्रकाशित करने के पहिले प्राचीन काल के राजाओं के तथा आपके पूर्वजों के जमाने के प्रबन्ध का यत्किंचिद्दिग्दर्शन करा देना प्रसंग के अनुकूल प्रतीत होता है "ठिकाना" * या राज्य चाहे करोड़ों रुपए वार्षिक आय का बहुत बड़ा हो और चाहे लाख दो लाख (या हज़ार दो हज़ार) की जागीर का छोटा हो उसमें राज की रक्षा और प्रजा के हित साधन की कामना से मन्त्री, मुसाहब, दीवान या कामदार आदि की यथायोग्य योजना सदा से ही होती आरही है। "कौटलीय अर्थशास्त्र" अथवा "राजपूताने का इतिहास" आदि देखने से मालूम होता है कि प्राचीन काल के राजा लोग राज्य प्रबन्ध वा न्याय का काम मन्त्री, पुरोहित, सेनापति, खबर (या जासूस विभाग) का हाकिम, दुर्गाध्यक्ष, न्यायाधीश, आयव्ययपरीक्षक और दूसरे राज्यों से संधि या युद्ध करने का अधिकारी इनकी "अष्टकौंसिल" में शामिल होकर करते थे और उनकी सहायता के लिए ४ वेदवित, सदाचारी, गृहस्थ ब्राह्मण, ८ बलवान् एवं शस्त्रकुशल क्षत्रिय, २१ धनवान् वैश्य और ३० पवित्र तथा विनयवान् शूद्रों की सभा रहती थी। 'राजा राग द्वेष रहित धर्माचरण करते, कर्त्तव्यपालन या राज काज में मन लगाते, मदोन्मत्त होकर विषय भोग में नहीं पड़ते, शूर वीर होते, सत्पात्रों को दानमानादि से सन्तुष्ट रखते, नीच पुरुषों से बचते, स्त्री सेवन नियमित करते, सदाचारियों को आदर और दुराचारियों को दण्ड देते, समय को बहुमूल्य मानते, प्रजा के हित के काम सोचते,

* "ठिकाना" वालों में सोलह वर्गकोस 'भू' का पति "भूपति" सोलहसो वर्ग कोस भूमि का मालिक "मण्डलीक" और इससे जियादा के भूस्वामी "सम्राट्" या महाराज होते हैं और छोटे अंश के अधीश्वर "महंत" "नरेश" या "जागीरदार" कहलाते हैं। (वंशभास्कर पृ० १०१८)

उनको कार्य रूप में परिणत करते, योग्य अनुभवी और कार्य कुशल पुरुषोंको हाकिम बनाते, व्यापारी और कारीगरों की कदर करके व्यापार और कलाकौशल को बढाते, कष्टप्रद कर नहीं लगाते और आलस्य त्याग कर विद्या व्यवसाय और धर्म की उन्नति करते थे।' साथही ईश्वर से डरते और न्याय मार्ग में रहते थे। "राजशिक्षा" के अनुभवी लेखक ने लिखा है कि उस जमाने के राजा स्वयं अनुभवी, सदाचारी, स्वावलंबी, नीतिज्ञ, दूरदर्शी, बहुज्ञ, मितव्ययी और सहिष्णु होते थे। वे अपने या प्रजा के सम्पूर्ण कामों को न तो मन्त्री मुसाहिब या उन्हीं के भाई बेटे भतीजे आदि को सोंपकर निश्चिंत (या नचीते) होते थे और न चतुर चालाक या स्वार्थी कर्मचारियों के वाग्जाल में फँसते थे। यहां तक कि मन्त्रियों की सच्ची सलाह या शिकायत को भी खूब सोच समझ और जांच करके काम में लेते थे। इसी प्रकार प्रजा भी राजा को ईश्वर का अंश मानती, उनका आदर करती, प्रत्येक प्रकार के कष्ट निवारण और अभीष्ट सिद्धि की उनसे आशा रखती, भ्रमवश कभी कुछ असद्वर्ताव भी होजाता तो उसका सहसा प्रतिवाद करने के बदले शांति से उसे बदलवाती और अवसर आए मनसा वाचा कर्मणा से सत्पुत्र के समान सहायता देती थी। शत्रुओं को हराने और सर्वत्र शांति बनाए रखने के लिए राजा लोग पैदल, अश्वारोही, हाथी सवार और रथारूढों की 'चतुरंगिणी' सेना सजाते थे। उसमें पैदल सेना के शस्त्रों में धनुष बाण, ढाल, तलवार, भाला, फरसी, तोमर (लोहदण्ड) और गदा आदि होते थे और घुड़सवारों के पास तलवार और बर्छे रहते थे। रथी और महारथी रथों में बैठते और कवच (लोहवस्त्र) पहनते थे। उनके धनुष एक पुरुष की नाप के और बांण ३ हाथ के होते थे। बाणों के फल बहुत भारी और ऐसे पैने थे कि लोहे की मोटी चादर को भी सहसा छेद देते थे। अस्त्रों में आग्नेयास्त्र-वाय्वास्त्र और विद्युतास्त्र आदि थे। फौजों को व्यूहरचना (कवायद) भी सिखलाते और चतुरंगिणी के साथ में नौकर जासूस और देशज्ञ (भेदू) आदमी भी रखते थे। युद्ध के अवसर में हाथियों को मतवाले बनाकर उनकी

सूँड़ों में दुधारे खांडे देकर दुश्मनों पर छोड़ते थे और तोपों की मार से बचने के लिए हाथियों की कतार आड़ी रखते थे। नौकरों को नियमित समय (मास पूरा होने) पर अन्न या रोकड़ के रूपमें तनखा देते थे और नियमानुकूल (धर्म युद्ध) करते थे उसमें खोटी नीति से काम नहीं लिया जाता था। पराजित, भयभीत, या भागे हुए को नहीं मारते थे। शत्रु का शस्त्र भंग होजाता, धनुष की प्रत्यंचा टूट जाती, योद्धा का कवच निकल पड़ता या वह वाहनहीन होजाता तो उस पर घात नहीं करते थे। सोते हुए, थके हुए, भूँखे प्यासे या आशार्थी पर भी वार नहीं किया जाता था। घायल शत्रुओं को या तो उनके घर भेज देते या इलाज करवा के चंगे करते थे। किन्तु वर्त्तमान स्वार्थपूर्ण विपरीत समय के प्रभावसे अब ये बहुतसी बातें बदल गई हैं और इनका दुष्परिणाम राजा प्रजा और प्रबन्ध सब के लिए अनर्थकारी होगया है। इतने पर भी आश्चर्य है कि लोगों की मति गति उधर ही जारही है ऐसी दशा में कोई सुपठित, सच्चरित्री, कार्यदक्ष, दयालु या उदार भूम्याधिप अपने ठिकाने का सुप्रबंध रखना चाहे तो उसके लिये ऐसा कौनसा सुलभ या सानुकूल साधन है जिसके जरिए से उसका परम्परागत महान् महत्व सुरक्षित रह सके और वह अपने ठिकाने का आदर्श प्रबन्ध कर सके। + इसमें सन्देह नहीं कि चौमूँ ठिकाने के सरदार सदा से ही सबकी भलाई चाहते आ रहे हैं और प्रजाजन को हर तरह से शांत सुखी और सरसब्ज रखने के यथोचित प्रबन्ध शुरू से ही करते आए हैं। यहां उसी का सिंहावलोकन कराया गया है। आरम्भ की तीन पीढी (गोपाल जी, नाथाजी और मनोहरदास जी) महाराज पृथ्वीराजजी के सगे बेटे पोते और पड़पोते थे; इस कारण आरम्भ में उनको आमेर के अलावा अन्य ठिकाने के प्रबन्ध की आवश्यकता नहीं हुई। वे आमेर की सेवा रक्षा या हिफाजत रखने में ही सब कुछ मानते रहे। यही कारण है कि उनकी अमिट सेवाओं से सन्तुष्ट होकर आमेर के महाराज पृथ्वीराजजी भारमल जी और मानसिंह जी ने उनको बड़े से बड़े पदसम्मान और अधिकार देने में कोई संकोच नहीं किया। + उनके पीछे करणसिंहजी सुखसिंहजी और

रघुनाथसिंह जी ने उक्त महाराजाओं या उनके वंशजों के सहगामी रहकर आमेर की अन्तःकरण से सेवा करने के सिवा शाही साम्राज्य को बढाने और अपने ठिकाने का सुप्रबन्ध रखने में भी पूरा ध्यान दिया। कर्ण के द्वारा कांगड़े का किला फतह होजाने से अकेले आमेर नाथ ही नहीं; सम्राट अकबर के बेटे पोते तक ने भी उनको अपूर्व पुरष्कार और शाबासी दी थी। उनके जमाने में हाड़ोते की आय आबादी और आब हवा बहुत ही लाभ दायक रहे थे। उन दिनों प्रबन्ध के सब काम स्वयं मालिक या उनके भाई बेटे करते थे और प्रजा के साथ में स्नेह पूर्ण आत्मीयता का बर्त्ताव रखते थे। + उनके पीछे मोहनसिंह जी के जमाने में मन्त्री मुसाहिब या कामदार नियुक्त करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। उन्होंने अपने यहां सर्व प्रथम मीयां विलायतखांजी को प्रधान कार्य कर्त्ता और शाह दत्तरामजी को सहकारी नियत किया उन दोनों ने चौमूँ ठिकाने की ख्याती सम्पत्ती और महत्व को बढाने और उसे व्यापक बनाने में अपने बुद्धि कौशल का विलक्षण परिचय दिया था। 'चौमुहाँ-गढ' और 'चौमूँ हवेली' (जयपुर) के महाकाय महल मकान बृहत्काय बाग बगीचे आदर्श दफ्तर और सर्व मान्य नियमादि उन्हीं के जमाने में आरम्भ हुए थे उन दिनों चौमूँ की प्रजा का, ठिकाने के परिवार का, सजातीय भाई बेटों का, और जयपुर राज्य की फौज पल्टन या राज काज का चौतर्फी जमघटा था अतः शाह-दत्तरामजी ने सम्पूर्ण कामों को जुदे जुदे भागों में बांट कर उन पर अलग अलग हाकिम (या कार्यकर्त्ता) नियत कर दिए और हरेक काम को दफ्तर के द्वारा लेख बद्ध होने का स्थाई विधान बना दिया। उस जमाने का दफ्तर अब तक असली रूप में विद्यमान है और अब अथवा आगे के लिए आदर्श की भांति काम दे रहा है।+ उनके पीछे जोधसिंहजी रतनसिंह जी और रणजीतसिंह जी के जमाने में १ पीढी तक मीयां जी और शाह जी ने यथापूर्व काम किया और पीछे विलायतखां जी की मृत्यु होजाने से शाह दत्तरामजी प्रधान कार्यकर्त्ता और उनके बेटे तथा अशरफखांजी आदि सहकारी नियत हुए। उक्त तीनों सरदारों के समय में दफ्तर का पूर्वोक्त

प्रबन्ध यथावत बना रहा। दत्तराम जी के पीछे उनके बेटे शंकरराम, किशनराम;पोते विशनराम,राधाकिशन, पुरोहित जगन्नाथजी और अशरफखां बारेखां तथा सरदारा आदि यथायोग्य काम करते रहे। रतनसिंह जी के जमाने में संघी रायचन्दजी की नवीन नियुक्ति हुई थी। वह युद्धादि में साथ जाते और शांति विग्रह में बुद्धि से काम लेते थे। + उनके पीछे कृष्णसिंहजी के जमाने में ठा० दूलहसिंह जी, मिश्रभागीरथ जी और दो एक पठान-तथा लक्ष्मणसिंहजी के जमाने में ठा० दीपसिंहजी, शाह रामनारायणजी और बक्षी चाँदूलालजी आदि थे। दूलैसिंह जी ने शत्रु निवारण में वीरता और प्रबन्ध आदि में दूरदर्शिता दिखलायी थी और दीपसिंह जी ने किशनगढ़ बसाने और चौमूँ का व्यवसाय बढ़ाने में अपनी अद्वितीय योग्यता का परिचय दिया था। ये दोनों भाई थे। इनके वंशज किशनगढ़ तथा चौमूँ में किलेदार रहे हैं और चौमूँ के वर्तमान किलादार लालसिंहजी उन्हीं के वंशज हैं। + उनके पीछे गोविंदसिंहजी के समय में पहिले शाह रामनारायण जी उनके पीछे बक्षी चाँदूलाल जी और उनके मरे पीछे फिर आनन्दसिंह जी प्रधान कार्य कर्ता हुए और गणपतलाल जी आदि उनके सहायक रहे। ठाकुराँ गोविंदसिंह जी स्वयं महा बुद्धिमान् और प्रभावशाली पुरुष थे अतः आनन्दसिंहजी जैसे विलक्षण बुद्धिवाले साहसी सत्पुरुष के सहयोग से उन्होंने चौमूँ ठिकाने का सुप्रबंध रखने के सिवा कई एक आपत्तिजनक या हानिकारक कारणों को निर्मूल किया था। आनंदसिंहजी का वैकुण्ठ वास होने पर उनके पुत्र कल्याणसिंहजी चौमूँ के प्रधान कार्य कर्ता नियुक्त हुए। उन्होंने कई कामों में शोध-सुधार-तब्दीली और तरक्की की और दफ्तरको सद्व्यवस्थ बनाया। यहाँ का काम करते रहने की अवस्था में ही राज्य ने उनको बग्गीखाना तथा फीलखाना आदि के लिए अपने यहाँ ले लिया था अतःठाकुराँ देवीसिंहजी ने ठिकाने के काम को सुचारु बनाने के विचार से संवत् १९८४ भादवा सुदी ५ तारीख १ सिंतबर सन् १९२७ को "बोर्ड आफ एडमिनिस्ट्रेशन" कायम किया और उसके सर्वोच्च अधिकारी कुँवर राजसिंहजी नियत हुए,

(जिनका परिचय परिवार वर्ग में दिया गया है) उनके सिवा पुरोहित रामनिवासजी ऐम. ए. (जो बहुत दिनों से ठिकाने के कामों को तन-देही, और सावधानी से कर रहे थे) सब प्रकार के आयव्यय के काम उनके सिपुर्द किए गए, और पंडित अर्जुनलालजी ऐम. ए. ऐल. ऐल. बी. (जो सौम्य प्रकृति के विचार शील व्यक्ति हैं) ठिकाने के मुकद्दमात की सम्भाल व राज्य की ओर से आने वाली तामीलों का काम करने पर नियुक्त हुए, साथ में लाला इन्द्र-लालजी प्रत्येक काम में सब के सहकारी या सहायक रहे। इस प्रकार वह समयोचित और नवीन विधान तब से अब तक यथावत जारी है और ठिकाने के सब काम या संपूर्ण प्रबन्ध उसी बोर्ड के आधार-पर हो रहे हैं। ठाकुर साहब के स्मृति चिन्हों के विषय में यथा स्थान आव-श्यक अंश प्रकाशित हो चुका है। उनके सिवा ठाकुराँ गोविन्दसिंहजी की छत्री अभी बनी है जो छोटी होने पर भी सुन्दर-सुखद और सुदृढ है। अस्तु।

(४१) "समाप्ति के दो शब्द":— कहने में 'पहिला' यह है कि 'जयपुर के विस्तृत इतिहास में नाथावतों का परिचय चौथा अंश है और प्रस्तुत इतिहास उसी का प्रथम खण्ड है। इस में मुख्यतया चौमूँ के सरदारों का आनुपूर्व्यां वर्णन आया है। इसी प्रकार इसके दूसरे खण्ड में सामोद के सरदारों का पूरा इतिहास दिया गया है। जिसके अन्त में मोरीजा, मूँड़ोता, अजैराजपुरा, रैवासा और रैणवाल आदि सभी ठिकानों का (क्रमिक-पीढियों सहित) पूरा हाल है। और उनके गोत्र-बड़वा-देवी और रीति-रिवाज भी दिये हैं। इस विषय में यह सूचित कर देना नितांत आवश्यक है कि 'जिस प्रकार नाथावतों ने आमेर या जयपुर राज्य की अमिट सेवायें की हैं उसी प्रकार इनके सहयोग में या मौके मौके पर अन्य अवसरों में राज्य के प्रायः सभी शूरसामंतों, सरदारों, भाई बेटों या ठिकाने वालों ने उत्तम सेवा की हैं और धूला, बगरू, अचरोल, और ईशरदा आदि ने कई अवसरों में स्मरणीय सेवा के अनुरोध से खून का केवल पसीना ही नहीं किया है बल्कि पानी की तरह खून बहाकर अपने राजावत, नाथावत, बलभद्रोत्त,

सुरताणोत, चतुर्भुजोत, प्रताप पोता, शिवब्रह्मपोता और कूँभाणी आदि होने को सार्थक किया है। अथवा सच्चे भाई बेटे होने का परिचय दिया है। 'दूसरा' यह है कि 'उन लोगों के उज्वल यश को प्रकाशित करने की बहुत ही इच्छा थी किंतु इस संबंध की शोधित और पूर्ण सामग्री प्राप्त नहीं हुई। आशा है हमारे वर्तमान जयपुर नरेश महाराज सवाई मानसिंहजी (द्वितीय) जिन्होंने महाराज मानसिंह जी (प्रथम) के समान समयोचि[त] कामों में विजय प्राप्त किया है औ[र] 'मानगार्ड' जैसे साधनों के द्वारा कछवाहे क्षत्रियों की तन मन और धनादि से अद्वितीय हितकामना कर रहे हैं। वह अनुभवी विद्वानों से जयपुर का शोधित और विस्तृत इतिहास संपादन करावेंगे तो उसमें राज परिवार की संपूर्ण खाँपो का इतिहास देखने में आजायगा। ईश्वर करे महाराज सपरिवार सुप्रसन्न रहें। एवमस्तु

*मानसिंहजी (द्वितीय) का जन्म संवत् १९६८ के भादवा बुदी १२ को ईशरदा में हुआ आरंभ की शिक्षा आपको कोटे में मिली। पीछे जयपुर, अजमेर और विलायत में यथा क्रम विद्याध्ययन किया। संवत् १९७१ के आसोज में आपका राज्याभिषेक हुआ। संवत् १९८० के माघ में आपने जोधपुर महाराज की बहिन का पाणिग्रहण किया। उनके पीछे छोटी महाराणीजी के साथ दूसरा विवाह हुआ। संवत् १९८७ में उच्च शिक्षा प्राप्त करके जब आप विलायत से पधारे तब यहां के अनेक स्थानों में भ्रमण किया और राज्य के सम्पूर्ण महकमों का निरीक्षण किया। आप बड़े उत्साही अनुरागी और प्रजा प्रेमी हैं। ईश्वर ने आपको ३ पुत्र और १ पुत्री प्रदान की है।

सतरहवां अध्याय